NAGRI Pracharini Patrika

1958

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

G.K.V. Lib. HARDWAR

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

110722

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी

विधि पत्रिका

वर्ष २] वैशाख (सौर) सं० २०१५ : शक १८८० : अप्रैल-मई १९५८ [अंक ६

विधिविषयक लेखों, केंद्रीय-राज्य अधिनियमों आदि से युक्त, इलाहाबाद तथा भारत के अन्य उच्च न्यायालयों के महत्वपूर्ण अँगरेजी निर्णयों का हिंदी रूपांतर तथा विवरण प्रकाशित करनेवाली हिंदी जगत् की एकमात्र मासिक पत्रिका

विषय सूची

द तालिका	१	इलाहाबाद उच्चन्यायालय.	७९–९४
व खंड	१–३	,, (राजस्व)	२५–३२
धिनियम खंड	१–५	विधिक अंग्रेजी-हिंदी-शब्दसंग्रह	९९–१०६
च्च न्यायालय	३७–४४		

र्षिक शुल्क १०) एक प्रति का १)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परामर्शदातृ समिति

(१) श्री कमलाकांत वर्मा, भूतपूर्व मुख्य न्यायाधिपति, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद
(२) श्री बलराम उपाध्याय, न्यायाधीश, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद।
(३) श्री कन्हैयालाल मिश्र, महाधिवक्ता, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद।
(४) श्री गोपालचंद्र सिंह, विशेष अधिकारी, सचिवालय, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ।
(५) श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प्राध्यापक, हिंदी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय।

संपादक मंडल

(१) श्री गिरिजाभूषण जोशी, आचार्य ला कालेज, काशी हिंदू विश्वविद्यालय
(२) श्री व्रजरत्नदास, वकील, वाराणसी।
(३) श्री प्रतापनारायण सिंह, राजकीय अधिवक्ता, वाराणसी।
(४) श्री गौरीनंदन उपाध्याय, ऐडवोकेट, वाराणसी।
(५) श्री देवीनारायण, ऐडवोकेट, वाराणसी।
(६) श्री कैलासपति त्रिपाठी, ऐडवोकेट, वाराणसी।
(७) श्री गोपीकृष्ण, बार-ऐट-ला, वाराणसी।
(८) श्री चतुर्भुजदास पारिख, ऐडवोकेट, वाराणसी।
(९) श्री राघवराम वर्मा, वकील, वाराणसी।
(१०) चौधरी शुकदेव सिंह, वकील, वाराणसी।
(११) श्री मोतीलाल बापुली, ऐडवोकेट, वाराणसी।

श्री चंद्रभूषण मिश्र, ऐडवोकेट
श्री रामसुरत सिंह, ऐडवोकेट } प्रतिवेदक, इलाहाबाद

संपादक (संयोजक)—सिद्धनाथ सिंह बी० ए०, एल-एल० बी०, वकील
सहायक संपादक—पारसनाथ सिंह बी० ए०, एल-एल० बी०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

110722
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
110722

विधि पत्रिका अप्रैल-मई १९५८

शक (१८८०)

वाद तालिका

१—अब्दुल रहमान वि० उ० प्र० राज्य	इला० उ० न्या०	८६
२—गौरी शंकर वि० रघुवीर दयाल	इला० (राजस्व)	३१
३—जी० एक्स० फ्रांसिस वि० बाँके बिहारी सिंह	सर्वो० न्या०	४३
४—ज्योति स्वरूप वि० जिलाधीश पीलीभीत	इला० (राजस्व)	२६
५—ज्ञानेंद्रनाथ मित्तल वि० दामोदर भट्ट	इला० उ० न्या०	८८
६—तलब हाजी हुसेन वि० मधुकर पुरुषोत्तम मोदकर	सर्वो० न्या०	३८
७—दुल्ला वि० राज्य सरकार	इला० उ० न्या०	६०
८—द्वारिका वि० ज्वाला सिंह	इला० (राजस्व)	२७
९—फय्याज मुहम्मद खाँ वि० अब्दुल मुजीब खाँ	इला० (राजस्व)	२६
१०—फर्म बूलचंद वि० एल० ओंकारनाथ	इला० उ० न्या०	८५
११—बसावन वि० फदीर बख्श	इला० (राजस्व)	२५
१२—मुहम्मद नबी वि० रघुनाथ	इला० (राजस्व)	३०
१३—राजा गंगाप्रताप सिंह वि० इलाहाबाद बैंक	सर्वो० न्या०	४४
१४—राज्य वि० अजगुत सिंह	इला० (राजस्व)	३२
१५—वासुदेव ओझा वि० उ० प्र० राज्य	इला० उ० न्या०	७९
१६—सदानंद तिवारी वि० राज्य	इ० उ० न्या०	८७
१७—संतोष कुमार वि० भाई भूल सिंह	सर्वो० न्या०	४१

————

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि पत्रिका

[लेख खंड]

वर्ष २] वैशाख (सौर) सं० २०१५ : शक १८८० : अप्रैल-मई १९५८ [अंक ६

संपादकीय

साक्षी और न्याय—

साक्ष्य का न्याय से अटूट संबंध है। आज तो साक्षी के बिना न्याय की कल्पना ही नहीं की जा सकती। प्राचीन न्याय पद्धति में साक्षियों का इतना महत्व नहीं था। न्यायकर्ता को घटना की छानबीन करने का अधिकार प्राप्त था और वह छानबीन करके रहस्योद्घाटन करता था। प्राचीन काल में जब नृप ही न्यायकर्ता होता था तो उसे इसके लिये पूर्ण अधिकार था परंतु जब धीरे धीरे न्यायकर्ता शासक से भिन्न होने लगा उस समय भी आज के न्यायकर्ता से उसकी स्थिति भिन्न थी। कानून की धाराओं में वह बिलकुल बँधा न था पर धीरे धीरे न्याय पद्धति में अनेक परिवर्तन हुए और वर्तमान काल में विधि और उसकी प्रक्रिया न्याय के आधार हो गए हैं। आज न्यायकर्ता को निजी रूप से किसी घटना का साक्षात्कार भी हो तो वह उसे निर्णय का आधार नहीं बना सकता। दीवानी के मुकदमों में तो अनेक कागजी प्रमाण उसके सहायक होते हैं परंतु फौजदारी के विवादों में तो साक्षी ही प्रधान रहता है। हत्या, डाका बलात्कार चोरी, मारपीट आदि सभी अपराधों में साक्षी की आवश्यकता होती है। प्राचीन काल में कुछ अपराध ऐसे थे जिनमें साक्षी की आवश्यकता नहीं थी। बलात्कार में मनु जीने साक्षी की आवश्यकता नहीं बतलाई है। ऐसे अपराधों में साक्षी का वर्तमान रहना स्वाभाविक भी नहीं है। पर आज बलात्कार जैसे कुछ ही अपराधों को छोड़कर जिनमें एकमात्र उस स्त्री के साक्ष्य पर ही अभियुक्त की दोषसिद्धि हो सकती है प्रायः समस्त अपराधों के लिये साक्षी की आवश्यकता पड़ती है। साक्षी के बिना घटना की पुष्टि नहीं हो सकती और घटना की पुष्टि हुए बिना किसी को दंडित भी नहीं किया जा सकता। इसके परिणाम स्वरूप साक्षी की खोज होने लगती है। अपराध दो भागों में विभाजित किया गया है। कुछ अपराध ऐसे हैं जिनमें राज्य अभियोजक होता है। गुरुतर अपराधों में राज्य के ऊपर मुकदमों का उत्तरदायित्व होता है। उसका सारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यय राज्य वहन करता है। राज्य के प्रतिनिधि स्वरूप पुलिस काम करती है। साक्षी के बिना अपराध सिद्धि होना असंभव है इसलिए पुलिस को साक्षी की खोज करनी पड़ती है। जिन मुकदमों में संपूर्ण घटना को देखनेवाले साक्षी होते हैं उनमें तो विशेष कठिनाई नहीं पड़ती किंतु जिन मुकदमों में प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं आते उनमें पुलिस अपने प्रभाव तथा भय से साक्षी खड़ा करती है। घटना को देखा हो या नहीं परंतु उसे न्यायालय में झूठी बातें कहनी पड़ती हैं। इस प्रकार कानून भी असत्य कहने के लिये प्रोत्साहित करता है। प्रायः ऐसे साक्षी जिरह में टूट जाते हैं और संदेह का लाभ उठाकर अपराधी निर्दोष सिद्ध हो जाते हैं या निरपराधी दंडित हो जाते हैं। इसका दूसरा परिणाम यह भी होता है कि जब प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं प्राप्त होते और कानून के निर्देश से साक्षी की खाना पूरी करना अनिवार्य होता है तो इस स्थिति में राग द्वेष भी बहुत फैलता है। ऐसे साक्षी खोज निकाले जाते हैं जिनसे मनमुटाव या बैर रहता है। साक्षी बनकर अपराधी को दंडित करने में कुछ लोग अपना उल्लू सीधा करना चाहते हैं। इससे उनका स्वार्थ साधन हो जाता है। यदि कानून में परिवर्तन हो सके तो इससे सत्य की रक्षा बहुत अंशों में हो सकती है। कुछ अपराधों के लिये साक्ष्य के इस कठोर नियम में ढिलाई की अत्यंत आवश्यकता है। साक्ष्य के इस कठोर नियम ने अत्यंत दूषित वातावरण उपस्थित कर दिया है। आज साक्षी किराए पर ढूँढ़े जाते हैं। कितने लोगों का तो झूठा साक्ष्य देना व्यवसाय हो गया है। कुछ लोग तो नित्य ही कचहरी में बस्ता दबाए घूमते हैं और झूठा साक्ष्य दिया करते हैं। साक्ष्य का कानून अंग्रेजों का बनाया हुआ है जिसमें भारत के वातावरण और यहाँ के मनोविज्ञान का ध्यान नहीं रखा गया था। इस देश की नैतिकता की अपनी एक पृथक् कहानी रही है और यह परंपरा लोगों के चित्त पर सुंदर प्रभाव डालती रहती थी तथा मनोवैज्ञानिक दशा भी इन्हीं परंपराओं पर आश्रित रहती थी। सत्य की मर्यादा परंपराओं की एक श्रृंखला थी और इनसे सामाजिक धर्म की भी नींव सुदृढ़ होती थी। यहाँ सत्य के लिये लोग बिक सकते थे। झूठ बोलना पाप समझते थे। देश का वातावरण कुछ ऐसी ही भावनाओं को लेकर बना था। किंतु अंग्रेजों के आगमन से और विदेशी आचार विचार के संपर्क से उन परंपराओं की मर्यादा टूट गई। वह एक दिन की स्थिति थी कि फाँसी पर झूल जाना झूठ बोलने से श्रेयस्कर समझा जाता था। पर आज इस मनः स्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन हो चुका है। कचहरी का झूठ आज असत्य की परिभाषा के अंतर्गत नहीं आता। वहाँ की शपथ एक औपचारिक ढंग की शपथ है जिसे पूरा करने में एक पल के लिये भी हिचक नहीं होती। इंगलिस्तान या दूसरे देशों में कर्म की दीक्षा बहुत प्रबल थी। धर्म और कर्म के बीच बहुत पहले से एक रेखा थी और दोनों में विभेद था। भारतीय विचार इससे प्रतिकूल था। यहाँ धर्म इतना व्यापक हो गया था कि वह मनुष्य के प्रत्येक कर्म को चाहे वह धार्मिक रहा हो या सामाजिक निगल गया था। धीरे धीरे धर्म की कड़ियाँ निर्बल होती गईं और धार्मिक दृष्टिकोण में महान् परिवर्तन हुए। लोगों के विचारों में उलट फेर हुए। इनका प्रभाव कर्म क्षेत्र पर पड़ा क्योंकि कर्म की कोई पृथक् रूप से दीक्षा नहीं हुई थी। दूसरे देशों में नागरिक जीवन में कर्म को प्रधानता दी जा चुकी थी। वैयक्तिक जीवन, सामाजिक जीवन, राष्ट्रधर्म इत्यादि अनेक क्षेत्र थे। वहाँ न्याय के क्षेत्र में प्रत्येक व्यक्ति न्याय की सहायता करने के लिये तत्पर रहता है। प्रत्येक की शिक्षा ही इस ढंग की है। वह अपना पुनीत कर्तव्य समझता है कि न्याय में उसका सहयोग हो। वह अपराध को रोकने में अपने को राष्ट्र का अंग समझता है। यहाँ ऐसी बात नहीं। राष्ट्रीय चरित्र का अभी तक निर्माण नहीं हो पाया है क्योंकि पराधीनता ने हमारे मनोभावों को झकझोर दिया था। हत्या के मुकदमों में वहाँ की कार्य पद्धति दूसरे ढंग की है। सरकारी एजेंसी के अतिरिक्त दूसरे प्रकार से भी हत्याओं का रहस्योद्घाटन होता है। यहाँ के साक्षियों में यह बात नहीं; साक्ष्य धर्म से वे अवगत नहीं न अपने उत्तरदायित्व पूर्ण इस बोझ को वहन करने की उनमें सामर्थ्य है। बहुधा भद्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुष तो कचहरी की छाया से भी दूर रहना चाहते हैं और जिरह के थपेड़ों से बचना चाहते हैं। दूसरी ओर कुछ लोगों का नित्य का यह काम हो गया है। ऐसे लोग जिरह में टूटते नहीं। जब साक्षी आज के न्याय का मूल श्रोत है उस स्थिति में साक्षियों की शिक्षा, उनको अपने कर्तव्यों की ओर जागरूक करना, व्यवसायी साक्षियों की एक सूची रखना, न्याय में भद्र पुरुषों की अभिरुचि उत्पन्न करना, उनके सहयोग के लिए अनुकूल वातावरण उत्पन्न करना इत्यादि की अत्यंत आवश्यकता है तथा साथ ही साक्ष्य कानून में कुछ अपराधों में साक्षी के अभाव में लिखित प्रतिवाद (रिटेन स्टेटमेंट) की व्यवस्था करना आवश्यक है जिनमें परिस्थितियों से स्वयं अपराध की पुष्टि होती हो। आज साक्षियों की ओर ध्यान देना नितांत आवश्यक है। एक तुलनात्मक अध्ययन होना चाहिए जिससे प्राचीन न्यायपद्धति तथा दूसरे देशों की न्यायपद्धति से हमें प्रकाश प्राप्त हो।

—सिद्धनाथ सिंह

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्त्रियों एवं लड़कियों का अनैतिक व्यापारीय दमन अधिनियम, १९५६

(अधिनियम १०४।१९५६)

३० दिसंबर १९५६

९ मई सन् १९५० को न्यूयार्क में जो अंतरराष्ट्रीय संमेलन पर हस्ताक्षर किया गया था उसके अनुसार स्त्रियों एवं लड़कियों के अनैतिक व्यापार के दमन के लिये यह अधिनियम

भारतीय गणतंत्र के सप्तम वर्ष में संसद द्वारा निम्नलिखित प्रकार से अधिनियमित हो :—

१—संक्षिप्त शीर्षक, विस्तार एवं प्रारंभण—

(१) यह अधिनियम स्त्रियों एवं लड़कियों का अनैतिक व्यापारीय दमन अधिनियम, १९५६ कहा जायगा ।

(२) इसका विस्तार समस्त भारतवर्ष में होगा ।

(३) यह धारा तुरत लागू होगी तथा इस अधिनियम के बचे हुए उपबंध उस तिथि को लागू होंगे जिसे केंद्रीय सरकार राजकीय राजपत्र में विज्ञप्ति द्वारा निश्चित करे ।

२—परिभाषाएँ—

जब तक किसी प्रसंग में कोई दूसरी बात न हो इस अधिनियम में:—

(अ) 'वेश्यालय' में वह घर कमरा या स्थान अथवा घर, कमरा या स्थान का कोई भाग संमिलित है जो किसी दूसरे व्यक्ति के लाभ के लिये या दो या दो से अधिक वेश्याओं के परस्पर लाभार्थ वेश्यावृत्ति के प्रयोजनों के लिये प्रयुक्त होता हो ।

(ब) 'लड़कियों' का अभिप्राय उन स्त्रियों से है जो २१ वर्ष की अवस्था की न हो गई हों ।

(स) 'मजिस्ट्रेट' का अभिप्राय जिलाधीश, सब डिविजनल मजिस्ट्रेट, प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट या उस प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट से है जिसे राज्य सरकार ने राजकीय राजपथ में विज्ञप्ति द्वारा इस अधिनियम के अंतर्गत अधिक्षेत्र के प्रयोग के लिये विशेषरूप से अधिकृत किया हो ।

(द) 'निर्धारित' (प्रेस्काइब्ड) का अभिप्राय इस अधिनियम के अंतर्गत नियमों द्वारा निर्धारण करने से है ।

(य) 'वेश्या' का अभिप्राय उसमें स्त्री से है जो अपने शरीर को रोकड़ या प्रकार में भाड़े पर निर्विशिष्ट मैथुन के लिये दे देती है ।

(र) 'वेश्यावृत्ति' का अभिप्राय किसी स्त्री के उस कार्य से है जिसमें वह अपने शरीर को रोकड़ या प्रकार के निमित्त भाड़े पर निर्विशिष्ट मैथुन के लिये समर्पण कर देती है ।

(ल) 'संरक्षणीय घर' का अभिप्राय उस संस्था से है चाहे उसे जिस नाम से पुकारा जाय, जिसमें स्त्रियाँ एवं लड़कियाँ इस अधिनियम के अनुसार रखी जायँ और इसमें निम्नलिखित भी संमिलित हैं—

(१) कोई आश्रय जिसमें अन्वीक्षाधीन स्त्रियाँ इस अधिनियम के अनुसार रखी जायँ और

(२) (अ) कोई शोधक संस्था जिसमें इस अधिनियम के अंतर्गत उद्धार की हुई और रोक रखी गई स्त्रियों और लड़कियों को ऐसी कला और शिक्षण संबंधी तथा ऐसे अनुशासन और प्रभावोत्पादक नैतिक वातावरण में शिक्षा दी जाय जिससे उनका सुधार हो और इस अधिनियम के अंतर्गत अपराध रोकने में सहायक हों ।

(ब) 'सार्वजनिक स्थान' का अभिप्राय किसी ऐसे स्थान से है जो जनता के प्रयोग किए जाने के विचार से तथा जनता के पहुँचने योग्य हो तथा इसमें सार्वजनिक वाहन भी संमिलित हैं ।

(स) 'विशेष पुलिस अधिकारी' का अभिप्राय उस पुलिस अधिकारी से है जिसे राज्यसरकार या राज्यसरकार के लिये इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिये निर्दिष्ट क्षेत्र में पुलिस के कर्तव्य के कार्य के लिये नियुक्त किया जाय ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(द) 'स्त्री' वह स्त्री है जो इक्कीस वर्ष की अवस्था की हो चुकी हो।

३—वेश्यालय रखने या मकान को वेश्यालय के प्रयोग के संबंध में अनुमति के लिये दंड:—

(१) कोई व्यक्ति जो वेश्यालय रखता है प्रबंध करता है या उसमें कार्य करता है या सहायता पहुँचाता है वह पहली दोषसिद्धि में एक वर्ष से न कम और ३ वर्ष से न अधिक के कठोर कारावास तथा अर्थदंड से भी दंडित होगा जो २ सहस्र रुपए तक हो सकता है तथा दूसरी और पश्चात्वर्ती दोषसिद्धि के लिये २ वर्ष से न कम और ५ वर्ष से न अधिक कठोर कारावास तथा अर्थदंड से भी दंडित होगा जो दो सहस्र रुपए तक हो सकता है।

(२) कोई व्यक्ति जो—

(अ) किरायादार, पट्टेदार या धारण करनेवाला हो या जिसके प्रभार के अंतर्गत कोई मकान हो वह उसका प्रयोग स्वतः या किसी अन्य व्यक्ति को, जानबूझ कर उस मकान को या उसके किसी भाग को वेश्यालय रूप में प्रयोग करने की अनुमति देता है, अथवा

(ब) किसी मकान का स्वामी पट्टेदार या भू-स्वामी होकर या ऐसे स्वामी का अभिकर्ता होकर उस मकान को या उसके किसी भाग को यह जानते हुए किराए पर देता है कि उसको वेश्यालय बनाने का विचार है या जानबूझकर छिपाते हुए स्वतः उस मकान को या उसके किसी भाग को वेश्यालय रूप में प्रयोग करने में एक पक्ष होता है

वह पहली दोषसिद्धि में २ वर्ष के कारावास के लिये अर्थदंड के साथ जो दो सहस्र रुपए तक हो सकता है तथा दूसरी और तत्पश्चात् की दोषसिद्धि के लिये ५ वर्ष के कठोर कारावास तथा अर्थदंड के साथ भी दंडित हो सकता है।

(३) उस समय लागू किसी अन्य विधि में किसी भी बात के रहते हुए भी उपधारा २ के उपवाक्य (अ) और (ब) में दिए गए अपराधों के लिये किसी व्यक्ति की दोषसिद्धि होने पर उस मकान या उसके किसी भाग के संबंध में कोई पट्टा या संविद् जिसके आधार पर मकान का पट्टा किया गया है या अपराध करने के समय धारण में है वह दोषसिद्धि की तिथि से प्रभावशून्य एवं प्रवर्तनशून्य हो जायगा।

४—वेश्याकर्म की कमाई पर जीवन यापन करने में दंड—

(१) अठारह वर्ष से अधिक आयु का कोई व्यक्ति जो किसी स्त्री या लड़की के वेश्याकर्म की कमाई पर जानबूझ कर संपूर्णतः या अंशतः निर्भर करता है वह २ वर्ष तक कठोर कारावास के दंड का भागी होगा या उसे एक सहस्र रुपए तक अर्थदंड अथवा दोनो प्रकार के दंड दिए जा सकते हैं।

(२) जब किसी व्यक्ति के बारे में यह प्रमाणित हो जाता है कि वह—

(अ) किसी वेश्या के साथ रहता है या उसके साथ रहने का अभ्यासी है, या

(ब) किसी वेश्या की गतिविधि में नियंत्रण, निर्देश या अपने प्रभाव का प्रयोग इस भाँति करता है जिससे यह दिखलाई पड़ता है कि वह व्यक्ति वेश्याकर्म में सहायता और प्रोत्साहन देता या उसे इस कर्म के लिये बाध्य करता है, अथवा

(स) किसी वेश्या की ओर से दलाल या संचालक का काम करता है तो यह अभिधारणा की जायगी, जब तक कि इसके प्रतिकूल प्रमाणित न हो जाय, कि वह उपधारा (१) के अभिप्राय के अंतर्गत जानबूझ कर वेश्या की कमाई पर निर्भर करता है।

किंतु प्रतिबंध है कि इस प्रकार की कोई अभिधारणा किसी वेश्या के अठारह वर्ष से कम आयुवाले पुत्र या पुत्री के प्रति नहीं की जायगी।

५—वेश्याकर्म के लिये किसी स्त्री या लड़की की प्राप्ति करना, उसको प्रेरणा देना या रखना—

(१) कोई व्यक्ति जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अ) किसी स्त्री या लड़की की प्राप्ति वेश्याकर्म के लिये करता है या प्राप्त करने का प्रयत्न करता है तो चाहे उसकी स्वीकृति रही हो चाहे न रही हो; अथवा —

(ब) किसी स्त्री या लड़की को कोई स्थान छोड़कर जाने के लिये इस विचार से प्रेरित करता है कि वह वेश्याकर्म के प्रयोजनों के लिये किसी वेश्यालय का सहवासी हो जाय या बुरे काम में रत हो जाय; अथवा—

(स) किसी स्त्री या लड़की को एक स्थान से दूसरे स्थान पर वेश्याकर्म करने के लिये या वेश्याकर्म करने के वातावरण में पालन पोषण के लिये ले जाता है या ले जाने का प्रयत्न करता है; अथवा

(द) किसी स्त्री या लड़की के वेश्याकर्म करने का कारण होता है या उसे प्रेरित करता है

वह दंड का भागी होगा जो प्रथम दोषसिद्धि में एक वर्ष कठोर कारावास से न कम होगा न दो वर्ष से अधिक तथा इसके साथ दो सहस्र रुपए का अर्थ दंड भी दिया जा सकता है।

(२) इस धारा के अंतर्गत दूसरी बार दोषसिद्धि होने पर वह व्यक्ति कठोर कारावास के दंड का भागी होगा जो न दो वर्ष से कम होगा और न ५ वर्ष से अधिक और इसके साथ अर्थ दंड भी दिया जा सकता है जो दो सहस्र रुपए का हो सकता है।

(३) इस धारा के अंतर्गत अपराध की अन्वीक्षा —

(अ) उस स्थान पर होगी जहाँ से कोई स्त्री या लड़की प्राप्त की गई है, जाने के लिये प्रेरित की गई है, ले जाई गई है या ले जाने का कारण हुई है अथवा उस स्थान पर जहाँ से ऐसी स्त्री या लड़की की प्राप्ति हुई है या उसके ले जाए जाने का प्रयत्न किया गया है, अथवा

(ब) उक्त धारा के अंतर्गत अपराध की अन्वीक्षा उस स्थान पर होगी जहाँ पर प्रेरणा के परिणाम स्वरूप वह चली गई हो या उस स्थान पर ले जाई गई हो या ले जाए जाने का कारण हुई हो या उसके ले जाए जाने का प्रयत्न किया गया हो।

६—किसी स्त्री या लड़की को उस मकान में रखना जहाँ पर वेश्यावृत्ति की जाती हो—

(१) कोई व्यक्ति किसी स्त्री या लड़की को चाहे उसकी स्वीकृति से या स्वीकृति के बिना

(अ) किसी वेश्यालय में, अथवा

(ब) किसी मकान में या मकान पर इस विचार से कि वह अपने विधिसंमत पति को छोड़कर किसी अन्य पुरुष के साथ मैथुन करे, रोक रखता है

वह दंड का भागी होगा जो प्रथम दोषसिद्धि में एक वर्ष कठोर कारावास से कम तक का न होगा और दो वर्ष से अधिक का तथा इसके साथ अर्थ दंड भी दिया जा सकता है जो दो सहस्र रुपए तक का हो सकता है।

(२) इस धारा के अंतर्गत अपराध में दूसरी बार दोषसिद्धि होने पर उस व्यक्ति को कठोर कारावास का दंड दिया जायगा जो दो वर्ष से कम और ५ वर्ष से अधिक का न होगा तथा इसके साथ दो सहस्र रुपए तक का अर्थदंड भी दिया जा सकता है।

(३) उस व्यक्ति के संबंध में, किसी मकान में या मकान पर या किसी वेश्यालय में किसी स्त्री या लड़की को अपने विधिसंमत पति के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति के साथ मैथुन करने के लिये रोक रखने की अभिधारणा तब की जायगी जब ऐसा व्यक्ति उसे वहाँ रहने के लिये बाध्य करने या प्रेरित करने के विचार से—

(अ) उसके किसी आभूषण, पहनने के वस्त्र, रुपया या उसकी किसी अन्य संपत्ति को रोक लेता है, अथवा

(ब) उसे धमकाता है कि यदि वह उन आभूषणों, पहनने के वस्त्रों रुपयों या अन्य संपत्तियों को जिन्हें उस व्यक्ति के निर्देश द्वारा उसे उधार दिया गया है या दे दिया गया है, अपने साथ ले जायगी तो उसके विरुद्ध कानूनी कार्यवाही की जायगी।

(४) किसी अन्य प्रतिकूल विधि के रहते हुए भी जिस व्यक्ति ने किसी स्त्री या लड़की को रोक रखा था उसके द्वारा उस स्त्री या लड़की को उधार दिए गए,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दे दिए गए या उस स्त्री या लड़की द्वारा गिरवीं रखे हुए किसी आभूषण, पहनने के वस्त्र या अन्य संपत्ति या वह रुपया जो उस स्त्री या लड़की के यहाँ चाहिए उन्हें वापस पाने के लिये ऐसे व्यक्ति की ओर से कोई वाद अभियोजन या अन्य कानूनी कार्यवाही उस स्त्री या लड़की के विरुद्ध नहीं की जायगी।

७—सार्वजनिक स्थानों में या उसके पड़ोस में वेश्याकर्म—

(१) कोई स्त्री या लड़की किसी मकान में जो किसी सार्वजनिक धार्मिक पूजागृह, शिक्षा संस्था छात्रावास, अस्पताल, उपचारगृह या अन्य प्रकार के सार्वजनिक स्थान जो जिलाधीश या पुलिस कमिश्नर की ओर से निर्धारित विधि द्वारा घोषित हों उसके २०० गज के भीतर वेश्याकर्म करती है और जिस व्यक्ति के साथ वेश्याकर्म किया जाता है तीन मास तक कारावास के दंड से दंडित होंगे।

(२) कोई व्यक्ति जो—

(अ) सार्वजनिक स्थान का व्यवस्थापक है जानबूझ कर वेश्याओं को वहाँ अपने व्यापार करने के लिये आश्रय देता है या ऐसे स्थान पर उन्हें रहने देता है; अथवा

(ब) किरायादार पट्टेदार, धारण करनेवाला या वह व्यक्ति उपधारा (१) में अभिदिष्ट किसी मकान के प्रभार (चार्ज) में है और वह जानबूझ कर मकान को या उसके किसी भाग को वेश्याकर्म में प्रयुक्त करने की स्वीकृति देता है—अथवा

(स) धारा (१) में अभिदिष्ट किसी मकान का कोई व्यक्ति स्वामी पट्टेदार या भू-स्वामी होकर या ऐसे स्वामी पट्टेदार या भू-स्वामी का अभिकर्ता होकर उस मकान को या उसके किसी भाग को किराया पर देता है और जानता है कि इस प्रकार वह मकान या मकान का कोई भाग वेश्याकर्म के लिये प्रयोग में आएगा और उस प्रकार यदि वह जानबूझ कर ऐसे कार्यों के प्रयोग में एक पक्ष बनता है तो उसे पहली दोषसिद्धि में तीन महीने के कारावास का दंड होगा या २०० रु० तक अर्थदंड हो सकता है या दोनों प्रकार के दंडों से दंडित हो सकता है। तथा दूसरी और पश्चात्वर्ती दोषसिद्धि के लिये ६ महीने तक कारावास का दंड होगा तथा २०० रु० तक के अर्थदंड से भी दंडित हो सकता है।

८—वेश्याकर्म के लिये बहकाना या उसके पक्ष में मत प्राप्त करना।

जो कोई किसी सार्वजनिक स्थान में या सार्वजनिक स्थान से दिखलाई पड़नेवाले स्थान पर इस भाँति जो कि किसी सार्वजनिक स्थान से दिखलाई पड़ सकता है या वहाँ से सुनाई पड़ सकता है और चाहे घर के भीतर से या बाहर से—

(अ) शब्दों संकेतों, अपने शरीर को दुर्भावना से खोल कर (चाहे खिड़की चाहे किसी मकान की अटारी पर बैठ कर या किसी दूसरे ढंग पर) या किसी अन्य प्रकार से किसी व्यक्ति का ध्यान वेश्याकर्म के लिये आकृष्ट करती है या उसे ललचाती है; अथवा

(ब) किसी व्यक्ति को जो पड़ोस में रहता है या सार्वजनिक स्थान से होकर जा रहा है उसे बुलाती है या छेड़-छाड़ करती है या—

इस प्रकार का व्यवहार करती है कि उससे लोगों के कार्य में बाधा पड़ती है या उन्हें चिढ़ होती है या वेश्याकर्म के लिये सार्वजनिक शुचिता के प्रतिकूल कार्य करती है।

वह पहली दोषसिद्धि पर ६ मास तक के कारावास के दंड से दंडित होगी या ५०० रु० तक का अर्थदंड भी हो सकता है अथवा दोनों प्रकार का दंड दिया जा सकता है तथा दूसरी और पश्चात्वर्ती दोषसिद्धि के लिये १ वर्ष तक कारावास का दंड और उसके साथ ५०० रु० तक का अर्थदंड भी दिया जा सकता है।

९—किसी स्त्री या लड़की का अभिरक्षा के अंतर्गत होने पर बहकाना—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) कोई व्यक्ति जिसकी रक्षा में या प्रभार में या उसकी देखरेख में कोई स्त्री या लड़की हो और वह उसे वेश्या कर्म के लिए बहकाने में सहायता देता है, कारण बनता है या प्रोत्साहन देता है वह पहली दोषसिद्धि में एक वर्ष से न कम और ३ वर्ष से न अधिक के कठोर कारावास के दंड का भागी होगा तथा उसे एक सहस्र रुपए तक का अर्थदंड भी दिया जा सकता है ।

(२) इस धारा के अंतर्गत दूसरी और पश्चात्‌वर्ती दोषसिद्धि के लिए वह व्यक्ति ५ वर्ष तक के कठोर कारावास के दंड से दंडनीय होगा तथा उसे एक सहस्र रुपए तक का अर्थदंड भी दिया जा सकता है ।

१०—अच्छे आचरण के लिये परिवीक्षा (प्राबेशन) एवं संरक्षणीय मकानों में रोक लिया जाना ।

(१) (अ) कोई व्यक्ति जो पहली बार धारा ३ की उपधारा २ या धारा ३, ४, ५, ७ और ८ में दोष सिद्ध हुआ है उसकी आयु, चालचलन, पूर्वकृत्यों और उन परिस्थितियों को ध्यान में रखकर जिनके कारण अपराध हुआ है उसी न्यायालय द्वारा जिसने दोषसिद्धि की है दं० प्र० सं० की धारा ५६२ (१) के अनुसार अच्छे आचरण के लिये परिवीक्षा (प्रोबेशन) पर छोड़ दिया जा सकता है ।

(ब) कोई व्यक्ति जिसकी दोषसिद्धि पहली बार धारा ७ या धा० ८ के अंतर्गत हुई है उसकी आयु चाल चलन पूर्व कृत्यों और उन परिस्थितियों पर ध्यान रखते हुए जिनके कारण अपराध हुआ है वह भी दं० प्र० सं० (१८६८) की धारा ५६२ (१ ए०) में दिए गए नियमों के अनुसार प्रबोधन (ऐडमानिशन) के साथ छोड़ा जा सकता है ।

(स) उपवाक्य (अ) और उपवाक्य (ब) में दी गई अवस्थाओं में दं० प्र० सं० १८६८ की धारा ५६१ की उपधारा २, ३ और ४ और ५६३ और ५६४ के उपबंध लागू होंगे ।

(२) जहाँ किसी स्त्री या लड़की की दोषसिद्धि धारा ७ और धारा ८ में हुई है और वह उपधारा १ के उपवाक्य (अ) के अंतर्गत परिवीक्षा (प्राबेशन) पर नहीं छोड़ी गई है या उस उपधारा के उपवाक्य (ब) के अंतर्गत प्रबोधन (ऐडमानिशन) पर नहीं छोड़ी गई है उसके विषय में उसकी आयु, चाल चलन, पूर्वकृत्यों एवं उन परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए जिनके कारण अपराध किया गया है वह न्यायालय जिसने दोषसिद्धि की है उस स्त्री या लड़की को कारावास या अर्थदंड के स्थान पर उसे संरक्षणीय घरों में न २ वर्ष से कम और न ५ वर्ष से अधिक अवधि के लिये रोक रखे जाने का आदेश दे सकता है ।

(३) दं० प्र० सं० (१८६८) या किसी अन्य तत्कालीन प्रवर्ती विधि के रहते हुए भी कोई व्यक्ति जिसकी दोषसिद्ध धारा ३ की उपधारा १ या धारा ६ या धारा ६ के अंतर्गत हुई है परिवीक्षा (प्राबेशन) पर या प्रबोधन (ऐडमानिशन) के साथ नहीं छोड़ा जायगा ।

११—पहले के दोषसिद्ध अपराधियों के पता की विज्ञप्ति ।

(१) जब किसी व्यक्ति की दोषसिद्धि—

(अ) किसी भारतीय न्यायालय द्वारा इस अधिनियम में दंडनीय अपराध के लिये या भारतीय 'दंड-संहिता की धा० ३६३, ३६५, ३६६, ३६६ ए० ३६६ बी०, ३६७, ३६८ ३७०, ३७१, ३७२ या धा० ३७३ के अंतर्गत दंडनीय अपराध के लिये २ वर्ष या उससे ऊपर कारावास के साथ या

(ब) किसी अन्य देश के न्यायालय या न्यायाधिकरण द्वारा उस अपराध के लिये जो यदि भारत में किया जाता तो इस अधिनियम के अंतर्गत या उपर्युक्त धाराओं के अंतर्गत उसी समय तक के कारावास के लिये दंडनीय होता

हो चुकी है

और वह कारावास से छूटने के ५ वर्ष के भीतर इस अधिनियम के अंतर्गत अपराध के लिये या उन धाराओं में अपराध के लिये २ वर्ष या २ वर्ष से अधिक तक के लिये फिर किसी न्यायालय द्वारा दोषसिद्ध होता है तो न्यायालय ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध कारावास का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्तियों के साक्ष्य को बहुत महत्वपूर्ण नहीं माना है दूसरे यह तथ्य का प्रश्न है और जब तक कोई असाधारण कारण नहीं दिखलाया जाता अब इस न्यायालय में इस प्रश्न पर विचार नहीं किया जा सकता।

यह कहना ठीक है कि दं० संहिता की धा० १२० बी, २२४, १०६ तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धा० ५ (२) के अंतर्गत पृथक् पृथक् आरोप नहीं लगाए गए। दं० प्र० सं० की धा० २३३ के अंतर्गत पृथक् पृथक् आरोप होना चाहिए था। किंतु यह अनियमितता धा० ५३७ के अंतर्गत ठीक करके योग्य है कारण कि विशेष न्यायाधीश ने पुनरावेदकों के वकील से कहा था कि यदि पृथक् पृथक् आरोप न होने से आपको कोई हानि हो रही है तो मैं पृथक् पृथक् आरोप बना कर आगे बढ़ूँ इस पर वकील ने कहा कि हमको कोई हानि नहीं है। आरोप बनते समय भी जब अभियोजक ने आपत्ति उठाई थी कि आरोप पृथक् पृथक् होने चाहिए, एक शीर्षक में होना ठीक नहीं है किंतु अभियुक्त के वकील ने कहा था कि आरोपपत्र ठीक है। उच्च न्यायालय के निर्णय में कहीं चर्चा नहीं है कि ऐसा प्रश्न उठाया गया। इससे अभियुक्त को कोई हानि नहीं पहुँची है तथा इस आपत्ति में बल नहीं है।

संमोदन (सैंक्शन) दिया गया कि नहीं यह प्रश्न तथ्य का है। इसको अन्वीक्षा न्यायालय और उच्च न्यायालय के समक्ष उठाना चाहिए था। यहाँ इस विवाद पर विचार नहीं किया जा सकता।

पुनरावेदकों की पहली आपत्ति है कि जिलाधीश ने भेदी साक्षी राम शरण दास को जो दं० प्र० सं० की धा० ३३७ के अंतर्गत क्षमा प्रदान किया वह अवैध था और इस अवैध कार्यवाही के अंतर्गत ही विशेष न्यायाधीश ने उक्त साक्षी का परीक्षण किया। दं० प्र० सं० की धा० ३३७ में अन्य उपबंधों के साथ साथ इस संबंध में दिया गया है कि जिलाधीश केवल सत्र न्यायालय (सेशन कोर्ट) या उच्च न्यायालय द्वारा अन्वीक्षा किए जानेवाले अपराध या वे अपराध जिनके लिए १० वर्ष तक दंड का विधान है अभियुक्त को क्षमा प्रदान कर सकते हैं। इस मामले में ७ वर्ष तक दंड का विधान है। कहा गया है कि जिसमें १० वर्ष तक दंड का विधान है उसी में जिलाधीश क्षमा प्रदान कर सकते हैं। इस धारा का संशोधन हुआ और वह संशोधन जनवरी सन् १९५६ से लागू हुआ। संशोधन में दिया गया कि ७ वर्ष तक दंडवाले अपराध में जिलाधीश अपराधी को क्षमा प्रदान कर सकते हैं। किंतु इस मुकदमें में जिस दिन क्षमा प्रदान की गई थी उस दिन उपर्युक्त संशोधन लागू नहीं था। अतः इस उपबंध के अंतर्गत क्षमा का प्रदान किया जाना वैध नहीं हो सकता।

जिन अपराधों की अन्वीक्षा सत्र न्यायालय में होती है उस अपराधी को भी जिलाधीश क्षमा प्रदान कर सकते हैं। आपराधिक विधि (संशोधन) अधिनियम १९५२ की धा० ८ (३) के अंतर्गत दिया गया है कि उस विशेष न्यायाधीश का न्यायालय भी सत्र न्यायालय समझा जायगा जो बिना जूरी और असेसर की सहायता से मुकदमें की सुनवाई करते हों। उक्त अधिनियम की धा० ६ में है कि पुनरावेदन आदि के संबंध में विशेष न्यायाधीश का न्यायलय सत्र न्यायालय के समान ही है जिनमें बिना जूरी के अन्वीक्षा होती है। विशेष न्यायाधीश के न्यायालय का निर्माण तो हुआ आपराधिक विधि (संशोधन) अधिनियम के अंतर्गत फिर भी दं० प्र० सं० के प्रयोजनों के लिए यह सत्र न्यायालय ही है। अतः इस मामले में जिलाधीश को दं० प्र० सं० की धा० ३३७ के अंतर्गत क्षमा प्रदान करने का अधिकार था।

पुनरावेदकों की ओर से यह भी प्रतर्क रखा गया कि क्षमा प्रदान करने का अधिकार विशेष न्यायाधीश को था न कि जिलाधीश को किंतु दं० प्र० सं० की धा० ३३७ के अंतर्गत जिलाधीश और सत्र न्यायाधीश को क्षमा प्रदान करने का सहवर्ती क्षेत्राधिकार है। विशेष न्यायाधीश का पद सत्र न्यायाधीश के समान ही है। यों तो आपराधिक विधि (संशोधन) अधि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियम १९५२ ने अंतर्गत विशेष न्यायाधीश को भी क्षमा प्रदान करने का अधिकार दिया गया है किंतु इसका तात्पर्य यह नहीं हुआ कि जिलाधीश अपने क्षमा प्रदान करनेवाले अधिकार से वंचित हो गए। अतः इस कथन में सार नहीं है कि जिलाधीश को क्षमा प्रदान करने का अधिकार नहीं था और इसके परिणाम स्वरूप भेदी साक्षी का साक्ष्य प्रतिग्राह्य नहीं था।

अतः उच्च न्यायालय की उपपत्ति से पुनरावेदकों के विरुद्ध अपराध स्थिर हो जाता है और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम धा ५ (२) के अंतर्गत उनकी दोष सिद्धि गलत नहीं हुई है।

तद्नुसार पुनरावेदन उत्सर्जित किए जाते हैं।

पुनरावेदन उत्सर्जित

——

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ सर्वोच्च न्यायालय ३८
७ फरवरी १९५८

आपराधिक अपील सं० १६, १९५८

तलब हाजी हुसेन—अपीलकर्ता
वि०
मधुकर पुरुषोत्तम मोदकर तथा अन्य—उत्तरवादीगण

बंबई के आपराधिक प्रार्थनापत्र सं० ६०। १९५८ दिनांक १४-१-१९५८ से

दंड प्रक्रिया संहिता (१८९८) धारा ४९६, ५६१ ए०—लग्नक (बेल) पर छोड़े जानेवाले अपराधों में भी उच्च न्यायालय का यह अंतर्निहित अधिकार है कि न्याय के लिये लग्नक (बेल) को प्रभावशून्य कर दे।

न्यायमूर्ति गजेंद्रगादकर—

इसमें अपीलकर्त्ता पर कुछ अन्य लोगों के साथ भारतीय दंड संहिता की धा० १२० बी० और समुद्र आशुल्क (सी कस्टम ऐक्ट) की धा० १६७ (८१) के अंतर्गत आरोप लगाया गया था। ये अपराध लग्नक पर छोड़े जानेवाले अपराध हैं। दं० प्र० सं० की धारा ४९६ के अंतर्गत अपीलकर्ता ७५००० रु० के लग्नक पर छोड़ा गया था। लग्नक को प्रभावशून्य करने के लिये परिवादी ने विद्वान् प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट के न्यायालय में एक प्रार्थनापत्र दिया किंतु विद्वान मजिस्ट्रेट ने उसे अस्वीकार कर दिया और इसका उन्होंने कारण बतालाया कि दं० प्र० सं० की धारा ४९६ के अंतर्गत मुझे लग्नक बंध पत्र को प्रभावशून्य करने का अधिक्षेत्र नहीं है।

इस आदेश के विरुद्ध परिवादी ने उच्च न्यायालय के पुनर्निरीक्षण अधिक्षेत्र के अंतर्गत प्रार्थनापत्र दिया तथा उसी न्यायालय में उसने उच्च न्यायालय के अंतर्निहित अधिकार का प्रयोग धा० ५६१ ए० के अंतर्गत करने के लिये प्रार्थनापत्र भी दिया। बंबई उच्च न्यायालय ने इस पर विचार किया और अंत में निर्णय दिया कि ऐसी परिस्थिति में यदि अभियुक्त छूटे रहेंगे तो न्याय नहीं हो सकेगा। उच्च न्यायालय ने अपने आदेश द्वारा लग्नक बंधपत्र को प्रभावशून्य कर दिया तथा अभियुक्तों को बंदी कर लेने का भी आदेश दिया। इसके लिये उच्च न्यायालय का विचार था कि यदि अभियुक्त के छूटे रहने से न्याय होने में बाधा दिखलाई पड़े तो उच्च न्यायालय को धा० ५६१ ए० के अंतर्गत अपने 'अंतर्निहित अधिकार' के प्रयोग करने का अधिकार है और उक्त अधिकार के प्रयोग द्वारा लग्नक बंधपत्र प्रभावशून्य करके अभियुक्तों को बंदी करने का आदेश दिया जा सकता है।

उच्च न्यायालय के इस आदेश के विरुद्ध विशेष अनुमति प्राप्त करने पर यह अपील इस न्यायालय में सुनवाई के लिये आई है। यह अपील दं० प्र० सं० की धा० ५६१—ए० के साथ पठित धारा ४९६ के ठीक अर्थ करने के प्रश्न तक ही सीमित है। दूसरे शब्दों में मुख्य प्रश्न यही है कि लग्नक पर छोड़े जानेवाले अपराधों के लिये भी उच्च न्यायालय का धा० ५६१ ए० के अंतर्गत अपने अंतर्निहित अधिकार के प्रयोग द्वारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लमक को प्रभाव शून्य करके पकड़ने और बंदी बनाने का आदेश देना क्या वैध है ?

दंड प्रक्रिया संहिता की धा० ४६६ से ४६८ तक में लमक (बेल) संबंधी उपबंध हैं जिनमें तत्संबंधी विभिन्न परिस्थितियों के लिये विभिन्न विधान हैं। दं० प्र० सं० की धारा ४६६ में दिया गया है कि लमक पर छोड़े जानेवाले अपराधों में अभियुक्त को अन्वीक्षा की अवधि तक लमक पर छूटे रहने का अधिकार है। जिन अपराधों के लिए लमक पर छोड़े जाने का विधान है उन अभियुक्तों की स्थिति भिन्न होती है। यों तो इधर जो संशोधन हुए हैं उनके द्वारा अभियुक्तों के लमक पर छूटने के अवसर कुछ बढ़ गए हैं किंतु इतना तो निश्चय है कि ऐसे अपराधों में लमक स्वीकार करना न्यायालय का पूर्णतया स्वविवेक ही है। अपराधों के जो दो वर्ग लमक पर छोड़े जानेवाले और न छोड़े जानेवाले बनाए गए हैं उनसे ज्ञात होता है कि जो अपराध गंभीर होते हैं वे लमक पर छोड़े जानेवाले नहीं होते और जो साधारण होते हैं वे लमक पर छोड़ देनेवाले होते हैं। किंतु ऐसा वर्गीकरण भी मन में नहीं बैठता। जैसे यदि यही सिद्धांत हो तो इसका उत्तर देना सरल नहीं होगा कि दं० सं० की धा० ४७७, ४७७ ए० ४७५ और ५०६ लमक पर छोड़े जानेवाले अपराध क्यों हैं और धा० ३७६ के अंतर्गत अपराध लमक पर न छोड़ा जाने वाला क्यों है। कुछ भी हो, धा० ४६६ के अंतर्गत लमक पर छोड़े जानेवाले अपराध में अभियुक्त को लमक पर छूटने का अधिकार दिया गया है।

इसी विषय पर अपीलकर्ता के विद्वान वकील का प्रतर्क है कि जैसे धा० ४६७ (५) के अंतर्गत लमक पर न छोड़े जानेवाले अपराधों में स्वीकृत लमक को प्रभावशून्य करने का विधान है उसी प्रकार लमक पर छोड़े जानेवाले अपराधों में स्वीकृत लमक को प्रभावशून्य करने का अधिकार यदि दिया गया होता तो तत्संबंधी धा० ४६६ में कोई उपधारा अवश्य जोड़ी गई होती जिससे स्वीकृत लमक को प्रभाव शून्य करने का अधिकार स्पष्ट होता। इसका तात्पर्य यह हुआ कि एकमात्र लमक पर न छोड़े जानेवाले अपराध में ही यदि अभियुक्त लमक पर छोड़ दिया गया है तो उसको प्रभावशून्य करके का आदेश दिया जा सकता है, लमक पर छोड़े जानेवाले अपराध में स्वीकृत लमक को प्रभावशून्य करने के लिये नहीं। विधान मंडल के धा० ४६६ के संबंध में स्वीकृत लमक को प्रभाव शून्य करने का विधान नहीं किया है जब कि धा० ४६७ (५) में ऐसा विधान है। विधान मंडल जो एक वर्ग के विषय में स्पष्ट नियम बनाता है और एक वर्ग के संबंध में चुप रह जाती है इसका अभिप्राय यही हुआ कि बादवाले में लमक के प्रभाव शून्य करने का उपबंध जानबूझकर नहीं बनाया गया। ऐसा नहीं हुआ कि यह गलती से छूट गया। इसलिए विद्वान वकील के प्रतर्क के अनुसार इस अपील में अपराध लमक पर छोड़ा जानेवाला अपराध था और जब लमक स्वीकार किया गया तो फिर उसे प्रभावशून्य करने का कोई भी अंतर्निहित या अन्य अधिकार नहीं है।

न्यायालय को अंतर्निहित अधिकार न्याय के लिये ही दिया जाता है। जिस विषय पर विशिष्ट उपबंध वर्तमान हैं उनके संबंध में अंतर्निहित अधिकार का प्रयोग नहीं होता। जब कोई उपबंध नहीं रहता और ऐसे उपबंध के न रहने से किसी विशिष्ट परिस्थिति के आ जाने पर अन्याय होने की संभावना होती है उसी समय न्यायालय अपने अतर्निहित अधिकार का प्रयोग करता है। इसकी आवश्यकता भी है, कारण कि कितना हूँ सतर्कता से अधिनियम बने इसमें कुछ न कुछ कमी रह ही जाती है। इसी कमी को पूरा करने के लिये अंतर्निहित अधिकार दिया गया है। किंतु इस अधिकार का प्रयोग न्यायालय को बहुत समझ बूझकर तब करना चाहिए। इसके लिए स्वतः धारा में ही तीन परिस्थितियों बतला दी गई हैं जिनमें इन अधिकारों का प्रयोग किया जा सकता है। अतः धा० ५६१ के अंतर्गत अंतर्निहित अधिकार के क्षेत्र और स्वभाव के संबंध में कोई विवाद नहीं है।

दंड प्रक्रिया संहिता का मुख्य उद्देश्य यह है कि अन्वीक्षा सुचारु रूप से हो। अन्वीक्षा के लिये एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिधारणा कर ली जाती है कि अभियुक्त निर्दोष है। इस अभिधारणा से अन्वीक्षा सुचारु रूप से होती है। किंतु यह उसका केवल एक अंग है। जैसे न्यायालय अभियुक्त के प्रति शुद्धता के लिये उसकी निर्दोषिता की अभिधारणा करती है उसी प्रकार दूसरी ओर इसे अभियोजन और अभियुक्त दोनों के प्रति शुद्धता के लिये इस दो कोण से अन्वीक्षा की शुद्धता देखनी चाहिए। यदि अभियुक्त लग्नक पर छूटकर आतंक जमाकर साक्षियों को सत्य साक्ष्य देने में बाधा पहुँचाता है या स्वयं दंड से बचने के लिये विदेश भाग जाता है तो यह शुद्ध अन्वीक्षा नहीं कही जा सकती। इसे रोकने के लिये धा० ४९७ (५) में स्पष्ट उपबंध है। धा० ४९६ में ऐसा कोई उपबंध नहीं है इसीलिए धा० ५६१ ए० में उच्च न्यायालय अपने अंतर्निहित अधिकार का प्रयोग शुद्ध अन्वीक्षा के प्रयोजन के लिए कर सकता है। यदि इसके लिये स्पष्ट उपबंध होता तो फिर धा० ५६१ ए० में अंतर्निहित अधिकार के प्रयोग का प्रश्न ही कहाँ उठता।

दूसरा प्रतर्क है कि धा० ४९६ और ५६१ ए० नितांत असंगत हैं कारण कि मान लिया जाय कि उच्च न्यायालय ने अपने अंतर्निहित अधिकार के प्रयोग द्वारा लग्नक को प्रभावशून्य कर दिया किंतु यदि अभियुक्त अन्वीक्षा न्यायालय में पुनः प्रार्थनापत्र देता है कि उसे लग्नक पर छोड़ दिया जाय तो दं० प्र० सं० की धा० ४९७ के अंतर्गत अन्वीक्षा न्यायालय को उसे लग्नक पर छोड़ना अनिवार्य है क्योंकि धा० ४९६ द्वारा अभियुक्त का लग्नक पर छूटने का अधिकार अबाध है। किसी अन्य उपबंध से इसे सीमित नहीं किया जा सकता। इस प्रकार धा० ५६१ ए० और ४९६ में सामंजस्य नहीं है। यों तो साधारणतया यह प्रतर्क ठीक प्रतीत होता है किंतु वास्तव में बात ऐसी नहीं है। धा० ५६१ ए० के अधिकार से वह पुनः पकड़ कर बंदी गृह में डाल दिया जाता है। यह आदेश दं० प्र० सं० की धारा ४९७ (५) के ही समान है। उसको बंदीगृह में डालना न्यायिक प्रक्रिया से है तथा एक समर्थ न्यायालय के आदेश द्वारा है। धा० ५६१ ए० के अंतर्गत इस अधिकार के प्रयोग के बाद जब अभियुक्त बंदी बना बना लिया जाता है तो उसके बारे में ऐसा नहीं कहा जा सकता कि उसने लग्नक पर छोड़ा जानेवाला अपराध किया है इसलिए बंदी है वरन् वह बंदीगृह में एक समर्थ न्यायालय के आदेश द्वारा रखा गया है। इसलिए वह अन्वीक्षा न्यायालय में लग्नक पर छूटने के लिये यदि दूसरा प्रार्थनापत्र देता है तो उसे अस्वीकार हो जाना चाहिए। धा० ४९६ का अधिकार इतना विस्तृत अधिकार नहीं है।

ए० आई० आर० १९३२ इलाहाबाद ५३४ ए० आई० आर १९४५ मद्रास २५० तथा और बहुत से मामलों में निर्णय हुआ था कि धा० ४९८ (१) में लग्नक पर छूटे अभियुक्तों को धा० ५६१-ए० के अंतर्गत पकड़ कर बंदी करने का आदेश दिया जा सकता है। अतः धा० ४९८ और ५६१-ए० असंगत नहीं हैं। उपर्युक्त रूलिंग्स में अपराध लग्नक पर न छोड़े जाने वाले अपराध थे। किंतु उनमें धा० ४९७ (५) का प्रयोग नहीं किया गया था वरन् धा० ५६१ ए० का ही प्रयोग किया गया था।

अतः सुचारु रूप से न्याय करने के लिये उच्च न्यायालय धा० ५६१ ए० के अंतर्गत अपने अधिकार का प्रयोग कर सकता है। अपीलकर्ता के विद्वान् वकील ने कहा कि यदि लग्नक पर छूटने के पश्चात् उसकी चाल चलन से न्याय करने में असुविधा पैदा होती हो तो दूसरी धाराओं के अंतर्गत उसके विरुद्ध कार्यवाही की जा सकती है। किंतु उस संबंध में लग्नक संबंधी उपर्युक्त धाराओं के अतिरिक्त कोई अन्य धारा लागू नहीं होती।

विद्वान् वकील ने लाला जयराम दास वि० किंग इंपरर ए० आई० आर० १९४५ प्रिवी कौंसल ९४ का अभिदेश किया। इसमें श्रीपतियों ने अपना विचार व्यक्त किया था कि उच्च न्यायालय को अपने अंतर्निहित अधिकार के प्रयोग द्वारा दोषसिद्ध व्यक्तियों को जमानत पर छोड़ने का अधिकार नहीं है। इसके उत्तर में यह कहना है कि एक तो धा० ५६१ ए० के अंतर्गत सीधे वह विवाद विचाराधीन नहीं था किंतु इस धारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिये भी श्रीपतियों ने कहा कि दोषसिद्ध व्यक्तियों को जमानत पर उच्च न्यायालय नहीं छोड़ सकता। इसका कारण है कि एक तो इससे दंड भुगतने में देर हो जाती है और दूसरे जमानत पर छोड़ने के बाद निर्णय को बदलना पड़ता है जिसे धा० ३६९ द्वारा मना किया गया है। ज्ञात होता है कि इसी निर्णय के बाद विधान मंडल ने सन् १९४५ में धा० ४२६ का संशोधन करके दोषसिद्ध व्यक्तियों को जमानत पर छोड़ने का अधिकार दे दिया है।

अतः यहाँ बंबई उच्च न्यायालय का धा० ५६१ ए० के अंतर्गत अंतर्निहित अधिकार का प्रयोग ठीक था और उसे मान लिया जाता है किंतु इसके साथ यह भी कह देना आवश्यक है कि इस अधिकार का प्रयोग बहुत कम और पक्षों के बीच न्याय करने के उद्देश्य से तथा समझ बूझकर और बहुत ही सावधानी से धारा के अंतर्गत दिए गए प्रतिबंधों के भीतर ही करना चाहिए। परिणामतः अपील असफल होती है और उत्सर्जित की जाती है।

अपील उत्सर्जित

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ सर्वोच्च न्यायालय ४१

५ फरवरी १९५८

व्यवहार अपील सं० ६६।१९५७

संतोष कुमार — अपीलकर्ता

वि०

भाई भूल सिंह — उत्तरवादी

व्यवहार प्रक्रिया संहिता (१९०८) आ० ३७ नि० ३—प्रतिवाद के लिये अनुमति—कब दी जा सकती है—स्वविवेक—वादपद यदि अन्वीक्षा करने योग्य हो तथा मुकदमें में प्रतिवाद देर करने या अन्य दुर्भावना से निवेशित न किया जा रहा हो तो अनुमति देते समय कोई प्रतिबंध नहीं लगाया जा सकता—प्रमाण की आवश्यकता उस समय पड़ती है जब प्रतिवाद स्वीकार कर लिया गया रहता है।

न्यायमूर्ति बोस—

इसमें प्रतिवादी संतोष कुमार को अपील करने की विशेष अनुमति दी गई है। वादी ने एक वाद निवेशित किया कि प्रतिवादी ने ६०,००० रु० के मूल्य की एक चेक दिया था जो बैंक द्वारा अनादृत (डिसआनर) हो गई।

यह वाद दिल्ली में व्य० प्र० सं० के आ० ३७ में निवेशित किया गया।

प्रतिवादी ने उपर्युक्त आदेश के नि० ३ के अंतर्गत प्रतिवाद प्रस्तुत करने के लिये अनुमति की प्रार्थना की। प्रतिवाद के लिये प्रतिवादी का कहना था कि वह चेक कुछ सामानों के मूल्य के लिये सांपार्श्विक प्रतिभूति (कोलैटरल सेक्योरिटी) के रूप में थी और धीरे धीरे उन सामानों का सभी रुपया चुकता कर दिया गया। अब उस चेक की आवश्यकता ही नहीं रह गई।

उपर्युक्त नियम के अंतर्गत ऐसा विधान है कि इस प्रकार के वादों के लिये प्रतिवाद प्रस्तुत करने के पूर्व न्यायालय से अनुमति लेना अनिवार्य है। न्यायालय के लिये भी नियम है कि यदि इस अभिप्राय का प्रार्थना-पत्र दिया तो उसे देखना चाहिए कि प्रतिवाद कैसा है। यदि प्रतिवाद में बल दीख पड़े तो अनुमति दे देना चाहिए और अनुमति बिना प्रतिबंध के भी दी जा सकती है। प्रतिभूति या परिव्यय आदि का प्रतिबंध भी आवश्यकतानुसार लगाया जा सकता है।

इसमें जब प्रतिवाद के लिये प्रतिवाद पत्र दिया गया तो न्यायाधीश ने आदेश दिया कि यों तो देखने से ज्ञात होता है कि इसमें अन्वीक्षा करने योग्य वादपत्र है किंतु उसके लिये कोई लेख्य का या अन्य प्रमाण नहीं दिया गया जिससे यह ज्ञात हो कि जो बात शपथ पत्र में कही गई है वह ठीक है। अतः विद्वान न्यायाधीश ने अंत में आदेश दिया कि यह शपथपत्र स्पष्ट नहीं प्रतीत होता इसलिए प्रतिवादी वाद-मूल्य की धनराशि तक की तथा परिव्यय की प्रतिभूति (सेक्योरिटी) दे।

इस प्रतिभूति (सेक्योरिटी) संबंधी आदेश के विरुद्ध प्रतिवादियों ने पंजाब उच्च न्यायालय के दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यायासन में अपील की किंतु जब वहाँ भी उन्हें सफलता न मिली तो संविधान के अनुच्छेद १३६ के अंतर्गत उन्होंने इस न्यायालय से विशेष अनुमति की प्रार्थना की। विशेष अनुमति प्रदान की गई और तब यह अपील सुनवाई के लिये आई है।

इस प्रश्न पर विचार करने के पहले प्रक्रियाओं की विधि जान लेना आवश्यक है। प्रक्रिया के प्रश्न की विवेचना किस सिद्धांत और किसी ढंग पर होती है इसकी जानकारी भी यहाँ आवश्यक है। ए० आई० आर० १९५५ सर्वोच्च न्यायालय ४२९ में इस पर विचार किया गया है कि प्रक्रिया (प्रोसीजर) न्याय को सुलभ बनाने के लिये बनाया गया; इसका उद्देश्य दंड व्यवस्था नहीं है। प्रक्रिया की विधि स्वाभाविक न्याय पर अवलंबित है। स्वाभाविक न्याय यही कहता है कि किसी की संपत्ति या किसी के जीवन पर बिना उसकी बात सुने निर्णय न दे दिया जाय। इसके अपवाद भी होते हैं किंतु यदि ऐसे अपवाद हों तो उन्हें प्रक्रिया में स्पष्ट हो जाना चाहिए ताकि स्वाभाविक न्याय का अतिक्रमण न होने पावे। इसमें स्वविवेक का अधिकार दिया गया है किंतु स्वविवेक के प्रयोग का आधार स्वाभाविक न्याय ही होना चाहिए।

जैकोबी वि० बूथ डिस्टलरी कंपनी (१९०१) ८५ एल० टी० २६२ में सन् १९०१ में निर्णय हुआ था कि यदि अन्वीक्षा करने योग्य (ट्रायबुल) वादपद हो तो प्रतिवाद के लिये अनुमति बिना किसी प्रतिबंध के देना चाहिए कारण कि यदि प्रतिबंध के साथ अनुमति दी जायगी तो अनुमति स्वतः भ्रामक हो जायगी।

वादी उत्तरवादी के विद्वान् वकील ने मद्रास उच्च न्यायालय के निर्णय (ए० आई० आर० १९३६ मद्रास २४६) के आधार पर बहस किया कि जब प्रतिवाद सद्भावना से हुआ नहीं प्रतीत होता तो प्रतिबंध लगा देना चाहिए।

सिद्धांततः प्रतिबंध तभी लगाना चाहिए जब जान बूझ कर मुकदमें में देर करने का प्रयत्न किया जाता है तथा गलत प्रतिवाद रखे जाते हैं या कोई ऐसी बात कही जाती है जिसका कोई मूल्य नहीं दीख पड़ता। सामान्यतः स्वविवेक के प्रयोग के विरुद्ध अपील नहीं होती किंतु यह सिद्धांत तभी लागू होता है जब कि स्वविवेक न्यायिक ढंग पर प्रयुक्त होता है। स्वविवेक का प्रयोग जब मनमाना ढंग से किया जाता है या सिद्धांत को न समझ सकने के कारण होता है और इससे स्वाभाविक न्याय नहीं होता तब इसमें हस्तक्षेप करने की आवश्यकता पड़ जाती है।

यहाँ प्रतिवादी ने चेक देना स्वीकार किया किंतु इसको उसने स्पष्ट किया कि यह केवल सांपार्श्विक प्रतिभूति (कोलैटरल सेक्योरटी) मात्र थी और धीरे धीरे सब रुपया चुकता कर दिया गया तथा अब चेक की आवश्यकता नहीं रह गई तो यह एक स्पष्ट प्रतिवाद है। इससे और अधिक स्पष्ट होने का कोई और कोई दूसरा रूप दिखलाई नहीं पड़ता। ऐसा नहीं कहा जा सकता कि यह प्रतिवाद सद्भावना से नहीं है।

विद्वान् न्यायाधीश ने इस संबंध में कहा था कि इस कथन के समर्थन में कोई लेख्य का प्रमाण नहीं दिया गया कि रुपया धीरे धीरे चुकता हो गया और इसके अभाव में प्रतीत होता है कि प्रतिवाद स्पष्ट नहीं है।

यह निष्कर्ष ठीक नहीं प्रतीत होता। जो प्रतिवाद सामान्यतः स्पष्ट है उसके बारे में ऐसा नहीं कहा जा सकता कि उसको प्रमाणित करनेवाले साक्ष्यों को शपथ पत्र के साथ ही न रहने से वह स्पष्ट नहीं है। पहले प्रतिवाद स्वीकार होता है और तब उसके बाद उसमें कहे हुए तथ्यों को प्रमाणित करने के लिए साक्ष्य दिया जाता है।

अनुमति पर विचार करने के लिये जब शपथपत्र आता है तो केवल उसी के आधार पर देखना होता है कि प्रतिवाद कैसा है। उसके साथ ही प्रमाणित करने वाले साक्ष्य नहीं माँगे जा सकते। साक्ष्यों की आवश्यकता बाद में पड़ती है।

यहाँ शपथपत्र में जो बात कही गई है उसे देखने से सिवा इसके कोई दूसरा निष्कर्ष नहीं निकल सकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि प्रतिवादी को यदि प्रमाणित करने का अवसर दिया जाय तो वह अवश्य सफल होगा। अतः यहाँ हस्तक्षेप की आवश्यकता है

अपील परिव्यय के साथ स्वीकार की जाती है तथा उच्च न्यायालय का आदेश निराकृत किया जाता है। सबंद्ध वादपदों के निर्णयार्थ प्रथम न्यायालय में प्रतिप्रेषित।

अपील स्वीकृत

——

विधि पत्रिका (१८८०) १६५८ सर्वोच्च न्यायालय ४३
४ दिसंबर, १६५७

स्थानांतरण प्रार्थनापत्र सं० १२।१६५७

जी० एक्स० फ्रांसिस तथा अन्य—अपीलकर्तागण
वि०
बाँके बिहारी सिंह तथा अन्य—उत्तरवादीगण

अ—दंड प्रक्रिया संहिता (१८६८) धा० ५२७—स्थानांतरण के आधार- अभियुक्तों के मस्तिष्क में पक्षपात की आशंका - यदि मजिस्ट्रेट ने इसके पहले एक दूसरे मुकदमें की सुनवाई की थी और उसमें परिवादी (कंप्लेनेंट) को छोड़ दिया था तो केवल यही स्थानांतरण का आधार नहीं हो सकता।

ब—दं० प्र० संहिता (१८६८), धा० ५२७—मानहानि के मुकदमे में स्थानांतरण के आधार—यदि दोनों पक्षों के अभिसाक्ष्य से प्रतीत हो कि दोनों संप्रदायों के बीच बड़ी तनातनी है तो यह स्थानांतरण का अच्छा आधार है।

न्यायमूर्ति बोस—

दंड प्रक्रिया संहिता की धा० ५२७ के अंतर्गत यह प्रार्थनापत्र दिया गया है कि अभियुक्तों को आशंका है कि मध्य प्रदेश में न्याय नहीं हो सकेगा इसलिए दिल्ली, उड़ीसा, या किसी अन्य राज्य में किसी, 'उच्चतर न्यायालय' द्वारा अन्वीक्षा किए जाने के आदेश के साथ इसे स्थानांतरित कर दिया जाय।

इसमें परिवादी (कंप्लेनेंट) राजवंश का है तथा अभियुक्त इसाई धर्मावलंबी हैं। परिवादी ने दंड संहिता की धा० ५०१, ५०२ और ३४ के अंतर्गत एक परिवाद (कंप्लेंट) निवेशित किया कि अभियुक्तों ने अपने एक प्रकाशन द्वारा 'नियोगी प्रतिवेदन' पर आक्षेप किया कि उसमें के अनेक अभिकथन सत्य नहीं हैं। परिवादी का कहना है कि उस संबंध में इसाइयों ने मेरी मानहानि की है।

इसके पहले इसाइयों ने इस परिवादी के विरुद्ध एक परिवाद निवेशित किया था जिसमें आरंभिक न्यायालय द्वारा इस परिवादी की दोषसिद्धि हुई थी परंतु अपील करने पर वह अपील इसी मजिस्ट्रेट के न्यायालय में सुनवाई के लिये आई थी और इस मजिस्ट्रेट ने अभियोजन को विश्वसनीय न मानकर तथा प्रतिवादी को ठीक मानकर इस परिवादी को छोड़ दिया था।

स्थानांतरण के लिये निम्नलिखित आधारों पर जोर दिया गया है—

१—इसी मजिस्ट्रेट के न्यायालय द्वारा पहलेवाले परिवाद में यह परिवादी छोड़ दिया गया था इसलिए अभियुक्तों को आशंका है कि इसमें उनके साथ न्याय नहीं हो सकेगा।

२—परिवादी क्षेत्र का बहुत ही प्रभावशाली व्यक्ति है और इस न्यायालय में अन्वीक्षा होते समय अभियुक्तों का जीवन खतरे में है।

३—इतना सांप्रदायिक विद्वेष फैल चुका है कि मध्य-प्रदेश राज्य भर में अभियुक्तों के प्रति न्याय नहीं हो सकेगा इसलिए अन्य राज्य में उच्चतर न्यायालय द्वारा सुनवाई की व्यवस्था होनी चाहिए।

पहला और तीसरा आधार ठीक नहीं प्रतीत होता। यह कोई कारण नहीं है कि यदि मजिस्ट्रेट ने इसके पहले एक मुकदमें की सुनवाई किया था तो अब दूसरे मुकदमें में वह उसी प्रकार का और पक्षपात पूर्ण निर्णय देगा। स्थानांतरण के लिये इस प्रकार की आपत्ति को प्रोत्साहन नहीं देना चाहिए और सर्वोच्च

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यायालय स्थानांतरण के मामले में इस प्रकार की आपत्ति पर रोक लगाना चाहता है। अतः यह आधार स्थानांतरण का अच्छा आधार नहीं है। साथ ही यह कहना भी ठीक नहीं है कि मध्य-प्रदेश राज्य भर में न्याय की आशा नहीं है।

दूसरी आपत्ति अवश्य महत्वपूर्ण है। जब इस क्षेत्र में इतनी अधिक सांप्रदायिकता व्याप्त है तो न्याय भले ही हो किंतु न्याय का होना दिखलाई नहीं पड़ेगा। यदि केवल एक पक्ष यह दिखलाता कि विद्वेष की भावना है तो यह अनुमान किया जा सकता था कि अपने ही कार्यों से विषम परिस्थिति पैदा करके वह पक्ष वाद के स्थानांतरण का आधार बना रहा है। किंतु यहाँ स्पष्ट है कि दोनों पक्षों को एक दूसरे के प्रति अत्यंत घृणा है और यह प्रश्न परिवादी और अभियुक्तगण के व्यक्तिगत संबंध का प्रश्न नहीं रह गया है वरन् वह सारा क्षेत्र इन दो पक्षों में विभक्त होकर पूरा सांप्रदायिक रूप धारण कर लिया है। अतः प्रश्न व्यक्तिगत ही न होकर सांप्रदायिक हो गया है इसलिए मुकदमें के स्थानांतर की व्यवस्था अनिवार्य हो जाती है। इसके लिये दोनों पक्षों से निम्नलिखित प्रमाण मिलते हैं—

१—परिवादी ने परिवाद में कहा था कि मेरे पहले वाले मुकदमें में छूटने से इसाई लोग जनता में सरकार के कर्मचारियों के प्रति बुरी भावना फैला रहे हैं। मेरे छूटने का कारण वे न्याय की कमी बतलाते हैं।

२—परिवादी ने कहा था कि अभियुक्तों के कारण मेरा जीवन खतरे में है।

३—अभियुक्तों ने भी एक बार थानेदार के विरुद्ध कार्यवाही की थी कि वे परिवादी से मिले हुए हैं और इसी झगड़े के संबंध में मध्य प्रदेश धारा सभा में प्रश्न भी पूछा गया था।

तात्पर्य यह कि परिवादी ने जो यह आपत्ति की है कि अभियुक्तगण न्याय की सत्यता पर आघात कर रहे हैं इससे ज्ञात होता है कि वे परोक्ष में मजिस्ट्रेटों को प्रभावित करना चाहते हैं। यह सब कथन कहाँ तक सही है यहाँ इस पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि द्रोह एक पक्षीय नहीं है इसलिए ऐसे तनातनी के वातावरण में इसकी अन्वीक्षा होना ठीक नहीं है। इस मामले में हस्तांतरण आवश्यक है। उड़ीसा निकट पड़ता है इसलिए इसकी अन्वीक्षा उड़ीसा में की जायगी। किसी 'उच्चतर न्यायालय' द्वारा इसकी सुनवाई किए जाने की प्रार्थना अस्वीकार की जाती है।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि स्थानांतरण का आदेश इसमें केवल इसीलिए दिया जा रहा है कि जो पहले एक साधारण मानहानि का मुकदमा था वह दो विरोधी वर्गों की तनातनी के कारण सांप्रदायिक हो गया है और इसका व्यक्तिगत लक्षण समाप्त हो चुका है।

यह नोट कर लेना आवश्यक है कि मध्य प्रदेश राज्य सूचना पाने पर भी इस प्रार्थनापत्र का विरोध करने के लिये उपस्थित नहीं हुआ।

प्रार्थनापत्र स्वीकृत

——

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ सर्वोच्च न्यायालय ४४

२२ जनवरी १९५८

व्यवहार अपील सं० ३५७।१९५७

राजा गंगा प्रताप सिंह — अपीलकर्ता

वि०

इलाहाबाद बैंक लिमिटेड, लखनऊ—उत्तरवादी

व्यवहार प्रक्रिया संहिता (१९०८), धा० ११३—परंतुक (प्राविजो)—प्रयोज्यता—मुकदमें के निर्वर्तन के लिये वैधानिकता पर निर्णय आवश्यक है।

उत्तरवादी एक शेड्यूल्ड बैंक है। इस बैंक ने इस अपीलकर्ता के विरुद्ध एक बंधक के रुपए के लिये एक वाद निवेशित किया था। इस वाद के विरोध में प्रति-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन से विद्वान एकाकी जज का यह कहना न्याय संगत है कि उस उपपत्ति को लेख प्रक्रिया में चुनौती देने का अवसर नहीं देना चाहिए।

अतः यह पुनरावेदन असफल होता है और उत्सर्जित किया जाता है।

पुनरावेदन उत्सर्जित

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इला० उ० न्या० ७६

अस्थाना तथा टंडन, न्यायाधीशगण

आपराधिक प्रकीर्णक लेख सं० १६४६ सन् १९५७

(२५ सितंबर १९५७)

वासुदेव ओझा तथा अन्य — प्रार्थीगण

विरुद्ध

उ० प्र० राज्य तथा अन्य — विपक्षीगण

(अ) भारतीय संविधान सन् १९५० अनुच्छेद २२६—आपराधिक प्रक्रिया संहिता १८९८ धारा ४९१–बंदी प्रत्यक्षीकरण प्रक्रिया—उच्च न्यायालय का कार्य—

(ब) आपराधिक प्रक्रिया संहिता १८९८ धारा ११४—उद्देश्य और विस्तार—अनुपस्थिति में प्रक्रिया।

(स) आपराधिक प्रक्रिया संहिता १८९८ धारा ३४४—कारानिरोध (कस्टडी) में उपार्पण (कमिटमेंट) का उद्देश्य।

(द) आपराधिक अन्वीक्षा—जन स्वातंत्र्य पर प्रभाव डालनेवाली आज्ञा—अन्वय।

(य) आपराधिक प्रक्रिया संहिता १८९८ धारा ३४४ संहिता के परिच्छेद ८ के अंतर्गत प्रक्रिया पर प्रयोज्यता।

(र) आपराधिक प्रक्रिया संहिता १८९८ धारा ३४४ (१)

(ल) आपराधिक प्रक्रिया संहिता १८९८ धारा ९१—अधिकार व्यवहार के लिये प्रतिबंध।

(व) आपराधिक प्रक्रिया संहिता १८९८ धारा ९१, ११२ तथा ११४-धारा ११२ के अन्तर्गत मैजिस्ट्रेट का आदेश करना—प्रतिभूति (सिक्योरिटी) चाहने का प्राधिकार।

(स) आपराधिक प्रक्रिया १८९८ धारा ९१—प्रतिभूति देना अस्वीकार करना—मैजिस्ट्रेट को बंदी कर लेने का ध्वनित (इंप्लाइड) अधिकार।

(श) आपराधिक प्रक्रिया संहिता १८९८ धारा ९१—क्या दांडिक (पेनल) हैं?

(ह) आपराधिक प्रक्रिया संहिता १८९८ धारा ३४४—वाद का स्थगन—स्थगन के पश्चात् निरोध (डिटेंशन) की वैधता।

श्री एम० आसिफ अंसारी तथा श्री वी० के गर्ग—प्रार्थियों की ओर से।

सरकारी वकील — विपक्षियों की ओर से

श्री टंडन, न्यायाधीश—

इस प्रार्थनापत्र के द्वारा, जो भारतीय संविधान के अनुच्छेद २२६ तथा आपराधिक प्रक्रिया धारा ४९१ के अंतर्गत है, विपक्षियों के विरुद्ध, जो हैं, उ० प्र० सरकार, मथुरा के कलक्टर, तथा मथुरा के सीनीअर पुलिस सुपरिटेंडेंट तथा जिला जेल सुपरिटेंडेंट, मथुरा जेल में अपने निरोध के संबंध में बंदी प्रत्यक्षीकरण लेख की माँग की गई है।

उ० प्र० चकबंदी अधिनियम १९५४ के उपबंधों के अंतर्गत मथुरा तहसील में चकबन्दी की योजना चलाई गई। जनता कुछ वर्ग इस योजना के कार्यों से सहमत नहीं था। तद्नुसार, उस विचार के कुछ समर्थकों ने ८-७-१९५७ को अपराह्न २ बजे दिन एक सार्वजनिक सभा होने की घोषणा की। इस सभा का उद्देश्य सरकार और अधिकारियों का उस कष्ट की ओर ध्यान आकृष्ट करना था जो प्रार्थियों के कथनानुसार किसानों को मुख्यतः इस योजना के कारण भोगना पड़ रहा था। यह भी अभिकथन है कि उसी दिन मथुरा की कॉंग्रेस कमेटी ने भी एक सभा की घोषणा की जो उसी समय और उसी गाँव में होने को थी। उसमें श्रम मंत्री श्री आचार्य जुगुल किशोर जी का अभिभाषण होने वाला था। प्रार्थियों के कथनानुसार जिला कांग्रेस कमेटी की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घोषणा बाद को हुई जब कि वे अपने कार्यक्रम की घोषणा कर चुके थे। कहा यह जाता है कि जब कि प्रार्थियों की सभा चल रही थी पुलिस के एक सब इंसपेक्टर कुछ कान्स्टेबुलों के साथ उस स्थल पर आए और कहा कि जहाँ माननीय मंत्री का अभिभाषण हो रहा है वहाँ ये लोग शोर क्यों मचा रहे हैं। अभिकथन यह भी है कि उसके शीघ्र ही पश्चात् उक्त सब इंसपेक्टर ने ४० व्यक्तियों को आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा १५१ के अंतर्गत बंदी कर लिया जिनमें १३ ये प्रार्थीगण हैं। इनके बंदी किए जाने के पश्चात् पहले तो इन्हें थाने ले गये और उसके पश्चात् मथुरा के जिलाधीश के यहाँ जहाँ यह भी कहा जाता है उनको दूसरे दिन की संध्या तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। ६-७-१६५७ सार्वजनिक छुट्टी थी। किंतु सब डिविजनल आफिसर अपने न्यायालय में उस दिन साढ़े चार बजे आए जब कि ये बंदी लोग उनके सम्मुख उपस्थित किए जा सके। तब सब डिविनल मैजिस्ट्रेट ने चालिसों व्यक्ति के विरुद्ध एक आज्ञा दी। जो आ० प्र० संहिता की धारा ११२ के अंतरगत होने के तुल्य है, और उन्हें जेल भेज दिया। प्रार्थियों की ओर से यह विवाद है कि आपराधिक प्रक्रिया की धारा ११७ की उपधारा (३) में जो प्रक्रिया उपबंधित है उसका पालन नहीं किया गया और यह कि उनका निरोधन अवैध है। और भी, उनके कहने के अनुसार, आ० प्र० संहिता के परिच्छेद ८ की प्रक्रिया में, बन्दियों को पुनः कारानिरोध में भेजने का अधिकार नहीं है, सिवाय आ० प्र० संहिता की धारा ११७ की उपधारा (३) के अनुसार। और यतः इस प्रकार की प्रक्रिया उनके विरुद्ध नहीं की गई, उनका निरोधन अवैध है। उनका विवाद यह भी है कि मैजिस्ट्रेट को उक्त उपधारा के अंतर्गत बंदियों को पुनः कारानिरोध में भेजने के पूर्व यह उपपत्ति (फाइंडिंग) देनी चाहिए कि शांति भंग (ब्रीच आफ़ दि पीस) और जन प्रशांति विक्षोभ (डिस्टर्बेंस आफ़ पब्लिक ट्रेंक्विलिटी) के रोकने के लिए सद्यः उपाय आवश्यक है और यह कि वे इन कारणों का लिखित अभिलेख करें। यदि वे इन आवश्यक कर्मों के करने में चूक करते हैं तो, यदि कोई आज्ञा आ० प्र० संहिता की धारा ११७ की उपधारा (३) के अंतर्गत दी जायगी वह स्वतः अवैध और निरोध के वहन करने में असमर्थ होगी।

प्रार्थियों ने अपने विरुद्ध चलाई गई आ० प्र० की धारा ११७ के अनुसार प्रक्रिया को भी यह कहकर चुनौती दी है कि यद्यपि आ० प्र० की धारा ११२ के अनुसार एक आदेश मैजिस्ट्रेट ने किया था, किंतु उन्होंने उसके अंतर्विषय को न पढ़कर सुनाया न समझाया जो धारा ११३ के अनुसार आवश्यक था।

विपक्षी यह स्वीकार नहीं करते कि उनको प्रार्थियों की सभा का ८-७-१६५७ को होने की सूचना या ज्ञान था। उनके कथनानुसार, प्रार्थी कुछ और लोगों के साथ, शांति भंग करने के विचार से, उसी दिन पहले तो सहायक चकबंदी अधिकारी फरहा के यहाँ गए और वहाँ से उस मंदिर की ओर आए जहाँ जिला कांग्रेस कमेटी का अधिवेशन होने वाला था और वे बलपूर्वक अधिवेशन के शांतिपूर्ण कार्य को रोक देना वा विक्षुब्ध कर देना चाहते थे जो वास्तव में आचार्य जुगुल किशोर मंत्री श्रम और सामाजिक कल्याण, की अध्यक्षता में चल रहा था। सब इंसपेक्टर, श्री कर्त्तार सिंह वहां उपस्थित थे। उन्होंने देखा कि प्रार्थी बड़े संतर्जक (थ्रिएटनिंग) भाव में थे अस्तु उन्होंने उनको शांत रहने और बल और हिंसा का प्रयोग न करने को कहा परन्तु उन्होंने उनके इस कहने पर ध्यान नहीं दिया। सब डिविजनल मैजिस्टेट ने भी जो सेटिलमेंट आफिसर चकबंदी होने के कारण वहाँ उपस्थित थे, उसी प्रकार उनसे कहा, परन्तु व्यर्थ। तब कहा जाता है कि, श्री कर्त्तारसिंह ने, आ० प्र० संहिता की धारा १५१ की कार्यवाही करके साढ़े चार बजे दिनको प्रार्थियों और कुछ लोगोंको बंदी कर लिया। दूसरे दिन सब बंदी मथुरा ले जाए गए और श्री यु० एस० नारायण, अडिशनल सब डिविजनल मैजिस्ट्रेट के सामने १ बजे दिन, अर्थात् बंदी होने के २४ घंटे के भीतर, उपस्थित किए गए। मैजिस्ट्रेट ने तब सभी बंदी व्यक्तियों के विरुद्ध एक नोटिस धारा ११२ के अंतर्गत लिखी और उन्हें पढ़कर सुनाया और समझाया। नोटिस की पीठ पर 'सब का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Aryâ Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हस्ताक्षर और अँगूठे का निशान, उनको पढ़कर सुनाने और समझाने के प्रमाण में, ले लिया।

विपक्षियों का आगे यह भी कहना है कि जब आ० प्र० संहिता की धारा ११२ के अनुसार नोटिस पढ़कर प्रार्थियों को सुना और समझा दी गई तो विद्वान मैजिस्ट्रेट ने प्रत्येक को हजार रुपए के दो प्रतिभू (स्योरिटी) और उसी राशि (अमाउंट) की वैयक्तिक प्रतिभूति (पर्सनल बांड) उनकी उपस्थिति के लिये देने को कहा; किन्तु जब ये लोग उक्त प्रतिभूति देना अस्वीकार किए तो उनकी आज्ञा से ये लोग जेल भेज दिए गए।

बंदी में लिए गए कुल व्यक्तियों की संख्या ४८ थी। बंदी होने के दूसरे दिन १३ व्यक्तियों ने अपने लगनक पर मुक्ति का आवेदन किया पर इन १३ में से १२ ने अपना नाम उस आवेदन से निकाल दिया। जगन प्रसाद प्रार्थी नं० ६ ने अकेले आवेदन संचालित किया और मैजिस्ट्रेट ने उसे मुक्त कर दिया। इसके पश्चात प्रार्थी सं० ६, १० और १२ ने भी प्रार्थना की और वे भी मुक्त हुए। इसके पश्चात् क्रम से और भी प्रार्थी समय समय पर मुक्त होते गए जिनका प्रस्तुत आवेदन के निर्णय में वर्णन करना आवश्यक नहीं है।

आगे बढ़ने के पूर्व हमें उस वारंट का भी निर्देश करना चाहिए जिनके द्वारा कतिपय व्यक्ति जेल भेजे गए। ये आ० प्र० संहिता की धारा ३४४ के अनुसार थे और दिनांक १०-७-१९५७ की उपस्थिति के संबंध में थे। इस लेख्य में उपयुक्त स्थान पर आ० प्र० संहिता की धारा १५१।१०७।११७ लिखी थी जिसके अधीन वे बंदी हुए थे।

प्रार्थियों को निरोध के संबंध में इतनी बातें दिखा कर विपक्षियों ने कहा कि उनका निरोध आ० प्र० संहिता की धारा ११७ (३) के अनुसार कभी नहीं हुआ था प्रत्युत प्रतिभूति न देने के कारण वे जेल भेजे गए। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या मैजिस्ट्रेट को अकेले धारा ११७ (३) के अनुसार उन्हें कारावास देने का अधिकार था? और यह भी देखना है कि यह आज्ञा उन्हें तारीख पर उपस्थित होने के लिये दी गई थी अथवा किसी दूसरे अभिप्राय से।

इस प्रश्न के देखने के पूर्व हमें प्रार्थियों की यह आपत्ति कि धारा ११२ की आज्ञा उनको पढ़ कर सुनाई और समझाई नहीं गई; अर्थात् धारा ११३ की कार्यवाही नहीं की गई, का निर्णय कर देना चाहिए। प्रार्थियों का कहना है कि नोटिस उनको पढ़कर सुनाई और समझाई नहीं गई पर विपक्षियों के शपथपत्र में साधारण रीति से यह दिया हुआ है कि मैजिस्ट्रेट ने नोटिस पढ़कर सुना और समझा दी थी। आर्डर शीट में भी यही लिखा है। अतः हमारा निर्णय है कि प्रार्थी मैजिस्ट्रेट के सम्मुख उपस्थित किए गए और नोटिस उनको पढ़कर सुनाई और समझाई गई।

दूसरी बात जो पहले ही निर्णय कर देने योग्य है वह यह है कि क्या पुलिस ने प्रार्थियों को उनके बंदी किए जाने के पश्चात् २४ घंटे के भीतर ही मैजिस्ट्रेट के सम्मुख उपस्थित किया? राज्य की ओर से जो शपथपत्र दिया गया है उससे सिद्ध है कि प्रार्थीगण बंदी होने के २४ घंटे के भीतर मैजिस्ट्रेट के सामने उपस्थित किए गए थे।

अब हमें आ० प्र० संहिता के परिच्छेद ८ के उपबंध का परीक्षण करना है। हमने देखा कि आवेदकों का परिवाद यह है कि आ० प्र० संहिता की धारा ११७ की उपधारा (३) के अंतर्गत कोई आज्ञा पारित नहीं हुई थी ऐसी अवस्था में उन्हें कारावास भेजने का कोई अधिकार नहीं था। राज्य की ओर से भी यह विवाद नहीं है कि कोई आज्ञा आ० प्र० संहिता की धारा ११७ (३) के अधीन दी गई थी। उनकी स्थिति इस पर है कि जब प्रार्थी मैजिस्ट्रेट के सम्मुख लाए गए और आ० प्र० संहिता की धारा ११२ के अनुसार आज्ञा दी गई तो उनको दूसरे दिन उपस्थित होने के लिये जमानत देने को कहा गया और जब उन्होंने वैसा नहीं किया तो जेल भेज दिए गए। अतः अब यह आवश्यक है कि देखा जाय कि आ० प्र० सं० की धारा ११७ (३) की आवश्यकताएँ पूरी की गईं या नहीं। विचारणीय विषय यह है कि क्या मैजिस्ट्रेट को जमानत माँगने का तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न देने पर जेल भेज देने का अधिकार था। प्रसंगतः (इंसीडेंटली) यह भी प्रश्न उठेगा, कारण कि प्रार्थी इसे मानते नहीं हैं कि क्या प्रार्थी अब राज्य की ओर से कही गई परिस्थिति में जेल भेजे गए थे।

वास्तविक वैधिक स्थिति जाँचने के पूर्व हमें दिनांक ६-७-१६५७ को उद्धृत करना चाहिए—

"आज यह पत्रावली बाद दर्ज होकर पेश हुई। फरीकसानियान को नोटिस हसब दफा ११२ छुट्टी में कचहरी आकर सुनाई गई। फरीकसानियान से १०००) की दो जमानतें तथा एक मुचलिका १०००) का तलब किया गया।

आदेश हुआ कि पत्रावली वास्ते बयान फरीक सानियान तारीख १०-७-१६५७ को पेश हो। फरीक सानियान हसब दफा १५१ गिरफ्तार होकर आए हैं। वे जमानतें और मुचलिका देने से कासिर रहे। अतः जरीअः वारंट जेल रवाना हुए। अब फरीकसानियान १०-७-१६५७ को जेल से वास्ते बयानात तलब हों।"

ह: यू० एस० 'नारायन'

उपर्युक्त से यह विदित होगा कि जमानत न देने के कारण वे जेल भेजे गए। इस आज्ञा में यह बात भी आ गई है कि वे आ० प्र० संहिता की धारा १५१ के अधीन बंदी हुए थे। प्रार्थियों की ओर से यह विवाद है कि इस आज्ञा में यह नहीं दिया गया है कि इनसे जमानत माँगी गई और न देने पर उन्हें जेल भेजा गया परंतु राज्य की ओर से यह कहा गया है कि जमानत और मुचलिका न देने के कारण ही वे जेल भेजे गए और इस विषय पर एक शपथपत्र भी दिया गया और उन वारंटों का भी अभिदेश किया गया जिनके द्वारा वे जेल भेजे गए। ये वारंट आ० प्र० सं० की धारा ३४४ के अनुसार बने थे और इसमें यह भी दिया था कि कारानिरोध आ० प्र० सं० की धारा १५१, १०७ तथा ११७ के अंतर्गत हुआ है।

प्रार्थियों के वकील ने विवाद किया है कि सरकार को ६-७-१६५७ की अनुपूर्ति शपथपत्र के द्वारा नहीं करनी चाहिए तथा वह जिस रूप में है उसी रूप में उसे पढ़ना और उसका अर्थ करना चाहिए। और यदि उक्त आज्ञा में ऐसा कुछ नहीं है कि निरोधियों से उनकी उपस्थिति के लिये जमानत मांगी गई तो उसका यही परिणाम होगा कि उनसे जमानत नहीं मांगी गई। इसमें संदेह नहीं कि जन सदस्य के स्वातंत्र्य पर प्रभाव डालनेवाली सार्वजनिक रूप में की गई आज्ञा की शब्दावली यथार्थतम रीति की होनी चाहिए और ऐसी आज्ञाओं की अनुपूर्ति किसी नवीन अभिकथन से नहीं कराई जा सकती। यहाँ ६-७-५७ की आज्ञा सुंदर शब्दावली से युक्त नहीं दीखती, फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि वह ऐसी आज्ञा नहीं थी जिसके द्वारा मैजिस्ट्रेट ने उपस्थिति के लिये जमानत भी माँगी थी। उसके अंतिम कुछ शब्दों का यही अर्थ होता है कि उनसे जमानत माँगी गई और उन्होंने देना स्वीकार नहीं किया।

दूसरा प्रश्न जो अब भी उठ सकता है वह यह है कि क्या आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा १०७ के अंतर्गत जाँच की प्रक्रिया में आ० प्र० संहिता की धारा ३४४ प्रयोज्य है। इस संबंध में प्रार्थी का विवाद यह है कि आ० प्र० संहिता का परिच्छेद ८ स्वतः पूर्ण (सेल्फकंटेंड) है और उन प्रक्रियाओं के संबंध में कोई निरोध संभव नहीं है।

हमने धारा ११७ की उपधारा (२) का अभिदेश किया ही है जिसमें यह दिया है कि इस धारा के अंतर्गत जाँच में उस प्रक्रिया का अनुसरण हो जो "समन" की दशाओं (केसेज़) में अन्वीक्षा और साक्ष्य अभिलिखित करने में होती है। इस दृष्टि से 'समन" के वादों में अन्वीक्षा करने के लिये जो प्रक्रिया अनुविहित है वही इस परिच्छेद (चेप्टर) के अधीन जाँच में लागू होगा। अस्तु, सीधा प्रश्न यह हुआ कि समन के वादों में अन्वीक्षा करने की जो रीति है उसका क्या धारा ३४४ आ० प्र० संहिता एक अंग है? कारण कि यदि वह ऐसी अन्वीक्षा की प्रक्रिया का एक अंग है तो धारा ३४४ आ० प्र० संहिता उन प्रक्रियाओं में भी लागू होगा। न केवल इस कारण कि वह "समन" के वादों में लागू होता है पर मुख्यतः आ० प्र० संहिता की धारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

११७ की उपधारा (२) के कारण से। आ० प्र० संहिता की धारा ३४४ परिच्छेद २० में आता है जिसका शीर्षक है—'अन्वीक्षा में जाँच के सामान्य उपबंध' (जनरल प्रावीजन ऐज टू इन्क्वायरीज इन ट्रायल)। "समन" की अन्वीक्षा संहिता की अन्य अन्वीक्षाओं के समान ही है। अस्तु परिच्छेद के उपबंध "समन" के वादों में भी लागू हैं। अनुरोध यह किया गया कि उपधारा १ (ए) के द्वारा न्यायालय को केवल अभियुक्त को ही कारानिरोध का अधिकार प्राप्त है किंतु इस कारण कि जिस व्यक्ति के विरुद्ध परिच्छेद ८ की कार्यवाही होती है, अभियुक्त नहीं है, इस कारण उपधारा (१) (ए) इस प्रक्रिया में लागू नहीं है। हम इससे सहमत नहीं हैं। हम नहीं समझते कि इस धारा में केवल शब्द 'अभियुक्त' होने से यह परिच्छेद ८ की प्रक्रिया में अप्रयोज्य है वरन् हम इस मत के हैं कि यह प्रयोज्य है।

पुनः यह विवाद किया गया कि परिच्छेद ८ के अंतर्गत मैजिस्ट्रेट को जमानत न देने की अवस्था में व्यक्ति को कारानिरोध में भेजने का अधिकार नहीं है। इस प्रश्न के निर्णय की प्रथमतः इसलिए आवश्यकता नहीं है कि प्रार्थियों को मैजिस्ट्रेट ने परिच्छेद ८ के अंतर्गत बंदी नहीं किया है वरन् पुलिस ने उनको आ० प्र० संहिता की धारा १५१ के अंतर्गत बंदी किया है और जब ता० ६-७-१९५७ को मैजिस्ट्रेट के सामने उपस्थित किए गए तो वे कारानिरोध में ही थे और उसी परिस्थिति में वे कारानिरोध में उपार्जित हुए। धारा ३४४ की उपधारा १ की अपेक्षा है कि जब वाद स्थगित हुआ हो तो व्यक्ति कारानिरोध में ही है। स्पष्टतः प्रार्थी ६–७–५७ को कारानिरोध में थे जब कि वाद दूसरे दिन के लिये स्थगित हुआ और उनका जेल के लिये उपावर्ण (कमिटमेंट) आ० प्र० संहिता की धारा ३४४ के अंतर्गत हुआ।

जो कुछ हमने ऊपर कहा है उससे अलग आ० प्र० संहिता की धारा ६१ ने न्यायालय के एक पीठासीन अधिकारी को अधिकार दे रखा है कि न्यायालय के उपस्थित किसी भी व्यक्ति से उसकी उपस्थिति के लिये प्रतिभू (स्योरिटी) से युक्त या बिना प्रतिभू के जमानत ले सकता है। अतः जब प्रार्थी ६–७–१९५७ को न्यायालय में उपस्थित थे तो धारा ६१ के अंतर्गत मैजिस्ट्रेट उन्हें बंध निष्पादन के लिये कह सकता था। पुनः यह विवाद किया गया कि यह धारा परिच्छेद ८ के अंतर्गत की प्रक्रिया में अप्रयोज्य है। इस धारा के अंतर्गत अधिकार के व्यवहार के लिये जो आवश्यक है वह यह है कि अधिकारी को 'समन' वा 'वारंट' निकालने का अधिकार होना चाहिए। यह आवश्यक नहीं है कि ऐसा समन या वारंट निकाला ही जाय। इतना ही पर्याप्त है कि उस अधिकारी को समन वा वारंट निकालने का अधिकार हो। जब यह परिस्थिति हो और व्यक्ति न्यायालय में उपस्थित हो तो अधिकारी उसकी उपस्थिति के लिये जमानत सहित वा रहित बंध निष्पादन के लिये कह सकता है। इसकी प्रयोज्यता के आयंत्रण के लिये इस धारा में कुछ भी नहीं है प्रत्युत यह सामान्य उपबंध है जो न्यायालय में उपस्थिति के लिये विवश करने के लिये है।

आ० प्र० संहिता की धारा ११४ के देखने से विदित होगा कि आ० प्र० संहिता की धारा ११२ के अंतर्गत आज्ञा देनेवाले मैजिस्ट्रेट को, जिस व्यक्ति के विरुद्ध कार्यवाही करनी है उसे उपस्थित होने के लिये उसपर 'समन' निकालने का अधिकार प्राप्त है। अतः धारा ६१ के अर्थ में मैजिस्ट्रेट ऐसा अधिकारी है जिसे उपस्थिति के लिये समन निकालने का अधिकार प्राप्त है। अतः हमारे विचार से उसको जमानत लेने का भी अधिकार प्राप्त है।

इस संबंध में एक मनोरंजन प्रश्न उठाया गया है कि धारा ६१ में कोई स्पष्ट उपबंध नहीं है कि जमानत न देने की अवस्था में व्यक्ति को बंदी कर लिया जाय। इसमें संदेह नहीं कि उस धारा में कोई स्पष्ट उपबंध नहीं है किंतु धारा ६१ द्वारा प्रदत्त अधिकार का प्रयोजन ही यह है कि नियत तिथि पर व्यक्ति की उपस्थिति निश्चित करा ली जाय। जहाँ अधिकार और अधिक्षेत्र प्रदान किया जाता है वहाँ ध्वनितार्थ (इंप्लाइड) में ऐसे कार्य के करने एवं ऐसे उपायों के अवलंबन का भी अधिकार प्राप्त होता है जो ऐसे अधिकार और अधिक्षेत्र के निष्पादन के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये संभवतः आवश्यक है। इसमें संदेह नहीं होना चाहिए कि व्यक्ति के न्यायिक कारानिरोध का उपार्पण उसकी उपस्थिति के विनिश्चयन के लिये है जब कि उसने जमानत देना अस्वीकार किया। ऐसी अवस्था में परिणाम यह हुआ कि धारा ९१ जिससे जमानत लेने का अधिकार प्राप्त है, उसीने, आवश्यक ध्वनितार्थ से, जमानत देने पर व्यक्ति को कारानिरोध में रखने का भी अधिकार दिया है।

यह अनुरोध किया गया कि यतः कारानिरोध का उपार्पण दांडिक (पेनल) है अतः यह ध्वनितार्थ (इंप्लाइड) नहीं हो सकता। हमारी सम्मति में यह दांडिक नहीं है।

हम देखते हैं कि प्रार्थियों को हम आगे और कारानिरोध में इस कारण नहीं रख सकेंगे जो हम आगे कहेंगे। आ० प्र० संहिता की धारा ३४४ की अपेक्षा है कि जब कोई वाद स्थगित हो तो न्यायालय को ऐसा लिखित आज्ञा के द्वारा करना चाहिए और उसका कारण भी दिखाए और अभियुक्त को यदि वह कारानिरोध में हो, वारंट के द्वारा प्रतिप्रेषित करे। उपधारा २ का कहना है कि उच्च न्यायालय के सिवा, जो न्यायालय इस उपधारा के अधीन आज्ञा पारित करे वह लिखित रूप में करे जिसपर पीठासीन मैजिस्ट्रेट या जज के हस्ताक्षर हों। वकील सरकार ने हमें बताया है कि इस वाद में यद्यपि स्थगन की कई तिथियाँ पड़ी हैं, मैजिस्ट्रेट ने प्रार्थियों को कारानिरोध में लौटाते समय कोई आज्ञा नहीं लिखी है। उन आज्ञाओं का अभिदेश हमारे सामने किया गया है जिसका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। हम इन आज्ञाओं को धारा ३४४ के अर्थ में आज्ञा नहीं मान सकते। रामनारायन सिंह वि० दिल्ली राज्य के वाद में सर्वोच्च न्यायालय के श्रीपतियों ने कहा है—

"बंदी प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया में निरोध की वैधता अवैधता का लौटाते समय न्यायालय को विचार कर लेना चाहिए और प्रक्रिया के संस्थापन (इंस्टीट्यूशन) के अभिदेश से नहीं।

"आ० प्र० संहिता की धारा ३४४ की अपेक्षा है कि मैजिस्ट्रेट, यदि वाद को स्थगित करना चाहे, अभियुक्त को, यदि वह कारानिरोध में है, वारंट के द्वारा लौटाएँ और आगे यह भी उपबंध है कि, उच्च न्यायालय के सिवा, कोई न्यायालय, इस धारा के अधीन आज्ञा करे, वह प्रत्येक आज्ञा लिखित हो जब कि अन्वीक्षक मैजिस्ट्रेट ने लिखित आज्ञा के द्वारा वाद स्थगित किया किंतु अभिलेख में कोई ऐसी आज्ञा नहीं है जिससे जाना जाय कि उन्होंने अभियुक्त को कारानिरोध में लौटाने की आज्ञा दी तो स्थगन की आज्ञा के पश्चात् अभियुक्तों का कारानिरोध अवैध है"

श्रीपतियों ने आगे और कहा है—

"जो अपने को दूसरे व्यक्तियों के वैयक्तिक स्वातंत्र्य से वंचित करने के लिये उससे आबद्ध मानते हैं जिसे वे अपना कर्त्तव्य समझते हैं, उन्हें अत्यंत कड़ाई और अत्यवधानता (स्क्रूपलसली) से विधि के नियम और स्वरूप को अपनाना चाहिए"।

अतः प्रस्तुत वाद में यह है कि आरंभ में प्रार्थियों को कारानिरोध में भेजने की आज्ञा है, कोई आज्ञा धारा ३४४ के अर्थ में नहीं है। १०-७-१९५७ के बाद कोई आज्ञा विध्यनुसार नहीं है। हमें बताया गया है कि प्रार्थी सं० ६. ९. १० तथा १२ जगन प्रसाद, पदम सिंह, अमर सिंह गोवर्धन जमानत पर छोड़े गए हैं। कुछ प्रार्थीगण अभी भी जेल में हैं। उनके संबंध में यतः धारा ३४४ के अनुसार कोई आज्ञा नहीं है उनका निरोध अवैध है। हमारा निर्णय है कि मैजिस्ट्रेट को जमानत मांगने का अधिकार था। जो प्रार्थी जमानत पर छुटे ही हैं उन्हें यह साहाय्य (रिलीफ) पाने का अधिकार नहीं है पर जो जेल में हैं वे मुक्त होने के अधिकारी हैं।

तदनुसार हम निर्देश करते हैं कि वासुदेव ओझा, घासीराम, भीमसेन, शंकरलाल पाठक, दरोगा सिंह, मंजन सिंह, काटू सिंह, खुशीराम तथा बेनीराम प्रार्थीगण तत्काल मुक्त किए जाय।

तदनुसार आज्ञा।

——

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि पत्रिका (१९८०) इ० उ० न्या० पं० ८५

न्यायमूर्ति मुकर्जी

फर्म बूलचंद चाँदी राम ऐंड कंपनी पुनरावेदक

विरुद्ध

एल० ओंकार नाथ तथा अन्य उत्तरवादीगण

अ—अवधि अधिनियम (१९०८) धा० १४ (१) उचित अध्यवसाय (ड्यू डिलिजेंस)

(ब) अवधि अधिनियम (१९०८) धा० १४ (१)—वे ही पक्ष—पहला वाद फर्म के नाम में—दूसरे वाद में उसके दो भागीदारों का नाम जोड़ा गया—पक्षों में कोई परिवर्तन नहीं समझा जायगा।

(स) अवधि अधिनियम (१९०८) धा० १४ (१)—दूसरी कार्यवाही—क्या आवश्यक है कि कार्य-वाही दो विभिन्न न्यायालयों में हो—पहले वाद में वाद पत्र लौटा दिया गया—क्या यही दूसरे वाद में भी निवेशित किया जा सकता है—

निर्णय—

यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण पुनरावेदन है और इसमें जो विधि का प्रश्न विचाराधीन है उस पर इस न्यायालय को कदाचित् कभी भी विचार करने का अवसर नहीं प्राप्त हुआ है।

आगरा के मुंसिफ के न्यायालय में एक वाद निवेशित किया गया। इसमें वादी एक फर्म का स्वामी था और प्रतिवादी भी एक फर्म था। १५०० रु० के प्रत्यर्दान (रिकवरी) के लिए यह वाद निवेशित किया गया था। विकल्पतः यह भी प्रार्थना की गई थी यदि वह विशिष्ट धनराशि ठीक ठीक निर्धारित न हो सके तो हिसाब ही माँग लिया जाय।

इसमें प्रतिवादियों की ओर से कतिपय आपत्तियाँ की गई थीं जिनमें से यह आपत्ति यहाँ महत्वपूर्ण है कि न्यायालय को वाद की सुनवाई का अधिक्षेत्र नहीं है। न्यायालय ने वाद की डिग्री दे दी और अधिक्षेत्र के प्रश्न पर निर्णय दिया कि उसे सुनवाई का अधिक्षेत्र प्राप्त है।

इसके विरुद्ध प्रतिवादियों ने पुनरावेदन निवेशित किया। पुनरावेदन में निर्णय हुआ कि नीचे के न्यायालय को इसकी सुनवाई का अधिक्षेत्र नहीं था। निम्न पुनरावेदन न्यायालय ने विद्वान् मुंसिफ की अज्ञप्ति निराकृत कर दी और वादी को वादपत्र लौटा दिया कि वह उपयुक्त न्यायालय में निवेशित करे।

वादी ने वही वादपत्र पुनः आगरा के मुंसिफ के न्यायालय में निवेशित किया। इसमें कुछ संशोधन और परिवर्तन कर दिया गया। पक्षों में दो व्यक्तियों का नाम और जोड़ दिया गया। पहले ये दोनों व्यक्ति उक्त मुंसिफ के अधिक्षेत्र के बाहर रहते थे इसलिए उनका नाम पक्षों में नहीं था। बाद में वे आगरा में ही आकर रहने लगे और इस संबंध में एक अनुच्छेद और बढ़ा दिया गया कि यतः प्रतिवादीगण आगरा शहर में रहते और व्यापार करते हैं इसलिए न्यायालय को वाद के निर्वर्तन का अधिक्षेत्र प्राप्त है।

आगरा के इस न्यायालय ने वाद स्वीकार किया। इस पर आपत्ति की गई कि इसमें अवधि अधिनियम की धा० १४ लागू नहीं होती तथा इसलिए यह काल बाधित है। उक्त न्यायालय ने भी यही निर्णय दिया कि पहलेवाला वाद सद्विचार से नहीं चल रहा था; अवधि अधिनियम धा० १४ लागू नहीं होती, परिणामतः वाद काल बाधित है।

इसके विरुद्ध पुनरावेदन निवेशित करने पर निम्न पुनरावेदन न्यायालय ने निर्णय दिया कि अवधि अधि-नियम धा० १४ लागू होती है और जितने समय तक पहला वाद चला है उतना समय और बढ़ जायगा और इस कारण यह वाद कालबाधित नहीं है। पुनरावेदन न्यायालय ने मुंसिफ के उत्सर्जन के आदेश को निराकृत करके सुनवाई के लिये वाद नीचे के न्यायालय में प्रति-प्रेषित कर दिया।

प्रतिवादियों ने इसी आदेश के विरुद्ध यह पुनरावेदन निवेशित किया है। यहाँ निम्नलिखित तीन आपत्तियाँ उठाई गई हैं:—

(अ) अवधि अधिनियम की धा० १४ लागू नहीं होती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ब) दोनों वादों के पक्ष एक ही नहीं हैं ।

(स) पहला वाद सद्विचार से निवेशित नहीं किया गया था ।

आपत्ति (ब) के उत्तर में यही कहना है कि व्य० प्र० सं० के आ० २० नि० ३ के अनुसार वाद या तो फर्म के नाम में से निवेशित किया जा सकता है या उसके भागीदारों के नाम से । यहाँ केवल दो भागीदारों का नाम बढ़ा दिया गया । नए व्यक्ति पक्ष नहीं बनाए गए । किसी फर्म के विरुद्ध वाद उसके समस्त भागीदारों के विरुद्ध समझा जाता है । इससे यहाँ इस कथन में सार नहीं है कि दोनों वाद एक ही पक्ष के बीच नहीं हैं या पक्षों में परिवर्तन कर दिया गया ।

आपत्ति (स) के लिये यह कहना है कि वाद के तथ्यों से यह पूर्णतया स्पष्ट है कि पहला वाद सद्विचार से निवेशित किया गया था । अंत तक उसे लड़ा गया । इस देश में जैसे वाद निवेशित होते हैं, जैसे उनकी पैरवी की जाती है ठीक उसी सतर्कता से पहला वाद चला है । इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि वह सद्विचार से निवेशित नहीं हुआ था ।

आपत्ति (अ) के लिए कहा गया है कि पहले वाला वाद क्या "दूसरी कार्यवाही" (ऐनदर प्रोसीडिंग) जैसा कि धारा १४ में अभिप्रेत है—कही जा सकती है ? दूसरे शब्दों में "दूसरी कार्यवाही" के लिये केवल इतनी ही पर्याप्त नहीं है कि दो अलग अलग कार्यवाही होनी चाहिए वरन् दो विभिन्न न्यायालयों में कार्यवाही का होना अनिवार्य है । एक के बाद दूसरे साहाय्य के लिये वादी को धा० १४ के अनुसार दो न्यायालयों में जाना आवश्यक है । दूसरे यह भी विवाद है कि वही वादपत्र पुनः निवेशित नहीं कर सकता ।

मान लिया जाय कि मुंसिफ के न्यायालय में ५०००रु० के मूल्यांकन का वाद निवेशित किया गया है । उस समय मुंसिफ को ३००० रु० के मूल्य की ही सुनवाई का अधिकार है । वह वादपत्र उपयुक्त न्यायालय में निवेशित करने के लिये लौटा दिया जाता है । मान लिया जाय कि १ जनवरी को वादपत्र लौटाया गया और १५ जनवरी को मुंसिफ को ५००० रु० के मूल्य तक की सुनवाई करने का अधिकार विज्ञप्ति द्वारा हो गया । इस परिस्थिति में क्या वादी पुनः उसी न्यायालय में वही वादपत्र निवेशित करने के लिये नहीं जा सकता । ए० आई० आर० १९२१ सिंध १३ में ऐसे ही तथ्यों पर निर्णय हुआ था कि धा० १४ के लिये आवश्यक नहीं है कि कार्यवाही दो भिन्न भिन्न न्यायालयों में हो ।

मेरे मतानुसार धारा १४ के लिये यह आवश्यक नहीं है कि कार्यवाही दो भिन्न भिन्न न्यायालयों में हो । धारा १४ के अंतर्गत समय बढ़ाने के लिये यह भी आवश्यक नहीं है कि वादी को पहलावाला वादपत्र नहीं वरन् अलग वादपत्र निवेशित करना चाहिए । इस विचार के समर्थन में ए० आई० आर० १९३५ पटना ८२ है ।

उपर्युक्त कारणों से मैं इस पुनरावेदन में कोई बल नहीं देखता हूँ और उत्सर्जित करता हूँ । पक्ष अपने अपने परिव्यय को सहन करेंगे । स्थगन आदेश उन्मुक्त किया जाता है और अभिलेख नीचे के न्यायालय में भेज दिए जायँ ।

पुनरावेदन उत्सर्जित

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इला० उ० न्या० ८६

अब्दुल रहमान — प्रार्थी

वि०

उत्तर प्रदेश राज्य—द्वारा-सचिव, गृह विभाग, पुलिस सी० लखनऊ तथा अन्य विरुद्धी करण ।

व्यवहार प्रकीर्णक लेख सं० १४०४।१९५७ दिनांक २८-८-१९५७ ।

नागरिकता अधिनियम (१९५५) धा० ६ और नियम ३०—प्रश्न कि व्यक्ति भारतीय नागरिक है कि नहीं—प्रश्न के विनिश्चयन का न्यायाधिकरण—संविधान के अनुच्छेद २२६ के अंतर्गत प्रार्थना ।

आदेश

इसमें प्रार्थी उत्तर प्रदेश राज्य के फैजाबाद जिले का निवासी था । वह बिना किसी अनुज्ञा के पाकिस्तान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चला गया। वह जाति का बुनकर था और बुनाई का काम करता था। उसके कहने के अनुसार उसने जब देखा कि पाकिस्तान में बुनाई का व्यापार नहीं चल रहा है तो वह भारत लौट आया। उसको पाकिस्तान सरकार द्वारा भारत आने के लिये पारपत्र (पासपोर्ट) मिला था। उस पारपत्र (पासपोर्ट) में उसे पाकिस्तान का नागरिक कहा गया था। वह भारत में कुछ समय तक रहा। पारपत्र (पासपोर्ट) में दिया हुआ समय जब जब बीतता था तब तब वह उत्तर प्रदेश सरकार से समय बढ़ाने की प्रार्थना करता रहा।

अंत में जब उत्तर प्रदेश सरकार ने आगे समय बढ़ाना अस्वीकार कर दिया तो उसने एक दूसरा प्रार्थना पत्र दिया कि वह भारत का नागरिक है अतः उसका देश निकाला नहीं किया जा सकता।

इसमें उसने यह भी कहा कि यतः उसके नागरिकता का प्रश्न विचाराधीन था अतः उसने समय बढ़ाने का प्रार्थनापत्र दिया। किंतु इसमें उसने यह स्पष्ट नहीं किया कि कहाँ उसकी नागरिकता का प्रश्न विचाराधीन था। उसके पारपत्र (पासपोर्ट) में उसे पाकिस्तान का नागरिक कहा गया था। इसके लिये उसका कहना था कि यह केवल एक त्रुटि थी और यह त्रुटि सद्विचार से थी। किंतु इसका यह अभिकथन स्वीकार नहीं किया जा सकता। जो हो, इस प्रश्न का निबटारा कि प्रार्थी भारत का नागरिक है या पाकिस्तान का, नागरिकता अधिनियम के अंतर्गत होगा।

नागरिकता अधिनियम १६५५ की धारा ६ (१) में दिया गया है कि भारत का कोई नागरिक जो किसी प्रकार किसी दूसरे देश की नागरिकता प्राप्त कर लेता है या २६ जनवरी १६५० और इस अधिनियम के प्रारंभण (३० दिसंबर १६५५) के बीच इच्छानुसार किसी दूसरे देश की नागरिकता प्राप्त कर लिया था वह अवाप्ति पर या प्रारंभण पर भारत का नागरिक नहीं रह जायगा। युद्ध काल में जो व्यक्ति इच्छापूर्वक किसी दूसरे देश की नागरिकता स्वीकार करता है उसके लिये उपर्युक्त उपबंध लागू नहीं होंगे किंतु प्रतिबंध है कि केंद्रीय सरकार इसके संबंध में नियम बना सकती है।

इसमें आगे है कि जब कभी यह प्रश्न उठे कि क्या, कैसे और कब किसी ने दूसरे देश की नागरिकता स्वीकार की तो इस संबंध में निर्धारित प्राधिकरण इसपर विचार करेगा। नागरिकता अधिनियम के अंतर्गत निर्मित नियम के अनुसार केंद्रीय सरकार उपर्युक्त प्रश्न पर विचार करेगी।

अतः इस प्रश्न पर विचार करने के लिये विधि के उपबंधों के अनुसार न्यायाधिकरण निर्धारित है। प्रार्थी को चाहिए कि वहाँ जाकर उपाय ढूँढ़े न कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद २२६ के अंतर्गत इस न्यायालय में।

उपर्युक्त कारणों से मैं इस प्रार्थनापत्र में सार नहीं पाता हूँ और तद्नुसार उत्सर्जित करता हूँ।

प्रार्थनापत्र उत्सर्जित

विधि पत्रिका (१८८०) १६५८ पृ० ८७

इलाहाबाद उच्च न्यायालय

सदानंद तिवारी — प्रार्थी

वि०

राज्य — विपक्षी

आपराधिक पुनरीक्षण सं० १६६७ । १६५५ दिनांक २७-८-१६५७,

दंड प्रक्रिया संहिता (१८६८) धा० १३७, १३६ और १३३–धारा १३३ के अंतर्गत आरंभिक आदेश—मजिस्ट्रेट का आरंभिक आदेश के परिष्कार करने का अधिकार।

आदेश

वर्तमान प्रार्थी के विरुद्ध किसी कमला पाण्डेय ने प्रार्थनापत्र प्रस्तुत किया कि उसने भूखंड सं० ३६ और ४२ पर अतिक्रमण किया है। इस पर मजिस्ट्रेट ने नायब तहसीलदार को नाप करने के लिये नियुक्त किया। नाप करने पर नायब तहसीलदार ने प्रतिवेदन किया कि दो भूखंडों पर अतिक्रमण (एनक्रोचमेंट) किया गया है। इस प्रतिवेदन के आने पर विद्वान मजिस्ट्रेट ने इस प्रार्थी को आदेश दिया कि १५ दिन के भीतर उस अतिक्रमण को हटा दें या इसके विरुद्ध कारण दिखलावे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस नोटिस पर प्रार्थी उपस्थित हुआ। प्रतिवाद में उनका कहना था कि उसने तथाकथित अतिक्रमण नहीं किया है। साक्ष्य उपस्थित किए गए और उससे पता चला कि भूखंड सं० ४० पर अतिक्रमण किया गया है। इसलिए मजिस्ट्रेट ने अपने पहलेवाले आरंभिक आदेश का परिष्कार कर दिया और आदेश दिया कि उक्त अतिक्रमण को १५ दिन के भीतर हटा दे और न हटाने पर पुलिस द्वारा उसे हटाया जायगा और उसका व्यय प्रार्थी को देना पड़ेगा।

इस आदेश के विरुद्ध पार्थी ने जिलाधीश के न्यायालय में पुनरीक्षण निवेशित किया। पुनरीक्षण का आधार था कि धा० १३७ के अंतर्गत मजिस्ट्रेट अपने आरंभिक आदेश का या तो स्थिरीकरण (कनफर्मेशन) कर सकते हैं या उसे (वैकेट) कर सकते हैं—परिष्कार (माडिफिकेशन) का अधिकार उन्हें नहीं है। इसके लिये ए० आई० आर० १६४३ मद्रास ३३५ का सहारा लिया गया, परंतु विद्वान् अतिरिक्त जिलाधीश ने निर्णय दिया कि उस वाद के सिद्धांत इसमें लागू नहीं होते और मजिस्ट्रेट को अपने आरंभिक आदेश के परिष्कार का अधिकार है। इसलिए उन्होंने पुनरीक्षण अस्वीकार कर दिया। प्रार्थी, अब पुनरीक्षण में इस न्यायालय में आया है।

यहाँ भी यही प्रतर्क रखा गया कि दं० प्र० सं० की धा० १३७ के अंतर्गत मजिस्ट्रेट या तो आगे की कार्यवाही स्थगित कर सकते हैं या आरंभिक आदेश को पूर्ण (ऐब्सोल्यूट) कर सकते हैं—किंतु आरंभिक आदेश के परिष्कार का अधिकार उन्हें नहीं है।

उस मद्रास के मामले के अतिरिक्त ए० आई० आर० १६५२ कलकत्ता १२७ का सहारा लिया गया। इस मामले में आरंभिक आदेश कलकत्ता की तीन सड़कों पर के अतिक्रमण को हटाने के संबंध में था। साक्ष्य से प्रतीत हुआ था कि अतिक्रमण तीनों सड़कों पर नहीं प्रत्युत एक ही सड़क पर हुआ है और इसलिए आरंभिक आदेश का परिष्कार कर के इस विशिष्ट सड़क के अतिक्रमण को हटाने का आदेश दिया गया। इसमें कलकत्ता उच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि मजिस्ट्रेट का परिष्कार संबंधी आदेश अवैध है।

दं० प्र० सं० की धा० १३६ में अवश्य यह दिया गया है कि जब मजिस्ट्रेट जूरी के साथ बैठता है, तब वह परिष्कार कर सकता है। मजिस्ट्रेट जब अकेले बैठता है और जब वह जूरी के साथ बैठता है तब उसके परिष्कार संबंधी अधिकार में अंतर हो जाता है। ऐसा ज्ञात होता है कि विधान मंडल ऐसी संभाव्यता से अवगत था और तभी विचार पूर्वक उसने एक अवस्था में मजिस्ट्रेट को आरंभिक आदेश के परिष्कार का अधिकार दिया है और दूसरे में नहीं दिया है। दं० प्र० सं० की धा० १३७ और १३६ के शब्दों में अंतर है।

अतः जिसके विरुद्ध आरंभिक आदेश धा० १३३ के अंतर्गत दिया गया है वह यदि चाहता है कि उक्त आदेश का परिष्कार हो तो उसके लिये यही उपाय है कि धा० १३५ के अंतर्गत जूरी की नियुक्ति का प्रार्थना-पत्र दे और तब मजिस्ट्रेट जूरी के साथ बैठने पर उस आरंभिक आदेश का परिष्कार कर सकते हैं किंतु प्रतिबंध यह है कि जूरियों का बहुमत ऐसे परिष्कार के पक्ष में हो।

अतः मेरे विचार से मजिस्ट्रेट का धा० १३७ के के अंतर्गत आरंभिक आदेश का परिष्कार करना ठीक नहीं है और इस प्रकार विवादग्रस्त अतिक्रमण को हटाने का निर्देश अनुचित है।

अतः मैं पुनरीक्षण स्वीकार करता हूँ और मजिस्ट्रेट के आदेश को निराकृत करता हूँ।

—पुनरीक्षण स्वीकृत

विधि पत्रिका (१८८०) १६५८ इ० उ० न्या० पृ० ८८

ज्ञानेन्द्रनाथ मित्तल ... प्रार्थी

विरुद्ध—

दामोदर भट्ट ... विपक्षी

अतिरिक्त शेशन जज, कुमाऊ के दिनांक १२-२-१६५५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के विरुद्ध आपराधिक पुनर्निरीक्षण सं० ६४७ सन् १६५५ दिनांक ५-६ १६५७

(अ) भेषज अधिनियम (१६४०) धारा ३३ (१)—उ० प्र० भेषज नियम, नियम ४६ परंतुक ३—पदेन इंसपेक्टर कौन नियुक्त किया जा सकता है ?

(ब) भेषज अधिनियम (१६४०) धारा ३३ (१) उ० प्र० भेषज नियम ५१ (७) फुटकर दूकानों के निरीक्षण के लिये नियुक्त इंसपेक्टर किसी भी मकान का निरीक्षण कर सकता है

(स) भेषज अधिनियम (१६४०) धारा ३३ (१) उ० प्र० भेषज नियम, नियम ४६ परंतुक ३—नियम ४६ का परंतुक ३ शक्ति परस्तात् (अल्ट्रावायरस) है—अवैध नियम ४६ परंतुक ३ के अधीन नियुक्त इंसपेक्टर मकान के अन्वेषण के समय यदि प्रार्थी को गाली दे तो दंड संहिता की धारा ४५६ में अभियोजन के लिये संमोदन की आवश्यकता नहीं है।

अभिदिष्ट वाद

(अ) (५०) गवर्नमेंट अपील सं० ११४६ सन् १६५०

(इलाहाबाद)

एस० सी० खरे ... ... प्रार्थी की ओर से

एस० सी० अस्थाना ... ... विपक्षी की ओर से

आदेश

पौड़ी के जिला मेडिकल आफिसर आफ हेल्थ के विरुद्ध श्री ज्ञानेंद्र नाथ मित्तल ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा ४५६ और ५०४ के अंतर्गत परिवाद किया जो इस आधार पर अपास्त (डिसमिस) हो गया कि आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा १६७ के अधीन संमोदन (सैंकशन) न होने से यह संधार्य नहीं है, उसी के विरुद्ध यह पुनरावेदन है।

(१) विपक्षी पौड़ी में डिस्ट्रिक्ट मैडिकल आफिसर है और प्रार्थी विष के अतिरिक्त अन्य भेषजों की अनुज्ञप्ति (लाइसेंस) रखता है।

(२) अभिकथन है कि २१-८-१६५३ को डा० भट्ट प्रार्थी के विरोध करते रहने पर भी उसके घर के अन्वेषण के लिये घुसे और उसको गालियाँ दीं। प्रार्थी ने डा० भट्ट के विरुद्ध दंड संहिता का धारा ४५६ और ५०४ के अधीन परिवाद निवेशित किया।

(३) तीन बातें सुझाई गई पहली यह कि वह सूचना जिसके द्वारा डिस्ट्रिक्ट मेडिकल आफिसरों को पदेन निरीक्षक बनाया गया है, दोषावह (बैड) है। फुटकर दुकानों के निरीक्षण के लिये डा० भट्ट का निरीक्षक होना, नियम ४६ के तीसरे परंतुक में आता है।

(४) दूसरी बात यह कही गई है कि फुटकर दुकानों के निरीक्षक को उसके घर का अन्वेषण नहीं करना था केवल उसकी फुटकर दूकान का निरीक्षण वे कर सकते थे।

(५) धारा ५१ में इंसपेक्टरों को अनुज्ञप्ति प्राप्त मकानों के निरीक्षण का अधिकार दिया गया है। उपधारा ७ में अन्य ऐसी जाँच का अधिकार दिया गया है जो आवश्यक हो अतः डा० भट्ट निरीक्षण कर सकते थे।

(६) तीसरा विवाद यह है कि डा० भट्ट का गाली देना उनके कर्त्तव्यपालन में नहीं आता। यह विवाद स्वस्थ है कि डा० भट्ट के विरुद्ध बिना आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा १६७ के अधीन सम्मोदन के बाद चालित किया जा सकता है।

(७) अतः मेरा मत है कि नियम ४६ का अंतिम परंतुक शक्त्यतीत (अल्ट्रावायरस) है तो यह नहीं माना जा सकता कि डा० भट्ट को नियुक्त करना भेषज अधिनियम की धारा २१ के अधीन सरकार की शक्ति के अंतर्गत था और अभिलेख में कोई ऐसी बात नहीं है जिससे विदित हो कि उनमें वे गुण विद्यमान थे जैसा कि नियम ४६ में इंसपेक्टरों की नियुक्ति के लिये दिए गए हैं जिसका अर्थ यह होता है कि तब यह नहीं कहा जा सकता कि डा० दामोदर भट्ट ने प्रार्थी के घर का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्वेषण अपने कर्तव्यपालन में किया है। उनपर धारा ४५६ दंड संहिता का अभियोग चलाने के लिये सरकार के संमोदन की आवश्यकता नहीं थी।

(८) अतः मैं इस पुनर्निरीक्षण को स्वीकृत करता हूँ। निम्न न्यायालय के निर्णय को उत्सादित करता हूँ और वाद को मैजिस्ट्रेट के यहाँ विधि के अनुसार आगे की कार्यवाही के लिये भेजता हूँ। अभिलेख संबंधित न्यायालय को तुरत भेज दिया जाय।

पुनर्निरीक्षण स्वीकृत

———

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ इलाहाबाद पं० ६०

जेम्स न्यायाधीश

दुल्ला इत्यादि — प्रार्थीगण

विरुद्ध

राज्य सरकार — विपक्षी

(अ) आपराधिक प्रक्रिया संहिता (१८९८) धारा ३२।

(ब) आपराधिक प्रक्रिया संहिता (१८९८) धारा ४३५, ४३६।

(स) उ० प्र० गोवध निवारण अधिनियम (१ सन् १९५६ धारा ८ (१)

अभिदिष्टवाद

१. ए० (१८९७–०१) १८९७–०१–१ यू० बी० आर ३३०

२. ए. आई. आर. १९५२ एस. सी. १४ : १९५२ एस. सी. आर. १७२, १९५३ क्रि. एल. जे. ५४२

३. ए. आई. आर. १९३१ कलकत्ता ४४८ : ३२ क्रि. एल. जे. ११८१

४. ए. आई. आर. १९३१ बंबई ७० : ३२ क्रि. एल. जे. २८३ :

५. ए. आई. आर. १९४२ मद्रास ७२३ : ४४ क्रि. एल. जे. १३९

६. ए. आई. आर. १९२७ नागपुर २२१ : २८ क्रि. एल. जे. ४६३

७. ए. आई. आर. १९३१ पटना ३४२ : ३२ क्रि. एल. जे. ११६६

८. ए. आई. आर. १९४४ पटना १६ : ४५ क्रि. ए. जे. ३३२

९. ए. आई. आर. १९४२ बंबई २१५ : ४३ क्रि. एल. जे. ७५४

१०. ए. आई. आर. १९३९ इला० २७९ : ३१ क्रि. एल. जे. ६३१

११. ए. आई. आर. १९५६ इला० १६३ : १९५६ ए. एल. जे. २०६ १९५६ क्रि. एल. जे. ३५८

१२. (५७) क्रि. रिवी· नं० १६७५ तथा १७१७ सन् १९५६ दिनांक १४–२, १९५७ (इला०)

(१३) ए. आई. आर. १९२० इला० २६८ : २२ क्रि. एल. जे. २२८

१४. ए. आई. आर. १९४५ इला० ९८ : १९४५ ए० एल. जे. ४५ ४६ क्रि. एल. जे. ५३९

१५. ए. आई. आर. १९२५ कलकत्ता ११८२ : कलकत्ता एल. जे. १२४

१६. ए. आई. आर. १९५२ एल. सी. ३४३ : १९५३ क्रि. एल. जे. १२९

एस. सादिक अली तथा भगवान दास गुप्त—प्रार्थी की ओर से

सहायक गवर्नमेंट एडवोकेट — उत्तरवादी की ओर से

आदेश

यह वाद उ० प्र० गोहत्या निरोध अधिनियम (उ० प्र० अधिनियम सं० १ सन् १९५६) के अंतर्गत है जिसमें कतिपय सार्वजनिक महत्व के प्रश्न उठते हैं। इसके तथ्य, जैसा कि निम्न न्यायालयों ने दिया है, इस प्रकार हैं—१४ मई १९५६ को यह सूचना मिलने पर कि ग्राम सैदपुर थाना वजीरगंज जिला बदाऊँ के फुल्लू के मकान में गोहत्या हो रही है, रनवीर थानेदार के साथ पुलिस के एक पक्ष ने उसके मकान पर १२ बजे दिन के समय धावा किया। भीतरी आँगन में फुल्लू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलाहीन तथा मुंशी वल्द वजीर एक गाय के लोथ (कारकेस) को बड़े टुकड़ों में, तथा बाबू, फुल्ला और मुंशी वल्द करीम उन बड़े टुकड़ों को छोटे टुकड़ों में में विभाजित करते हुए पाए गए। फुल्लू तो वहीं बंदी कर लिया गया पर दूसरे पाँच भाग निकले। डाक्टरी साक्ष्य से विदित हुआ कि गाय ४॥ बजे और ६॥ बजे के बीच सवेरे मारी गई थी और वह निरोग थी। मैजिस्ट्रेट ने इन ६ व्यक्तियों की गोहत्या निरोध अधिनियम धारा ८ (१) के अंतर्गत अन्वीक्षा की। उनपर गोहत्या का आरोप था और वे अपने को निर्दोष होना कहते थे। विद्वान मैजिस्ट्रेट ने ६ व्यक्तियों को दोषी ठहराया और उनको १८ महीने की कड़ी सजा दी और इस कड़ी सजा देने का कोई कारण नहीं दिखलाया। उन ६ व्यक्तियों ने बदाऊँ के शेशन जज के यहाँ पुनरावेदन किया और अपने पुनरावेदन में तीन बातें दिखाईं कि (१) मैजिस्ट्रेट की आज्ञा दोषपूर्ण है और सामान्य बुद्धि के प्रतिकूल है (२) उक्त आज्ञा साक्ष्य के विरुद्ध है तथा (३) दंड अत्यंत अधिक है। विद्वान शेशन जज ने सजा बहाल रखी और पुनरावेदन अपास्त कर दिया और यह स्मरण रहे कि यद्यपि पुनरावेदन का तीसरा आधार सजा की मात्रा से ही संबंधित था उन्होंने कोई कारण नहीं दिखलाया कि उन्होंने मैजिस्ट्रेट की दी हुई सजा की संपुष्टि क्यों की।

(२) फुल्लू ने जज की आज्ञा स्वीकार कर ली किन्तु शेष पाँचों ने प्रस्तुत पुनर्निरीक्षण उच्च न्यायालय में कर दिया। विद्वान आवेदन न्यायाधीश (अप्लीकेशन जज) ने इसे केवल दंड के प्रश्न पर ले लिया। अतः वाद का अभिलेख मँगाया गया और वह वाद अब मेरे सामने निर्वर्तन के लिये है।

(३) प्रत्येक आपराधिक अन्वीक्षा में दो प्रश्न उठते हैं और दोनों ही आवश्यक हैं। पहला यह कि क्या अभियुक्त दोषी है और दूसरा यह कि यदि अपराधी है तो, उसको कितना दंड देना चाहिए। दंड की मात्रा का विषय विधि न्यायालय के स्वविवेक पर छोड़ता है, तथापि उसका आग्रह यह है कि यह स्वविवेक न्याय पूर्ण रीति से बरता जाय न कि स्वच्छंद रीति से। इसका तात्पर्य यह है कि न्यायालय का यह परम कर्तव्य है कि वह प्रश्न पर अपना मस्तिष्क लगाए और समस्त संबंधित परिस्थितियों पर उचित रूप में विचार करते हुए उसका निर्णय करे।

(४) दुर्भाग्यवश, अनुभव यह बतलाता है कि निम्न न्यायालय ऐसा कदाचित ही करते हैं। विशेष रूप में यह सेशन जजों के संबंध में है जो पुनरावेदन सुनते हैं। इस न्यायालय ने बराबर देखा है कि सेशन जज अन्वीक्षा न्यायालय के दंडादेश को संशोधित करते रहते हैं और यद्यपि पुनरावेदन में एक वाक्य खंड दंड की कड़ाई के संबंध में रहता है तो भी संपोषण के कारण के संबंध में एक शब्द भी नहीं देते। वस्तुतः जब सेशन जज सजा बहाल रखने का निर्णय करें तो उसके कर्तव्य की अपेक्षा है कि वह दिए हुए दंड का निरीक्षण कर लें; अधिक हो तो कम कर दें, उचित हो संपोषण करें और नितांत कम हो तो बढ़ाने के लिये प्रतिवेदन करें।

(५) किंतु जैसे सब न्यायिक आज्ञाओं में होता है, आदेश के समर्थन में कारण अवश्य दिखलाए जाँय। प्रस्तुत वाद इस प्रचलित प्रवृत्ति का एक उदाहरण है और यह स्मरण रखने की बात है कि न तो अन्वीक्षा न्यायालय और न सेशन जजों ने अधिक दंड देने के लिये कारण दिखाने की कभी परवाह की है।

(६) सेशन जज के संबंध में यह विशेष रूप में सोचनीय है जिसके संमुख पुनरावेदन का तीसरा आधार दंड की अधिकता का रहा है। जान पड़ता है कतिपय निम्न न्यायालय उस सिद्धांत को नहीं जानते जो दंड की प्रमात्रा के निर्धारण के अध्यस्थ है (अंडरलाई) है अतः दंड के विषय पर न्यायिक प्रमाणों का परीक्षण करके और उन बातों को मन में धारण कर लेना लाभकर होगा।

(७) अतः परिषद (प्रिवी कौंसिल) के सन् १८९७ के अपर बर्मा के एक वाद न्गा कू वि० साम्राज्ञी (१८९७-१ यू बी आर ३३०, (३३४-३३५) में श्रीपतियों के दिए हुए सिद्धांत मन में धारण करने योग्य हैं— इसका प्रतिवेदन प्राप्त नहीं है अतः मैं रतन लाल के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'ला आफ क्राइम्स' के अठारहवें संस्करण (१९५३) के पन्ना ८१ से उत्कथित कर रहा हूँ—

"वैयक्तिक और सार्वजनिक भावनाएँ दोनों की यह माँग है कि जिस व्यक्ति ने दूसरे को अन्यायपूर्वक सताया है वह भी बदले में सताया जाय। यह कार्य के नैतिक पक्ष से सर्वथा भिन्न है जिससे न्यायालय को कुछ लेना देना नहीं है···विधि कार्य की गुरुता को उसके लिये उपबंधित महत्तम दंड से व्यक्त करता है और न्यायालय को यह देखना है कि क्या कृत अपराध गुरुता की महत्तम प्रमात्रा से कम पड़ता है और यदि कम पड़ता है तो कितना।

अनुसरण के लिये साधारणतया सुरक्षित सिद्धांत यह है कि दंड इतना संयत (माडरेट) होना चाहिए जो लक्ष्य के उद्देश्य से संगत हो। अधिक दंड अपना ही उद्देश्य गँवा देता है और लोक भावना (पापुलर फीलिंग) की एक भावना उत्पन्न करता है, जैसा कि अनुभव बतलाता है। वस्तुतः आवश्यकता से अधिक किसी को कारावास में बंदी कर रखना, उस व्यक्ति के लिये ही दोषपूर्ण नहीं है, वरन् व्यर्थ की एक क्रूरता है और आर्थिक दृष्टि से हानिकर और समाज के लिये हानि का एक साधन है।"

(७) भारतीय न्यायालयों ने इस विषय पर अपने विचार बहुत से निर्णयों में दिए हैं। उनमें से कुछ हैं— आदम जी अमर दलाल वि० बंबई राज्य, १९५२ एस. सी. आर. १७२; ए. आई. आर. १९५२ एस. सी. १४। सर्वोच्च न्यायालय के सामने चोरबाजारी का एक मामला था जिसमें ६ महीने की सजा के साथ साथ भारी अर्थदंड भी लगाया गया था। अर्थ दंड को १५०००) से घटा कर १०००) करते हुए श्रीपतियों ने जोर दिया कि न्यायालयों को सदैव अपराध और दंड के अनुपात की आवश्यकता को ध्यान में रखना चाहिए और कहा कि इन विचारों पर उचित ध्यान नहीं रखा गया है और चोरबाजारी की बुराई के निर्मूलन के जोश ने न्यायिक मस्तिष्क को दंड के प्रमाण निर्धारण में उद्विग्न कर दिया है।

(८) सम्राट वि० यार मोहम्मद, ए० आई० आर० १९३१ कलकत्ता ४४८ एक ऐसा वाद था जिसमें अभियुक्त ने एक कानिस्टिबिल को गाली और धमकी दी थी। मैजिस्ट्रेट ने उसको भारतीय दंड संहिता की धारा १८९ का अपराधी ठहराया और उसको ५०) अर्थ दंड लगाया। सेशन जज ने उच्च न्यायालय को अभिदेश किया और उन्होंने जो बातें सुझाई थीं उनमें यह भी था कि "अपुनरावेदनीय (नोन अपीलेबुल) दंड अनुचित और गंभीर आपत्ति के योग्य' हैं। अभिदेश को अस्वीकृत करते हुए कलकत्ता उच्च न्यायालय के एक विभागीय न्यायासन (डिविजन बेंच) ने यह व्यवस्था दी—

'दंड की आज्ञा देते हुए न्यायालय ऐसा दंड दे जो दंड, जिसका अभियुक्त दोषी सिद्ध है, की गुरुता के अनुकूल और उचित हो, बिना इस बात के विचार के कि दिए हुए दंड में पुनरावेदन का अधिकार सन्निहित है कि नहीं। न्यायालय को दंड का संतुलन अपराध और विषय की परिस्थिति से करना चाहिए न कि इन बातों से जो तत्पश्चात् घटित होनेवाली हों।'

(९) सम्राट वि० शकीनाबाई बदरुद्दीन, ए० आई० आर० १९३१ बंबई ७० में बंबई उच्च न्यायालय के एक विभागीय न्यायासन ने ऐसे अपराधों के संबंध में, जो यथार्थ में आपराधिक प्रकार के नहीं हैं, कुछ बहुत शांत अभ्युक्तियाँ (पेशेंट रिमार्क्स) की हैं। अभियुक्त ने एक मदिरा की दूकान पर धरना दिया था। इसके लिये उसकी अध्यादेश ५ सन् १९३० के अनुसार दोष सिद्धि हुई और ४ मास की कड़ी सजा और १००) अर्थ दंड और अर्थ दंड न देने पर एक मास की और कड़ी सजा दी गई थी। मदगवधर न्यायाधीश ने इस दंडादेश को 'कठोर और अनुचित' मानते हुए ये विचार व्यक्त किए—

'चार महीने का कठोर कारावास और १००) की अर्थ दंड और न देने पर एक महीने का कठोर कारावास, मेरी संमति में, अत्यधिक है और प्रतिशोधात्मक कहकर भी इसकी आलोचना हो सकती है। यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अल्पतम नहीं, सदैव आवश्यक है कि जब विधि के सम्मान की जड़ कट रही हो तो किसी की अभिवृत्ति (एटीच्यूड) या राजनीति चाहे जो हो, न्यायालयों को प्रत्येक अवस्था में अत्यवधानतापूर्वक तुला को सम रखना चाहिए, ठीक प्रक्रिया का पालन करना चाहिए तथा उन्हें इस प्रकार के दंड से स्वयं विधि के इस सम्मान की जड़ नहीं काटना चाहिए। ऐसे दंड से उसका उद्देश्य ही नष्ट हो जाता है और प्रायः ऐसा प्रभाव उत्पन्न करते हैं जो कदाचित अभिप्रेत (इंटेंडेड) वस्तु से विपरीत पड़ता है।"

(१०) रामालिंगैय्या—ए० आई० आर० १९४२ मद्रास ७२३ में मद्रास उच्च न्यायालय ने यह व्यवस्था की कि जिस अवस्था में विधि विकल्पतः अर्थ दंड की अनुमति देता हो उसमें, यदि देखा जाय कि अपराध के अनुकूल दंड नहीं हो पाया है, तो कारावास के दंड देने की नितांत आवश्यकता नहीं है।

(११) मु० नन्हीं गोंड वि० सम्राट ए० आई० आर० १९२७ नागपुर २२१ एक ऐसा वाद था जो पहले का सिद्धदोष (कन्विक्ट) था; उसको केवल २) की वस्तु चुराने के कारण तीन वर्ष का कठोर कारावास दिया गया था। उक्त सजा को घटाकर तीन मास का कठोर कारावास करते हुए, अपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा ५६५ के अधीन आदेश के सहित, नागपुर के विद्वान जुडिशियल कमिश्नर ने ये विचार व्यक्त किए:—

"प्रतिदंड (रिट्रिब्यूटिव) रूप में क्षति पहुँचाना, चाहे व्यक्ति या समाज हो, यह स्वतः एक अपराध है। दंड स्वतः ही पाप है। उचित केवल इसलिए है कि वह अधिक बुराई का विरोध करता है अर्थात् अपराधी को अपराध की पुनरावृत्ति से तथा दूसरों को, उसके उदाहरण से, अपराध करने से निवारण करता है। प्रत्येक दशा में यह अल्पतम होना चाहिए जो इन दोनों प्रभावों को उत्पन्न करे।'

(१२) आनंद पाढ़ी वि० सम्राट—ए० आई० आर० १९३१ पटना ३४२ यह ऐसा वाद था जिसमें एक कानिस्टिबिल को उसके कर्तव्यपालन में, अभियुक्तों ने धक्का दिया और उसकी पगड़ी फेंक दी, इस अपराध के लिये प्रत्येक अभियुक्त को तीन तीन महीने का कठोर कारावास दिया गया। पुनर्निरीक्षण में पटना उच्च न्यायालय के विद्वान मुख्य विचारपति ने निर्णय किया —

"मेरे विचार से शांति भंग, चाहे इसमें जनाधिकारी (पब्लिक आफिसर) पर हल्के प्रकार का आक्रमण ही क्यों न सन्निहित हो, जब तक इसमें अपराधिकता (क्रिमिनैलिटी) का कोई तत्व न हो, साधरणतया कारावास के दंड से दंडित नहीं किया जाना चाहिए।

जहाँ तक संभव हो कारावासों को अपराध न केवल प्राविधिक (टेकनिकल) प्रत्युत आपराधिक स्वरूप के करनेवाले व्यक्तियों के भरने के लिये रखे जाँय। मेरा यह कहना नहीं है कि जो काम इन प्रार्थियों ने किया है वह प्राविधिक प्रकार का है। यह विशिष्ट अपराध है जिसके लिये उनको विशिष्ट दंड अवश्य देना होगा, पर मैं नहीं सोचता कि कारावास दंड उपयुक्त है।"

कारावास के बदले १००) अर्थ दंड प्रत्येक अभियुक्त को दिया गया।

(१३) उसी न्यायालय के एक विभागीय न्यायासन ने जयनारायण साह वि० सम्राट-ए० आई० आर० १९४४ पटना १६ न्यायालयों को अपराध के अनुपात से दंड देने के लिये विशेष रूप में सावधान रहने के लिये आदिष्ट (इन्जायंड) किया और प्रतिशोधात्मक (विंडिक्टिव) प्रतीत होनेवाले दंड के लिये उनको चेतावनी दी।

(१४) ये सब निर्णय हलकी सजाओं और संयताचार के पालन के पक्ष के हैं।

(१५) ऐसे भी निर्णय हैं जिनसे कड़े और प्रतिरोधी (डिटरेंट) दंड देने को प्रोत्साहन मिलता है पर जिस सिद्धांत पर वे चले हैं उनका देखना शिक्षाप्रद होगा।

(१६) उपर्युक्त से परिणाम स्वरूप जो सिद्धांत निकलते हैं उनका अब संक्षेपीकरण होना चाहिए। दंड का युग्म उद्देश्य है अपराध करनेवाले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्ति को उसकी पुनरावृत्ति करने से तथा दूसरों को वैसे अपराध करने से निवारण करना। अपराधी को दंड अल्पतम देना चाहिए जिससे ये दोनों उद्देश्य पूरे हों। दंड का मान निर्णय करते समय न्यायालय को दंड के स्वरूप, परिस्थिति जिसके अधीन वह किया गया, विमर्श (डेलिब्रेशन) की मात्रा भी जो अपराधी ने दिखाया हो, उसकी अवस्था, स्वभाव तथा पूर्व चरित्र (एंटीसीडेंट्स) को विचारांतर्गत लेना चाहिए

(१७) किसी विशिष्ट अपराध का किसी विशिष्ट क्षेत्र में किसी विशिष्ट समय के बीच प्रचलित रहना भी ध्यान में रखा जाय। किसी के राजनैतिक, भावुक अथवा धार्मिक पूर्व धारणाओं की कड़ाई से उपेक्षा करनी चाहिए। न्यायालय को अपराध और दंड के अनुपात की आवश्यकता को ध्यान में रखना चाहिए। किसी अपराध के लिए जो महत्तम दंड है वह निकृष्टतम दशाओं के लिये है।

कोई दंड प्रतिशोधात्मक कभी भी प्रतीत नहीं होना चाहिए। अत्यधिक दंड अपना उद्देश्य गँवा देता है और विधि के सम्मान का और भी जड़ काट देता है। जेल उनके लिए रख छोड़े जाँय जो आपराधिक कर्म करें, न केवल प्राविधिक ढंग के वरन् आपराधिक ढंग के। यदि विधि विकल्पतः अर्थ दंड की अनुमति देता हो तो कारावास के दंड की आवश्यकता नहीं है जब तक अपराध की गुरुता और अपराधी के पूर्व चरित्र उसकी अपेक्षा न करें।

प्रथम तथा नवयुवक अपराधियों के साथ नर्मी का व्यवहार हो। प्रथम अपराधी परिवीक्षा अधिनियम अथवा धारा ५६२ आ० प्र० संहिता के उपबंधों के प्रयोग के समय न्यायालय के लिये उत्तम होगा कि वह उदारता (लिब्रेलिटी) की ओर दृष्टि करे। इसके विरुद्ध ऐसा व्यक्ति जो अपराध में जीवन यापन करता हो अथवा जो अपने पूर्व दोष सिद्धियों से शिक्षा ग्रहण नहीं करता उन्हें कठोर दंड देना चाहिए।

जब अपराध विमर्श (डेलिब्रेशन) और पूर्व योजना का परिणाम हो, किसी निरपराध को हानि पहुँचा कर अपने वैयाक्तिक लाभ के लिये किया गया हो, समाज की सुरक्षा, स्वास्थ और नैतिक हित के लिये अभिशाप (मिनेस) हो और पहचानने और पता लगाने में कठिन हो तो प्रतिरोधक (डिटरेंट) दंड सर्वथा उचित है। उन कर्मों से भिन्न जिन्हें सार्वभौम रूप में अपराध माना गया है, ऐसा कर्म जो अभी ही अपराध हुआ है अथवा जो देश या राज्य में अन्यत्र अवैध नहीं है अथवा तत्वतः जिसका स्वरूप आपराधिक नहीं है, हठी (पर सिस्टेंट) अपराधी की दशा के सिवाय, उदारता के पात्र हैं।

(१८) अब मैं उस प्रश्न पर जाता हूँ कि प्रस्तुत वाद जैसी दशा में जिसमें गोहत्या की गई है क्या उचित दंड होगा। इस प्रश्न का परीक्षण न्यायिक अनासक्ति (डिटैचमेंट) और समस्त भावुकता का परित्याग करके करना होगा। यतः न तो मैजिस्ट्रेट और न शेशन जज ने कारण के संबंध में एक शब्द लिखा है जिससे जाना जा सके कि उन्होंने किस कारण ऐसा कठोर दंड दिया। अभिलेख से विदित नहीं होता कि प्रार्थी पहले के सिद्धदोष हैं अथवा हठी गोहत्यारे हैं। जो परिणाम संभव है वह यह है कि नीचे के न्यायालयों ने इस अपराध को बहुत गर्हित (हेनस) मानकर देखा है। तद्नुसार यह आवश्यक है कि यह देखा जाय कि कहाँ तक यह विचार उचित है। निश्चय ही यह गोहत्या निवारण अधिनियम की शब्दावली पर निर्भर करेगा क्यों कि उन्ही के परीक्षण से न्यायालय विधान की इच्छा से निर्वर्तन करने का अपना कर्तव्य पालन कर सकेगा। इस अधिनियम को पारित करने में उ० प्र० विधान मंडल की क्या इच्छा है? विधान का अनुच्छेद ४८, जो राज्य के निदेशिक (डाइरेक्टिव) सिद्धांत के अध्याय में पड़ता है, आदेश करता है:—

राज्य कृषि और पशु संवर्धन के लिये आधुनिक और वैज्ञानिक विधि से संगठन का प्रयत्न करेगा और विशेष रूप से उनकी अभिजाति (ब्रीड्स) के संरक्षण और संवर्द्धन का तथा गाय बछिया तथा दूसरे दूध देने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्य प्रकार से इसको तय कर लिया जाय। अतः लगान संविदा का प्रमुख तत्त्व नहीं है। जब केवल यही दिखलाया जाता है कि लगान में परिवर्तन किया गया और कोई भी भूमि संबंधी दूसरा परिवर्तन नहीं हुआ तब न तो पुराना भूधारण (टेनेंसी) समाप्त हुआ न नया आरंभ।

जब प्रतिवादी वादी के पिता के समय से ही भूमि के धारण में चले आ रहे हैं और १३५६ फ० में भी धारण में थे तो वे अधिवासी हो गए और उनका अविनिष्कासन नहीं हो सकता।

ये दोनों द्वितीय पुनरावेदन असफल होते हैं और उत्सर्जित किए जाते हैं।

——

विधि पत्रिका (१८८०) १६५८ इला० (राजस्व) २५

(राजस्व मंडल)

रसौली, प्रतापगढ़।

फ़ैजाबाद मंडल के अतिरिक्त आयुक्त के आदेश दिनांक २४ मई १६५७ के विरुद्ध द्वितीय पुनरावेदन (प्रार्थनापत्र सं० ३७ (२२) १६५६-५७)

२० दिसंबर १६५७

बसावन — पुनरावेदक

वि०

कदीर वख्श शेख — उत्तरवादी

अ-उ०प्र० ज० वि० तथा भूमिसुधार अधिनियम, १, १६५१ धा० २३२ (मई सन् १६५६ में संशोधित) —मई १६५६ के संशोधन के पहले ही धा० २३२ के अंतर्गत प्रार्थनापत्र का निर्णय हो गया किंतु जब अतिरिक्त आयुक्त का निर्णय संशोधन के लागू होने के बाद हुआ तो द्वितीय पुनरावेदन ठीक है।

ब-उ०प्र० ज० वि० तथा भूमिसुधार अधिनियम १ १६५१ धा० २३२, २०—व्याख्या १—तथा धा० २३२ के अंतर्गत प्रार्थनापत्र की संधार्यता (मेनटेनेबिलिटी) ३०-६-१६४८ के पश्चात् अविनिष्कासन के प्रमाण की आवश्यकता।

स—उ० प्र० जमींदारी विनाश तथा भूमिसुधार-अधिनियम १, १६५१—धा० २३२—धा० २३२ के अंतर्गत प्रार्थनापत्र में यदि यह स्पष्ट रूप में नहीं कहा गया है कि बलात् अविनिष्कासन (फोर्सिबुल डिसपोजेशन) किया गया तो प्रार्थनापत्र उत्सर्जित कर देने योग्य है।

न्यायिक सदस्य, एस० एन० मित्रा—

बसावन ने २०।२३२ के अंतर्गत प्रार्थनापत्र निवेशित किया कि १३५६ फ० में मैं भूमि का अभिलिखित अध्यासी था और विपक्षियों ने हमारा अविनिष्कासन कर दिया है इसलिए धारण पुनर्स्थापित किया जाय।

कदीरबख्श ने इसका विरोध किया कि प्रार्थी अधिवासी नहीं है अतः उसका धारण पुनर्स्थापित नहीं हो सकता और दूसरे न्यायालय को मुकदमे की सुनवाई का अधिक्षेत्र नहीं है।

अन्वीक्षा न्यायालय ने प्रार्थी के पक्ष में निर्णय दिया कि वह अधिवासी है और उसके धारण का पुनर्स्थापन किया जाय। पुनरावेदन पर विद्वान् अतिरिक्त आयुक्त ने यह आदेश निराकृत कर दिया और पुनरावेदन स्वीकार किया।

यहाँ पुनरावेदक के विद्वान वकील का कथन है कि:—

१—जब अतिरिक्त आयुक्त ने पुनरावेदन का निर्णय दिया तो १६५६ का संशोधन लागू हो चुका था इसलिए द्वितीय पुनरावेदन निवेशित हो सकता है।

२—शिवधारी वि० शिवराम १६५७ आर० डी० ४६ में निर्णय अवश्य हुआ था कि जो व्यक्ति धा० २३२ में धारण का पुनर्स्थापन चाहता है उसे दिखलाना चाहिए कि वह १३५६ फ० में अभिलिखित अध्यासी था तथा दिनांक ३०-६ १६४८ को धारण में भी था। किंतु विद्वान वकील ने नौनिहाल वि० बाजी १६५७ आर० डी० २०८ का अभिदेश दिया कि धारण के पुनर्स्थापन के लिये १३५६ फ० में अभिलिखित अध्यासी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होना चाहिए और इसके आगे यह प्रमाण आवश्यक नहीं है कि वह १३५६ फ० में धारणा में भी हो। अतः पुनरावेदक का कहना है कि निम्न पुनरावेदन न्यायालय का निर्णय कि ३०-६ १९४८ को धारण न रहने से प्रार्थनापत्र में बल नहीं है, ठीक नहीं है।

३—अतिरिक्त आयुक्त ने निर्णय दिया था कि प्रार्थी ने कहीं यह नहीं दिखलाया कि उसकी धारणच्युति बलात् हुई है—इसके लिये पुनरावेदक कहना का है कि प्रार्थनापत्र के अनुच्छेद ३ में कहा गया है कि…"कब्जा हट गया"। इसका तात्पर्य हुआ कि कब्जा बलात् हट गया। और इस विषय पर विद्वान अतिरिक्त आयुक्त का विरुद्ध निर्णय देना ठीक नहीं था।

विपक्षी के विद्वान वकील का कहना है कि:—

१—अन्वीक्षा न्यायालय ने संशोधन के लागू होने के पहले ही निर्णय दे दिया था और इसलिए तत्पश्चात् का संशोधन इसमें लागू नहीं होता परिणामतः द्वितीय पुनरावेदन गलत है। देवनारायण वि० रामसुंदर १९५६ आर० डी० में निर्णय हुआ था कि यदि जानते हुए कि पुनरावेदन नहीं प्रस्तुत किया जा सकता पुनरावेदन निवेशित किया गया है तो पुनरावेदन को पुनरीक्षण में परिवर्तित नहीं किया जा सकता।

२—विद्वान अतिरिक्त आयुक्त ने कई रूलिंग्स के आधार पर निर्णय दिया है इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि न्यायालय को सुनवाई का अधिक्षेत्र नहीं था।

२—प्रार्थी ने प्रमाणित नहीं किया कि उसकी धारणच्युति बलात् हुई थी।

द्वितीय पुनरावेदन ठीक है कि नहीं इसका प्रश्न तो अतिरिक्त आयुक्त के निर्णय के बाद ही उठा और जब यह प्रश्न उठा तो १९५६ का संशोधन लागू हो चुका था अतः यह द्वितीय पुनरावेदन ठीक ही निवेशित हुआ है।

नौनिहाल सिंह वि० बानी की रूलिंग के अनुसार ३० जून १९४८ को धारण में होने की आवश्यकता नहीं है। इतना ही पर्याप्त है कि अधिनिष्कासन ३० जून १९४८ के पश्चात् हुआ हो इसके लिये धा० २३२ को अकेले नहीं पढ़ा जा सकता प्रत्युत इसे धा० २० की व्याख्या १ के साथ पढ़ना चाहिए।

प्रार्थनापत्र के अनुच्छेद ३ को पढ़ने से यह स्पष्ट नहीं होता कि अधिनिष्कासन बलात् हुआ है अतः विद्वान् अतिरिक्त आयुक्त का धा० २३२ के अंतर्गत प्रार्थनापत्र का उत्सर्जित करना गलत नहीं था।

द्वितीय पुनरावेदन असफल होता है तथा परिव्यय के साथ उत्सर्जित किया जाता है।

पुनरावेदन उत्सर्जित

——

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इला० (राजस्व) २६
(इलाहाबाद उच्च न्यायालय)

दयाल और श्रीवास्तव न्यायमूर्तिगण

इस माननीय न्यायालय के एकाकी न्यायाधीश के आदेश दिनांक २३ मार्च १९४९ के विरुद्ध विशेष पुनरावेदन सं० २६।१९५०।

१७ जुलाई १९५७

फय्यज मुहम्मद खाँ — पुनरावेदक

वि०

अब्दुल मुजीब खाँ तथा अन्य — उत्तरवादी

उ० प्र० जमींदारी विनाश तथा भूमि सुधार अधिनियम १, १९५१ धा० ३३६ (२) प्रयोज्यता—

न्यायमूर्ति दयाल—

यह विद्वान एकाकी न्यायाधीश के आदेश के विरुद्ध विशेष पुनरावेदन है। इस आदेश द्वारा विद्वान् न्यायाधीश ने अग्रक्रय (प्रीएम्पशन) के वाद की आज्ञप्ति का स्थिरीकरण किया था। इस पुनरावेदन में पुनरावेदक का कहना है कि जमींदारी विनाश अधिनियम की धा० ३३६ के आधार पर पुनरावेदन स्वीकार किया जाय और अग्रक्रय (प्रीएम्पशन) का वाद उत्सर्जित किया जाय।

जमींदारी विनाश अधिनियम की धारा ३३६ (२) में है—"अग्रक्रय (प्रीएम्पशन) का कोई वाद जो ऐसी संपत्ति के संबंध में किसी भी न्यायालय चाहे आरंभिक न्यायालय चाहे अपील चाहे पुनरीक्षण में चल रहा है, उत्सर्जित हो जायगा……।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तरवादी का कहना है कि धा० ३३६ (२) केवल उन्हीं वादों में लागू होगी जो आरंभिक न्यायालयों में चल रहे हों या उन अपीलों में लागू होगी जो अग्रक्रयाधिकारवाले वादों के उत्सर्जन के आदेश के विरुद्ध निवेशित की गई हों। दूसरे शब्दों में उत्तरवादी का कहना है कि धा० ३३६ (२) हमारे मुकदमे में लागू नहीं होगी क्योंकि इस अग्रक्रय वाले मुकदमे का निर्णय हमारे (वादी के) पक्ष में हुआ है। अग्रक्रय (प्रीएम्प्शन) के वाद में जब निर्णय वादी के पक्ष में हो और इस निर्णय के विरुद्ध अपील की जाय तो उत्तरवादी का कहना है कि ऐसी अपीलों में धा० ३३६ (२) लागू नहीं होती।

उत्तरवादी का यह तर्क मन में बैठता नहीं है कारण कि कोई वाद तब तक चलता हुआ समझा जाता है जब तक कि इसका अंतिम निर्वर्तन नहीं हो जाता। यहाँ यद्यपि यह सच है कि अग्रक्रयाधिकार के लिये आज्ञप्ति पारित हुई और व्यवहार न्यायालय द्वारा उसका स्थिरीकरण भी हुआ है फिर भी जो चल रहा है वह अग्रक्रयाधिकार (प्रीएम्प्शन) का ही वाद है। यह वाद जो चल रहा है वह जमींदारी विनाश तथा भूमिसुधार अधिनियम की धा० ३३६ (२) के अनुसार समाप्त हो जाना चाहिए।

अतः हम यह अपील स्वीकार करते हैं; आज्ञप्ति को निराकृत करते हैं और वादी का अग्रक्रय वाद उत्सर्जित किया जाता है। परिव्यय पक्ष सहन करेंगे।

अपील स्वीकृत

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इला० (राजस्व) २७
(उच्च न्यायालय)
न्यायमूर्ति एम० सी० देसाई

फरुखाबाद के अतिरिक्त व्यवहार न्यायाधीश श्री राजेंद्र प्रसाद जैन के व्यवहार अपील सं० १५६।१९५३ (आरंभिक वाद सं० ४०, १९४६) के निर्णय दिनांक २६ फरवरी १९५६ के विरुद्ध एस० ए० सं० ८६, १९५६।

१६ दिसंबर १९५६

द्वारिका तथा अन्य — पुनरावेदक

वि०

ज्वाला सिंह तथा अन्य — उत्तरवादीगण

अ–व्यवहार प्रक्रिया संहिता १९०८, आ० ७ नि० १०—अधिक्षेत्र—समझौते की आज्ञप्ति को धोखा के आधार पर निराकृत करनेवाला वाद यदि राजस्व न्यायालय में निवेशित किया गया है तो वाद पत्र को व्यवहार न्यायालय में लौटा देना चाहिए।

ब–उ० प्र० भू धारण अधिनियम (यू०पी० टेनेंसी ऐक्ट) १९३९, धा० २४२—वे वाद जो व्यवहार न्यायालय के अधिक्षेत्र से बाहर हैं—न्यायाधिकरण (फोरम) का निश्चय—यह सत्य है कि न्यायाधिकरण का निश्चय वादपत्र पर के अभिकथन के अनुसार किया जाता है किंतु धा० २४२ वादी को यह स्वतंत्रता नहीं देती कि वह अपने वादपत्र को इस भांति बनावे कि वास्तविक वादमूल छिप जाय।

स–व्यवहार प्रक्रिया संहिता १९०८, आ० ७नि० १०–उ०प्र० भूधारण अधिनियम धा० २४२–वास्तविक वादमूल का छिपाया जाना—यदि धा० २४२ इस सीमा तक बाधक हो जाती है कि बिना वादपत्र के पर्याप्त संशोधन के राजस्व न्यायालय उसकी सुनवाई नहीं कर सकता तो वादपत्र वापस नहीं करना चाहिए वरन् उत्सर्जित करना ही ठीक है।

न्यायमूर्ति देसाई—

अपीलकर्ता ने व्यवहार न्यायालय में एक वाद निवेशित किया कि वाद सं० ३८७।४७ के वादपत्र के कुछ अनुच्छेदों में जो बात कही गई है वह धोखा देकर कहलवा ली गई है और इसलिए उक्त वाद के समझौते की आज्ञप्ति का बंधन हम पर नहीं है तथा वह समझौता की आज्ञप्ति हमारे विरुद्ध सर्वथा प्रभावशून्य है। अपीलकर्ता का कहना है कि हमलोग कुछ भूखंडों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृषक हैं और धोखे से उस वाद में उसका अध्यर्पण (सरेंडर) कर दिया है। वाद में उनकी प्रार्थना थी कि हमारे कृषक के अधिकार को अक्षुण्ण रहने दिया जाय तथा समझौते की आज्ञप्ति का बंधन हम पर नहीं है।

विद्वान् मुंसिफ ने निर्णय दिया कि अपीलकर्ता उसके कृषक हैं और उन पर समझौते की आज्ञप्ति का बंधन नहीं है। अपील करने पर अपील के न्यायालय ने निर्णय दिया कि इसी वादमूल पर वे राजस्व न्यायालय में साहाय्य (रिलीफ) प्राप्त कर सकते थे इसलिए वाद उ० प० भूधारण अधिनियम की धा० २४२ से बाधित है और विद्वान् मुंसिफ को वाद की सुनवाई का अधिक्षेत्र नहीं था। इसके अतिरिक्त अपील के न्यायालय ने वाद के तत्व पर भी विचार किया कि अपीलकर्ता किसी भी आज्ञप्ति के अधिकारी नहीं थे।

अब इस अपील में अपीलकर्ताओं का कहना है कि यदि धा० २४२ के कारण विद्वान मुंसिफ़ को सुनवाई का अधिक्षेत्र नहीं था तो वादपत्र को राजस्व न्यायालय में लौटाने का आदेश देना चाहिए था उसके उत्सर्जन का नहीं।

यह कथन ठीक नहीं है। इस वाद में कहा गया था कि यतः पहलेवाली समझौते की आज्ञप्ति में धोखा हुआ है इसलिए उसका बंधन हम पर नहीं है। इस कथन के साथ जो वाद निवेशित होता है उसकी सुनवाई का अधिक्षेत्र राजस्व न्यायालय को नहीं है। यदि यह वाद राजस्व न्यायालय में भी निवेशित होता तो न्यायालय उसे व्यवहार न्यायालय में सुनवाई के लिये लौटा देता। मेरे विचार से नीचे के अपील के न्यायालय ने वाद का उत्सर्जन ठीक ही किया है।

उ० प्र० भूधारण अधिनियम की धा० २४२ की चौथी अनुसूची में कुछ वाद दिए गए हैं कि इनकी सुनवाई व्यवहार न्यायालय में नहीं होगी। इसके अतिरिक्त यह भी लिखा हुआ है कि उन वादमूल पर आधारित वाद जिनके साहाय्य अनुसूची के वादों द्वारा भी प्राप्त हो सकते हैं वे भी व्यवहार न्यायालय के अधिक्षेत्र के बाहर हैं।

इस प्रकाश में जब हम इस वाद की परिस्थिति को देखते हैं तो यही आता है कि तथा कथित समझौते की आज्ञप्ति के कारण इस अपीलकर्ता के उन खेतों पर के अधिकार पर बादल छा गए हैं और हो सकता है कि कृषक के अधिकार को छोड़ देने पर आगे यह प्रश्न भी उठ सकता है कि इसका उन खेतों पर कुछ अधिकार था ही नहीं। अतः इसको आवश्यकता केवल यही थी कि इस बात की घोषणा हो जाय कि वह अभी भी इन खेतों का कृषक चला आ रहा है। ऐसी घोषणा के लिये उ० प्र० भूधारण अधिनियम की धा० ५९ में विधान है। यह धारा ५९ धा० २४२ की चतुर्थ अनुसूची में दी गई धाराओं में से एक है। ऐसी घोषणा न माँग कर वादमूल को थोड़ा बदलकर जो यह माँग की गई है कि किसी पहलेवाली आज्ञप्ति का बंधन हम पर नहीं है उससे व्यवहार न्यायालय का अधिक्षेत्र समाप्त हो जाता है।

ऐसे वादों के लिये न्यायालय केवल दो ही उपाय काम में ला सकता है। एक यह कि वादपत्र उपयुक्त न्यायालय में निवेशित करने के लिये लौटा दिया जाय या वाद उत्सर्जित कर दिया जाय। यहाँ वादपत्र इसलिए लौटाया नहीं जा सकता कि वादपत्र में जिस ढंग से बात कही गई है उसकी सुनवाई का अधिक्षेत्र राजस्व न्यायालय को तब तक नहीं है जब तक कि उसमें पर्याप्त परिवर्तन न कर दिया जाय। दूसरी ओर आ० ७ नि० १० में है कि वे ही वाद उपयुक्त न्यायालय में निवेशित करने के लिये लौटाए जा सकते हैं जिनका रूप वही हो। अतः यह वाद राजस्व न्यायालय में नहीं लौटाया जा सकता और इसके उत्सर्जन का आदेश ठीक है। यदि अपील कर्ता ने वादमूल को छिपाया न होता और सही बात व्यवहार न्यायालय में कही होती तो उसकी सुनवाई का अधिक्षेत्र राजस्व न्यायालय को होता और व्यवहार न्यायालय उसे लौटा देता। अतः अपीलकर्ता को अपनी ही गलती से हानि हुई है।

इस पर अनेक रूलिंग दी गईं परंतु उनके तथ्य ऐसे हैं कि वाद राजस्व न्यायालय में निवेशित होने चाहिए थे परंतु निवेशित हुए थे व्यवहार न्यायालय में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः वे राजस्व न्यायालय में निवेशित करने के लिए लौटा दिए गए थे। यहाँ वाद राजस्व न्यायालय में निवेशित नहीं हो सकता था अतः राजस्व न्यायालय में लौटाने का प्रश्न नहीं होता।

खुशनुद हुसेन वि० जानकी प्रसाद ए० आई० आर० १९३१ इलाहाबाद ६६४ में पृ० ६६७ पर न्यायमूर्ति सुलेमान ने इस विषय पर अपना विचार व्यक्त किया है कि :—

"एक बार जब वादपत्र ले लिया जाता है तो वादी वादपत्र के अभिकथन से बँध जाता है और जब वे अभिकथन प्रमाणित नहीं होते तो वाद उत्सर्जित हो जाना चाहिए।"

अतः मेरा विचार है कि नीचे के न्यायालय को आवश्यक नहीं था कि वादपत्र लौटा दे। अतः अपील आ० ४१ नि० ११ में उत्सर्जित की जाती है।

अपील उत्सर्जित

— —

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इला० (राजस्व) २९

(राजस्व मंडल)

ज्योति स्वरूप	—	प्रार्थी
	वि०	
जिलाधीश पीलीभीत	—	विपक्षी

कर निर्धारण प्राधिकारी पीलीभीत के आदेश दिनांक २४ जनवरी १९५५ के विरुद्ध पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र सं० १९३।१९५५।

उत्तर प्रदेश कृषि आयकर अधिनियम ३, १९४९ धा० ६ (२) (ए०), ३—वह क्षेत्रफल जो बोने के लिये तैयार किया गया है परंतु बोया नहीं गया कर निर्धारण के लिये उसकी गणना नहीं की जायगी।

यह प्रार्थनापत्र कृषि आयकर की धारा २२ के अंतर्गत पीलीभीत के कर निर्धारण प्राधिकारी के आदेश के पुनरीक्षण के लिये है। इसमें केवल दो प्रमुख बात कही गई है। पहली यह कि 'झील' का क्षेत्रफल इसमें नहीं जोड़ना चाहिए कारण कि उसमें बराबर पानी रहा है और कोई फसल नहीं बोई गई। दूसरी यह कि 'पंडारा" के क्षेत्रफल पर भी कर निर्धारण नहीं होना चाहिए क्योंकि उसमें ईख बोई नहीं गई।' 'पंडारा' उस क्षेत्र को कहते हैं जो ईख बोने के लिए तैयार कर लिया गया हो। इस पर जो कर निर्धारण किया गया था वह 'कृषि' के विस्तृत अर्थ के कारण किया गया था। 'कृषि' में खेती करने की अनेक प्रक्रियाओं को भी संमिलित समझा गया था और उसके अंतर्गत बोने के लिये खेत की तैयारी भी एक प्रक्रिया है और इसलिए इसे 'कृषि' के अंतर्गत माना गया। धारा ६ में दिया हुआ है कि किस प्रकार कृषि की आय की गणना हो। इस धारा में कृषि की आय की परिभाषा नहीं दी गई है। इस विषय पर विद्वान कृषि आयकर कमिश्नर ने जो तर्क दिया है वह मान्य नहीं है। उनका कहना है कि एक वर्ष के खेत की तैयारी का कर निर्धारण दूसरे वर्ष में जब खेत बोया जायगा और उससे आय होगी उसमें जोड़ दिया जायगा। नैनीताल के जंजीराम वि० राज्य (पुनरीक्षण प्रार्थना पत्र सं० १५० और १५१।१९२३ जिला नैनीताल) में निर्णय हुआ था कि यदि फसल बोने के लिये खेत तैयार किया गया है तो यह समझा जायगा कि उसने भूमि पर खेती की है। किंतु उसमें जो विचाराधीन प्रश्न था वह खेती की आय का प्रश्न नहीं था। पीलीभीत जिला में एक दूसरे मामले में निर्णय दिया गया था कि 'पंडारा" (वह खेत जो ईख बोने के लिये तैयार किया गया हो) के क्षेत्रफल की गणना कृषि आयकर के लिये नहीं की जायगी। हम लोग इस विचार से सहमत हैं।

अतः हम कर निर्धारण आदेश निराकृत करते हैं और पुनः कर निर्धारण के लिये इसे प्रतिप्रेषित करते हैं। पुनः कर निर्धारण करते समय 'झील' का क्षेत्रफल और "पंडारा" का क्षेत्रफल जिसमें फसल बोई नहीं गई छोड़ दी जायगी।

प्रतिप्रेषित—

— — —

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ इला० (राजस्व) ३०
(उच्च न्यायालय)

आजमगढ़ के अतिरिक्त व्यवहार न्यायाधीश के निर्णय दिनांक ११ मार्च १९५५ के विरुद्ध व्यवहार पुनरीक्षण सं० ६४८।१९५५

१० सितम्बर १९५७

मुहम्मद नबी — वादी अपीलकर्ता
वि०
रघुनाथ तथा अन्य — विपक्षीगण

उ० प्र० जमींदारी विनाश तथा भूमि सुधार अधिनियम १।१९५१, धा० ३३२ बी० (जो उ० प्र० अधिनियम २०, १९५४ द्वारा जोड़ी गई) प्रयोज्यता—संशोधन अधिनियम २०, १९५४ के आरंभ होने के पहले ही डिग्री पारित हो चुकी थी—इस स्थिति में धारा ३३२ बी० लागू नहीं होती ।

न्यायमूर्ति भार्गव -

आजमगढ़ के अतिरिक्त व्यवहार न्यायाधीश के प्रतिप्रेषण के आदेश के विरुद्ध व्यवहार प्रक्रिया संहिता की धारा ११५ के अंतर्गत पुनरीक्षण के लिये यह प्रार्थनापत्र है ।

वादी ने घोषणा और निषेधाज्ञा के लिये एक वाद निवेशित किया कि हम उस खेत के भूमिधर हैं और निषेधाज्ञा द्वारा प्रतिवादियों को मना कर दिया जाय कि वे हमारे धारण में हस्तक्षेप न करें । प्रथम न्यायालय ने मुकदमें में डिग्री दे दी कि वादी उसके भूमिधर हैं और जो प्रतिवादियों ने कहा था कि हम उसके अधिवासी हो चुके हैं उसके बारे में निर्णय हुआ कि प्रतिवादी उसके अधिवासी नहीं हैं और निषेधाज्ञा द्वारा प्रतिवादीगण मना कर दिए गए कि वे वादी के धारण में हस्तक्षेप न करें ।

अपील करने पर प्रश्न उठा कि भूमि सुधार संशोधन अधिनियम २० १९५४ के अनुसार जो धारा ३३२ बी० जोड़ दी गई उस धारा के अनुसार अधिवासी के वादपद का निर्णय करने के लिये यह मुकदमा राजस्व न्यायालय में भेज देना चाहिए था । आपत्ति थी कि व्यवहार न्यायालय अधिवासी के वादपद का निर्णय नहीं कर सकता था।

किंतु यहां आरंभिक वाद का निर्णय ३१ अक्टूबर १९५३ को हुआ था जब कि उपर्युक्त संशोधन अधिनियम १० अक्टूबर १९५४ को लागू हुआ । तात्पर्य यह कि संशोधन अधिनियम के लागू होने के पहले ही मुकदमें का निर्णय हो चुका था ।

धारा ३३२ बी० के अनुसार अधिवासी के वादपद का निर्णय करने के लिये वाद राजस्व न्यायालय में तभी भेजना चाहिए जब कि वह मुकदमा अधिनियम २०।१९५४ के लागू होने के बाद निवेशित हुआ हो या यदि पहले का निवेशित हो तो उसमें डिग्री पारित न हुई हो । यहाँ यह मुकदमा पहले का निवेशित है और उक्त संशोधन अधिनियम के लागू होने के पहले ही इसमें डिग्री पारित हो चुकी है इसलिए राजस्व न्यायालय में यह मुकदमा अधिवासी के निर्णय के लिये नहीं भेजा जाना चाहिए था । अपील के न्यायालय को इसका निर्णय करना चाहिए था और इसे राजस्व न्यायालय में भेजने के लिये प्रतिप्रेषित नहीं करना चाहिए था। अतः प्रतिप्रेषण का आदेश निराकृत किया जाता है और यह अपील के न्यायालय में लौटा दिया जाता है । अपील का न्यायालय इसे आरंभिक संख्या पर चढ़ा देगा और इसकी सुनवाई करेगा ।

यहाँ प्रार्थी के विद्वान् वकील ने मान लिया था कि वादपद के निर्णयार्थ मुकदमा राजस्व न्यायालय में भेज देना चाहिए । उनका यह मान लेना गलत था । फिर भी अधिक्षेत्र के प्रश्न पर इस प्रकार मानने और न मानने का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा । किंतु जब उन्होंने ऐसा मान लिया था तो अब इसमें परिव्यय के लिये और आदेश नहीं दिया जाता ।

प्रार्थनापत्र स्वीकृत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इला० (राजस्व) ३१

(राजस्व मंडल)

सिधौली, बाह, आगरा

आगरा मंडल के अतिरिक्त आयुक्त के आदेश दिनांक १८ मई १९५६ के विरुद्ध पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र सं० १८७।१९५५

२६ नवंबर १९५७

गौरी शंकर — प्रार्थी

वि०

रघुवीर दयाल — विपक्षी

(अ) उ० प्र० जमींदारी विनाश तथा भूमि सुधार अधिनियम १।१९५१ धा० २२० बी०, २१ (१) एच०, १५७—इनका लागू होना—असामी के अधिकार का प्रोद्भवन—

(ब) उ० प्र० जमींदारी विनाश तथा भूमि सुधार अधिनियम १।१९५१, धा० २० बी०—धा० २० में शब्द "लेना" (टेक) और "वापस करना" (रिटर्न) का तात्पर्य—

न्यायिक सदस्य श्री बी० पी० शाही—

जमींदारी विनाश तथा भूमि सुधार अधिनियम की धारा ३३३ के अंतर्गत यह पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र है। यह प्रार्थनापत्र आगरा मंडल के अतिरिक्त आयुक्त के आदेश के विरुद्ध है जिसके द्वारा उन्होंने असिस्टेंट कलक्टर प्रथम श्रेणी के निर्णय के विरुद्ध की गई अपील को उत्सर्जित कर दिया था। वादी विपक्षी ने ज० वि० तथा भूमि सुधार अधिनियम की धारा २०।२३२ के अंतर्गत प्रार्थनापत्र दिया था और असिस्टेंट कलक्टर प्रथम श्रेणी ने इसके पक्ष में निर्णय किया था। इसी निर्णय को विद्वान अतिरिक्त आयुक्त ने भी मान लिया था।

वादी ने धारा २० (बी०) के अंतर्गत अपने को अधिवासी कहा था और उसका कहना था कि प्रतिवादियों ने उसे जून १९५१ में धारण से हटा दिया था अतः धारा २०।२३२ के अंतर्गत धारण वापस दिला दिया जाय।

प्रतिवादियों का कहना था कि वादी उन खेतों का अधिवासी नहीं है वरन् धारा १५७ ई० के साथ धारा २१ (एच०) पढ़ने पर वह केवल असामी ही ठहरता है।

वादी का कहना है कि धा० २१ के आरंभ में जो शब्द प्रयुक्त हैं उनका अर्थ यह हुआ कि जो निहित होने की तिथि से ठीक पहले भूमि को धारण किए हुए हो वही २१ (एच०) में असामी हो सकते हैं और जब हम निहित दिनांक के ठीक पहले अर्थात् ३० जून १९५२ को धारण में नहीं थे तो हम असामी नहीं हुए वरन् अधिवासी हो गए।

प्रतिवादी का कहना है कि धारा २१ का इस प्रकार अर्थ लगाना गलत है। प्रतिवादी का कहना है कि धारा २० बी० में स्पष्ट दिया हुआ है कि जो व्यक्ति धा० १८ (२) में भूमिधर हो गया है या धारा २१ (एच०) में असामी हो गया है उसे अधिवासी का अधिकार नहीं प्राप्त हो सकता। प्रतिवादी का कहना है कि वादी धा० २१ (एच०) में असामी हुआ है।

ठीक इस प्रश्न पर अभी तक कोई निर्णय नहीं हुआ है। यहाँ प्रतिवादी का कहना ठीक प्रतीत होता है। यदि वादी का कहना ठीक माना जाय तो बड़ी गड़बड़ी पैदा हो सकती है जैसे—यदि कोई व्यक्ति १३५६ फ० में अभिलिखित अध्यासी है और उसका भू-स्वामी धारा १५७ में दी गई किसी अनर्हता में आता है तो धारा २१ (एच०) से साथ पढ़ने पर वह असामी होगा। किंतु वही व्यक्ति यदि ३० जून १९५२ को धारण में न रहा हो तो वह धारा १५७ का अतिलंघन करके अधिवासी हो जायगा। विधान मंडल का यह अभिप्राय नहीं रहा होगा। स्पष्टतः धारा २० बी० में "असामी" शब्द का संबंध धा० २१ (१) के प्रारंभिक शब्दों से नहीं है किंतु वहाँ यह केवल इतना ही दिखलाता है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई भूस्वामी जो धारा १५७ में दी गई किसी भी तरह अनर्हतावाला है उसका मामला जब धा० २१ (एच०) में आवे तो वह व्यक्ति "असामी" से अधिक और कुछ नहीं हो सकता। यहाँ वादी केवल "असामी" ही हुआ और वह धारा २०।२३२ में प्रार्थनापत्र देने का अधिकारी नहीं है। नीचे के न्यायालयों ने जो गलत बात समझकर वादी के पक्ष में डिग्री दे दी थी वह इस धारा के अंतर्गत अधिक्षेत्र का प्रयोग नहीं था। अतः निश्चय ही इस न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण में इस पर हस्तक्षेप किया जा सकता है।

अतः विद्वान् साथी से सहमत होकर मैं नीचे के दोनों न्यायालयों की डिग्री और उनके आदेश निराकृत करता हूँ और वादी का वाद उत्सर्जित करता हूँ।

अपील उत्सर्जित

——

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इला० (राजस्व) ३२

(राजस्व मंडल)

चौकिया, भुइली, चुनार, मिर्जापुर

बनारस गोरखपुर मंडल के आयुक्त के आदेश दिनांक २४ अगस्त १९५५ के विरुद्ध पुनरीक्षण प्रार्थना पत्र सं० ३५६।१९५६।

३० नवबंर १९५७

राज्य — प्रार्थी

वि०

अजगुत सिंह — विपक्षी

(अ) उ० प्र० कृषि आयकर अधिनियम, ३, १९४९ की धारा ४ ए०—अवैध बच्चेके पक्ष में करदाता द्वारा भूमि के हस्तांतरण करने की अवस्था में संतान (चाइल्ड) शब्द का अभिप्राय क्या होगा—ऐसी भूमि कर निर्धारण में संमिलित नहीं की जायगी।

(ब) 'विवाह' कुर्मी जाति में "धरौना" प्रथा की वैधता—

. न्यायिक सदस्य, एस० एन० मित्रा—

बनारस गोरखपुर मंडल के आयुक्त के कर निर्धारण संबंधी आदेश के विरुद्ध उत्तर प्रदेश राज्य ने यह पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र निवेशित किया है। राज्य सरकार की प्रार्थना है कि विद्वान् आयुक्त के आदेश को निराकृत कर दिया जाय और करदाता ने जो अपनी भूमि अवैध संतान काशीनाथ के पक्ष में हस्तांतरित किया है उसे भी नवीन करनिर्धारण में संमिलित कर लेने की आज्ञा दी जाय।

सरकार की ओर से कहा गया है कि अवैध संतान भी 'संतान' में ही संमिलित है और इसके विरुद्धवाला विचार गलत है। यह भी कहा गया कि कुर्मी जाति में 'धरौना' प्रथा प्रचलित है और यहाँ करदाता कुर्मी जाति का है तथा काशीनाथ उसकी एक रखेली स्त्री से पैदा हुआ है। अंत में यह कहा गया कि हस्तांतरण झूठा है और इसको कार्यान्वित नहीं करना चाहिए।

विपक्ष से कहा गया कि इसमें 'संतान' शब्द का वही अर्थ लेना चाहिए जो आयकर अधिनियम में लिया जाता है। इस संबंध में ए.आई.आर. १९५०मद्रास ४८० का एक प्रमाण है जिसमें निर्णय हुआ था कि संतान का अभिप्राय वैध संतान से है न कि अवैध संतान से जबतक कि प्रसंग द्वारा यह प्रमाणित न कर दिया जाय कि इससे कोई अन्य अर्थ समझा जाता था। जो कहा गया था कि हस्तांतरण फर्जी है उसके बारे में विपक्ष से उत्तर दिया गया है कि हस्तांतरण ठीक था कारण कि इसको कार्यान्वित करके कागज में काशीनाथ का नाम भी चढ़ गया है।

हमारे भी विचार से विद्वान् आयुक्त ने "अवयस्क संतान" (माइनर चाइल्ड) का जो अर्थ लगाया है वह ठीक है और मद्रास उच्च न्यायालय की उपर्युक्त रूलिंग से भी यह मिलता जुलता है। इसके विरुद्ध कोई दूसरी रूलिंग नहीं दी गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Distract	घबरा देना, विचलित करना
Distracted	विचलित, व्यग्र
Distractedly	व्यग्रता के साथ
Distraction	व्यग्रता, व्याकुलता
Distrain	विनिग्रहण
Distrained	विनिगृहीत
Distraint	विनिग्रहण
Distress	अभिहरण
Distress warrant	अभिहरण अधिपत्र
Distribute	वितरण करना, विभाजन करना, बाँटना
Distribution	वितरण, बँटवारा, विभाजन
Distributional (distributive)	वितरणात्मक
Disturb	विक्षोभ उत्पन्न करना, बाधा उपस्थित करना, उपद्रव करना
Disturbance	उपद्रव, विक्षोभ, क्षुब्धता
Disturbant	उपद्रवी, बाधा उपस्थित करनेवाला
Disturbed	क्षुब्ध
Divert	व्यपवर्तन, फेरना, मोड़ना
Diverted	व्यपवर्तित,
Dive's cost	अकिंचन वादव्यय
Divest	वियुक्त करना, वंचित करना
Divestible	वंचित किए जाने योग्य, वियुक्ति के योग्य
Divide	विभाजन करना, बाँटना, पृथक् करना
Divided	विभाजित
Dividedly	विभाजित रूप में
Divisibility	भाज्यता
Divisible	विभाज्य
Division	विभाजन, बँटवारा
Divorce	विवाह विच्छेद
Divorcee	विच्छिन्न विवाह
Divorcement	अनुच्छेदन
Divorcer	विच्छेद करनेवाला (या वाली)
Docket	संक्षेपांकन
Doctrine of conversion	परिवर्तन सिद्धांत
,, of cypres	यथासमीप सिद्धांत
Document	लेख्य प्रलेख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Documentary	लेख्य, लेख्यबद्ध
Drastic	कड़ा, उग्र
Drastically	कठोरता से, कड़ाई से
Dying Declaration	मरण काल का वक्तव्य
Ear mark	विशेष प्रयोजन के लिए रख छोड़ना
„ marked	प्रयोजन विशिष्ट
„ witness	सुनी हुई बात का साक्ष्य देनेवाला
Earn	कमाना, उपार्जन, इच्छुक होना, उत्सुक होना
Earnest	सत्य, गंभीर, उत्सुक
Earnestly	उत्साहपूर्वक
Easement right	सुविधाधिकार
„ of necessity	आवश्यकतापूर्ति की सुविधा
Easy	सरल, सुगम, जो कठिन न हो
Effect	परिणाम, प्रभाव
Effects	परिसंपत्ति, द्रव्य, वस्तुएँ
Effect sale	बिक्री करना, बेचना
Effectible	सिद्ध करने योग्य
Effective	प्रभावोत्पादक, कार्यसाधक
Effectless	निष्प्रभाव, अर्थहीन
Effectual	फलोत्पादक
Effectivity	सफलतापूर्वक
Efficacious	फलोत्पादक, अभीष्टकारक
Efficaciousness	फलोत्पादन की शक्ति
Efficacy	गुण, प्रभाव
Efficience	फलदायक प्रभाव
Efficiency	नैपुण्य, कार्यक्षमता,
Efficient	कुशल, कार्यक्षम, निपुण, दक्ष
Effort	प्रयत्न, प्रयास,
Ejected	निष्कासित, निकाला हुआ
Ejection	निष्कासन की क्रिया
Ejective	हटानेवाली
Ejectment	निष्कासन, अधिकार च्युत करना
Ejector	निष्कासक
Election	निर्वाचन
Electoral	निर्वाचक, निर्वाचकीय
Electorate	निर्वाचक समुदाय, निर्वाचकगण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Eligibility	ग्राह्यता, पात्रता, योग्यता
Eligible	ग्राह्य, निर्वाच्य, नियोज्य, चुने जाने योग्य
Eligibly	ग्राह्यता से
Embarrass	संकट में डालना, आकुल करना, उलझन में डालना
Embarrassed	संकट में पड़ा हुआ, व्याकुल
Embarrassing	संकट में डालनेवाला, आकुल करनेवाला
Embarrassment	उलझन, घबराहट, व्याकुलता, व्यग्रता क्लेश, आर्थिक संकट
Embarrassingly	व्यग्रता से, आकुलता से
Embassy of India	भारतीय दूतावास
Embracery	कुलोभन
Emphasize	बल देना
Emphatically	बल देकर, बलपूर्वक
Employ	नियुक्त करना,
Employment	नौकरी
Employed	नियुक्त, नौकर रखा हुआ
Employee	नियुक्त व्यक्ति, नौकर
Employer	स्वामी, सेवा नियुक्त करनेवाला
Employment	नौकरी, व्यापार
Enact	अधिनियम बनाना, अधिनियमित करना
Enacting	अधिनियम संबंधी, शासनीय
Enactive	अधिनियमवाला, शासन व्यवस्था करनेवाला
Encroach	अतिक्रमण करना, बिना अनुमति के प्रवेश करना
Encroacher	अतिक्रमणकारी, बिना अनुमति के प्रवेश करनेवाला
Encroachment	पराई संपत्ति पर अधिकार करना
Encumber	भारग्रस्त करना, बोझ डालना
Encumbered	भारग्रस्त, भाररुद्ध
Encumbered Estates Act	भारग्रस्त संपदा अधिनियम
Encumberment	भार, बोझ
Encumberance	भार, बोझ
Endorse	पृष्ठांकन, लेख के पृष्ठ भाग पर हस्ताक्षर करना
Endorsee	पृष्ठांकिनी, जिसको हुंडी लिखी जाय
Endorsement	पृष्ठांकना
Endorser	पृष्ठांकन करनेवाला
Enemy	शत्रु, प्रतिपक्षी, वैरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Enforce	प्रभाव में आना, प्रवर्तित होना, प्रवर्तन
Enforceabilty	प्रवर्त्यता
Enforceable	प्रवर्त्य, प्रवर्तनीय
Enforcement	प्रवर्तन, पालन
Engage	लगाना, लगना, अभियोजन
Engaged	बचनबद्ध, रत, लगाया हुआ
Engagement	नियुक्ति, सगाई, बचन बंधन
Enhance	मूल्यवर्धन, बढ़ाना, अतिशयोक्ति करना
Enhanced	वर्धित, बढ़ाया हुआ
Enhancement	वर्धन, बढ़ती, बढ़ाना
Enjoin	आज्ञा देना, आदिष्ट करना
Fnjoy	उपभोग करना
Enjoyed	उपमुक्त
Enjoyment	उपभोग
Enjoyment of right	अधिकार का उपयोग
Enjoy benefit of	हित का उपभोग करना
Enlist	भर्ती करना
Enmity	शत्रुता, वैरत्व, विरोध
Enormous	अति, बृहत्, विपुल, भीषण
Enquiry	जाँच, पूछताछ
Enrage	क्रोध दिलाना
Enraged	क्रुद्ध, कुपित
Enragement	क्रुद्ध, कोपावस्था
Enrole (Enroll)	अभिलेखबद्ध करना, सूची में लिखना, भरती करना
Enroller	भरती करनेवाला, सूची में लिखनेवाला
Enrolment	पंजीबद्धकरण, नामांकन, भरती करना
Entail	क्रम निर्देशन,
Entailed	निर्दिष्ट क्रम
Enterprise	उद्यम, उपक्रम
Entertain	ग्रहण करना, लेना
Entertainment	ग्रहण लेना, रखना
Enter up	प्रवेशन
Entice	प्रलोभन देना, फुसलाना,
Enticeable	प्रलोभित करने योग्य, फुसलाने योग्य
Enticement	प्रलोभन, फुसलाना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Entire	संपूर्ण, अखंड, पूरा
Entirely	अशेष रूप से, पूर्ण रूप से
Entrap	जाल में फँसाना
Entry	प्रविष्टि, प्रवेश, प्रवेशाधिकार
Enumerate	क्रमानुसार गणना
Enumerated	प्रगणित, अंकित
Enumeration	प्रगणना गिनती
Enumerative	निर्देशनीय, गणनीय
Enumerator	गिनती करनेवाला, गणक, निर्देशक
Equal	समान, सम, तुल्य, सदृश
Equality	समता, समानता
Equalize	समकरण, समान बनाना
Equally	समान रूप से, समता के साथ
Equalness	तुल्यता, साम्य, समता
Equalizing	समकारी, तुल्यता लानेवाला
Equanimity	चित्त की स्थिरता
Equanimous	स्थिर स्वभाववाला, स्थिर चित्तवृत्ति
Equanimously	स्थिर चित्तवृत्ति रूप से
Equitable	न्याय्य, साम्य पूर्ण, निष्पक्ष, ठीक
Equitably	साम्यतः, न्यायतः
Equity	साम्य न्याय
Err	भूल करना, विभ्रमण, अशुद्धि करना
Errable	भूल करने योग्य
Erroneous	भ्रांतिमूलक, अशुद्ध
Erroneously	अशुद्धता से, भूलयुक्त
Erstwhile	पूर्व का, पहले का
Escape	विपलायन, भाग जाना
Escaped	विपलायित, बच निकला हुआ
Escheat	प्रत्यावर्तन, उत्तराधिकारी के न होने से राज्यसात् संपत्ति
Essence	सार, सारवस्तु, सत्व,
Essential	आवश्यक, सारभूत, अत्यावश्यक
Essentiality	सारत्व, सारभूतत्व,
Essentially	सारतः, आवश्यक रूप से,
Establish	स्थापित करना, स्थिर करना, स्थापना करना, दृढ़ करना, सिद्ध करना
Established	स्थापित किया हुआ, सिद्ध किया हुआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Establisher	स्थापक, स्थापित करनेवाला, सिद्ध करनेवाला
Establishing	सिद्ध करनेवाला
Establishment	प्रतिष्ठापन, संस्थापन, स्थापन,
Estate.	संपदा, अचल संपत्ति, भूमिसंपत्ति
Estimable	मूल्यांकन करने योग्य
Estimably	मूल्यांकन के रूप में
Estimate	मूल्यांकन करना, अनुमान लगाना
Estimated	आगणित, अनुमानित, आँकी हुई
Estimation	आगणन, अनुमान
Estimative	आगणन योग्य, अनुमान के योग्य
Estimator	आगणक, अनुमान कर्ता
Estop	रोकना, प्रतिष्टंभ करना
Estoppage	रुकावट डालने का कार्य
Estopped	स्तंभित
Estoppel	गत्यवरोध, स्तंभन, प्रतिरोध
Evacuate	निष्क्रमण, छोड़ना, रिक्तकरण
Evacuation	परित्याग, रिक्तकरण, शून्यन
Evacuative	परित्याग करने योग्य, रिक्तकरण योग्य
Evacuator	परित्याग करनेवाला
Evacuee	शरणार्थी, निष्क्रांत
Evade	टालमटोल करना, अपवंचन
Evading	टालमटोल करना
Evasion	टाल मटोल, छल करना, कपट, वंचन
Evasive	कपटी, कुटिल, टालनेवाला
Evasively	वक्रोक्ति से
Evasiveness	वक्रोक्ति, कपटता, कुटिलता
Event	घटना, परिणाम, फल
Eventful	घटनापूर्ण
Eventless	घटना रहित, असंगत
Euentuality	संभावी घटना से सावधानी
Eventually	अंततः, अंत में
Eventuate	घटित होना, परिणाम होना
Evict	अधिनिष्कासन, विधितः हटाना
Eviction	अधिनिष्कासन, बहिष्करण
Evictor	निष्कासक, हटानेवाला
Evidence	प्रमाण साक्ष्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Evident	प्रत्यक्ष, स्पष्ट, प्रगट
Evidential	प्रमाण कारक
Evidentiary	प्रमाणकारी, सिद्ध करने योग्य.
Evidentially	प्रमाण के रूप में
Evidently	स्पष्टतः, प्रत्यक्ष रूपेण
Evil	दुष्ट, पाप पूर्ण, निंदित, हानिकर
Evil minded	पाप बुद्धि, दुष्टाचारी
Excepted	वर्जित, छोड़ा हुआ, पृथक् किया हुआ
Excepting	के अतिरिक्त, बिना, को छोड़कर
Exceptio confirm at regulum (exception proves the rule)	अपवाद से नियम सिद्ध होता है
Exception	अपवाद, छूट
Exceptionable	अपवाद योग्य, आक्षेप करने योग्य
Exceptionably	अपवाद रूप में, आक्षेप रूप में
Exceptional	असाधारण, विशेष, अनोखा
Exceptionally	असाधारण रूप से, अलौकिक रूप से
Exceptive	अपवाद स्वरूप
Exceptless	अपवाद रहित
Excess	अतिशय; अधिक; अतिरेक,
Excessive	अतिशय, अत्यधिक, सीमा के बाहर
Excessively	विशेष रूप से; अत्यधिक रूप से
Excessiveness	आधिक्य
Exchange	विनमय, आपस में अदल बदल करना
Exchangeability	विनिमेयता,
Exchangeable	अदल बदल करके योग्य, विनिमय के योग्य
Exchanger	विनिमायक, बदलनेवाला
Exchequer	राज्य कर विभाग, राज्य कोष
Exciseable	कर लगने योग्य, करारोप्य
Excise	कर विभाग, उच्छुल्क विभाग
Excise duty	उत्पादन शुल्क, अंतः शुल्क, मादक द्रव्य कर
Exclude	अपवर्जित करना, पृथक् करना, अवरोध
Excluded	अपवर्जित
Excluding	अपवर्जन, छोड़कर
Exclusion	अपवर्जन, निषेध, निस्सारण, बहिष्करण, अपनयन
Exclusioniost	अपवर्जनकर्ता, बहिष्करणकर्ता
Exclusive	अनन्य, अपवर्जी, केवल, एकमात्र, संपूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Exclusiveness	पृथकत्व, अपवर्जिता
Excusable	क्षमा करने योग्य, क्षम्य
Excuseably	क्षमा प्रार्थना करते हुए
Excusal	बहाना
Excusatory	क्षमाशील, क्षमा संबंधी
Excuse	क्षमा याचन, क्षमा माँगना, बहाना
Excuseless	अक्षंतव्य, निरुत्तर
Excusive	क्षमा के योग्य
Exdelicto	अपराध के कारण
Exdono	उपहार के रूप में
Executable	निष्पाद्य, निष्पादन करने योग्य
Executant	निष्पादक, संपादन करनेवाला
Execute	निष्पादन करना, कार्य संपादन करना, फाँसी देना
Executed	निष्पादित
Executer	संपादक, निष्पादक,
Execution	कार्य संपादन, निष्पादन, न्यायालय की आज्ञा, प्राण दंड
Executive	कार्यचालक निष्पादक, संपादन करनेवाला, प्रबंधक, नियम प्रवर्तक
Executively	प्रबंध रूप से
Executor	संपादन कर्ता, रिक्थ साधक, निर्वर्तक, इच्छापत्र प्रवर्तक
Executor de son tort	अनधिकारी निष्पादक
Executorial	निष्पादन संबंधी
Executorship	निष्पादकता
Executory	निष्पाद्य
Executrix	निष्पादिका
Exemplary	निदर्शनात्मक, शिक्षात्मक
Exemplification	प्रमाणित प्रति, उदाहरण स्वरूप
Exemplifiable	उदाहरण में लेने योग्य
Exemplify	उदाहरण देना, यथार्थ प्रतिलिपि बनाना
Exempt	मुक्त, अपवाद बनाना, छोड़ देना, मुक्त करना
Exemption	मुक्ति, छूट, मोक्ष, मोचन, छुटकारा
Exercise	अभ्यास, प्रयोग
Exert	प्रयत्न करना, उद्योग करना, प्रयास करना
Exertion	प्रयास, उद्यम, चेष्टा, यत्न, प्रयत्न, परिश्रम
Exertive	प्रयत्न करता हुआ, प्रयास करता हुआ
Exhaust	उत्स्रावण, निश्शेषण, रिक्त करना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी

विधि पत्रिका

वर्ष २] ज्येष्ठ (सौर) सं० २०१५ : शक १८८० : मई-जून १९५८ [अंक ७

विधिविषयक लेखों, केंद्रीय-राज्य अधिनियमों आदि से युक्त, इलाहाबाद तथा भारत के अन्य उच्च न्यायालयों के महत्वपूर्ण अँगरेजी निर्णयों का हिंदी रूपांतर तथा विवरण प्रकाशित करनेवाली हिंदी जगत् की एकमात्र मासिक पत्रिका

विषय सूची

ाद तालिका	१	इलाहाबाद उच्चन्यायालय	६५–११०
ख खंड	१–३	,, (राजस्व)	३३–४०
धिनियम खंड	६–१०	विधिक अंग्रेजी-हिंदी-शब्दसंग्रह	१०७–११४
ोच्च न्यायालय	४५–५२		

वार्षिक शुल्क १०) एक-प्रति का १)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परामर्शदातृ समिति

(१) श्री कमलाकांत वर्मा, भूतपूर्व मुख्य न्यायाधिपति, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद
(२) श्री बलराम उपाध्याय, न्यायाधीश, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद।
(३) श्री कन्हैयालाल मिश्र, महाधिवक्ता, उतर प्रदेश, इलाहाबाद।
(४) श्री गोपालचंद्र सिंह, विशेष अधिकारी, सचिवालय, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ।
(५) श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प्राध्यापक, हिंदी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय।

संपादक मंडल

(१) श्री गिरिजाभूषण जोशी, आचार्य ला कालेज, काशी हिंदू विश्वविद्यालय
(२) श्री व्रजरत्नदास, वकील, वाराणसी।
(३) श्री प्रतापनारायण सिंह, राजकीय अधिवक्ता, वाराणसी।
(४) श्री गौरीनंदन उपाध्याय, ऐडवोकेट, वाराणसी।
(५) श्री देवीनारायण, ऐडवोकेट, वाराणसी।
(६) श्री कैलासपति त्रिपाठी, ऐडवोकेट, वाराणसी।
(७) श्री गोपीकृष्ण, बार-ऐट-ला, वाराणसी।
(८) श्री चतुर्भुजदास पारिख, ऐडवोकेट, वाराणसी।
(९) श्री राघवराम वर्मा, वकील, वाराणसी।
(१०) चौधरी शुकदेव सिंह, वकील, वाराणसी।
(११) श्री मोतीलाल बापुली, ऐडवोकेट, वाराणसी।

श्री चंद्रभूषण मिश्र, ऐडवोकेट }
श्री रामसुरत सिंह, ऐडवोकेट } प्रतिवेदक, इलाहाबाद

संपादक (संयोजक)—सिद्धनाथ सिंह बी० ए०, एल-एल० बी०, वकील
सहायक संपादक—पारसनाथ सिंह बी० ए०, एल-एल० बी०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि पत्रिका मई-जून १९५८

(शक १८८०)

वाद तालिका

१—आर० एस० दिवाकर वि० राज्य	इला० उच्च न्या०	१०५
२—उ० प्र० राज्य वि० सी० तोबित	सर्वो० न्या०	५२
३—उमराव सिंह वि० राघो	इला० (राजस्व)	३९
४—गनी वि० राज्य	इला० उ० न्या०	१०२
५—चिरंजी लाल वि० बिहारी	,, ,, ,,	१०६
६—डोरेलाल वि० श्रीमती भगवती	इला० (राजस्व)	४०
७—धरम सिंह वि० जिलाधीश	,, ,,	३४
८—नंदकिशोर राय वि० मु० भागी कुँवर	इला० उ० न्या०	१०९
९—नानकचंद मेहरोत्रा वि० राजस्व मंडल	इला० उ० न्या०	१०३
१०—पुचू वि० तिलक	इला० (राजस्व)	३७
११—बाई हीरा देवी वि० अधिकारीय नियोजी	सर्वो० न्या०	४६
१२—बाबू हनुमानप्रसाद वि० श्रीमती इंद्रावती	इला० उ० न्या०	९९
१३—बिद्धा वि० देशराज	इला० (राजस्व)	३८
१४—बिक्रीकर अधिकारी वि० जगत् बिहारी टंडन	इला० उ० न्या०	१०५
१५—भैया कौशलेंद्र वि० राज्य	इला० (राजस्व)	३३
१६—मिट्ठन लाल वि० एस० डी० ओ०	इला० (राजस्व)	३५
१७—(लाला) पारसराम वि० श्रीमती नूरजहाँ बेगम	इला० उ० न्या०	११०
१८—विश्वनाथ साहु वि० प्रयागदीन	,, ,, ,,	९६
१९—श्रीमती शैलबाला दासी वि० श्रीमती निर्मला सुंदरी दासी	सर्वो० न्या०	४९

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि पत्रिका

[लेख खंड]

वर्ष २] ज्येष्ठ (सौर) सं० २०१५ : शक १८८० : मई-जून १९५८ [अंक ७

संपादकीय

न्याय का महत्व समाज के कारण है। व्यक्ति ने अपने जीवन को शांतिमय एवं सुखमय बनाने के लिये समाज की स्थापना की और समाज के संचालन के लिये न्याय की आवश्यकता पड़ी। किसी पाषाण काल में जब मनुष्य अकेले रहता था तो कदाचित् उसे ऐसे न्याय की आवश्यकता नहीं थी, जब उसने अपना छोटा समाज बनाया तो उसे थोड़े न्याय की आवश्यकता पड़ी और आज जब उसका समाज इतना विशाल हो गया है तो पग पग पर उसे न्याय की आवश्यकता पड़ती है। पहले यही काम धर्म करता था अब यह न्याय करता है। धर्म का संबंध हृदय की भावना से था, न्याय का काम एक मशीन के समान है। पहले के धर्म और आज के न्याय ने यों तो मानव जीवन की एकता और उसके स्वरूप को बहुत सुंदर बनाया है और कह सकते हैं कि एकमात्र इन्हीं दो आधारों पर अनंतकालीन मानव अर्जित संपदा आज तक टिकी भी है किंतु इतना बड़ा काम करते हुए भी हमें इसको बदलने की आवश्यकता है। जैसे अशोक एक महान् सम्राट थे और उनकी महानता को हम दो हजार वर्ष के बाद भी स्वीकार करते हैं, अशोक चक्र को हम राष्ट्रीय प्रतीक मानते हैं और कह सकते हैं कि अशोक ने भारत के गौरव को जिस सीमा तक बढ़ाया और मनुष्यमात्र के जीवन में जो आदर्श स्थापित किया वह काम कोई भी प्रजातंत्र राज्य नहीं कर सकता। किंतु अशोक की उस साम्राज्यवादी परंपरा को कोई भी व्यक्ति भारत में पनपने का अवसर नहीं दे सकता। आज का हमारा प्रजातंत्र अशोक के राज्य से अच्छा नहीं है क्योंकि यदि अच्छा होता तो हम उसे आदर्श क्यों मानते? फिर भी हम साम्राज्यवाद की स्थापना नहीं कर सकते क्योंकि यदि साम्राज्यवाद में एकाध अशोक हुए तो दस बीस औरंगजेब भी हो सकते हैं। प्रजातंत्र भले खराब हो किंतु किसी भी दशा में यह बुराई साम्राज्यवाद की बुराई से कम ही होगी।

उसी प्रकार यद्यपि धर्म और न्याय के ऋण से हम कभी उऋण नहीं हो सकते किंतु उनके आधारभूत परंपरा से जो अत्याचार के अंकुर निकले और जो आज तक बराबर बढ़ते ही चले गए वे हमें बाध्य करते हैं कि हमें चाहिए कि अशोक के समान उनका संमान करते हुए उस परंपरा को ही बदल दें जिससे हमें अपने उद्देश्य की प्राप्ति में सफलता हो।

व्यक्ति के हित के लिये समाज बना। दूसरे शब्दों में व्यक्ति का हित साध्य होना चाहिए और समाज उसका साधन। न्याय का साध्य है सामाजिक सौष्ठव। जब तक न्याय समाज के माध्यम से व्यक्ति के हित की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बात सोचता रहा तब तक कोई गड़बड़ी न थी किंतु ज्योंही न्याय व्यक्ति को छोड़कर केवल समाज के हित की बात सोचने लगा तभी से गड़बड़ी आरंभ हुई। दंड संहिता के आधार पर भूख से मरणासन्न व्यक्ति यदि एक मुट्ठी चावल चुरा लेता है तो उसे दंड दिया जाता है किंतु ऐसे व्यक्ति को एक करोड़पति यदि एक मुट्ठी चावल नहीं देता तो उसके लिये कोई दंड विधान नहीं है। न्याय इसलिए उस व्यक्ति को अनुमति नहीं देता कि यदि वह उस धनी से साधिकार चावल माँगने लगे तो इससे समाज की शांति व्यवस्था पर आघात पहुँचेगा। समाज को दृढ़ बनाने के लिये उस व्यक्ति की हत्या की जाती है। कितनी उलटी बात है? व्यक्ति पहले आया और समाज बाद में; व्यक्ति के लिये समाज की स्थापना की गई। यदि किसी कारण समाज का नाश भी हो जाय तो भी व्यक्ति का अस्तित्व रहेगा ही। यह बात ठीक है कि आज बिना समाज के व्यक्ति का काम नहीं चल सकता किंतु यह ठीक नहीं है कि समाज की स्थापना के लिये व्यक्ति की बलि दे दी जाय। यह ठीक है कि आज हम बिना कलम के काम नहीं कर सकते किंतु यह गलत है कि कलम की रक्षा के लिये हम अपना अस्तित्व मिटा दें। जब तक व्यक्ति का हित न्याय का उद्देश्य नहीं होगा तब तक न्याय स्वीकार्य नहीं हो सकता।

प्रसिद्ध दार्शनिक रूसो ने कहा है कि "मनुष्य अच्छा है, मनुष्य का समुदाय बुरा है" (मैन इज गुड बट मेन आर बैड)। समुदाय बुरा इसलिए है कि वह मुख्यतया अर्थप्रधान है। मुख्यतः अर्थबाहुल्य के आतंक से वह सोचता है कि अन्य मनुष्य अपने को पसंद न करके हमें पसंद करें और जब ऐसा नहीं होता तब संघर्ष होता है। संघर्ष में सत् और असत् का विचार नहीं रहता। ऐसे विपर्यय में जब न्याय इसे शांत करने आता है तो वह भी अपनी स्वाभाविकता को खो बैठता है और संघर्ष में जो बलवान हैं उन्हीं का पल्ला पकड़ लेता है, झूठे सिद्धांतों का आविर्भाव होता है और यह अनियमितता बढ़ती ही चली जाती है। उदाहरणार्थ 'स्वतंत्रता' इस युग की पवित्रतम अभिव्यक्ति है और इसकी प्राप्ति के लिये कठोर प्रयत्न किया गया है। किंतु अर्थप्रधान समाज इसके स्वरूप में वीभत्स परिवर्तन कर देता है। सबको स्वतंत्र रहना अच्छा लगता है। एक रिक्शावाला स्वतंत्र है, जिलाधीश परतंत्र। कहने के लिये तो स्वतंत्र व्यवसायी वह रिक्शावाला जब चाहे तब रिक्शा बंद करके आराम कर सकता है किंतु यदि कहीं बलवा हो जाय तो जिलाधीश को आधी रात को भी जाना पड़ेगा। किंतु कौन ऐसा महत्वाकांक्षी और स्वतंत्रता का पुजारी है जो जिलाधीश की परतंत्रता को छोड़कर रिक्शावाला जैसा स्वतंत्र जीवन बिताना चाहेगा? यदि भारत का प्रत्येक नागरिक डालमिया या बिरला जैसा होता तो निस्संदेह वह जिलाधीश की नौकरी को तिलांजलि देकर स्वतंत्रता का जीवन बिताना अच्छा समझता और स्वतंत्रता की प्रशंसा में असंख्य पुस्तकें लिख डालता और स्वतंत्रता की पूजा नित्य किया करता। स्वतंत्रता की महत्ता में कितनी ही सुंदर बात यदि रिक्शा-वाले को बतलाई जाय तो अपने जीवन की ऐसी अंधकार-मय पृष्ठभूमि में वह इसे समझ ही नहीं सकता।

समाज के ऐसे विकृत रूप में हमारे संविधान के 'मौलिक अधिकार' का वास्तविक महत्व सहज ही में समझा जा सकता है। उसमें व्यक्तिगत संपत्ति को मान्यता दी गई है। हमारे लिये तो यह बहुत बड़ी वस्तु है किंतु हमारे सिवा एक बहुत बड़ी जनसंख्या ऐसी है जिसको संपत्ति है ही नहीं। संपत्ति के न रहने से भाषण स्वातंत्र्य का कोई महत्व नहीं है और इसी प्रकार अन्य अधिकार का भी वह लाभ नहीं उठाता। मौलिक अधिकारों के बारे में उसे कोई दिलचस्पी नहीं है।

वास्तविक न्याय के मार्ग में अर्थप्रधान समाज और राष्ट्रप्रधान विश्व दो रोड़े हैं। समाज के अर्थप्रधान रहने का परिणाम है कि जब एक करोड़पति भूख से मरणासन्न व्यक्ति को एक मुट्ठी चावल तक नहीं देता तो भी हम उसे दंड नहीं देते क्योंकि अर्थबाहुल्य के कारण न्याय उसके पक्ष में है आदि। राष्ट्रप्रधान विश्व का परिणाम यह है कि अफ्रीका आज भी 'अपार्थेइड' को राष्ट्रसंघ के चार्टर के भीतर घरेलू व्यवहार कहता है और उसका दावा है कि राष्ट्रसंघ के चार्टर के अंतर्गत किसी को भी इसे रोकने का अधिकार नहीं है। राष्ट्रसंघ में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीपुल्स रिपब्लिक आफ चाइना जो चीन के इतने बड़े भू भाग की सरकार है उसे मान्यता प्राप्त नहीं है और नेशनलिस्ट चाइना को मान्यता प्राप्त है इत्यादि। यदि राष्ट्रप्रधान विश्व न होता तो अपने राष्ट्र के हित के लिये न्याय के नाम पर इतना अन्याय न हो पाता।

यदि संसार में एक सरकार हो जाती तो समाज के नाम पर न इतना अन्याय होता और न राष्ट्र के नाम पर इतना अत्याचार। परमाणु शक्ति (एटामिक एनर्जी) द्वारा सुख का समुद्र उमड़ पड़ता था और ऐसे अगाध भौतिक साधनों के सागर में संघर्षों एवं कमियों से निवृत होकर मनुष्य फिर सुख और शांति में जीवन व्यतीत करता। न्याय की टट्टी की आड़ में भोले भाले मनुष्यों की हत्या करने का अवसर कभी आता ही नहीं। सच्चा न्याय उसी समय दिखलाई पड़ता जब कि सबको समान रूप से न्याय की वास्तविकता का लाभ उठाने का साधन होता।

वर्तमान युग के महान् दार्शनिक एवं नोबेल पुरस्कार विजेता बर्ट्रेंड रशेल का कहना है कि इस समय विश्व केवल दो भागों में है—अमेरिका और उसके सहचर तथा रूस और उसके सहचर। पहले के असंख्य राष्ट्र निर्बल होते और टूटते टूटते केवल दो भागों में बँटकर रह गए हैं। यदि दोनों मिलकर एक हो गए और संसार भर के लिये एक सरकार बनी तो यह मानव सभ्यता का ऐसा स्वर्णिम युग होगा जिसकी सुख एवं समृद्धि की आज कल्पना तक नहीं की जा सकती। वैज्ञानिक आविष्कार सुख के साधन होंगे। किंतु यदि दोनों में युद्ध हुआ और वैज्ञानिक आविष्कार सृजन में प्रयुक्त न होकर युद्ध के लिये प्रयुक्त हुए तो सर्वनाश हो जायगा। पृथ्वी जीवधारियों से सर्वदा के लिये रहित होकर निरुद्देश्य हो निस्सीम अंतरिक्ष में सूर्य की परिक्रमा तब तक करती रहेगी जब कि एक दिन सूर्य भी फटकर शून्य में सर्वदा के लिये विलीन न हो जाय।

जब विश्व के लिये एक सरकार बन जायगी तो निस्संदेह न्याय का साध्य समाज और राष्ट्र न होकर व्यक्ति रह जायगा। न्याय का उद्देश्य जब व्यक्ति का हित होगा तो इसमें उपर्युक्त दोष नहीं आने पावेंगे, स्वाभाविक न्याय यही होगा। इसके लिये केवल एक कदम का हेर फेर है। दो सरकार से अब केवल एक सरकार होनी है किंतु इसमें खतरा भी कम नहीं है।

विद्वान् रशेल ने इसी को पर्वतारोही के उदाहरण से बहुत ही सुंदर ढंग से व्यक्त किया है। पर्वतारोही जानता है कि यदि पर्वत के शिखर पर पहुँच गए तो विस्तृत हरा भरा मैदान मिलेगा। इसी की आशा में वह चढ़ना आरंभ करता है। परंतु ज्यों ज्यों वह चढ़ता है त्यों त्यों उसके गिरने की आशंका घातक होती जाती है। वह रुक जाता है, तब तक आशा पुकारती है और कहती है, "एक कदम और, संभवतः यह यात्रा का अंतिम कदम होगा।" व्यंग्य तत्क्षण हँसकर कहता है "मूर्ख? आशा की ही तो सुनते सुनते तुम इस भयानक स्थिति को पहुँचे और फिर···" वह सोचता है; जब तक जीवन है तब तक आशा है फिर बदल जाता है और कहता है कि जब तक जीवन है तब तक दुःख है।

अच्छाई की खोज में ही हम कदम कदम बढ़ते गए और आज हमने ऐसा समाज और राष्ट्र बना लिया जो न्याय और नैतिकता दोनों के दृष्टिकोण से घातक है। प्रगति पर चलने के लिये हमने जहाँ से पहला कदम उठाया था वहाँ के नैसर्गिक वातावरण को जब यहाँ से देखते हैं तो बहुत ही सुंदर दीखता है किंतु दुःख है कि अब हम पीछे लौट नहीं सकते। लौटने का अर्थ होगा प्रलय। यदि हम एक कदम आगे बढ़कर एक में मिल गए और विश्व-सरकार बनी तो अन्याय सर्वदा के लिये लुप्त हो जायगा और आगे आनेवाली संतान हमारी सराहना करेगी किंतु यदि युद्ध हुआ तो न्याय और अन्याय दोनों लुप्त हो जायगा। इसलिए इस युग में हम वास्तविक न्याय के ही निकट हैं न कि अन्याय के क्योंकि यदि इस समाज और राष्ट्र से परे न्याय देखने को न मिला तो अन्याय भी देखने को नहीं मिलेगा। दो के अतिरिक्त तीसरा रास्ता है ही नहीं।

—सिद्धनाथ सिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पूर्वानुबद्ध)

आदेश देते समय यदि उचित समझता है तो यह आदेश भी दे सकता है कि ऐसे व्यक्ति के निवासस्थान के बारे में या निवासस्थान के परिवर्तन के बारे में या निवासस्थान से अनुपस्थिति के बारे में उसके छूटने के पश्चात् धा० ३३ के अंतर्गत नियमों के अनुसार 'विज्ञप्ति' प्रकाशित की जाय जो दंड की अवधि के व्यतीत होने पर ५ वर्ष से अधिक समय तक का न हो।

(२) यदि अपील से या किसी अन्य प्रकार यह दोषसिद्धि निराकृत हो जाय तो ऐसा आदेश प्रभाव-शून्य हो जायगा।

(३) अपील का न्यायालय भी इस धारा के अंतर्गत आदेश दे सकता है अथवा पुनरीक्षण अधिकार का प्रयोग करते समय उच्च न्यायालय।

(४) कोई व्यक्ति जिस पर उपधारा (१) में अभिदिष्ट नियम के उल्लंघन का आरोप लगा है उसकी अन्वीक्षा जिले के उस समर्थ अधिक्षेत्रवाले मजिस्ट्रेट के न्यायालय में होगी जिसके अंतर्गत यह स्थान स्थित है और जो अंतिम विज्ञप्ति द्वारा उसका निवासस्थान घोषित हो चुका है।

१२—आभ्यासिक अपराधियों से अच्छे चाल चलन के लिये प्रतिभूति की माँग।

(१) जब कोई न्यायालय इस अधिनियम के अंतर्गत अपराध के लिये दोषसिद्धि करते समय इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि वह अपराधी उक्त अपराध या इस अधिनियम के अंतर्गत कोई अन्य अपराध करने का अभ्यासी रहा है या अपराध करने का प्रयत्न करता रहा है या अपराध का अनुत्तेजक रहा है और न्यायालय के विचार से यह आवश्यक या वांछनीय दिखलाई पड़ता है कि वह अच्छी चाल चलन के लिए बंध-पत्र लिख दे तो यह न्यायालय दंडादेश पारित करते समय उस व्यक्ति को उसकी आर्थिक दशा के अनुपात से जमानतदार या बिना जमानत पर के ऐसी धनराशि का बंधपत्र अच्छी चालचलन के लिये देने के लिये ऐसी अवधि तक जो ३ वर्ष से अधिक न हो और जैसा न्यायालय उचित समझे आदेश दे सकता है।

(२) यदि अपील से या अन्य प्रकार दोषसिद्धि निराकृत हो जाती है तो इस प्रकार दिया हुआ बंधपत्र प्रभावशून्य हो जायगा।

(३) इस धारा के अंतर्गत आदेश अपील के न्यायालय द्वारा भी या उच्च न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण अधिकार का प्रयोग करते समय दिया जा सकता है।

(४) जब किसी मजिस्ट्रेट को पुलिस से या किसी अन्य प्रकार सूचना मिलती है कि उसके अधिक्षेत्र के स्थानीय सीमा के भीतर कोई व्यक्ति इस अधिनियम के अंतर्गत कोई अपराध करने का अभ्यासी हो गया है या अपराध करने का प्रयत्न करता है या अपराध का अनुत्तेजक है तो यह मजिस्ट्रेट ऐसे व्यक्ति से पूछ सकता है कि वह कारण दिखलावे कि उसके विरुद्ध अच्छी चाल चलन के लिए जमानतदार के साथ ऐसे अवधि तक जो तीन वर्ष से अधिक न हो और जैसा मजिस्ट्रेट उचित समझे बंध-पत्र देने का आदेश क्यों न दिया जाय और इसके बाद इस अवस्था में दं० प्र० सं० १८९८ की धारा ११२ से १२६ तक के नियम लागू होंगे।

१३—विशेष पुलिस अधिकारी तथा परामर्शदातृ निकाय—

(१) प्रत्येक क्षेत्र के लिये जिसे राज्य सरकार इस संबंध में निश्चित करेगी एक विशेष पुलिस अधिकारी होगा जिसकी नियुक्ति सरकार या सरकार की ओर से होगी और वह उस क्षेत्र में इस अधिनियम के अंतर्गत अपराध के संबंध में काम करेगा।

(२) वह विशेष पुलिस अधिकारी—

अ— मद्रास और कलकत्ता के प्रेसीडेंसी नगरों के सहायक पुलिस कमिश्नर ;

(ब) बंबई नगर के पुलिस अधीक्षक (सुपरिंटेंडंट) और—

(स) अन्य स्थानों के पुलिस उप अधीक्षक (डेपुटी सुपरिंटेंडेंट आफ पुलिस) से नीचे की श्रेणी का नहीं होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) इस अधिनियम के अंतर्गत अपराधों के संबंध में क्षमतापूर्वक काम करने के लिये—

(अ) किसी क्षेत्र के विशेष पुलिस अधिकारी की अधरिक पुलिस अधिकारियों (जहाँ हो सकेगा वहाँ के लिये स्त्री पुलिस अधिकारी भी इसमें संमिलित है) की उस संख्या द्वारा सहायता की जायगी जिसे राज्य सरकार उचित समझे; और—

(ब) राज्य सरकार विशेष पुलिस अधिकारीके साथ एक प्रशासकीय परामर्शदातृ निकाय संलग्न कर देगी जिसमें उस क्षेत्रके ५ से अधिक प्रमुख सामाजिक कार्यकर्ता (इसमें जहाँ हो सकेगा स्त्री समाज कल्याण कार्यकर्ता भी संमिलित रहेगी) नहीं रहेंगे और ये लोग उसे इस अधिनियम के काम करनेके संबंधमें सामान्य प्रमुखता के प्रश्न पर परामर्श देंगे।

१४—अपराधों का हस्तक्षेप्य (काग्निजेबुल) होना—

दंड प्रक्रिया संहिता १८९८ में कोई बात रहते हुए भी इसके अंतर्गत दंडनीय कोई अपराध उक्त संहिता के अभिप्राय के भीतर हस्तक्षेप्य (काग्निजेबुल) अपराध समझा जायगा।

किंतु प्रतिबंध यह है कि उक्त संहिता में कोई बात रहते हुए भी—

(१) बिना अधिपत्र (वारंट) के बंदी करना केवल विशेष पुलिस अधिकारी या उसके निदेश के भीतर अथवा उसके पूर्ववर्ती संमोदन से हो सकता है।

(२) जब कोई विशेष पुलिस अधिकारी अपने किसी अधरिक पुलिस अधिकारी को किसी व्यक्ति को बिना अधिपत्र (वारंट) के पकड़ने को कहें और उस व्यक्ति का बंदी किया जाना उस विशेष पुलिस अधिकारी की उपस्थिति में न हो सकता हो तो वह अपने आधरिक पुलिस अधिकारी को जिस व्यक्ति को पकड़ना है उसका अभिदेश करके और जिस अपराध में पकड़ना है उसको भी स्पष्ट करके पकड़ने के लिये लिखित आदेश देगा और वह अधरिक पुलिस अधिकारी उस व्यक्ति को पकड़ने के पहले उसे उक्त आदेश का सारांश बतला देगा और वह व्यक्ति यदि चाहे तो वह उसे आदेश भी दिखला देगा।

(३) कोई पुलिस अधिकारी जो निरीक्षक (इंसपेक्टर) की श्रेणी से नीचे का न हो और जिसे विशेष पुलिस अधिकारी ने अधिकृत किया हो यदि समझता है कि विशेष पुलिस अधिकारी का आदेश प्राप्त करने में विलंब होने पर इस अधिनियम के अंतर्गत किसी अपराध के संबंध में कोई बहुमूल्य साक्ष्य नष्ट कर दिए जाने या छिपा दिए जाने की संभावना है या जिस व्यक्ति ने अपराध किया है या जिस व्यक्ति के बारे में अपराध करने के संदेह हैं उसके भग जाने की संभावना है या ऐसे व्यक्ति का नाम और पता ज्ञात नहीं है या संदेह का कारण है कि उसने अपना नाम और पता गलत दिया है तो वह ऐसे व्यक्ति को बिना आदेश के भी पकड़ सकता है किंतु ऐसी दशा में यथासंभव शीघ्र ही वह इस पकड़े जाने का प्रतिवेदन विशेष पुलिस अधिकार को दे देगा जिसमें उन परिस्थितियों का भी उल्लेख रहेगा जिसके अंतर्गत उसे बंदी बनाया गया है।

१५—अधिपत्र (वारंट) के बिना तलाशी—

(१) तत्कालीन प्रवर्ती किसी अन्य विधि में कोई किसी बात के रहते हुए भी जब कभी किसी विशेष पुलिस अधिकारी को यह विश्वास करने के लिये पर्याप्त युक्त संगत आधार दिखलाई पड़े कि इस अधिनियम के अंतर्गत दंडनीय अपराध किसी मकान में रहनेवाली स्त्री या लड़की के संबंध में किया गया है और उस मकान की तलाशी अधिपत्र (वारंट) द्वारा करने में अतिशय विलंब हो ही जायगा तो वह पुलिस अधिकारी ऐसे विश्वास करने योग्य आधारों को लिखने के पश्चात् उस मकान में बिना अधिपत्र (वारंट) के प्रवेश कर सकता है।

(२) उपधारा (१) के अंतर्गत तलाशी करने के पहले विशेष पुलिस अधिकारी उस स्थान पर रहने वाले दो सम्मानित व्यक्तियों (जिनमें कम से कम एक स्त्री हो) को तलाशी के समय उपस्थित रहने और देखने के लिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुला लेगा और उनको या उनमें से किसी को ऐसा करने के लिये एक लिखित आदेश भी जारी कर सकता है।

(३) कोई व्यक्ति जो किसी युक्तिसंगत कारण के बिना ऐसे लिखित आदेश के दिए जाने या प्रस्तुत (टेंडर) करने के पश्चात् भी इस धारा के अंतर्गत तलाशी के समय उपस्थित रहने या उसे देखने से इनकार करता है या अवहेलना करता है तो उसके बारे में समझा जायगा कि उसने भारतीय दंड संहिता की धारा १८७ के अंतर्गत अपराध किया है।

(४) विशेष पुलिस अधिकारी को उपधारा (१) के अंतर्गत किसी मकान में प्रवेश करते समय किसी ऐसी लड़की को हटा लेने का अधिकारी होगा जो उसके मतानुसार इक्कीस वर्ष से कम आयु की है और वेश्याकर्म कर रही है, या वेश्याकर्म करने को उसे कहा जा रहा या वेश्याकर्म करने के लिये प्रयत्न किया जा रहा है।

(५) विशेष पुलिस अधिकारी ऐसी लड़की को उपधारा (४) के अंतर्गत हटा लेने के पश्चात उसे तुरत उपयुक्त मजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित कर देगा।

(६) विशेष पुलिस अधिकारी तथा वे व्यक्ति जो तलाशी में भाग लिये हों या तलाशी के समय उपस्थित रहे हों या तलाशी होते समय साक्षी रूप में देखे हों तलाशी के संबंध में या तलाशी के प्रयोजन के लिये विधि संमत किए गए कार्यों के लिये उनके विरुद्ध कोई व्यावहारिक या अपराधिक कार्यवाही नहीं की जायगी।

१६-- लड़की का उद्धार --

(१) जब कोई मजिस्ट्रेट पुलिस द्वारा सूचना मिलने पर या किसी अन्य प्रकार सूचना मिलने पर विश्वास करने योग्य कारण पावे कि कोई लड़की जो स्पष्टतः इक्कीस वर्ष से कम आयु की है वह किसी वेश्यालय में वेश्याकर्म पर जीवन व्यतीत कर रही है या वेश्यावृत्ति कर रही है या उससे वेश्या कर्म कराने का प्रयत्न किया जा रहा है तो वह विशेष पुलिस अधिकारी को आदेश दे सकता है कि वह ऐसे वेश्यालय में प्रवेश करके लड़की को वहाँ से हटा ले और उसे उसके समक्ष उपस्थित करे।

(२) लड़की को इस प्रकार हटा लेने के बाद वह पुलिस अधिकारी उस लड़की को उस मजिस्ट्रेट के समक्ष तुरत उपस्थित कर देगा जिसने वह आदेश जारी किया था।

१७—वह लड़की जो धारा १५ के अंतर्गत हटा ली गई है या धारा १६ के अंतर्गत जिसका उद्धार किया गया है उसकी मध्यमावधि अभिरक्षा—

(१) जब कोई विशेष पुलिस अधिकारी जिसने धारा १५ की उपधारा (४) के अंतर्गत किसी लड़की को हटा लिया है या धारा १६ की उपधारा (१) के अंतर्गत किसी लड़की का उद्धार किया है यदि धारा १५ के उपधारा (५) या धारा १६ की उपधारा (२) के उपबंधों के अनुसार वह मजिस्ट्रेट के समक्ष उसे तुरत उपस्थित नहीं कर सका है तो वह उसे किसी भी श्रेणी के निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष तुरत उपस्थित कर देगा और जब तक कि वह लड़की उपयुक्त मजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित नहीं कर दी जाती तब तक के लिये लड़की की सुरक्षा के लिये वह मजिस्ट्रेट जैसा उचित समझे वैसा आदेश पारित कर सकता है।

(२) जब वह लड़की उपयुक्त मजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित की जाती है तो लड़की को अपनी बात कहने का अवसर देने के पश्चात् वह धारा १६ की उपधारा (१) में दी गई सूचना की सत्यता के विषय में जाँच करेगा और लड़की की आयु के विषय में जाँच करेगा और जाँच से जब वह संतुष्ट हो जाय कि जो सूचना मिली है वह सही है और लड़की की आयु इक्कीस वर्ष से कम है तो वह दूसरी उपधारा के अधीन आदेश दे सकता है कि ऐसी लड़की उस अवधि तक के लिये जिसका अभिदेश आदेश में होगा किसी संरक्षणीय मकान में या किसी अन्य अभिरक्षा में जिसे वह मजिस्ट्रेट अपने अभिलिखित कारणों के आधार पर उचित समझे रोक रखी जाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किंतु प्रतिबंध है कि ऐसी अभिरक्षा उन व्यक्तियों या उन व्यक्तियों के निकाय की नहीं होगी जो उस लड़की के धार्मिक विचारों से भिन्न हैं।

(३) उपधारा २ के अंतर्गत कार्य करते समय मजिस्ट्रेट ५ सम्मानित व्यक्तियों को, जिनमें से जहाँ हो सके २ स्त्रियाँ हों उसे अपनी सहायता के लिये बुला सकता है और इस काम के लिये वह अनुभवी समाज कल्याण कार्यकर्ताओं की एक सूची रख सकता है जिसमें विशेषतः स्त्री समाज कल्याण कार्यकर्ता जो स्त्रियों और लड़कियों के अनैतिक व्यापारीय दमन क्षेत्र में काम करें, होंगीं।

(४) उपधारा २ के अंतर्गत प्रत्येक आदेश के विरुद्ध सत्र न्यायाधीश के न्यायालय में अपील होगी और ऐसी अपीलों में उसका निर्णय अंतिम होगा।

१८—वेश्यालयों का बंद किया जाना और उन मकानों में से अपराधियों का अधिनिष्कासन—

(१) कोई मजिस्ट्रेट पुलिस द्वारा या अन्य प्रकार सूचना पाने पर कि कोई मकान या स्थान या उनका कोई भाग धारा ७ की उपधारा (१) में अभिदिष्ट किसी सार्वजनिक स्थान से २०० गज के भीतर है और वह किसी व्यक्ति द्वारा वेश्यालय रूप में चलाया जा रहा है या वेश्यालय में प्रयुक्त हो रहा है

अथवा वेश्याओं द्वारा अपने व्यापार के लिये उपयोग किया जा रहा है तो वह मजिस्ट्रेट मकान, कमरा, स्थान या उसके भाग के स्वामी, पट्टेदार या भूस्वामी को अथवा स्वामी, पट्टेदार या भूस्वामी के अभिकर्ता को या ऐसे मकान कमरा, स्थान या उनके भाग के किरायादार पट्टेदार या धारण करनेवाले जिसके प्रभार में वह है उसे नोटिस जारी कर सकता है कि नोटिस पाने के ७ दिन के भीतर वह कारण दिखलावे कि वह अनुचित प्रयोग करने के कारण क्यों न कुर्क कर लिया जाय तथा संबंधित व्यक्ति की बात सुनने के पश्चात् मजिस्ट्रेट जब इस बात से संतुष्ट हो जाय कि वह मकान, कमरा, स्थान और उसका भाग वेश्यालय के प्रयोग में आ रहा है या उसमें वेश्यावृत्ति की जाती है तो मजिस्ट्रेट —

(अ) निर्देश करते हुए कि मकान, कमरा, स्थान या उसके भागपर से आदेश पारित करने के ७ दिन के भीतर धारण में रहनेवाले व्यक्ति का अधिनिष्कासन;

(ब) निर्देश करते हुए कि इस आदेश के पारित होने के एक वर्ष के भीतर मकान को किराया पर देने से पहले स्वामी या पट्टेदार या भूस्वामी या उनके अभिकर्ता मजिस्ट्रेट से पहले स्वीकृति ले लें—वह आदेश पारित कर सकता है किंतु प्रतिबंध यह है कि यदि मजिस्ट्रेट इस निष्कर्ष पर पहुँच जाय कि ऐसे मकान, कमरे स्थान या उसके किसी भाग के स्वामी पट्टेदार या भूस्वामी और उसके स्वामी पट्टेदार या भूस्वामी के अभिकर्ता को ऐसे मकान, कमरे, स्थान और उसके किसी भाग को अनुचित प्रयोग में लाए जाने का पता नहीं था तो मजिस्ट्रेट मकान को उसके स्वामी पट्टेदार या भूस्वामी को प्रतिस्थापित कर देगा तथा निर्देश करेगा कि वह मकान, कमरा, स्थान या उसका कोई भाग उस व्यक्ति को या उसके लाभ के लिये पट्टे पर या किसी अन्य प्रकार नहीं दिया जायगा जो कि उसमें अनुचित प्रयोगकर्ताओं को टिकाता था।

(२) कोई न्यायालय धारा ७ या धारा ३ के अंतर्गत अपराध के लिये किसी व्यक्ति की दोषसिद्धि करते समय बिना किसी अतिरिक्त सूचना के उपधारा (१) के उपबंधों के अनुसार उसे कारण दिखलाने का आदेश दे सकता है।

(३) किसी मजिस्ट्रेट या किसी न्यायालय द्वारा उपधारा १ और उपधारा २ के अंतर्गत पारित किया हुआ आदेश अपील के अधीन नहीं होगा और किसी भी व्यावहारिक या आपराधिक न्यायालय के आदेश द्वारा वह आदेश न स्थगित होगा और न निराकृत होगा तथा उन आदेशों वैधता १ वर्ष व्यतीत हो जाने पर समाप्त हो जायगी।

किंतु प्रतिबंध है कि जब धारा ३ और धारा ७ के अंतर्गत की दोषसिद्धि अपील से इस आधार पर निराकृत कर दी जाती है कि ऐसा मकान, घर, स्थान या उसका कोई भाग वेश्यालय रूप में नहीं चलाया जा रहा है या प्रयुक्त हो रहा है या वेश्याओं द्वारा उसके व्यापार के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये प्रयुक्त नहीं हो रहा है तो उपधारा (१) के अंतर्गत अन्वीक्षा न्यायालय द्वारा पारित किया हुआ आदेश भी निराकृत कर दिया जायगा।

(४) तत्कालीन प्रवर्ती किसी अन्य विधि के किसी उपबंध के रहते हुए भी जब कोई मजिस्ट्रेट उपधारा (१) के अंतर्गत आदेश पारित करता है तो उस समय कोई पट्टा या संविद् जिसके अंतर्गत मकान या कमरा, स्थान या उसका कोई भाग धारण में आया है प्रभावशून्य एवं अप्रवर्तनीय हो जायगा।

(५) जब कोई स्वामी पट्टेदार या भूस्वामी या ऐसे स्वामी पट्टेदार या भूस्वामी का अभिकर्ता उपधारा (१) के वाक्य खंड (बी०) के निर्देशों का पालन नहीं करता है तो वह अर्थ दंड से दंडित होगा जो ५०० रु० तक हो सकता है और जब वह उक्त उपधारा के परंतुक के उपदेशों का पालन नहीं करता है तो समझा जायगा कि उसने धारा ३ (२) (बी०) या धारा ७ (२) (सी०) के अंतर्गत जैसी अवस्था हो अपराध किया है और वह तदनुसार दंडित होगा।

१९-संरक्षणीय घर में रखे जाने के लिये प्रार्थनापत्र।

(१) कोई स्त्री या लड़की जो वेश्याकर्म कर रही हो या उससे वेश्याकर्म कराने का यत्न हो रहा हो जिस मजिस्ट्रेट के स्थानीय अधिक्षेत्र के भीतर वह वेश्याकर्म करती है या उससे वेश्याकर्म कराने का यत्न हो रहा है उसके यहाँ वह संरक्षणीय घर में रखे जाने के आदेश के लिये प्रार्थनापत्र दे सकती है।

(२) यदि प्रार्थी की बात सुनने के पश्चात् तथा ऐसी जाँच जो वह आवश्यक समझ करने के पश्चात् मजिस्ट्रेट संतुष्ट हो जाता है कि इस धारा के अंतर्गत आदेश दिया जाना चाहिए तो वह इन कारणों को लिख लेने के पश्चात् आदेश दे सकता है कि आदेश में लिखित अवधि तक के लिये प्रार्थी संरक्षणीय घर में रखी जाय।

२०—किसी स्थान से वेश्या का निष्कासन –

(१) कोई मजिस्ट्रेट यह सूचना पाने पर कि कोई स्त्री या लड़की जो उसके स्थानीय अधिक्षेत्र के अंतर्गत किसी स्थान पर रहती है या उस स्थान पर प्रायः आया करती है, वेश्या है तो वह इस सूचना का सारांश अभिलिखित कर सकता है और ऐसी स्त्री या लड़की को नोटिस दे सकता है कि वह मजिस्ट्रेट के सामने उपस्थित हो और कारण दिखलावे कि उसे इस स्थान से क्यों न निकाल दिया जाय तथा वहाँ पुनः प्रवेश करने से रोक दिया जाय।

(२) प्रत्येक नोटिस जो उपधारा (१) अंतर्गत जारी की गई हो वह उपर्युक्त अभिलेख की प्रतिलिपि के साथ रहेगी और वह प्रतिलिपि नोटिस के साथ उस स्त्री या लड़की पर तामील कर दी जायगी जिसके विरुद्ध नोटिस जारी की गई हो।

(३) उपधारा (२) के अंतर्गत अभिदिष्ट नोटिस की तामीली के पश्चात् मजिस्ट्रेट प्राप्त की हुई सूचना की सत्यता की जाँच करना आरंभ करेगा और उस स्त्री या लड़की को साक्ष्य देने का अवसर प्रदान करने के पश्चात् वह आगे यदि उचित समझता है तो और भी साक्ष्य लेगा और इस जाँच के पश्चात् जब उसे प्रतीत हो कि ऐसी स्त्री या लड़की वेश्या है तथा सामान्य जनता के हित लिये यह आवश्यक है कि वह स्त्री या लड़की अपने को उस स्थान से हटा ले और उसे वहाँ पुनः प्रवेश करने से रोक दिया जाय तो तद् अंतर्गत निर्धारित प्रकार से लिखित आदेश पारित करके और इसकी सूचना उस स्त्री या लड़की को देकर उस तिथि के पश्चात् (जिसका निर्देश उक्त आदेश में हो) और जो आदेश की तिथि से ७ दिन से कम का न हो, उसे वहाँ से हटकर उस स्थान पर जाने के लिये जो उसके स्थानीय अधिक्षेत्र की सीमा के भीतर हो या बाहर उस पथ से उन पथों से या आदेश में अभिदिष्ट समय के भीतर उसे चले जाने के लिये कहेगा और जिस मजिस्ट्रेट का उस स्थान पर अधिक्षेत्र है उसके लिखित अनुमति के बिना उसे पुनः प्रवेश करने से रोक भी देगा।

(४) जो कोई:—

(अ) आदेश में निर्धारित समय के भीतर इस धारा के अंतर्गत पारित आदेश का पालन नहीं कर पाता है अथवा जब तक कि बिना अनुमति के पुनः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वादी ने बहुत सी बातें कही थीं कि और उनमें से प्रमुख आपत्ति थी कि उत्तर प्रदेश जमींदारों के ऋणन्यूनीकरण अधिनियम (उ० प्र० अधिनियम १५।१६५३) के अंतर्गत हमारा ऋण कम हो गया। प्रतिवादी ने कहा कि उक्त अधिनियम की धा० २ (एफ) में ऋण की परिभाषा देते समय जो शेड्यूल्ड बैंकों के ऋण को अलग कर दिया गया है वह संविधान के अनुच्छेद १४ के विरुद्ध है कारण कि इसमें मनमाने ढंग से कुछ ऋण को अधिनियम का लाभ नहीं दिया गया है। प्रतिवादी ने कहा कि ऐसा वर्गीकरण मनमाना है और विधि का समान संरक्षण सबको नहीं देता इसलिए यह संविधान के विरुद्ध है।

इस प्रश्न पर विचार करने के पहले व्यवहार प्रक्रिया संहिता की धारा ११३ और भारतीय संविधान के अनुच्छेद २२८ का अर्थ समझ लेना आवश्यक है। व्यवहार प्रक्रिया संहिता की धा० ११३ के परंतुक में है कि जब कोई न्यायालय इस बात से संतुष्ट हो जाय कि उसके समक्ष किसी विचाराधीन प्रश्न में किसी अधिनियम, अध्यादेश या विनियमन की वैधता पर आपत्ति की जा रही है जो उक्त प्रश्न के निर्वर्तन के लिये आवश्यक है और न्यायालय के मतानुसार ऐसा अधिनियम आदि अवैध है परंतु वह उस उच्च न्यायालय द्वारा जिसके अधीन वह है अवैध घोषित नहीं हुआ है तो न्यायालय कारण लिखने के पश्चात् उच्च न्यायालय की संमति के लिये अभिदेश कर देगा।

संविधान के अनुच्छेद २२८ में है कि जब उच्च न्यायालय इस बात से संतुष्ट हो जाय कि उपर्युक्त परिस्थिति में मुकदमे के निर्णय के लिये संविधान की व्याख्या आवश्यक है तो वह मुकदमें को हटाकर या तो उसका निर्णय स्वतः कर सकता है या उसकी व्याख्या करके मुकदमें को उस न्यायालय में लौटा देगा कि वह उस व्याख्या के अनुसार निर्णय कर दे।

इस मुकदमे में विद्वान् व्यवहार न्यायाधीश ने निर्णय दिया था कि 'ऋण' की परिभाषावाला भाग ऋणी व्यक्तियों के बीच मनमाने ढंग से विभेदकरण करता है इसलिए वह भाग अवैध है। किंतु उन्होंने कहा कि इस मुकदमे के निर्णय के लिये उसकी अवैधता पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है। कारण कि यदि यह भाग अवैध हो जाय तो भी प्रतिवादी को कोई लाभ नहीं। इसके लिये विद्वान् न्यायाधीश ने कारण दिया कि यह प्रश्नगत् भाग संपूर्ण परिभाषा से अलग करने योग्य नहीं है, यदि अलग नहीं हो सकता तो इस प्रश्नगत् भाग का निर्णय यदि प्रतिवादी के पक्ष में भी दे दिया जाय तो सारी परिभाषा को छोड़ देना होगा और सारी परिभाषा को निकाल देने पर प्रतिवादी इस अवैधता का लाभ उठा ही नहीं सकता। अतः उन्होंने निर्णय दिया कि व्य० प्र० सं० की धारा ११३ लागू नहीं होती तथा प्रार्थनापत्र उत्सर्जित कर दिया।

प्रतिवादी ने इस उत्सर्जन के आदेश के विरुद्ध उच्च न्यायालय में पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र दिया तथा संविधान के अनुच्छेद २२८ के अंतर्गत, जैसा ऊपर कहा गया है, उच्च न्यायालय में प्रश्नगत् धारा की वैधता पर विचार करने के लिये दूसरा प्रार्थनापत्र दिया।

उच्च न्यायालय ने पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र और संविधान के अनुच्छेद २२८ के अंतर्गत अधिकार के प्रयोग किए जाने के संबंध में दोनों प्रार्थनापत्रों का निर्वर्तन एक ही निर्णय में किया। उच्च न्यायालय का निर्णय था कि जो विधि सभी नागरिकों को समान संरक्षण नहीं प्रदान करता वह प्रभावशून्य होता है। यहाँ प्रश्न है कि धारा का प्रश्नगत् भाग शेष भाग से अलग किया जा सकता है कि नहीं। यह कार्य संविधान की व्याख्या से संबंध नहीं रखता वरन् यह तो स्वतः अधिनियम की रचना से संबंध रखता है और यदि यह मान भी लिया जाय कि इसमें संविधान की व्याख्या का प्रश्न है तो भी वह मुकदमे के निर्णय के लिये आवश्यक नहीं है। अतः उच्च न्यायालय ने पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र और अनुच्छेद २२८ के अंतर्गत प्रार्थनापत्र दोनों को उत्सर्जित कर दिया।

हमें यह स्पष्ट दीख पड़ता है कि अपीलकर्ता ने जो प्रश्न उठाया है वह व्यवहार प्रक्रिया संहिता की धारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

११३ के परंतुक के अंतर्गत आता है और भारतीय संविधान के अनुच्छेद २२८ के भी अंतर्गत आता है। यहाँ एक अधिनियम की वैधता पर आपत्ति की जाती है कि वह संविधान के एक अनुच्छेद के प्रतिकूल पड़ता है। इसलिए यह संविधान की व्याख्या के प्रश्न से संबंध रखता है और अनुच्छेद २२८ के अंतर्गत आता है।

नीचे के न्यायालय ने यह कहा है कि प्रश्नगत् अंश धारा से अलग नहीं किया जा सकता इसलिए उसे उपाय नहीं रह जायगा तथा इसी कारण उच्च न्यायालय ने कहा था कि मुकदमे के निर्णय के लिये इसकी वैधता का निर्णयआवश्यक नहीं है। हम इस विचार से सहमत नहीं हैं। पहले इस प्रश्न का उत्तर देना आवश्यक है कि धारा का प्रश्नगत अंश वैध है या अवैध। इससे कुछ प्रभाव नहीं पड़ेगा कि इस अपीलकर्ता को धारा के अवैध हो जाने पर भी कुछ लाभ नहीं पहुँचेगा। यदि पहले निर्णय हो जाता है कि धारा का अंश अवैध है तब उसके बाद इस पर विचार किया जायगा कि क्या वह अवैध अंश धारा के शेष भाग से अलग किया जा सकता है? अतः मुकदमे के निर्णय के लिये धारा के प्रश्नगत् अंश की वैधता पर विचार करने की आवश्यकता है।

अपील स्वीकार की जाती है। उच्च न्यायालय मुकदमें को मँगा कर या तो स्वयं निर्णय करे या उक्त अधिनियम में 'ऋण' की परिभाषा की वैधता पर विचार करके अपने निष्कर्ष के साथ उसे सीतापुर के न्यायाधीश के यहाँ तदनुसार निर्वर्तन करने के लिये वापस कर दे। अपीलकर्ता अपील का व्यय प्राप्त करेगा।

—अपील स्वीकृत

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ सर्वोच्च न्यायालय ४६

२० फरवरी, १९५८

व्यवहार अपील सं० १९७। १९५६

बाई हीरा देवी तथा अन्य — अपीलकर्ता

वि०

बंबई के अधिकारीय नियोजी (असाइनी)—उत्तरवादी

(अ) साक्ष्य अधिनियम (१८७२) धा० ९२ और ९९–अधिकारीय नियोजी (आफिशियल असाइनी) का प्रार्थनापत्र देना कि दिवालिया ने जो अपनी कुछ संपत्ति का दान दे दिया है वह प्रभावशून्य है—दानग्रहीता जो निष्पादक के हित के प्रतिनिधि (रिप्रजेंटेटिव इन इंटरेस्ट) हैं उनका यह दिखलाने के लिये मौखिक साक्ष्य देना कि संपत्ति का हस्तांतरण प्रतिफल (कंसीडरेशन) के लिया था—यह साक्ष्य प्रतिग्राह्य है कि नहीं—अधिकारीय नियोजी दिवालिए के हित का प्रतिनिधि नहीं होता—

(ब) साक्ष्य अधिनियम (१८७२) धारा ९१, ९२ और ९९ इनके क्षेत्र एवं प्रभाव—जो लेख्य के पक्षों में न हों—

न्यायमूर्ति गजेंद्रगादकर

यह अपील विशेष अनुमति पर आई है। इसमें उत्तरवादी अधिकारीय नियोजी (आफिशियल असाइनी) ने इन अपीलकर्ताओं के विरुद्ध प्रेसीडेंसी नगर शोधाक्षमता अधिनियम (प्रेसीडेंसी टाउन्स इनसालवेंसी ऐक्ट) की धा० ५५ के अंतर्गत प्रावेदन की नोटिस जारी किया कि ये अपीलकर्तागण दौलतराम इकुमचंद के स्त्री और पुत्रगण हैं और दौलतराम एक निर्णीत दिवालिया घोषित हो चुका है। उत्तरवादी का कहना है कि उक्त दिवालिए ने अपीलकर्ताओं (जिसमें एक उसकी स्त्री तथा तीन लड़के हैं) के पक्ष में संपत्ति का दानपत्र लिख दिया जो प्रभावशून्य है। उपर्युक्त अधिनियम की धारा १७ के अंतर्गत दिवालिया की समस्त संपत्ति इस उत्तरवादी में निहित हो चुकी है और इसी अधिकार से उसने दानपत्र को प्रभावशून्य ठहराने के लिये प्रार्थनापत्र दिया था।

इन अपीलकर्ताओं ने इसके उत्तर में एक संयुक्त शपथपत्र निवेशित किया जिसमें उन्होंने उन समस्त परिस्थितियों की चर्चा की जिनके अंतर्गत हस्तांतरण हुआ था और उसका सारांश था कि दिवालिए ने जो दान दिया है देखने से तो दान प्रतीत होता है किंतु वास्तव में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह हस्तांतरण का विलेख है और मूल्यवान् प्रतिफल के बदले वह हस्तांतरण किया गया है। इसलिए शपथ पत्र में कहा गया कि यह हस्तांतरण उक्त अधिनियम की धारा ५५ के अंतर्गत कुचेष्टा की परिभाषा में नहीं आता।

जब अपीलकर्ता ने अपने उपर्युक्त अभिकथन के समर्थन में साक्ष्य देना आरंभ किया तो इस उत्तरवादी ने आपत्ति कि साक्ष्य अधिनियम की धारा ९२ के अंतर्गत ऐसा साक्ष्य प्रतिग्राह्य नहीं हो सकता। विद्वान न्यायाधीश ने उत्तरवादी की यह आपत्ति नहीं मानी और अपीलकर्ता को साक्ष्य देने की अनुमति दे दिया। साक्ष्य देने पर उसके तत्वों पर विचार करके अपीलकर्ता का अभिकथन नहीं माना गया और उत्तरवादी के पक्ष में निर्णय हो गया और उक्त अधिनियम की धारा ५५ के अंतर्गत घोषणा दे दी गई कि दानपत्र प्रभावशून्य है।

इस पर इन अपीलकर्ताओं ने बंबई उच्च न्यायालय में अपील किया। अपील की सुनवाई मुख्य न्यायाधिपति छागला और न्यायाधीश शाह ने की। बंबई उच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि दानपत्र में लिखा है कि यह दान मैं अपनी स्त्री और ३ बच्चों को स्वाभाविक प्यार एवं वात्सल्य भावना के कारण दे रहा हूँ अतः अब यहाँ ये अपीलकर्ता जो उसके एक पक्ष हैं बाहरी साक्ष्य से यह प्रमाणित नहीं कर सकते कि वह हस्तांतरण बहुमूल्य प्रतिफल के बदले में किया गया था। जब वह साक्ष्य प्रतिग्राह्य ही नहीं हो सकता तो उसके गुणों पर विचार नहीं किया जा सकता और इसलिए अपील उत्सर्जित कर दी गई। इस न्यायालय में अपील करने के लिये प्रमाणपत्र प्रदान करने का प्रार्थनापत्र भी बंबई उच्च न्यायालय ने अस्वीकार कर दिया। तब इस न्यायालय द्वारा अपीलकर्ता को अपील करने की अनुमति प्रदान की गई। अतः यह अपील सुनवाई के लिये आई है।

यहाँ पर प्रमुख विचारणीय विषय है कि क्या प्रश्नगत् व्यवहार (ट्रैंजैक्शन) के वास्तविक प्रकृति को प्रमाणित करने के लिये अपीलकर्ताओं को मौखिक साक्ष्य देने का अधिकार है?

इसके लिये साक्ष्य अधिनियम की कुछ धाराओं पर विचार करना आवश्यक है। धारा ९१ में है कि किसी विलेख की अंतर्वस्तु को प्रधान साक्ष्य से प्रमाणित करना चाहिए और यह प्रधान साक्ष्य अपनी मूल प्रति में स्वतः वह विलेख ही है। धारा ९१ का प्रयोजन "सर्वोत्तम साक्ष्य नियम" से है। यह नियम गौण साक्ष्यों द्वारा प्रमाण देने पर रोक लगाता है केवल उन दशाओं को छोड़ कर जहाँ गौण साक्ष्य दिए जाने का विधान है।

धारा ९२ किसी विलेख के संबंध में मौखिक संविद् के साक्ष्य देने पर रोक लगाती है। इसका प्रभाव यह होता है कि जब पहले किसी विलेख की अंतर्वस्तु को प्रमाणित करने के लिये धारा ९१ के अंतर्गत स्वतः विलेख ही उपस्थित कर दिया जाता है तो उसके बाद धारा ९२ लागू होती है कि विलेख के प्रतिबंधों के बदलने, जोड़ने, घटाने या प्रतिकूल बात प्रमाणित करने के लिये मौखिक साक्ष्य स्वीकृत न किया जाय। यह नियम पक्षों या उनके हित के प्रतिनिधि के बीच लागू होता है। धारा ९१ और धारा ९२ एक दूसरे की पूरक हैं। एक के बिना दूसरी निरर्थक हो जाती है। किंतु एक अर्थ में धारा ९१ और धारा ९२ में अंतर है। धारा ९१ सभी विलेखों में समान रूप से लागू होती है जब कि धारा ९२ संपत्ति के हस्तांतरण प्रसंग से ही संबंध रखती है। धारा ९१ उभय पक्षीय और एक पक्षीय दोनों विलेखों में लागू होती है किंतु धारा ९२ केवल उभय पक्षीय है। इन पक्षों में या तो स्वतः पक्ष हों या उनके हित के प्रतिनिधि (रिप्रज़ेंटेटिव इन इंटरेस्ट) हों। जो व्यक्ति विलेख (डाकूमेंट) का पक्ष नहीं है वह विलेख के किसी अनुबंध में जोड़ने घटाने या उसे बदलने या उसके विरोध में मौखिक साक्ष्य दे सकता है। इसका प्रतिबंध केवल विलेख के पक्ष पर ही है कोई अन्य व्यक्ति विलेख के अनुबंध से बाध्य नहीं है और मौखिक साक्ष्य दे सकता है।

धारा ९९ में यह उपबंध स्पष्ट कर दिया गया है।

अब प्रश्न है कि जब विलेख के 'पक्ष' में उनके हित के प्रतिनिधि (रिप्रज़ेंटेटिव इन इंटरेस्ट) भी आते हैं तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या अधिकारीय नियोजी (आफिशल असाइनी) उक्त दिवालिया के हित का प्रतिनिधि है ? अधिकारीय नियोजी दिवालिया के हित् का प्रतिनिधि नहीं है। अधिकारीय नियोजी में सब संपत्ति निहित होती है तो वह उसका प्रयोग समस्त ऋण दाताओं के लाभ के लिये करता है। अपने जिस हस्तांतरण पर स्वतः दिवालिया आपत्ति नहीं कर सकता उसको अधिकारीय नियोजी चुनौती दे सकता है। इस प्रकार अधिकारीय नियोजी का अधिकार स्वयं दिवालिया से भी बढ़कर है और वह दिवालिया का प्रतिनिधि नहीं है न तो कहा जा सकता है कि कार्यवाही दिवालिया की ओर से की जा रही है।

जब अधिकारीय नियोजी दिवालिया के हित का प्रतिनिधि नहीं है तो इस मुकदमें में उत्तरवादी विलेख के अतिरिक्त भी मौखिक साक्ष्य दे सकता है जो धारा ९९ द्वारा अनुमित है।

श्री पुरुषोत्तम ने जो प्रश्न उठाया है उसपर विचार करना है। उनका कहना है कि यदि इन परिस्थितियों में मौखिक साक्ष्य अनुमित होगा तो वह व्यवहार (ट्रैंजैक्शन) की प्रकृति को ही बदल देगा। और ऐसा करना साक्ष्य अधिनियम के अध्याय ६ के उपबंधों के प्रतिकूल है। उनके कहने के अनुसार धारा ९१ के अंतर्गत न्यायालय के निरीक्षण के लिये स्वतः विलेख ही उपस्थित करना चाहिए इसका अर्थ हुआ कि ध्वनितार्थ में यह समस्त मौखिक अभिसाक्ष्य दिए जाने पर रोक लगाता है। यह तर्क मानने योग्य नहीं है कारण कि जैसा ऊपर कहा जा चुका है कि धारा ९१ और धारा९२ एक दूसरे की पूरक हैं। धा० ९१ सभी परिस्थितियों पर लागू नहीं हो सकती थी इसलिए धारा ९२ बनाई गई। इस मुकदमे की परिस्थिति में जब धारा ९२ लागू नहीं होती-तो साक्ष्य अधिनियम में कोई और दूसरी धारा नहीं है जो लागू हो सकेऔर इस प्रकार इस परिस्थिति में मौखिक अभिसाक्ष्य की प्रतिग्राह्यता को प्रभावित कर सके। धारा ९१ में है कि विलेख के अनुबंधों को प्रमाणित करने के लिये मौखिक अभिसाक्ष्य प्रतिग्राह्य नहीं होगा। यहाँ विलेख के अनुबंध तो स्वतः विलेख के उपस्थित करने से ही प्रमाणित हो गए अब यही बात रह जाती है कि मौखिक अभिसाक्ष्य देकर क्या इन अनुबंधों में परिवर्तन किया जा सकता है ? यह बात धारा ९१ में नहीं आती। यह धारा ९२ में आती है और जब धारा ९२ इसमें लागू नहीं होती तो कोई कारण नहीं कि मौखिक अभिसाक्ष्य स्वीकार क्यों न किया जाय। इस मौखिक अभिसाक्ष्य से यदि व्यवहार (ट्रैंजैक्शन) के अनुबंध बदल भी जायँ तो भी इसकी प्रतिग्राह्यता पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ेगा।

श्री पुरुषोत्तम ने एक दूसरा तर्क उपस्थित किया है। उन्होंने कहा है कि जो विलेख के पक्षों में नहीं हैं वे धारा ९९ के अंतर्गत किसी तत्कालीन अन्य संविद् के संबंध में साक्ष्य दे सकते हैं कि विलेख के लिखित अनुबंधों के अतिरिक्त कोई दूसरी बात तय हुई थी और इसका अभिप्राय हुआ कि यदि अन्य पक्ष को तत्संबंधी मौखिक साक्ष्य देने की स्वतंत्रता है तो परोक्ष में विलेख के पक्ष (इसमें हित के प्रतिनिधि भी हैं) को साक्ष्य देने की मनाही है।

यह बात ठीक नहीं है। ठीक स्थिति यह है कि यदि किसी मुकदमे में विलेख के पक्ष या उसके हित के प्रतिनिधि एक ओर हों और अन्य पक्ष दूसरी ओर हो तो इसमें दोनों पक्षों को मौखिक साक्ष्य देने की स्वतंत्रता है चाहे इस अभिसाक्ष्य द्वारा विलेख के अनुबंध बदल ही क्यों न जाय। मौखिक साक्ष्य के बहिष्कार का धारा ९२ वाला नियम पारस्परिक संबंध पर निर्भर है। पारस्परिक संबंध के यह प्रतिकूल होगा कि एक ही मुकदमे में जो पक्ष विलेख से संबंधित नहीं है उसे तो मौखिक साक्ष्य देने की अनुमति दी जाय और विलेख के पक्ष या उसके हित के प्रतिनिधि को जो कि मुकदमे में विरुद्ध पक्ष से हैं उन्हें मौखिक साक्ष्य देने की अनुमति न दी जाय। फिप्सन ने साक्ष्य पर जो पुस्तक लिखी है उसमें उन्होंने स्पष्ट कर दिया है कि अपरिचित (स्ट्रेंजर) को मौखिक साक्ष्य देने की अनुमति देना और पक्ष तथा उसके हित के प्रतिनिधि को उसी मुकदमे में ऐसा साक्ष्य देने से रोक रखना पारस्परिक संबंध के प्रतिकूल है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिणाम यह है कि इस मुकदमे की परिस्थिति में धारा ९२ सर्वथा लागू नहीं होती इसलिए अपीलकर्ताओं को अपने कथन के समर्थ में मौखिक साक्ष्य देने का अधिकार है।

उच्च न्यायालय का ध्यान इस विषय पर नहीं दिलाया गया। उच्च न्यायालय की डिग्री निराकृत की जाती है और यह अपील निर्वर्तन के लिये न्यायालय में भेज दी जाती है। परिव्यय अपील के परिणाम पर निर्भर करेगा।

—अपील स्वीकृत

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ सर्वो० न्या० ४६

१४ फरवरी १९५८

व्यवहार अपील सं० ३५०।१९५६

श्रीमती शैलबाला दासी — अपीलकर्ता

वि०

श्रीमती निर्मला सुंदरी दासी तथा अन्य—उत्तरवादीगण

(अपील सं० १५२।१९५५ दिनांक ६-८-१९५६ कलकत्ता से)।

(अ) व्यवहार प्रक्रिया संहिता (१९०८) आ० २२ नि० १०—धा० १४६—क्षेत्र—धारा १४६ के प्रयोजन के लिये अपील प्रक्रिया (प्रोसीडिंग) में आती है।

(ब) व्यवहार प्रक्रिया संहिता धारा १४६ का उद्देश्य—यह धारा पहले पहल १९०८ में व्यवहार प्रक्रिया संहिता में जोड़ी गई और प्रक्रामण (डिवोल्यूशन) तथा अभिहस्तांकन (एसाइनमेंट) से जो लोग अधिकारी हुए उनके लाभ के लिये यह धारा बढ़ाई गई इसलिए इसकी व्याख्या सामान्य रूप से करनी चाहिए कड़ाई से नहीं।

(स) व्यवहार प्रक्रिया संहिता (१९०८) धारा १४६—अपील करने का अधिकार के अर्थ में पहले की निवेशित अपील को जारी रखना भी आता है।

(द) संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम (१८८२) धारा ५२—वादकालीन क्रेता का अधिकार—डिग्री का बंधन वादकालीन क्रेता पर रहता है इसलिए अपने हित की रक्षा के लिये उसे अवसर देना चाहिए।

(य) व्यवहार प्रक्रिया संहिता (१९०८) आ० १ नि० १०, धारा १५१—आ० १ नि० १० में न्यायालय स्वतः या धारा १५१ के अंतर्गत अपने अधिकार का प्रयोग करके अपीलकर्ता को अपील में उत्तरवादी के स्थान पर रखने का आदेश दे सकता है।

न्यायमूर्ति टी० एल० वेंकटारामा अय्यर—

कलकत्ता उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता को अपील सं० १५२।१९५५ में जो उसके समक्ष चल रही थी अपीलकर्ता के रूप में अभिलेख पर लाए जाने का प्रार्थनापत्र अस्वीकार कर दिया था। इसी आदेश के विरुद्ध यह अपील है।

द्वितीय उत्तरवादी सुधीर कुमार मित्तर ने कलकत्ता शहर के अपने दो मकानों को श्रीमती निर्मला सुंदरी दासी के यहाँ ३००० रु० में बंधक रख दिया था। श्रीमती निर्मला सुंदरी दासी यहाँ प्रथम उत्तरवादी हैं। प्रथम उत्तरवादी ने इस बंधक के संबंध में वाद सं० १५८।१९३५ निवेशित किया और १९३५ में ही आरंभिक डिग्री प्राप्त कर लिया। १९३६ में इसमें अंतिम डिग्री पारित हुई।

कलकत्ता उच्च न्यायालय नियम के नि० २७ में है कि डिग्रीधारी को डिग्री पारित होने के ४ दिन के भीतर डिग्री तैयार करने के लिये प्रार्थनापत्र देना चाहिए तभी डिग्री तैयार की जा सकती है। यदि उपर्युक्त समय के भीतर प्रार्थनापत्र नहीं दिया गया तो जब तक न्यायालय आदेश न दे डिग्री तैयार नहीं की जा सकती।

इस नियम का महत्व इसलिए बढ़ जाता है कि जब तक प्रार्थनापत्र नहीं दिया गया या आदेश नहीं हुआ रहता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब तक डिग्री बनेगी नहीं; डिग्री के न बनने पर उसकी प्रमाणित प्रतिलिपि मिल नहीं सकती तथा जब तक प्रमाणित प्रतिलिपि नहीं मिल जाती तब तक निष्पादन की कार्यवाही आरंभ नहीं की जा सकती।

प्रथम उत्तरवादी ने डिग्री प्राप्त करने के बाद डिग्री बनाने के लिये कोई प्रार्थनापत्र नहीं दिया। वह १८ वर्ष तक चुप बैठी रही इसी बीच द्वितीय उत्तरवादी ने अपने दोनों मकानों को अपीलकर्ता को ६०००० रु० में बेच दिया। विक्रय विलेख में कहा गया कि मकान किसी भार (एनकंब्रैंस) के साथ नहीं बेचा जा रहा है। यह सन् १९५२ में बेचा गया।

प्रथम उत्तरवादी जो डिग्री पाकर अब तक चुप बैठी रही वह सहसा सतर्क हो उठी और डिग्री बनाने के लिये न्यायालय में प्रार्थनापत्र दिया। प्रार्थनापत्र स्वीकृत हुआ और डिग्री बनाने का आदेश दिया गया। सन् १९५४ में डिग्री बनकर तैयार हुई और तब उसने उसके निष्पादन की कार्यवाही आरंभ की।

इसका पता जब द्वितीय उत्तरवादी को चला तो वह रजिस्ट्रार के समक्ष उपस्थित हुआ और आपत्ति की कि डिग्री का निष्पादन अब काल बाधित है। इसपर रजिस्ट्रार को संदेह हुआ और उन्होंने इस अवधि के प्रश्न पर न्यायालय की संमति के लिये भेज दिया। न्यायालय ने निर्णय दिया कि डिग्री काल बाधित नहीं है। यह ए० आई० आर० १९५४ कलकत्ता ४४८ पर प्रतिवेदित है। इस निर्णय के विरुद्ध द्वितीय उत्तरवादी ने अपील सं० १५२।१९५५ निवेशित किया जो अभी तब विचाराधीन है।

इसी अपील (१५२।१९५५) में अभिलेख पर लाए जाने के लिये इस अपीलकर्ता ने एक प्रार्थनापत्र दिया क्योंकि अपीलकर्ता को पता चला कि यह द्वितीय उत्तरवादी जो अपील सं० १५२।१९५५ में अपीलकर्ता था उत्तरवादी से मिल गया है और अब वह अपील चालू नहीं रखेगा। इस प्रार्थना पत्र में था कि—

१—मैंने सन् १९५२ में मकानों को बिना किसी भार (एनकंब्रैंस) के खरीदा था।

२—प्रथम उत्तरवादी द्वारा डिग्री के निष्पादन की कार्यवाही नहीं की जा सकती कारण कि डिग्री काल बाधित है।

३—सुधीर कुमार मित्तर केवल हमारी ओर से हमारे लाभ के लिये लड़ रहे हैं और अपील प्रस्तुत किया है किंतु अब वे प्रथम उत्तरवादी से मिल गए हैं और लड़ना नहीं चाहते।

इसमें प्रार्थना थी कि या तो मुझे द्वितीय उत्तरवादी के स्थान पर प्रतिस्थापित कर दिया जाय या अतिरिक्त अपीलकर्ता बनाने का आदेश दिया जाय।

इस प्रार्थनापत्र का विरोध दोनों उत्तरवादियों ने किया। विरोध के लिये उनका कहना था कि हम लोगों में १७,६०० रु० में मामला तय करने की बातचीत हो चुकी है। इसका बंधन अपीलकर्ता पर भी है और उसका वह प्रार्थनापत्र संधार्य नहीं है।

अपीलकर्ता का प्रार्थनापत्र ३-८-१९५६ को अस्वीकार कर दिया गया।

इस पर अपीलकर्ता ने अनुच्छेद १३३ के अंतर्गत अपील करने की अनुमति के लिये प्रार्थनापत्र दिया। इस प्रार्थनापत्र के निर्वर्तन के समय कहा गया कि पहलेवाला प्रार्थनापत्र आ० २२ नि० १० में दिया गया था। उसमें यह बात मान्य थी कि अपील जब विचाराधीन थी उस बीच अपीलकर्ता के पक्ष में हस्तांतरण नहीं हुआ था अतः उक्त विषय के अंतर्गत वह प्रार्थनापत्र नहीं दे सकता था। दूसरी बात यह है कि विकल्पतः यह प्रार्थना कि आ० २२ नि० १० में बिना प्रतिस्थापना के ही अपीलकर्ता को अभिलेख पर लाने का आदेश दिया गया महत्वपूर्ण है तो अवश्य किंतु आरंभिक कार्यवाही में इस पर कोई प्रश्न नहीं उठाया गया और इसलिए अपील में इस प्रश्न के उठने पर अनुच्छेद १३३ के अंतर्गत प्रमाणपत्र नहीं दिया जा सकता। यह बात और भी दृढ़ हो जाती है कि जिस आदेश के विरुद्ध अपील करने का विचार है वह अंतिम आदेश नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके बाद अपीलकर्ता ने संविधान के अनुच्छेद १३६ के अंतर्गत विशेष अनुमति प्राप्त किया और इस प्रकार यह अपील सुनवाई के लिये आई।

यहाँ अपीलकर्ता का कथन है कि हमारा प्रार्थना पत्र आ० २२ नि० १० में संधार्य है कारण कि वाद सं० १५८।१९३५ में डिग्री १९५४ में बनी इसलिए डिग्री बनने के पहले तक वाद विचाराधीन था। हस्तांतरण १९५२ में हुआ अतः वाद की चालू अवस्था में हस्तांतरण हुआ। उत्तरवादी का कहना है कि यदि मान भी लिया जाय कि हस्तांतरण के समय वाद चल रहा था तो भी परिणाम में कोई अंतर नहीं पड़ेगा क्योंकि एक तो आरंभिक न्यायालय में इसके पहले ऐसा प्रार्थना पत्र नहीं दिया गया, दूसरे अपील के न्यायालय में यह प्रार्थना पत्र स्वीकार नहीं किया जा सकता कारण कि हस्तांतरण अपील करने के पहले ही हो चुका है, अपील की सुनवाई के बीच नहीं हुआ।

हमारे विचार से यह प्रार्थनापत्र व्य० प्र० सं० की धारा १४६ के अंतर्गत पड़ता है और स्वीकार किया जा सकता है।

ए० आई० आर० १९१९ मद्रास ७५५ में निर्णय हुआ था कि इस धारा के प्रयोजन के लिये अपील प्रक्रिया (प्रोसीडिंग) में आती है। "अंतर्गत अभ्यर्थना" (क्लेमिंग अंडर) का क्षेत्र विस्तृत है और इसमें प्रकामण (डिवोल्यूशन) और अभिहस्तांकन (एसाइनमेंट) जिसकी चर्चा आ० २२ नि० १० में है, आ जाता है। ए० आई० आर० १९५५ सुप्रीम कोर्ट ३७६ के अनुसार यह सिद्धांत निश्चित हो चुका है कि जिस किसी को अभिलेख पर आने का अधिकार हो परंतु उस विचाराधीन वाद या प्रक्रिया (प्रोसीडिंग) में आ० २२ नि० १० के अंतर्गत न आया हो तो तद्‌अंतर्गत पारित डिग्री या आदेश के विरुद्ध अपील करने का उसे अधिकार होगा। किंतु प्रतिबंध है कि ऐसी अपील निवेशित करने का अधिकार उसके नियोजक (असाइनर) को भी रहा हो। यहाँ इस अपीलकर्ता का द्वितीय उत्तरवादी नियोजक (असाइनर) है इसलिए अपीलकर्ता को अपील निवेशित करने में व्यवहार प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत कोई रुकावट नहीं है।

इसके बाद उत्तरवादी ने इस पर दूसरी आपत्ति की कि अपीलकर्ता को अपील निवेशित करने का अधिकार हो सकता है कि उपयुक्त प्रमाणों के आधार पर हो किंतु द्वितीय उत्तरवादी द्वारा निवेशित अपील को चालू रखने के लिये अपीलकर्ता को अभिलेख पर आने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

यह कथन मानने योग्य नहीं है क्योंकि धारा १४६ का इतना संकुचित अर्थ नहीं हो सकता। १९०८ में यह धारा इसीलिए व्य० प्र० सं० में आई कि प्रकामण और अभिहस्तांकन द्वारा जिन्होंने संपत्ति पाई है उसके संबंध में उनके अधिकार बढ़ा दिए जायँ। धारा का प्रयोजन हितकारी है इसलिए इसका अर्थ बहुत कड़ाई से नहीं प्रत्युत उदारता से करना चाहिए। ए० आई० आर १९२१ मद्रास ५९६, ए० आई० आर० १९५२ मद्रास ५१ में निर्णय हुआ है कि अपील निवेशित करने के अधिकार में अपील को चालू रखने का अधिकार है। अतः अपील सं० १५२।१९५५ में अपीलकर्ता का अभिलेख पर लाए जाने का प्रार्थनापत्र धारा १४६ के अंतर्गत संधार्य है।

इसके तत्व पर विचार करने से यही आता है कि अपीलकर्ता का अभिलेख पर आना अनिवार्य है। उसने ६०००० रु० में मकान खरीदा है। अवधि के प्रश्न के अतिरिक्त डिग्री के संबंध में और भी प्रश्न हैं जिनके निर्णय में अपीलकर्ता का अर्थ है—जैसे कितना रुपया और कैसे तय हुआ? अपीलकर्ता ने मुकदमे के चलते रहने के बीच मकान खरीदा है इसलिए प्रथम उत्तरवादी यदि उस डिग्री का निष्पादन करता है तो उसका बंधन इस पर और एकमात्र इसी अपीलकर्ता पर होगा। इसलिए न्याय यही कहता है कि अपने अधिकारों की रक्षा के लिये अपीलकर्ता को अवसर प्रदान किया जाना चाहिए।

अतः नीचे के न्यायालय का आदेश निराकृत किया जाता है और आदेश दिया जाता है कि अपील

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सं० १५२।५५ में अपील कर्ता को अतिरिक्त अपीलकर्ता के स्थान पर रखा जाय। सुधीर कुमार मित्तर ने लड़ना छोड़ दिया है इसलिए दो विरोधी दावेदारों का अपीलकर्ताओं में रहने से ऐसा प्रतीत होता है कि कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए किंतु किसी समय यदि आवश्यक हो तो आ० १ नि० १० या धारा १५१ के अंतर्गत अपने अधिकारों का प्रयोग करते हुए न्यायालय जैसा ए० आई० आर० १९४० मद्रास ६६ में किया गया था, इस अपील में सुधीर कुमार मित्तर को द्वितीय उत्तरवादी में रख सकता है।

—अपील स्वीकृत

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ सर्वो० न्यायालय ५२

१४ फरवरी १९५८

आपराधिक अपील सं० १२८।१९५५

उत्तर प्रदेश राज्य — अपीलकर्ता

वि०

सी० तोबित तथा अन्य — उत्तरवादीगण

(ए० आई० आर० १९५५ इलाहाबाद ४७३ से)

(अ) परिनियम की व्याख्या—संदेहजनक शब्दों का अर्थ किस प्रकार किया जाय—

शब्द का अर्थ व्याकरण एवं व्युत्पत्ति के आधार पर ही नहीं करना चाहिए वरन् इसकी व्याख्या अधिनियम के विषय एवं विधान मंडल के उद्देश्य को ध्यान में रख कर करना चाहिए।

(ब) दंड प्रक्रिया संहिता (१८९८) धा० ४१९ में प्रयुक्त 'प्रतिलिपि' (कापी) शब्द का अभिप्राय प्रमाणित प्रतिलिपि (सर्टीफाइड कापी) से है।

मुख्य न्यायाधिपति एस० आर० दास—

इसमें उत्तरवादियों का अभियोजन दं० प्र० सं० की धा० १४७, ३०२, ३२५, और ३२६ के अंतर्गत हो रहा था। गोरखपुर के न्यायाधीश ने इन सबको २४ जुलाई सन् १९५३ को छोड़ दिया। उत्तरप्रदेश राज्य ने दोषमुक्ति के विरुद्ध दंड प्रक्रिया संहिता की धारा ४१७ के अंतर्गत उच्च न्यायालय में अपील निवेशित करना चाहा। अवधि अधिनियम के अनुच्छेद १५७ के अंतर्गत दोषमुक्ति के विरुद्ध ऐसी अपील निवेशित करने के लिये दिया गया है कि दोषमुक्ति की तिथि के ६ महीने के भीतर निवेशित हो सकती है। यह अवधि २४ जनवरी १९५४ को समाप्त हुई। २४ जनवरी को रविवार था इसलिए १५ जनवरी को सरकार ने अपील निवेशित किया। अपील के स्मृतिपत्र के साथ निर्णय की केवल सादी प्रतिलिपि संलग्न की गई।

उच्च न्यायालय के कार्यालय ने इस पर तुरत लिखा कि जो प्रतिलिपि दी गई है वह प्रमाणित प्रतिलिपि नहीं प्रतीत होती। इसपर जब अभिलेख उच्च न्यायालय में मँगा लिया गया और जब सरकार की ओर से निर्णय की प्रमाणित प्रतिलिपि मिलने पर इसे उच्च न्यायालय में प्रस्तुत किया गया तो न्यायाधीश ने आदेश दिया कि इसे स्वीकार कर लिया जाय और सरकार को ३ दिन का समय दिया जाय कि भारतीय अवधि अधिनियम की धारा ५ के अंतर्गत है विलंब को क्षमा करने के लिये प्रार्थनापत्र दे। अतः सरकार अपीलकर्ता ने बिलंब को क्षमा करने के लिये प्रार्थनापत्र दिया और आदेश हुआ कि उचित आदेश पारित करने के लिये इसे विभागीय न्यायासन के समक्ष रखा जाय।

यह प्रार्थनापत्र विभागीय न्यायासन के समक्ष निर्वर्तन के लिये आया। इसमें एन० यू० बेग तथा एम० सी० देसाई न्यायमूर्तिगण थे। दोनों न्यायाधीश इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि अवधि अधिनियम की धारा ५ के अंतर्गत समय बढ़ाने का कोई आधार नहीं है और इसलिए प्रार्थनापत्र अस्वीकृत हुआ। किंतु इसमें सरकार की ओर से कहना था कि चाहे जो हो अपील के स्मृतिपत्र के साथ निर्णय की सादी प्रतिलिपि देना दं० प्र० सं० की धारा ४१९ के अनुबंधों का पूर्ण पालन है। इस प्रश्न पर दोनों न्यायाधीशों में मतभेद रहा। न्यायमूर्ति देसाई का विचार था कि धारा ४१९ के लिये सादी प्रतिलिपि का देना पर्याप्त है जब कि न्यायमूर्ति बेग का कहना था कि सादी प्रतिलिपि पर्याप्त नहीं है। अतः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाले और भारवाही पशुओं के वध को रोकने का उपाय करेगा।'

इस निषेधाज्ञा से गोवध निरोध अधिनियम की उत्पत्ति हुई है जैसा कि उसके 'उद्देश्य और कारण' में के निम्नलिखित प्रकरण से प्रगट हैं—

"संविधान का अनुच्छेद ४८ राज्य सरकार को आधुनिक और वैज्ञानिक रीति से कृषि और पशु पालन को संगठित करने तथा विशेष रूप से उनकी संतान के संरक्षण और संवर्द्धन और गाय और उनकी संतान की हत्या के रोकने का उपाय करने का आदेश करता है··· इस अनुभव और विचार की दृष्टि से कि गाय और उनकी संतान की अवश्य रक्षा होनी चाहिए, इसलिए कि दूध, बैल और खाद मिलते रहें, गोहत्या पर संपूर्ण रोक लगाना अनुलंघनीय हो जाता है"

इस न्यायालय को विदित है कि समाज का एक बहुत बड़ा अंग गाय को देवता मानता और उसको धार्मिक संमान के प्रकाशमंडल (हालो) से परिवेष्टित करते हैं। पर अधिनियम के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि वह यत्नपूर्वक (सेडलसली) विषय के धार्मिक और भावुक पक्ष की उपेक्षा करता है, जैसा कि एक असांप्रदायिक राज्य में होना अनिवार्य हैं, वह उसे एकमात्र एक आर्थिक साध्य की भांति देखता है जो हमारे जैसे कृषि अर्थ व्यवस्था के लिये एक वजनी विचार है। उसका मुख्य उद्देश्य गोवंश की वृद्धि तथा दूध बैल और खाद की रक्षा करके आर्थिक उन्नति करना है।

अधिनियम के कतिपय उपबंधों के अवलोकन से विदित है कि वह केवल गाय और उसके वंश की हत्या और गोमांस की विक्री और परिवहन (ट्रांसपोर्ट) को ही रोकता है, गो मांस के रखने और खाने के लिये दंड नहीं हैं। वास्तव में धारा ५ एक सद्भावी यात्री को गोमांस के उत्पादन को वायुयान अथवा रेलों द्वारा उपभोग के लिये पहुँचाने की अनुमति देता है, साथ ही आयातीय (इंपोर्टेड) मुहर लगे पात्रों में गोमांस के बेचने में कोई रुकावट नहीं रखी गई है।

इसके अतिरिक्त यह अनुभव करते हुए कि किसी अवस्था में गाय की हत्या न होनी चाहिए, इसके लिये उपबंध धारा ४ में की गई है। और यद्यपि गोमांस का विक्रय वर्जित है किंतु उसकी भेंट वर्जित नहीं है। अधिनियम के अंतर्गत अपराधों के लिये धारा ८ (१) में जो दंड अनुविहित है वह बहुत प्रकाशदायक है। अधिकतम दंड दो वर्ष की कड़ी सजा १०००) अर्थ दंड के सहित है और अल्पतम है देश का सब से छोटा सिक्का। नितांत स्पष्टतः अधिनियम के अंतर्गत अपराधों को विधान मंडल उच्च मात्रा की गंभीरता से नहीं देखता। सुझाव यह रखा गया है कि यतः धारा ६ अपराध को बिना जमानती बना देती है, इसे बहुत जघन्य (हेनस) मानना चाहिए।

किंतु दंड प्रक्रिया की धारा ३२६, ३५६, ३७६, ३८०, ४०६, ४११, ४१४, ४५२, ४५७ तथा ५०५ के अपराध भी बिना जमानती हैं किंतु नित्य प्रति इन अपराधों की अन्वीक्षा मैजिस्ट्रेट लोग कर रहे हैं और साधारण परिस्थिति में जमानत दे रहे हैं और जो प्रस्तुत विषय में दंड दिया गया है वैसा दंड देने का स्वप्न भी नहीं देखते और प्रथम अपराधी के साथ तो विशेष नर्मी का व्यवहार होता है। अपराध के बिना जमानती स्वरूप का आधार लेकर जो प्रतर्क किया गया है वह इस प्रकार अवश्य ही असंधार्य (अनटेनेबुल) है।

(१८) इसके अतिरिक्त दूसरे भी संबंद्ध विचार हैं। संसार के कतिपय देशों का गोमांस प्रधान आहार है। भारत में बहुत वर्गों में यह निर्धनों का मांस है। कृषि, परिवहन और दूध उत्पादन के लिये भैंस का भी वही मूल्य है जो गाय का है किंतु भैंस की हत्या और उसके मांस की विक्री और परिवहन पर कोई रुकावट नहीं है। गो हत्या निरोध अधिनियम बहुत ही आधुनिक विधायन है और अभी ही हाल में ६ जनवरी १६५६ को प्रभाव में लाया गया है।

प्रार्थियों का यह अपराध ४ चार महीने पीछे का है अर्थात् ४ मई सन् ५६ का। मैं अभिरुचि के साथ आलोकन करता हूँ कि इसी वर्ष के १४ फरवरी को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्णीत आपराधिक पुनर्निरीक्षण सं० १६७५ तथा १७१७ सन् ५६ में विचारपति श्रोक ने. विशुद्ध इसी आधार पर दोषसिद्ध व्यक्तियों का कारावास दंड घटा कर उतने ही समय का कर दिया जितना वे काट चुके थे। जहाँ तक मुझे विदित है देश के कतिपय राज्यों में गो हत्या पर कोई रोक नहीं है। इस प्रकार की हत्या नैतिक दुराचार (मारल टर्पीट्यूड) नहीं है।

ऐसा कोई सुझाव नहीं है कि प्रार्थियों ने ऐसा कुछ कार्य किया जिससे उनके सहनागरिकों की धार्मिक भावना को चोट पहुँची हो; उदाहरण के लिए गाय को सड़कों पर प्रदर्शित करते चलना, अथवा जनता में उसकी हत्या करना अथवा उसके रक्त और मांस को जनता की दृष्टि में खोल रखना। इसके विरुद्ध अभियोजक स्वयं स्वीकार करते हैं कि जो कुछ उन सबों ने किया फुल्लू के घर में गुप्त रूप में।

इसके सिवा हत्या विशुद्ध आहार के निमित्त हुई थी अनुमानतः इस कारण कि भेंड़ का मांस अथवा अंडे से बना आहार बहुत मँहगा है और वे साधारण स्थिति के ग्रामीण हैं। इसके सिवा यह भी नहीं दिखाया गया है कि गाय उनके सिवा किसी दूसरे की थी अथवा उसका बध क्रूर और असामान्य रीति से किया गया, न किसी ने यही कहा है कि आर्थिक उपयोग की रही अथवा नहीं। अंततः यह उनका प्रथम अपराध था।

(१९) ऐसी परिस्थिति में अट्ठारह महीनें का कठोर कारावास, प्रार्थियों के किए अपराध के गांभीर्य से संगत नहीं है। जान पड़ता है कि केवल इस बात ने कि गो हत्या हुई है सर्वोच्च न्यायालय के शब्दों में निम्न न्यायालयों को ऐसा उद्विग्न कर दिया कि संतुलन का सभी भाव जाता रहा। प्रत्येक व्यक्ति को ५०) या इसी के समान अर्थ दंड देना अपराध के अनुरूप होता।

(२०) यह भी संभव है कि गाय मारकर फुल्लू ने अतिरिक्त मांस को अपने मित्रों को भेंट करने का विचार किया था; उस अवस्था में भी प्रार्थीगण किसी अपराध के दोषी नहीं हुए। जब तक अभियोजक इस आकस्मिकता को हटाते नहीं प्रार्थी गो हत्या निरोधक अधिनियम के दोषी नहीं ठहराए जा सकते।

(२१) किसी दूसरे साक्ष्य का एक अंश भी न होने के कारण, प्रार्थियों की दोषसिद्धि किसी भी साक्ष्य पर अवलंबित नहीं है।

(२२) यदि मैं प्रार्थियों की सजा बहाल करने को होता तो ५०) प्रत्येक को अर्थ दंड पर्याप्त मानता। किंतु यतः मैं मानता हूँ कि ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है जिस पर वे दोषी ठहराए जा सकें, मैं इस पुनर्निरीक्षण को स्वीकार करता हूँ, उनकी दोषसिद्धि और दंड आज्ञा को उत्सादित करके उन्हें मुक्त करता हूँ। इसके द्वारा उनकी जमानत और मुचलिका उन्मुक्त (डिस्चार्ज्ड) होती है।

पुनर्निरीक्षण स्वीकृत

——

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ इलाहाबाद

उच्च न्यायालय ९९

एस० ए० सं० १५७९, १९५४, २६ फरवरी १९५८

विश्वनाथ साहु — अपीलकर्ता

वि०

प्रयागदीन तथा अन्य — उत्तरवादीगण

वाराणसी के अतिरिक्त व्यवहार न्यायाधीश के दिनांक १९-८-५४ के आदेश के विरुद्ध द्वितीय अपील

रजिस्ट्रेशन अधिनियम १९०८, धा० १७ (१) (बी०)—व्य० प्र० सं० के आ० ४१ नि० ६ के अंतर्गत प्रतिभूति बंध का दिया जाना और तदनुसार सौ रुपए से अधिक के मूल्य की अचल संपत्ति का बंधक किया जाना—अधिनियम की धा० १७ (२) के अंतर्गत प्रतिभूति बंध का रजिस्ट्रेशन आवश्यक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यायमूर्ति, राय—

मुकदमें के तथ्य जिनके कारण यह अभिदेश किया गया वे इस प्रकार हैं कि किसी प्रयागदीन ने वाद सं० ४६१।१९४६ में रुपए की आज्ञप्ति प्राप्त किया। यह आज्ञप्ति राम अचल के विरुद्ध वाराणसी के मुंसिफ के न्यायालय द्वारा पारित की गई थी। रामअचल ने इसके विरुद्ध जिला न्यायाधीश के न्यायालय में अपील किया और इसके साथ उसने निष्पादन को स्थगित करने की प्रार्थना की। विद्वान् न्यायाधीश ने निष्पादन को स्थगित करने का आदेश इस प्रतिबंध के साथ दिया कि पुनरावेदक १७५०) का प्रतिभूतिबंध प्रस्तुत करे। विश्वनाथ साहु इसका प्रतिभू (श्योरटी) हुआ।

जब अपील उत्सर्जित कर दी गई तो आज्ञप्तिधारी ने प्रार्थना की कि जो मकान प्रतिभूति में दिया गया है उसे बेच कर आज्ञप्ति का रुपया चुकता करने का आदेश दिया जाय। विश्वनाथ साहु ने इस प्रार्थनापत्र पर कई आपत्तियाँ कीं जिनमें एक आपत्ति यह थी कि प्रतिभूति बंध की रजिस्ट्री नहीं हुई है इसलिए वह अवैध है तथा उसके आधार पर मकान के विरुद्ध कोई भी कानूनी कार्यवाही नहीं की जा सकती।

विद्वान् मुंसिफ ने विश्वनाथ का यह कथन मान लिया और प्रार्थनापत्र उत्सर्जित कर दिया। आदेश हुआ कि आज्ञप्ति की धनराशि मकान बेचकर प्राप्त नहीं की जा सकती। इस आदेश के विरुद्ध अपील की गई। विद्वान् व्यवहार न्यायाधीश ने इस अपील को सुना और निर्णय दिया कि जिस प्रतिभूतिबंध को न्यायालय ने स्वीकार किया है उसकी रजिस्ट्री रजिस्ट्रेशन अधिनियम की धा० १७ (२) (६) में नहीं की जा सकती इस लिए आज्ञप्तिधारी उस संपत्ति के विरुद्ध कार्यवाही कर सकता है जो प्रतिभूतिबंध में दी गई है।

इस आदेश के विरुद्ध विश्वनाथ साहु ने इस न्यायालय में अपील किया। यह अपील विद्वान् एकाकी न्यायाधीश के समक्ष सुनवाई के लिये आई किंतु इस विषय पर अनेक रूलिंग्स में परस्पर विरोध होने पर विद्वान् न्यायाधीश ने संमति के लिये न्यायासन के समक्ष भेज दिया। प्रश्न यही है कि वह बंधपत्र जिसके द्वारा अचल संपत्ति प्रतिभूति में दी जाती है वह यदि रजिस्ट्रेशन अधिनियम के अंतर्गत रजिस्टर्ड नहीं है तो ऐसा बंधपत्र वैध एवं लागू होने योग्य है कि नहीं।

इसमें संदेह नहीं कि इस विषय पर बहुत मतभेद है। अनेक न्यायालयों ने इस विषय पर जो निर्णय दिया है वे दो भागों में विभाजित किए जा सकते हैं। पहला व्य० प्र० सं० आ० ४१ नि० ५ है न और दूसरा लघुवाद न्यायालय अधिनियम धा० १७ (१) का परंतुक है। पहलेवाली में है कि अपील करने पर ही इसका परिणाम स्वतः यह नहीं होगा कि निष्पादन स्थगित रहे। निष्पादन स्थगित रखने के लिये अपील के साथ साथ अलग प्रार्थनापत्र देना चाहिए और जब तक न्यायालय प्रतिभू नहीं माँग लेता स्थगित रखने का आदेश नहीं दिया जा सकता। लघुवाद न्यायालय अधिनियम की उक्त धारा के परंतुक का अभिप्राय है कि एकपक्षीय आज्ञप्ति के विरुद्ध पुनर्विचार का प्रार्थनापत्र यदि दिया जाय तो प्रार्थनापत्र देते समय या तो आज्ञप्ति का रुपया न्यायालय में जमा कर दिया जाय या प्रतिभूति दी जाय कि पश्चात्वर्ती आज्ञप्ति का पालन किया जायगा।

इस बात के समर्थन में निम्नलिखित कई निर्णय हुए हैं कि १००) से अधिक मूल्य की अचल संपत्ति की प्रतिभूति देने में प्रतिभूतिबंध की रजिस्ट्री की आवश्यकता नहीं है। ए० आई० आर १९२८ बंबई ४२ में निर्णय हुआ था कि प्रतिभूति बंध न्यायिक कार्यवाही का एक भाग है और इसमें रजिस्ट्रेशन अधिनियम की धारा १७ लागू नहीं होती। इसके लिये २० इलाहाबाद १७१, ३२ मद्रास ५०८ और ए० आई० आर० १९१९ प्रिवी कौंसिल ७९ की निर्भरता ली गई। ए० आई० आर० १९३४ लाहौर (पूर्ण न्यायासन) ने भी ऐसा ही निर्णय दिया था कि यह प्रतिभूतिबंध न्यायिक कार्यवाही का एक अंग है अतः इसकी रजिस्ट्री की आवश्यकता नहीं है तथा उस अचल संपत्ति से आज्ञप्ति का रुपया वसूल किया जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ए० आई० आर० १६४७ नागपुर २६ में भी निर्णय हुआ था कि जो लेख न्यायिक कार्यवाही में आते हों उनकी रजिस्ट्री की आवश्यकता नहीं है और आ० ४१ नि० ५ में बंधपत्र का निष्पादन किसी अचल संपत्ति में अधिकारों का हस्तांतरण नहीं है और जब तक न्यायालय द्वारा यह स्वीकार नहीं हो जाता बंध पत्र लागू नहीं होता अतः ऐसे बंधपत्र की रजिस्ट्री की आवश्यकता नहीं है। ए० आई० आर० १६५३ ट्रावन-कोर ३६४ में भी ऐसा ही निर्णय हुआ था कि इसकी रजिस्ट्री की आवश्यकता नहीं है।

अब उन प्रमाणों पर विचार करना है जिनमें उपर्युक्त निष्कर्ष के विरुद्ध निर्णय दिया गया है। १३५ सदर लैंड वीकली रिपोर्टर ४१ में निर्णय हुआ था कि जब तक प्रतिभूति बंध न्यायालय द्वारा स्वीकार नहीं कर लिया जाता तब तक उसकी रजिस्ट्री की आवश्यकता नहीं है और उस समय के पहले वह केवल इस बात के पता लगाने के लिये स्वीकार किया गया रहता है कि जो प्रतिभूति दी गई है वह ठीक है कि नहीं।

ए० आई० आर० १६२३-इलाहाबाद २७० बदलू सिंह वि० पंथू सिंह में लघुवाद न्यायालय में एकपक्षीय आज्ञप्ति के हटाने के समय १०० रुपए से अधिक मूल्य की अचल संपत्ति को प्रतिभूति में दिया गया था और इसमें निर्णय हुआ कि यह बंधक रूप में है तथा बिना रजिस्ट्री के यह अवैध है।

आई० एल० आर० ३१ मद्रास ३३० में जो प्रति-भूति (सेक्योरिटी) दी गई थी उसकी रजिस्ट्री नहीं हुई थी किंतु न्यायालय ने उस पर लिख दिया था 'प्रतिभूति स्वीकृत'। इसमें निर्णय हुआ था प्रतिभूति बंध संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धा० ५८ के अंतर्गत बंधक है और रजिस्टर्ड न होने से अधिनियम की धा० ५६ के अंतर्गत वैध बंधक नहीं है इसलिए संपत्ति पर इसका कुछ प्रभाव नहीं पड़ेगा। इसमें निर्णय हुआ था कि रजिस्ट्रेशन अधिनियम धा० १७ के अंतर्गत इसकी रजिस्ट्री होना अनिवार्य है तथा उक्त अधिनियम की धा० १७ के अपवाद (१) में यह नहीं आ सकता। "प्रतिभूति स्वीकृत" का तात्पर्य इतना ही हुआ कि न्यायालय ने प्रतिभूति को पर्याप्त माना है; इसका अर्थ यह नहीं हुआ कि इस आदेश द्वारा प्रतिभूति वैध हो गई। ए० आई० आर० १६३५ रंगून १६८ में था कि न्यायालय प्रतिभूति के केवल तत्व को ही स्वीकार करता है वह लेख्य को वैध, लागू होने योग्य एवं स्वत्व का प्रतिग्राह्य लेख्य नहीं बना सकता।

निसार अहमद वि० सम्राट् ए० आई० आर० १६४५ इलाहाबाद ३८६ में दं० प्र० सं० की धारा ४६६ और ५१४ के अंतर्गत प्रतिभू का बंधपत्र विचारा धीन था। निर्णय हुआ कि बिना रजिस्ट्री के बंधपत्र अवैध है और किसी अचल संपत्ति पर इसका कोई प्रभाव नहीं रहेगा।

ए० आई० आर० १६३४ लाहौर १३८ में न्याय-मूर्ति टेकचंद ने अपना विचार व्यक्त किया था कि बंध पत्र में दी गई संपत्ति के विषय में उसका निष्पादन ही अधिकार के हस्तांतरण को प्रभावित नहीं करता वरन् इस बंधपत्र को स्वीकार करनेवाले न्यायालय के आदेश द्वारा इन अधिकारों का सृजन होता है।

अत्यंत संमान के साथ यह विचार सहमत होने योग्य नहीं है। न्यायालय का आदेश बंधपत्र के तत्व का अनुमोदन करता है उसके स्वरूप के बारे में यह कुछ नहीं कहता। यदि रजिस्ट्रेशन का नियम न हो तो बहुत से बेईमान व्यक्ति प्रतिभूति के संबंध में धोखा दे सकते हैं। रजिस्ट्री के लिये परिनियम का स्पष्ट उपबंध है अतः रजिस्ट्रेशन अधिनियम की धा० १७ (१) बी० के अंतर्गत इसे रजिस्टर्ड होना चाहिए तथा धा० १७ (२) (६) के अंतर्गत यह रजिस्ट्री से मुक्त नहीं किया गया है।

इन परिस्थितियों में उपर्युक्त भाँति इस अभिदेश का उत्तर दिया जाता है और यह उत्तर संबद्ध न्यायासन के समक्ष रख दिया जाय।

——

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ इलाहाबाद उच्च न्यायालय ९६

देसाई और वेग न्यायमूर्ति गण

बाबू हनुमानप्रसाद तथा अन्य — अपीलकर्तागण

वि०

श्रीमती इंद्रावती तथा अन्य — उत्तरवादीगण

मथुरा के अतिरिक्त व्यवहार न्यायाधीश के निर्णय दिनांक १२-८-१९४१ से प्रथम अपील सं० २३२।१९४२ दिनांक २५-६-१९५७

अ—हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम (१९५६) धा० १४—अतीतप्रभावी (रिट्रास्पेक्टिव) और भविष्य प्रभावी (प्रासपेक्टिव) प्रभाव-यदि विधवा ने अधिनियम के लागू होने के पहले ही संपत्ति का हस्तांतरण कर दिया है तो यह धारा लागू नहीं होती।

ब—हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम (१९५६) धा० १४-१५—अधिनियम के पहले ही यदि विधवा ने संपत्ति का हस्तांतरण कर दिया है तो उसमें प्रत्यावर्ती (रिवर्सनर्स) और उनके उत्तराधिकारियों का अधिकार नहीं है—अधिनियम के पहले ही यदि घोषणात्मक आज्ञप्ति (डिक्लेरेटरी डिक्री) प्राप्त कर ली गई है तो उसकी वैधता-

न्यायमूर्ति देसाई—

वादियों ने इस घोषणा के लिये एक वाद निवेशित किया था कि श्रीमती भगवती के मरने के पश्चात् उनके द्वारा प्रतिवादियों के पक्ष में किए गए हस्तांतरण का बंधन प्रत्यावर्ती गण (रिवर्सनर्स) पर नहीं होगा। वादियों का कहना था कि श्री कल्याण सिंह संपत्ति का अंतिम स्वामी था और श्रीमती भगवती उसकी विधवा स्त्री है जो उसके मरने पर संपत्ति के धारण में आई है तथा हम लोग श्री कल्याण सिंह के उत्तराधिकारी हैं। श्रीमती भगवती के दो लड़कियाँ श्रीमती इंद्रावती (वादी उत्तरवादी) तथा श्रीमती राधा रानी प्रतिवादी उत्तरवादी हैं।

कल्याण सिंह की मृत्यु के बाद उस संपत्ति के दावेदारों के बीच झगड़ा हुआ और कई आपराधिक मामले भी चले। इस झगड़े को निपटाने के लिये दिनांक १०-१०-१९१९ को भगवती ने एक इकरारनामा लिखा। इसी इकरारनामा के बारे में वादियों का कहना है कि वह इकरारनामा प्रतिवादी-अपीलकर्ता के पक्ष में हस्तांतरण के समान है और प्रत्यावर्ती रिवर्सनर्स पर उनका बंधन नहीं है।

प्रतिवादीगण इसमें लड़े किंतु विद्वान व्यवहार न्यायाधीश ने वाद में आज्ञप्ति दे दी।

अपील करने के पश्चात् हिंदू उत्तराधिकार—अधिनियम (३०/१९५६) आया तथा उसकी धारा ६, ८ और १४ ने हिंदू विधि में महान् परिवर्तन किया। इन्हीं उपबंधों के आधार पर इस अपील में कहा गया है कि—१—हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा १४ द्वारा श्रीमती भगवती संपत्ति की पूर्ण स्वामिनी हो गई और बिना किसी प्रतिबंध के वह किसी को भी संपत्ति का हस्तांतरण कर सकती है। २—प्रत्यावर्तीगण (रिवर्सनर्स) जैसा कोई व्यक्ति नहीं रह गया इसलिए उक्त प्रकार की घोषणा की आज्ञप्ति नहीं दी जा सकती।

इसके उत्तर में कहा गया है कि धारा १४ केवल उसी संपत्ति में लागू होती है जो इस समय उसके धारण में है; वह संपत्ति इसमें नहीं आती जिसका उसने पहले ही हस्तांतरण कर दिया है।

इसके पहले हिंदू विधि में, जो प्रथा से शासित था विधवा की एक अनुपम स्थिति थी। अनेक निर्णय भी हो चुके हैं कि उसकी संपदा केवल जीवन पर्यंत (लाइफ स्टेट) की न थी वरन् वह हस्तांतरिती को पूर्ण अधिकार दे सकती थी और कोई इस हस्तांतरण को चुनौती नहीं दे सकता था। केवल कुछ ही बंधन के साथ वह संपत्ति की पूर्ण स्वामिनी थी (ए० आई० आर १९५४ श्री सर्वोच्च न्यायालय ६१)। विधवा एक ऐसी स्थिति में है जिसके लिये अंग्रेजी विधि में कोई उपयुक्त शब्द और उसका समान पदी नहीं है। जैसी स्थिति में हिंदू विधवा है उसके लिये अंग्रेजी विधि में 'फी स्टेट' 'स्टेट फार लाइफ' और 'स्टेट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन टेल' पदों का प्रयोग होता है। किंतु सूक्ष्म विवेचना करने पर प्रतीत होता है कि हिंदू विधवा जैसी स्थिति में इनमें से कोई भी पद लागू नहीं होता। थोड़ा बहुत लक्षण मिलता है परंतु पूरा नहीं (ए० आई० आर० १६१८ प्रिवी कौंसिल १६६)। विधवा को केवल जीवन पर्यंत का अधिकार नहीं है वरन् इससे बहुत विस्तृत अधिकार है। वह संपदा का पूर्ण प्रतिनिधित्व करती है। वह विधिवत् हस्तांतरण कर सकती है और उसके जीवन काल तक किसी को उस संपत्ति से कुछ मतलब नहीं रहता ए० आई० आर० सन् १६५४ सर्वोच्च न्यायालय ६१)। जैसे कोई भी अन्य उत्तराधिकारी संपत्ति का धारण केवल अपने जीवन भर के लिये ही कर सकता है उसी प्रकार विधवा भी संपत्ति का धारण अपने जीवन भर के लिये करती है। उसका अधिकार किसी प्रकार कम नहीं है। मेन ने ठीक ही लिखा है कि हिंदू विधि में जीवन संपदा (लाइफ स्टेट) नामक कोई वस्तु थी ही नहीं। हिंदू विधि के अनुसार विधवा समस्त संपत्ति की उत्तराधिकारिणी होती है। ऐसा नहीं कहा जा सकता कि कुछ संपत्ति की उत्तराधिकारिणी विधवा होती है और जो बचता है उसके उत्तराधिकारी कोई दूसरे या प्रत्यावर्तीगण (रिवर्सनर्स) होते हैं (ए० आई० आर० १६५७, आंध्र प्रदेश २८०)।

हिंदू विधि में केवल जीवन पर्यंत के अधिकार का हस्तांतरण करनेवाला कोई नियम नहीं है। जैसे कोई अन्य उत्तराधिकारी अपने जीवन पर्यंत तक के ही अधिकार का हस्तांतरण नहीं कर सकता उसी प्रकार हिंदू विधवा भी केवल अपने जीवन पर्यंत के अधिकार का हस्तांतरण नहीं कर सकती। जहाँ किसी विधिक आवश्यकता के बिना भी वह संपत्ति का हस्तांतरण करती है वहाँ वह केवल जीवन पर्यंत के अधिकार का ही हस्तांतरण नहीं करती वरन् उसका अभिप्राय होता है कि मैं अपनी संपदा में समस्त अधिकार का हस्तांतरण कर रही हूँ।

प्रथा से शासित हिंदू विधि के अनुसार हस्तांतरण जब बिना किसी विधिक आवश्यकता के होता है तो वह अवैध है। किंतु प्रश्न उठता है कि हस्तांतरण से असंतुष्ट कौन है। केवल दो ही व्यक्ति असंतुष्ट हो सकते हैं विधवा स्वयं एवं प्रत्यावर्तीगण (रिवर्सनर्स) लोग। किंतु विधवा की असंतुष्टि का प्रश्न नहीं होता कारण कि उसी ने हस्तांतरण किया है और अपने ही हस्तांतरण का वह स्वयं विरोध नहीं कर सकती। ऐसा करने से वह प्रतिरुद्ध (एस्टाप्ड) है। प्रत्यावर्ती लोग भी, जब तक विधवा जीवित है तब तक उस संपत्ति से उनका कुछ भी मतलब नहीं है। विधवा के मरने के बाद ही प्रत्यावर्ती (रिवर्सनर्स) लोग संपत्ति को वापस पाने के लिये कुछ कर सकते हैं। इस प्रकार पद अवैध हस्तांतरण विधवा के जीवन काल तक पूर्ण रुपेण वैध रहता है। विधवा के मरने पर वह सारी संपदा केवल उस अंश को छोड़ कर जो उसने विधिक आवश्यकवश हस्तांतरण कर दिया है प्रत्यावर्ती लोगों को मिल जाती है और वे संपदा के अंतिम स्वामी के उत्तराधिकारी होने से हस्तांतरिती के यहाँ से संपत्ति वापस ले सकते हैं। विधवा के जीवन काल में जिस सिद्धांत के कारण वे धारण के लिये वाद प्रस्तुत नहीं कर सकते थे वह सिद्धांत धारण वापस लेने में अब उन्हें रोक नहीं सकता।

विधवा का विधिक आवश्यकता के बिना संपत्ति का हस्तांतरण हिंदू विधि द्वारा अनुमति नहीं है फिर भी यह हस्तांतरण प्रभावशून्य (वायड) नहीं है क्योंकि जब तक वह जीवित है किसी को भी उसके लिये कोई उपाय नहीं है (ए० आई० आर १६२७ प्रिवी कौंसिल २२७)

यह कहा जाता है कि यदि हस्तांतरण प्रभावशून्य (वायड) नहीं है तो विवर्ज्य (वायडेबल) है। किंतु यह विवर्ज्य केवल इसी अभिप्राय में होगा कि प्रत्यावर्तीगण यदि चाहें तो उसके मरने के बाद धारण के लिये वाद निवेशित कर सकते हैं किंतु दूसरे पक्ष से विचार करने पर ऐसी बात नहीं दिखलाई पड़ती। अवधि अधिनियम के अनु० १४१ के अंतर्गत धारण के वापसी के लिये अवधि विधवा की मृत्यु के समय से आरंभ हो जाती है। यदि हस्तांतरण विवर्ज्य (वायडेबुल) होता तो अवधि का आरंभ उस समय से होता जब प्रत्यावर्ती हस्तांतरण के विरुद्ध कार्यवाही करने का निश्चय करता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ प्रत्यावर्ती के आचरण का कुछ मूल्य नहीं है इसलिए सिवा इस अभिप्राय के कि विधवा के मरने के बाद प्रत्यावर्ती (रिवर्सनर्स) हस्तांतरण के विरुद्ध कार्यवाही कर सकता है हस्तांतरण विवर्ज्य (वायडेबुल) नहीं है।

ए० आई० आर० १९५४ सर्वोच्च न्यायालय ६१ में हस्तांतरण को "अवैध" (इनवैलिड) कहा गया। किंतु वहाँ 'अवैध' केवल इसलिए कहा गया था कि यह हिंदू विधि के विरुद्ध है।

जब हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम आया तो उस समय विधि की यही स्थिति थी। इस अधिनियम की धारा १४ किसी अर्थ में अतीतप्रभावी है और किसी अर्थ में भविष्यप्रभावी (प्रास्पेक्टिव)। अतीतप्रभावी केवल इसी अर्थ में है कि अधिनियम के पहले भी कोई हिंदू स्त्री किसी संपत्ति को चाहे जिस प्रकार से पाई हो वह उसकी पूर्ण स्वामिनी हो जाती है। इसका अर्थ यहाँ तक नहीं होगा कि जिस संपत्ति को विधवा ने अधिनियम के लागू होने के पहले ही हस्तांतरित कर दिया है उसकी भी वह पूर्ण स्वामिनी हो जायगी।

धा० १४ भविष्य प्रभावी इस अर्थ में है कि अधिनियम के लागू होने की तिथि से वह संपत्ति की पूर्ण स्वामिनी हो जाती है। इसका अर्थ यह नहीं होगा कि वह संपत्ति की उत्तराधिकारिणी होने की तिथि से ही उसकी पूर्ण स्वामिनी हो गई हुई मानी जायगी।

अधिनियम के पहले ही विधवा ने जिस संपत्ति का हस्तांतरण कर दिया है उसके लिये अधिनियम में कोई उपबंध नहीं है इसलिए विधिक आवश्यकता के न रहने पर भी जिस संपत्ति का हस्तांतरण कर दिया गया है वह अब भी अवैध है और उसके विरुद्ध अब भी उसी प्रकार कार्यवाही की जा सकती है मानों हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम है ही नहीं। किंतु पहले कहा जा चुका है कि भावी प्रत्यावर्तीगण (रिवर्सनर्स) और स्वयं विधवा दोनों ही उसके विरुद्ध कार्यवाही कर सकते हैं। विधवा ने जिस संपत्ति का हस्तांतरण पहले ही कर दिया है उसकी वह स्वामिनी नहीं हो सकती। अब इसी महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर विचार करना है कि विधवा या प्रत्यावर्तीगण अब हस्तांतरण के विरुद्ध कार्यवाही कर सकते हैं कि नहीं।

इस हस्तांतरण द्वारा स्वत्व एवं धारण दोनों ही हस्तांरिती के पास चला गया। अधिनियम यह नहीं कहता कि हस्तांतरिती इसको पुनः विधवा को लौटा देगा। अतः उत्तरवादी का यह कथन ठीक है कि विधवा धा० १४ के प्रयोजन के लिये पहले के हस्तांतरण की हुई संपत्ति के धारण में नहीं है इसलिए ऐसी परिस्थिति में यह प्रश्न कि विधवा ऐसी संपत्ति की पूर्ण स्वामिनी है कि नहीं उठता ही नहीं। यह धा० १४ के क्षेत्र के भीतर नहीं है।

ए० आई० आर० १९१९ मद्रास ३४७ के आधार पर कहा गया कि विधवा ने अपने जीवन पर्यंत के अधिकार में से कुछ का हस्तांतरण कर दिया और कुछ अधिकार बच रहा और इसी बचे हुए अधिकार में धा० १४ के उपबंध लागू होंगे। यह प्रतर्क ठीक नहीं प्रतीत होता क्योंकि हस्तांतरण के बाद भी क्या बच रहता है यह ज्ञात नहीं होता। धा० १४ में दिया गया है कि स्त्री केवल जिस संपत्ति के धारण में है उसकी ही वह पूर्ण स्वामिनी होगी। यदि हस्तांतरण के बाद भी उसके पास कुछ बच रहता है तो हो सकता है कि वह बची हुई वस्तु उसके पूर्ण स्वामित्व के अंतर्गत आ जाय किंतु स्वतः संपत्ति नहीं आ सकती। प्रत्यावर्ती का वाद संपत्ति के लिये निवेशित किया गया है न कि किसी काल्पनिक बची हुई किसी वस्तु के लिये। धा० १४ उस संपति में लागू होती है जिसे विधवा ने उत्तराधिकार में पाया है इसलिए वह संपत्ति की पूर्ण स्वामिनी होती है न कि किसी काल्पनिक 'कुछ' की।

ए० आई आर १९५७ केरल ८९, ए० आई० आर १९५७ पंजाब ८९ तथा कलकत्ता और आंध्र प्रदेश के उच्च न्यायालयों ने निर्णय दिया था कि विधवा केवल उसी संपत्ति की स्वामिनी होती है जिसे वह धारण किए हुए है न कि उस संपत्ति की जिसे उसने अधिनियम के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लागू होने के पहले ही हस्तांतरण कर दिया है। ए० आई० आर १९५७ कलकत्ता ५५७ में न्यायमूर्ति मुखर्जी का मत था कि धा० १४ में वह उसी संपत्ति की पूर्ण स्वामिनी होती है जो अधिनियम के लागू होते समय उसके वास्तविक या प्रलक्षित (कांस्ट्रक्टिव) धारण में हो इसके अतिरिक्त किसी अन्य संपत्ति की नहीं। आंध्र उच्च न्यायालय का विचार था कि धा० १४ ने विधवा के अधिकार को बढ़ाया न कि क्रेता के अधिकार को जिसे उसने अधिनियम के लागू होने के पहले ही खरीदा था।

अब सारांश यह है कि ऐसा हस्तांतरण ठीक नहीं है और इस पर आघात पहुँचाया जा सकता है परंतु महत्व-पूर्ण प्रश्न है कि इस पर आपत्ति कौन कर सकता है। इसके लिये केवल दो ही आपत्तिकर्ता हैं — विधवा और प्रत्यावर्ती गण (रिवर्सनर्स)। विधवा आपत्ति कर नहीं सकती क्योंकि अब वह यह कहकर न्यायालय में नहीं आ सकती कि हस्तांतरण किसी विधिक आवश्यकता वश नहीं किया गया है। अब बच गए दूसरे प्रत्यावर्ती-गण। किंतु हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम के लागू होते ही उनका भी अस्तित्व पूर्णरूपेण समाप्त हो गया और एतदर्थ उक्त अधिनियम की धारा १५ में स्पष्ट विधान है। प्रत्यावर्तीगण प्रथा से शासित हिंदू विधि द्वारा आए थे और उसकी समाप्ति के साथ वे भी लुप्त हो गए।

हो सकता है कि विधवा के मरने के बाद वही व्यक्ति संपत्ति पा जायँ परंतु वे प्रत्यावर्ती के पद से नहीं पावेंगे वरन् उत्तराधिकारी के पद से पावेंगे।

विधवा के उत्तराधिकारी भी हस्तांतरण के विरुद्ध कुछ नहीं कर सकते कारण कि एक तो वे विधवा द्वारा ही संपत्ति पाते हैं इसलिए जैसे विधवा कुछ नहीं कर सकती थी उसी प्रकार वे भी कुछ नहीं कर सकते। दूसरे प्रत्यावर्तीगण संपत्ति के अंतिम स्वामी के उत्तरा-धिकारी होते थे इसलिए उनको अधिकार था कि वे विधवा के बाद संपत्ति को उसी रूप में प्राप्त करें। अतः उन्हें घोषणात्मक वाद (डिक्लेरेटरी सूट) का अधिकार सुलभ था। विधवा के उत्तराधिकारियों को यह भी अधिकार नहीं है। विधवा ने जो संपत्ति छोड़ा है वे केवल उसी को पा सकते हैं। इससे अधिक नहीं।

अधिनियम के पहले ही इस प्रकार हस्तांतरण की हुई संपत्ति के बारे में हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम में कोई उपबंध नहीं है इसलिए हस्तांतरण को अवैध ठहराने वाली कोई आज्ञप्ति अब पारित नहीं की जा सकती। इस वाद में प्रत्यावर्त्तीगण के पक्ष में अधिनियम के पहले ही जो आज्ञप्ति पारित हो चुकी है अब वह निरर्थक हो गई। अब प्रत्यावर्तीगण नहीं रह गए इसलिए इसकी आवश्यकता ही नहीं रह गई कि विधवा की मृत्यु के बाद हस्तांतरण का बंधन प्रत्यावर्तीगण पर नहीं रहेगा। किसी के पक्ष में अब इस प्रकार की घोषणा नहीं की जा सकती। हम लोगों को इस पर विचार नहीं करना है कि श्रीमती भगवती की मृत्यु के बाद संपत्ति को कौन पावेगा। वाद घोषणा का है न कि धारण का और ऐसी घोषणा अब नहीं की जा सकती।

उत्तरवादियों के पक्ष की आज्ञप्ति हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम के कारण निरर्थक हो गई। उनका वाद अब संधार्य नहीं हो सकता। अतः हम अपील स्वीकार करते हैं, अन्वीक्षा न्यायालय की आज्ञप्ति निराकृत करते हैं तथा वाद उत्सर्जित करते हैं। परिव्यय के लिये कोई आदेश नहीं दिया जाता।

अपील स्वीकृत—

——

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ इला० उच्च न्या० १०२
न्यायमूर्ति वी० जी० ओक

गनी तथा अन्य   प्रार्थीगण

वि०

राज्य   त्रिपक्षी

मुजफ्फर नगर के अस्थायी सत्र न्यायाधीश के आदेश दिनांक १४-८-५७ के विरुद्ध आपराधिक पुन-रीक्षण सं० १०७६।१९५७ दिनांक २२-८-५७।

भारतीय संविधान अनु० १४—दं० प्र० सं० (१९६८), धारा ३५०—वैधता—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदेश—

विद्वान् सत्र न्यायाधीश ने इस मुकदमे में निष्कर्ष निकाला था कि अभियुक्त आक्रामक थे और उनकी अपनी बचत की कहानी पर विश्वास नहीं किया जा सकता। ए० आई० आर० १९४१, इलाहाबाद ४०२ (पूर्ण न्यायालय) इसमें लागू नहीं हो सकता।

इसमें प्रार्थी की ओर से कहा गया है कि साक्ष्य को एक मजिस्ट्रेट ने लिखा था और सब साक्ष्य लिखने के बाद उनका स्थानांतरण हो गया। उसके बाद जो दूसरे मजिस्ट्रेट आए उन्होंने निर्णय दिया और अभियुक्तों की दोषसिद्धि की। कहा गया है कि जिस मजिस्ट्रेट ने निर्णय दिया उन्हें साक्षियों के आचरण के निरीक्षण का अवसर नहीं मिला था इसलिए इससे अभियुक्त को बहुत हानि पहुँची है। प्रार्थी के विद्वान् वकील का कहना है कि यद्यपि यह प्रक्रिया दं० प्र० सं० धारा ३५० में दी गई है परंतु यह अपने वर्तमान रूप में संविधान के विरुद्ध है।

इसके लिये पश्चिमी बंगाल वि० अनवर अली सरकार ए० आई० आर० १९५२ सर्वोच्च न्यायालय ७५ का अभिदेश किया गया जिसमें पश्चिमी बंगाल विशेष न्यायालय अधिनियम की धारा० ५ (१) विचाराधीन थी। इस धारा में था कि विशेष न्यायालय उन मुकदमों की सुनवाई करेगा जिसे राज्य सरकार किसी साधारण या विशेष आदेश द्वारा निर्देश करे। इसमें किसी श्रीपतियों ने निर्णय दिया था कि धारा संविधान के अनुच्छेद १४ से असंगत है इसलिए शक्ति परस्तात् (अल्टावीयरस) है।

किंतु उस मुकदमें और इस मुकदमें में अंतर है। वहाँ राज्य सरकार को अधिकार था कि विशेष न्यायालय में सुनवाई किए जाने के लिये मुकदमों या मुकदमों के एक वर्ग का निर्देश करे। इस विभेदकरण के कारण इसे अवैधानिक ठहराया गया। किंतु यहाँ कोई विभेद करण नहीं किया जा रहा है। धारा ३५० का प्रयोग किसी वर्ग-विशेष के अपराधों तक ही सीमित नहीं है यह उन सभी परिस्थितियों में समान रूप से लागू होती है जिसकी सुनवाई मजिस्ट्रेट लोग करते हैं। यह धा० अभियुक्तों के किसी वर्ग विशेष की ओर ही निर्देशित नहीं है।

अनवर अली के मुकदमें में न्यायाधीश सुधिरंजन दास ने (इसी पद पर वे उस समय थे) कहा था कि अभियुक्तों को नए सिरे से मुकदमें की सुनवाई के अधिकार से वंचित करने में उनको बड़ी कठिनाई होती किंतु केवल इसी से नहीं कहा जा सकता कि यह उपबंध संविधान विरुद्ध है।

जिन मुकदमों की पूरी सुनवाई उस मजिस्ट्रेट के स्थानांतरण के समय नहीं हो गई रहती वे सभी इस नियम के अंतर्गत आते हैं। यह नियम केवल इसीलिए बनाया गया कि मुकदमों का निर्णय शीघ्र हो। यदि इससे अभियुक्त को हानि पहुँचती है तो इसकी आधारभूत नीति की आलोचना की जा सकती है; धारा ३५० की असंवैधानिकता का प्रश्न नहीं उठाया जा सकता। जिन अभियुक्तों का मुकदमा मजिस्ट्रेट के स्थानांतरण के समय समाप्त नहीं हो गया रहता उन सबमें समान रूप से धारा ३५० का उपबंध लागू होता है। इसलिए यह संविधान के अनुच्छेद १४ के विरुद्ध नहीं है। धारा ३५० असंवैधानिक नहीं है।

पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र उत्सर्जित किया जाता है।

पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र उत्सर्जित

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ इलाहाबाद उच्च न्यायालय १०३

वी० भार्गव एवं एन० यू० बेग-न्यायमूर्तिगण

नानकचंद मेहरोत्रा तथा अन्य—प्रार्थीगण

वि०

राजस्व मंडल उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद तथा अन्य—उत्तरवादीगण

व्यवहार प्रकीर्णक लेख सं० २४२८।१९५७ दिनांक २९-८-१९५७

मुद्रांक अधिनियम (स्टैंप ऐक्ट) (१८९९) धा० ५९—जब तक विचाराधीन है केवल तभी तक अभिदेश किया जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यायमूर्ति वी० भार्गव—

भारतीय संविधान के अनुच्छेद २२६ के अंतर्गत यह परमादेश लेख (रिट आफ मौंडमस) जारी करने के लिये है कि राजस्व मंडल, उ० प्र० इलाहाबाद को इसके द्वारा मुद्रांक अधिनियम की धारा ५७ के अंतर्गत उच्च न्यायालय की संमति के लिये अभिदेश करने का आदेश दिया जाय।

शपथपत्र में जिन तथ्यों का उल्लेख है उससे ज्ञात होता है कि पहले कुछ मुद्रांक शुल्क (स्टैंप ड्यूटी) दिया गया किंतु जब इसे रजिस्ट्री के लिये प्रस्तुत किया गया तो सब रजिस्ट्रार ने इस शुल्क पर आपत्ति की। मुद्रांक अधिनियम की धारा ५६ के अंतर्गत यह मामला राजस्व मंडल उत्तर प्रदेश तक पहुँचा। राजस्व मंडल उत्तर प्रदेश ने निर्णय दिया कि इस लेख्य पर बँटवारा (पार्टिशन) का शुल्क लगना चाहिए न कि संविद् (एग्रीमेंट) का।

प्रार्थी को पत्र द्वारा इस निर्णय का जब पता चला तो उसने राजस्व मंडल उ०प्र० इलाहाबाद में एक प्रार्थना-पत्र दिया कि उच्च न्यायालय की संमति प्राप्त करने के लिये मुद्रांक अधिनियम धारा ५७ के अंतर्गत इसका अभिदेश कर दिया जाय। राजस्व मंडल ने निर्णय दिया कि यतः यह प्रश्न हमारे सामने अब विचाराधीन नहीं है इसलिए मुद्रांक अधिनियम की धारा ५७ इसमें लागू नहीं होती। राजस्व मंडल ने उच्च न्यायालय की संमति के लिये अभिदेश करना अस्वीकार कर दिया। इसी के विरुद्ध परमादेश लेख जारी करने का यह लेख प्रार्थना-पत्र निवेशित किया गया है।

धारा ५७ का अभिप्राय है कि जब प्रधान नियंत्रक राजस्व अधिकारी के समक्ष ऐसा प्रश्न विचाराधीन हो तो उच्च न्यायालय की संमति के लिये वह अभिदेश कर सकता है। यहाँ प्रधान नियंत्रक राजस्व अधिकारी, राजस्व मंडल उत्तर प्रदेश है। प्रार्थी का कहना है कि यद्यपि यह सत्य है कि राजस्व मंडल ने अपना निर्णय दे दिया है फिर भी शुल्क वसूल करने की कार्यवाही अब भी जारी है। इसका अभिप्राय हुआ कि यह मामला अभी भी विचाराधीन है और जब विचाराधीन है तो धारा ५७ के अंतर्गत उच्च न्यायालय की संमति के लिये अभिदेश किया जा सकता है।

ऐसा अभिकथन ठीक नहीं प्रतीत होता। धारा ५७ का अभिप्राय यह नहीं है कि प्रधान नियंत्रक राजस्व अधिकारी के आदेश के विरुद्ध उच्च न्यायालय की संमति प्राप्त की जाय। इस धारा का ठीक अर्थ केवल यही है कि जब प्रधान नियंत्रक राजस्व अधिकारी के समक्ष यह प्रश्न विचाराधीन हो तो वह अधिकारी शुल्क कितना लगना चाहिए- इस प्रश्न पर उच्च न्यायालय की संमति माँग सकता है।

ए० आई० आर० १९५० सर्वोच्च न्यायालय २१८ का अभिदेश किया गया। किंतु उस मामले की परिस्थिति इससे सर्वथा भिन्न थी। उस मामले में जब मुद्रांक के सहायक अधीक्षक ने प्रार्थी के विरुद्ध आदेश देकर उसे प्रधान नियंत्रक राजस्व अधिकारी के समक्ष भेजा तो वहाँ पर प्रार्थी ने तुरत एक प्रार्थनापत्र दिया कि या तो हमारे विरुद्ध सहायक अधीक्षक का आदेश निराकृत कर दिया जाय या यदि ऐसा न हो सके तो इस प्रश्न पर धारा ५७ के अंतर्गत उच्च न्यायालय की संमति माँग ली जाय। जब उक्त अधिकारी ने उपर्युक्त संमति के लिये अभिदेश करना अस्वीकार कर दिया तो इस पर सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था कि यह प्रश्न बहुत महत्त्वपूर्ण था उसके निर्णय के लिये जनहित के संबंध में प्रधान नियंत्रक राजस्व अधिकारी का कर्तव्य था कि उच्च न्यायालय में अभिदेश करता। वहाँ प्रधान नियंत्रक राजस्व अधिकारी ने उस समय तक अपना कोई निर्णय नहीं दिया था जब कि अभिदेश करने के लिये प्रार्थनापत्र दिया गया। यहाँ पहले ही निर्णय हो चुका है इसलिए वह प्रमाण इसमें लागू नहीं हो सकता।

इसके लिये दो एक प्रमाण और दिए गए किंतु वे सब इसके तथ्य के समान नहीं थे और उनमें इस पर विचार भी नहीं किया गया कि कब मामला विचाराधीन है।

इसलिए यहाँ जब राजस्व मंडल ने अपना निर्णय दे दिया तो वह अभिदेश करने के लिये बाध्य नहीं है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण कि धारा ५७ के अभिप्राय के अनुसार कोई मामला अब विचाराधीन नहीं है।

अतः इस पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र में कोई बल नहीं है और अस्वीकार किया जाता है।

—प्रार्थनापत्र अस्वीकृत

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ इलाहाबाद

उच्च न्यायालय १०५

विक्री कर अधिकारी तथा अन्य — प्रार्थीगण

वि०

जगत् विहारी टंडन — उत्तरवादी

भारतीय संविधान अनु० १३३—धनराशि—मुकदमें में धनराशि यदि बहुत कम हो—व्यवहार प्रक्रिया संहिता धा० ९—

आदेश —

यह प्रार्थनापत्र इस न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील निवेशित करने की अनुमति के लिये है।

इस न्यायालय ने लेख जारी करके उत्तरवादी के विरुद्ध उ० प्र० विक्री कर अधिनियम के अंतर्गत कर निर्धारण के दो आदेश दिनांक १६ जुलाई १९५२ और १७ मार्च १९५३ को अभिखंडित कर दिया था। अब विक्रीकर के प्राधिकारी इस आदेश के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील करना चाहते हैं।

निम्नलिखित कारणों से यहाँ आवश्यक नहीं प्रतीत होता कि इस पर विचार किया जाय कि क्या अनुभूति देने के योग्य यह मुकदमा है या संविधान के अनुच्छेद १३३ के अंतर्गत यह व्यवहार कार्यवाही (सिविल प्रोसीडिंग) है ? जो रुपया वसूल किया जानेवाला है वह बहुत ही कम है। यह केवल २५० रु० है। केवल इतने रुपए के लिये ही यदि सर्वोच्च न्यायालय में अपील करने की अनुमति दी जायगी तो इससे दूसरे पक्ष को बहुत ही कठिनाई का सामना करना पड़ेगा और अनावश्यक व्यय भी होगा। रिचार्ड स्पूनर वि० बद्दू ४ मूर्स इंडियन अपील्स ३६३ में लार्ड लैंगडेल ने कहा था कि जब धनराशि बहुत ही कम हो तो अपील करने की विशेष अनुमति नहीं देना चाहिए। क्योंकि उस प्रश्न पर यदि कोई प्रामाणिक निर्णय होना आवश्यक भी हो तो इसके लिये भी किसी एक पक्ष को ही क्यों अनावश्यक खर्च में डाला जाय। वहाँ केवल २५० रु० का ही झगड़ा था। अतः इस सिद्धांत पर अपील के लिये विशेष अनुमति नहीं दी जानी चाहिए जब तक कि सरकार यह मान न ले कि उत्तरवादी का जो भी व्यय होगा उसे देने के लिये वह तैयार है। सरकार को किसी भी परिस्थिति में उत्तरवादी का सब व्यय जो सर्वोच्च न्यायालय में पड़े और जिसे सर्वोच्च न्यायालय माने, देना चाहिए। यतः सरकारी वकील यह प्रतिज्ञा नहीं करना चाहते इसलिए प्रार्थनापत्र को अस्वीकार किया जाना चाहिए। तदनुसार यह अस्वीकृत होता है।

प्रार्थनापत्र अस्वीकृत

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ इलाहाबाद

उच्च न्यायालय १०५

न्यायमूर्ति ओक

आर० एस० दिवाकर वकील तथा अन्य — प्रार्थीगण

वि०

राज्य — विपक्षी

रामपुर के सत्र न्यायाधीश के आदेश के विरुद्ध आपराधिक पुनरीक्षण सं० १५७।१९५७

(अ) दंड प्रक्रिया संहिता (१८९८) धा० २१५—यदि सत्र न्यायाधीश समझते हैं कि उपार्पण (कमिटमेंट) ठीक नहीं हुआ है तो अभिदेश पर उच्च न्यायालय ही उसे अभिखंडित कर सकता है।

(ब) शासन गुह्य अधिनियम (आफिशियल सेक्रेट ऐक्ट) १९२३ धा० १३ (२)—साधारणतया धारा में उन्मुक्त न करने का अर्थ यह नहीं होता कि सामान्य क्रम में ही सत्र न्यायालय में भेजा जाय किंतु जब अभियुक्त स्वतः नहीं चाहते कि जाँच हो तो परिस्थिति दूसरी हो जाती है।

आदेश—

रामपुर के सत्र न्यायाधीश के उपार्पण (कमिटमेंट)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के आदेश में हस्तक्षेप करने के विरुद्ध यह पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र है।

श्री आर० एस० दिवाकर और श्रीमती प्रेमकुमारी दिवाकर का अभियोजन भारतीय शासन गुह्य अधिनियम के अंतर्गत एक मजिस्ट्रेट के समक्ष हो रहा था। इन लोगों ने उच्च न्यायालय में मुकदमे के हस्तांतरण के संबंध में प्रार्थनापत्र दिया किंतु वह अस्वीकार कर दिया गया किंतु उसमें कहा गया कि यदि वे चाहें तो शासन गुह्य अधिनियम की धारा १३ के अंतर्गत कह सकते हैं कि हमारी अन्वीक्षा सत्र न्यायालय में हो।

स्थानांतरण प्रार्थनापत्र के उत्सर्जन के पश्चात् अभियुक्तों ने सत्र न्यायालय में अन्वीक्षा होने की इच्छा प्रकट की। ऐसे प्रार्थनापत्र के आने पर मजिस्ट्रेट ने एक आदेश पारित करके इन अभियुक्तों को सत्र न्यायालय में अन्वीक्षा के लिये भेज दिया।

जब विद्वान् सत्र न्यायाधीश ने इस मुकदमें के अभिलेखों को देखा तो उन्हें प्रतीत हुआ कि इस उपार्पण में विधि संमत कार्यवाही का अनुसरण नहीं किया गया है। सत्र न्यायाधीश ने एक आदेश पारित किया और उसमें उन्होंने मजिस्ट्रेट को निर्देश किया कि दं० प्र० सं० की धा० २०६, २०७ और २०८ में जो प्रक्रिया दी गई है उसके अनुसार अभियुक्तों का उपार्पण किया जाय। विद्वान् सत्र न्यायाधीश के इस आदेश के विरुद्ध अभियुक्तों ने यह पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र निवेशित किया है।

इस आदेश का तत्व ऐसा है जिसे उपार्पण आदेश का निराकरण करनेवाला कहा जा सकता है और जब कि धा० २१५ के अंतर्गत उपार्पण के आदेश को निराकृत करने का अधिकार एकमात्र उच्च न्यायालय को है। यदि सत्र न्यायाधीश समझते हों कि उपार्पण ठीक नहीं हुआ है तो वे इसका अभिदेश उच्च न्यायालय को कर सकते हैं किंतु स्वतः इसे निराकृत नहीं कर सकते। इसलिए सत्र न्यायाधीश का उपर्युक्त आदेश गलत था।

अब प्रश्न है कि क्या मजिस्ट्रेट का उपार्पणवाला आदेश ठीक था? इस विषय पर विद्वान् सत्र न्यायाधीश ठीक थे कि मजिस्ट्रेट ने इसके लिये उचित प्रक्रिया का अनुसरण नहीं किया था। शासन गुह्य अधिनियम की धारा १३ (२) में है कि यदि मजिस्ट्रेट अभियुक्तों को उन्मुक्त नहीं करता तो अन्वीक्षा के लिये सत्र न्यायालय में उनका उपार्पण कर देगा। इसका अभिप्राय हुआ कि मजिस्ट्रेट को पहले देखना होता है कि अभियुक्त के विरुद्ध अभियोजन योग्य तथ्य हैं कि नहीं। यदि मुकदमा चलने योग्य दिखलाई नहीं पड़ता तो अभियुक्त उन्मुक्त कर दिए जायँगे अन्यथा सत्र न्यायालय में उनका उपार्पण कर दिया जायगा। दूसरे शब्दों में मामला सामान्य क्रम में ही सत्र न्यायाधीश के समक्ष नहीं भेज दिया जायगा।

अध्याय ८ में दिए गए उपबंधों के अनुसार इसमें औपचारिक जाँच की आवश्यकता नहीं है कारण कि जाँच का उपबंध अभियुक्त के लाभ के लिये है और जब अभियुक्त स्वतः जाँच का लाभ नहीं उठाना चाहता और चाहता है कि हमारी अन्वीक्षा सत्र न्यायाधीश के समक्ष हो तो जाँच की आवश्यकता नहीं है।

यह पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र स्वीकार किया जाता है और विद्वान् सत्र न्यायाधीश का आदेश निराकृत किया जाता है। यद्यपि विद्वान् मजिस्ट्रेट का उपार्पण का आदेश दोषपूर्ण है फिर भी यह ज्यों का त्यों रहेगा और विद्वान् सत्र न्यायाधीश को निर्देश किया जाता है कि उपार्पण आदेश के आधार पर वे इसकी अन्वीक्षा करें। अभिलेख अन्वीक्षा के लिये सत्र न्यायाधीश के समक्ष तुरत भेज दिए जाँय।

प्रार्थनापत्र स्वीकृत

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इ० उच्च न्या० १०९

चिरंजीलाल वादी प्रतिवादी

वि०

विहारी प्रतिवादी उत्तरवादी

बुलंदशहर के व्यवहार न्यायाधीश के निर्णय दिनांक २१-२-१९५० के विरुद्ध द्वितीय अपील सं० ८४२।१९५० दिनांक २१-८-१९५७

व्यवहार प्रक्रिया संहिता (१९०८) आ० ३९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नि० २ (३) और (४), नि० ३२ (१)-संधार्यता-वाद में जब वादी ने प्रतिवादी के विरुद्ध निषेधाज्ञा प्राप्त कर लिया है तो प्रतिवादी के निषेधाज्ञा उल्लंघन पर उसके विरुद्ध आ० ३९ के उपायों के अतिरिक्त हानिपूर्ति के लिये वाद भी निवेशित किया जा सकता है।

निर्णय—

एक मुकदमें में वादी द्वारा यह द्वितीय अपील है जो निम्नलिखित परिस्थितियों से आई है:—

वादी ने बुलंदशहर के मुंसिफ के न्यायालय में एक वाद निवेशित किया कि मैं ६ खेतों का खुदकाश्त धारी हूँ जिनमें से ४ खेतों पर प्रतिवादी ने धारण स्थापित कर लिया है और डर है कि बचे हुए दो खेतों को लेने के लिये वे हमारे धारण में हस्तक्षेप करेंगे। यह वाद धारण और इन दो खेतों के प्रति निषेधाज्ञा जारी करने के लिये निवेशित किया गया था।

वाद निवेशित करने पर न्यायालय ने अंत:कालीन निषेधाज्ञा द्वारा प्रतिवादी को मना कर दिया कि वह वादी के धारण में हस्तक्षेप न करे।

इसके पश्चात् वादी ने मुंसिफ के न्यायालय में दूसरा प्रार्थनापत्र दिया कि प्रतिवादी ने अंत: कालीन निषेधाज्ञा का उल्लंघन किया है। विद्वान् मुंसिफ ने इस बात को मान लियां और व्यवहार प्रक्रिया संहिता के आ० ३९ नि० २ (३) के अंतर्गत कार्यवाही करके प्रतिवादी की कुछ संपत्ति को कुर्क कर लिया। छः महीने के बाद कुर्की उठा ली गई और इसका कारण ज्ञात होता है कि यही था कि आज्ञोल्लंघन समाप्त हो चुका था।

इसके पश्चात् वादी ने मुंसिफ के न्यायालय में यह वाद सं० १०३।१९४७ निवेशित किया। इस वादपत्र में उसका कहना था कि निषेधाज्ञा के उल्लंघन करने से मैं खेत न जोत सका और खेत न जोत सकने के कारण २०८ रु० की हानि हुई।

प्रतिवादी ने इस वाद का विरोध दो प्रमुख आधारों पर किया कि:—

१—वाद संधार्य (मेनटेनेबुल) नहीं है और २—हानि की धनराशि बहुत ही अधिक बतलाई गई है।

विद्वान मुंसिफ ने निर्णय दिया कि वाद संधार्य नहीं है और हानि की धनराशि के बारे में उनका निष्कर्ष था कि ७५ रु० की हानि हुई है।

अपील करने पर अपील के न्यायालय ने भी यही निर्णय दिया कि वाद संधार्य नहीं है किंतु हानि की धनराशि के बारे में अपील के न्यायालय ने कोई निर्णय नहीं दिया।

वाद की संधार्यता के बारे में नीचे के न्यायालय के निर्णय का आधार था कि निषेधाज्ञा के आज्ञोल्लंघन के बारे में व्यवहार प्रक्रिया संहिता के आ० ३९ नि० २ (३) में दिया गया है कि उसकी संपत्ति को कुर्क किया जा सकता है या व्यवहार बंदीगृह (सिविल प्रिजन) में उसे रोक रखा जा सकता है। इन उपायों के अतिरिक्त उसे कोई दूसरा उपाय उपलब्ध नहीं है अतः हानिपूर्ति का यह वाद संधार्य नहीं हो सकता।

इसी निर्णय के विरुद्ध यह वादी की अपील है कि वह हानिपूर्ति (डैमेजेज) का वाद निवेशित कर सकता है।

इस संबंध में धारा ९४ में न्याय के लिये निषेधाज्ञा और उसके उल्लंघन करने पर कुर्की या उसे बंदीगृह में डाल देने का अधिकार है। धा० ९५ में दिया गया है कि यदि किसी के विरुद्ध अंत:कालीन निषेधाज्ञा पारित हो गई है किंतु प्रतीत होता है कि इस आज्ञा के पारित करने में औचित्य नहीं था तो उस व्यक्ति को न्यायालय प्रतिकर (कंपेंसेशन) दिला सकता है। यदि इस धारा में प्रतिकर देने का आदेश दिया जा चुका है तो प्रतिकर के लिये दूसरा मुकदमा; इसमें संदेह नहीं है कि चल ही नहीं सकता। किंतु संहिता में ऐसा बंधन उस व्यक्ति के लिये कहीं नहीं है जिसके पक्ष में पारित निषेधाज्ञा का उल्लंघन किया गया है अतः वह हानिपूर्ति के लिये वाद निवेशित कर सकता है।

किंतु यह भी देख लेना चाहिए कि यदि ऐसे मुकदमें के लिये व्यवहार प्रक्रिया संहिता में कोई स्पष्ट रुकावट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं है तो उसके किसी उपबंध से ऐसी रुकावट ध्वनित तो नहीं होती कि ऐसे वाद निवेशित नहीं किए जा सकते ? व्य० प्र० सं० आ० ३६ (२) उपनियम ३ और ४ में दिया हुआ है कि अंतः कालीन निषेधाज्ञा का उल्लंघन करने पर कुछ परिस्थिति में न्यायालय प्रतिकर देने का आदेश दे सकता है किंतु इसके लिये जो परिस्थिति बतलाई गई है उसे देखने से प्रतीत होता है कि आज्ञोल्लंघन के संबंध में दंड देने के लिये यह नियम बनाया गया है। उसमें दिया है कि यदि आज्ञोल्लंघन या अतिलंघन १ वर्ष से अधिक तक चलता रहे केवल तभी उस संपत्ति को बेच कर उसमें से प्रतिकर दिलाया जा सकता है। साधारणतया कुर्की और बंदी करने का ही विधान है। अतः इससे निष्कर्ष यही निकलता है कि जब आज्ञोल्लंघन बढ़ता जाता है केवल तभी उसे दंड देने के लिये वादी को प्रतिकर दिलाने का विधान है और वह भी निर्भर करता है उपर्युक्त संभाव्यता पर।

इसका अर्थ केवल यही हो सकता है कि कुछ संभाव्यता पर वादी प्रतिकर पा सकता है जब कि वह भी न्यायालय की इच्छा पर निर्भर करता है।

अतः हानिपूर्ति के ऐसे वाद के निवेशित करने में कोई रुकावट नहीं डाली गई है; यह बात दूसरी है कि यदि उपर्युक्त संभाव्यता में वादी को प्रतिकर पाने का आदेश हो चुका है तो उसके हानिपूर्ति के मुकदमे में प्रतिकर निर्धारण के समय इस धनराशि को भी ध्यान में रखा जायगा। अतः इस प्रकार का वाद निवेशित हो सकता है।

नीचे के न्यायालय ने जावित्री वि० एच० ए० इमिली आई० एल० आर० १३ इलाहाबाद ६८ का अनुसरण किया था कि ऐसा मुकदमा नहीं चल सकता। उसमें किसी दीवाल को गिराने का आदेश हुआ था और इस आदेश को न मानने पर वादी ने एक वाद निवेशित किया जिसमें निर्णय हुआ था कि वाद नहीं चल सकता। यह निर्णय ठीक था कारण कि यह अधिदेशक आज्ञा (मैनडेटरी इंजंक्शन) थी और इसके बारे में अंगद वि० माधोराम ए० आई० आर० १६३८ इलाहाबाद ४१६ में "अधिदेशक आज्ञा" (मैनडेटरी इंजंक्शन) और "निषेधाज्ञा" (प्राहिबिटरी इंजेक्शन) का भेद स्पष्ट कर दिया गया है। उसमें निर्णय हुआ था कि अधिदेशक आज्ञा का आ० २१ नि० ३२ में निष्पादन हो सकता है जब कि निषेधाज्ञा को निष्पादन द्वारा लागू नहीं किया जा सकता। निषेधाज्ञा के उल्लंघन के लिये वाद द्वारा ही उपाय उपलब्ध है। अतः उपर्युक्त आई० एल० आर० १३ इलाहाबाद ६८ में अधिदेशक आज्ञा का निष्पादन (एक्जीक्यूशन) करके वादी दीवाल गिरवा सकता था और केवल इसी कारण उसका वह वाद संधार्य नहीं हुआ। वैसी बात यहाँ नहीं है। इस अंतः कालीन निषेधाज्ञा के लिये निष्पादन द्वारा कार्यवाही नहीं की जा सकती।

यहाँ एक बात महत्वपूर्ण आ जाती है कि अधिदेशक आज्ञा के निष्पादन में भी निषेधाज्ञा की तरह कुर्की या व्यवहार बंदीगृह में डालने का विधान है फिर भी निषेधाज्ञा में वाद निवेशित करने का अधिकार है क्योंकि ए० आई० आर० १६५० मद्रास २३७ में जब निषेधाज्ञा के निष्पादन की कार्यवाही आ० २१ नि० ३२ (५) में आरंभ की गई थी तो उसमें यही निर्णय हुआ कि इस उपनियम के अंतर्गत इस प्रकार निष्पादन की कार्यवाही नहीं की जा सकती। उस वाद में जब फिर प्रार्थनापत्र दिया गया कि निष्पादन का प्रार्थनापत्र वाद में परिवर्तित करने की अनुमति प्रदान की जाय तो उसे भी अस्वीकार किया गया और कहा गया था कि जब वाद निवेशित करके साहाय्य प्राप्त किया ही जा सकता है तो इस प्रार्थनापत्र को वादपत्र में परिवर्तित करने की आवश्यकता नहीं है।

अतः नीचे के न्यायालय द्वारा वादी का वादपत्र उत्सर्जित किया जाना ठीक नहीं था तथा वादी हानिपूर्ति (डैमेजेज) के लिये वाद निवेशित कर सकता है। वादी को, अंतःकालीन निषेधाज्ञा के उल्लंघन पर केवल व्यवहार प्रक्रिया संहिता के आ० ३६ तक ही उपाय सीमित नहीं है।

अन्वीक्षा न्यायालय ने हानि की धनराशि को २०० रु० न मानकर केवल ७५ रु० माना है जो अभिलेख के आधार पर ठीक प्रतीत होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः अपील स्वीकार की जाती है तथा नीचे के दोनों न्यायालयों का निर्णय एवं आदेश, निराकृत किया जाता है और वादी के वाद की डिग्री ७५ रु० पर दी जाती है।

—अपील स्वीकृत

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ इलाहाबाद उच्च न्यायालय १०६

न्यायमूर्ति एस० सी० देसाई

नंदकिशोर राय तथा अन्य — प्रार्थीगण

वि०

मुसम्मात भागी कुँवर तथा अन्य — उत्तरवादी गण

जिला न्यायाधीश गाजीपुर के व्यवहार प्रकीर्णक वाद सं० ५१, १९४७ के आदेश के विरुद्ध प्रथम अपील सं० ३६१। १९४२ दिनांक ३०-८-१९५७

उत्तराधिकार अधिनियम (१९२५) धा० २८१ के उपबंध का पालन न करने का प्रभाव- धारा २८१ के अंतर्गत प्रार्थना पत्र का सत्यापन (वेरीफिकेशन) अभिवचन (प्लीडिंग्स) के सत्यापन के समान है—(व्यवहार प्रक्रिया संहिता (१९०८), आ० ६, नि० १५)

निर्णय—

जिला न्यायाधीश ने एक इच्छापत्र (विल) के संप्रमाण (प्रावेट) को स्वीकार कर लिया था जिसके बारे में कहा गया है कि १७-११-१९३६ को किसी देव शरण राय ने चार अभिप्रमाणित (अटेस्ट) करने वाले साक्षियों के समक्ष लिखा था। इस संप्रमाण प्रार्थनापत्र का विरोध कई आधारों पर किया गया था किंतु जिला न्यायाधीश ने सबको अस्वीकार कर दिया था। इस पर यह अपील आई है।

इस अपील में केवल एक ही आधार पर बहुत जोर दिया गया कि उत्तराधिकार अधिनियम की धारा २८१ के अनुसार संप्रमाण प्रार्थनापत्र का सत्यापन (वेरीफिकेशन) इच्छापत्र के किसी अभिप्रमाणित (अटेस्ट) करने वाले साक्षी द्वारा नहीं किया गया। अभिप्रमाणित करनेवाले चार साक्षी थे। साक्ष्य देने के लिये वे आए थे। किंतु किसी ने इसका सत्यापन नहीं किया और न इसको बतलाया ही गया कि सत्यापन क्यों नहीं हुआ इसलिए उत्तराधिकार अधिनियम की धा० २८१ के पालन न करने से इसे उत्सर्जित कर देना चाहिए।

यह कथन माना नहीं जा सकता क्योंकि अभिवचन (प्लीडिंग्स) का सत्यापन जिसमें वादपत्र तक आता है उससे धारा २८१ के अंतर्गत का सत्यापन अधिक महत्व नहीं रखता। व्य० प्र० सं० के आ० ६ नि० १५ में सत्यापन का उपबंध है और यदि सत्यापन नहीं हुआ है तो यह अनियमितता व्य० प्र० सं० की धारा ९९ के अंतर्गत ठीक की जा सकती है। यह घातक नहीं है। इससे कड़ा नियम उत्तराधिकार अधिनियम की धारा २८१ का नहीं है। सत्यापन के संबंध में धारा २८१ का नियम एक प्रकार से व्य० प्र० सं० के आ० ६ नि० १५ से हल्का ही है। कारण कि वादपत्र का सत्यापन वादी स्वयं या अन्य कोई व्यक्ति कर सकता है जो उसके तथ्यों से अवगत हो किंतु धारा २८१ के अंतर्गत कम से कम एक अभिप्रमाणित करनेवाले साक्षी द्वारा सत्यापन होना अनिवार्य है। अतः जिस व्यक्ति ने संप्रमाण के लिये प्रार्थनापत्र दिया है उसे बाध्य किया जा सकता है कि वह कम से कम एक अभिप्रमाणित करनेवाले साक्षी से इसका सत्यापन करावे किंतु यह प्रार्थी अभिप्रमाणित (अटेस्ट) करनेवाले साक्षी को बाध्य नहीं कर सकता कि वह सत्यापन करे ही। इसके तथ्य ठीक होते ही हैं परंतु यदि वह साक्षी सत्यापन नहीं करता तो प्रार्थी उसे बाध्य नहीं कर सकता। इसीलिए विधान मंडल द्वारा यह नियम हल्का करके कहा गया कि यदि अभिप्रमाणित करनेवाला साक्षी उपलब्ध हो तो उससे संप्रमाण प्रार्थनापत्र का सत्यापन करा लिया जाय। इस प्रकार यदि प्रार्थनापत्र का सत्यापन नहीं हुआ है तो प्रार्थी यह कहकर बच सकता है कि अभिप्रमाणित करनेवाला कोई साक्षी मिला नहीं जिससे सत्यापन कराया जाय।

इस संबंध में रामा खिनहा वि० मूर्ति बाई ए० आई० आर० १९२३ नागपुर ४१ का निर्णय मानने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योग्य है जिसमें कहा गया था कि धा० ३८१ का उपबंध निदेशक (डाइरेक्टरी) है न कि अधिदेशक (मैनडेटरी) अर्थात् इसका पालन न करने से प्रार्थना पत्र अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

कोई दूसरा प्रतर्क नहीं दिया गया। अपील परिव्यय के साथ उत्सर्जित की जाती है।

अपील उत्सर्जित

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इलाहाबाद उच्च न्यायालय ११०

न्यायमूर्ति ए० पी० श्रीवास्तव

(लाला) पारसराम — प्रार्थी

वि०

श्रीमती नूरजहाँ बेगम — विपत्ती

सिटी मुंसिफ मेरठ के निर्णय दिनांक १०-७-१९५४ के विरुद्ध व्यवहार पुनरीक्षण सं० ६८८, १९५४ दिनांक १९-८-१९५७

अ—व्यवहार प्र० सं० (१९०८) धारा ११५ – अंतर्वादीय (इंटरलोक्यूटरी) आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण—

ब—व्यवहार प्र० सं० (१९०८) आ० १७ नि० १ (२) स्थगन (ऐडजर्नमेंट) के संबंध में परिव्यय का आदेश—निर्धारित समय के भीतर परिव्यय (कास्ट) के न दिए जाने पर प्रतिवाद (डिफेंस) को काट दिए जाने के आदेश वैध नहीं हैं।

निर्णय –

यह प्रतिवादी का (पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र है। किसी अपूर्ण आदेश का पालन करने के लिये बाध्य करने में किस प्रकार कठिनाई उत्पन्न हो सकती है उसका यह एक प्रत्यक्ष प्रमाण है।

वादी ने एक संविदा के यथावत् पालन (स्पेसिफिक परफार्मेंस) के लिये प्रतिवादी के विरुद्ध एक वाद निवेशित किया। वाद में वादपद जब बन चुके और वाद की अंतिम सुनवाई होने को थी तब प्रतिवादी ने वाद को स्थगित करने के लिये एक प्रार्थनापत्र दिया। २५ रु० परिव्यय देने पर वाद १५ दिन के लिये स्थगित कर दिया गया। इस स्थगन की तिथि को प्रतिवादी ने पुनः प्रार्थनापत्र निवेशित किया कि वह अस्वस्थ है इसलिए मुकदमे की अंतिम सुनवाई स्थगित कर दी जाय। इस प्रार्थनापत्र पर विद्वान् मुंसिफ ने इन शब्दों का आदेश पारित किया:—

"अस्वस्थता के आधार पर प्रतिवादी का स्थगन प्रार्थनापत्र एक महीने के भीतर विपत्ती को २५ रु० परिव्यय देने पर स्वीकृत। वाद की अंतिम सुनवाई के लिये ११ ८-५४ निश्चित।"

वादी के वकील ने एक महीने के बाद मुंसिफ को बतलाया कि परिव्यय (कास्ट्स) नहीं मिला। उसी दिन प्रतिवादी ने समय बढ़ाने के लिये एक दूसरा प्रार्थनापत्र दिया। मुंसिफ ने इस प्रार्थनापत्र का निर्वर्तन करते समय कहा कि न्यायालय के आदेश का पालन करना नितांत आवश्यक है और यतः प्रतिवादी ने परिव्यय नहीं दिया इसलिए उसका प्रतिवाद काट दिया जाता है।

इसी आदेश के विरुद्ध यह पुनरीक्षण है कि परिव्यय जिन परिस्थितियों के कारण समय के भीतर नहीं दिया जा सका वे हमारे अधिकार के बाहर थीं इसलिए प्रतिवाद काट देने का आदेश नहीं पारित होना चाहिए था।

इस पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र के विरुद्ध २ आपत्तियाँ उठाई गई:—१–पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र संधार्य (मेनटेनेबुल) नहीं है क्योंकि किसी वाद का निर्णय हुआ नहीं है। २–विद्वान् मुंसिफ के स्वविवेक का यह प्रश्न था कि समय बढ़ायें या नहीं।

यों तो यह सच है कि इसमें कोई डिग्री नहीं बनी किंतु इतने से ही यह नहीं कहा जा सकता कि व्य० प्र० सं० की धारा ११५ के अंतर्गत किसी वाद का निर्णय नहीं हुआ। इसमें आदेश हुआ है कि प्रतिवाद काट दिया जाय। जहाँ तक प्रतिवादी का संबंध है वाद का अंतिम निर्णय हो चुका है। वह मुकदमें की आगे की कार्यवाही में भाग नहीं ले सकता। झगड़े के एक महत्वपूर्ण प्रश्न पर न्यायिक ढंग से विचार करके उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद्यपि यह ठीक है कि कुर्मी जाति में धरौना प्रथा प्रचलित है किंतु इसका अर्थ होता है कि विवाह के दोनों पक्ष जाति के कुर्मी ही हों। यहाँ काशीनाथ एक अहीर जाति की स्त्री से पैदा हुआ था जो निश्चय ही करदाता की जाति का नहीं है इसलिए 'धरौना' प्रथा से वैध रूप का विवाह नहीं हो सकता। अतः काशीनाथ अवैध संतान है और इसी से यह प्रतीत भी होता है कि उसके जीवनयापन के लिये यह भूमि उचित रूप में दे दी गई थी क्योंकि वह अपने पालन पोषण के लिये इस परिवार की भूमि नहीं पा सकता था।

उपर्युक्त कारण से जो भूमि काशीनाथ को दे दी गई थी उसको अलग करने में विद्वान आयुक्त ठीक थे। इस पुनरीक्षण में बल नहीं है इसलिए यह उत्सर्जित किया जाता है।

पुनरीक्षण उत्सर्जित

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इलाहाबाद (राजस्व)३३

(राजस्व मंडल)

फैजाबाद मंडल के आयुक्त के आदेश दिनांक १७ जुलाई १९५६ के विरुद्ध पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र संख्या ८६। १९५७

२७ नवंबर १९५७

भैया कौशलेंद्र दत्त राम पांडेय — प्रार्थी

वि०

राज्य — विपक्षी

(अ) उ० प्र० कृषि आयकर अधिनियम ३, १९४९ धारा १५ (३), ४१, नि० १९ से २१—राजस्व न्यायालय नियमावलि कृषि आयकर अधिनियम में लागू नहीं होती—स्त्री के कारिंदा पर स्थानापन्न (सबस्टीट्यूटेड) तामीली पर्याप्त नहीं है—

(ब) उ० प्र० कृषि आयकर अधिनियम ३। १९४९, धारा ६—कर निर्धारण प्राधिकारी के सर्वोत्तम निष्कर्ष पर कर निर्धारण के अवलंबित होने के लिये कर निर्धारण प्राधिकारी का यह कर्तव्य होता है कि पहले के अभिलेख को भी प्रयोग में लाए।

न्यायिक सदस्य, एस० एन० मित्रा—

इसमें करदाता पुनरीक्षक की प्रमुख आपत्ति है कि कृषि आयकर अधिनियम की धारा १५ (२) के अंतर्गत नोटिस की तामीली उस पर नहीं हुई थी। उसका कहना है कि उसकी स्त्री के कारिंदा पर नोटिस तामील हुई थी जब कि वह अपने परिवार के साथ पुरी तीर्थयात्रा पर गया हुआ था। यह तामीली व्यवहार प्रक्रिया संहिता के आ० ५ नि० १२ से १४ तक के उपबंधों के अंतर्गत नहीं आती। यह पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र में निम्नलिखित आधारों पर दिया गया—

१—नोटिस की तामीली व्य० प्र० सं० आ० ५, नि० १२ से १४ तक के अंतर्गत ठीक तामीली नहीं मानी जा सकती।

२—नोटिस की तामीली न होने से कोई साक्ष्य या विवरण प्रस्तुत नहीं किया गया।

३—कर निर्धारण प्राधिकारी को कर निर्धारण अपने सर्वोत्तम निर्णय पर आधारित करना चाहिए। यहाँ ऐसा नहीं किया गया। पहले वर्ष केवल ८०० रु० कृषि आयकर था किंतु दूसरे वर्ष ८००० रु० कर दिया गया। ऐसा करना कर निर्धारण प्राधिकारी का सर्वोत्तम निर्णय नहीं कहा जा सकता।

४—कासिम इब्राहीम सालजी वि० जोहरमल खेमका आई० एल० आर० कलकत्ता ४३ पृ० ४४७ में निर्णय हुआ था कि नोटिस की तामीली के लिये इस बात की खोज करनी चाहिए कि प्रतिवादी कहाँ पाया जा सकता है। उसे ढूँढ़ने के लिये पर्याप्त प्रयत्न करना चाहिए और यतः यहाँ ढूँढ़ने का कोई प्रयत्न नहीं किया इसलिए अन्याय हुआ है।

(५) करदाता के एक पुत्र भूपेंद्र दत्त राम की संपत्ति का वह भाग जिसे उसने अलग से पैदा किया है उसे भी करनिर्धारण में जोड़ लिया गया है जो गलत है।

५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके उत्तर में कहा गया कि :—

१—करदाता के स्त्री के कारिंदा पर नोटिस की तामीली पर्याप्त है कारण कि करदाता और उसकी स्त्री एक ही में रहती हैं इसलिए यह तामीली ठीक है।

२—अभिलेख में इसका कोई प्रमाण नहीं है कि श्री भूपेंद्र दत्त राम ने वह संपत्ति व्यक्तिगत रूप में पैदा की है।

३ – इस चालू वर्ष में जो ८००० रु० कर निर्धारण हो गया उसका कारण था कि इसके पहले वर्षवाल अभिलेख कर निर्धारण प्राधिकारी के समक्ष नहीं था इस लिए न देखने से ८००० रु० का निर्धारण हो गया।

दोनों पक्षों के सुनने के पश्चात् निम्नलिखित निष्कर्ष निकलता है :—

१—फैजाबाद के आयुक्त ने राजस्व न्यायालय नियमावलि का अनुच्छेद ७४ उद्धृत किया है कि उसकी स्त्री के कारिंदा पर नोटिस की तामीली पर्याप्त है। किंतु राजस्व न्यायालय नियमावलि आदि आयकर अधिनियम में लागू नहीं होती। कृषि आयकर अधिनियम की धारा ४१ में नोटिस तामील करने की पद्धति का उल्लेख है जिसे उक्त अधिनियम के अंतर्गत बने हुए नियम १६ से २१ तक के साथ पढ़ने से पूरा विवरण मिल जाता है कि नोटिस किस प्रकार तामील हो।

(२) करदाता गोंडा शहर के चौक बाजार का ही रहने वाला है और उन पर व्यक्तिगत रूप से नोटिस तामील हो सकती थी। करदाता की स्त्री का कारिंदा नोटिस की तामीली के लिये उपयुक्त व्यक्ति नहीं है।

(३) पहले वर्ष की अपेक्षा दूसरे वर्ष में कर निर्धारण इतना अधिक कैसे हो गया इस विषय में यह कहना पर्याप्त नहीं है कि पहले वर्ष का अभिलेख उस समय कर निर्धारण अधिकारी के समक्ष नहीं था। जब कर निर्धारण सर्वोच्चम निर्णय पर आधारित होना चाहिए तो कर निर्धारण अधिकारी का यह कर्तव्य होता है कि कर निर्धारण करते समय प्रथम वर्ष का अभिलेख भी देख ले। यहाँ पहले वर्ष के अभिलेख को देखने का प्रयत्न भी नहीं किया गया था।

परिणामतः पुनरीक्षण स्वीकृत किया जाता है और नीचे के दोनों प्राधिकारियों का आदेश निराकृत किया जाता है। इसे गोंडा के कर निर्धारण प्राधिकारी के पास प्रतिप्रेषित कर दिया जाता है कि वे करदाता के विवरण को लेने और उसकी बात सुनने के पश्चात् विधि संमत रूप में कर निर्धारण करें।

विधिपत्रिका (१९६०) १९५८ इलाहाबाद (राजस्व) ३४
(उच्च न्यायालय)

माननीय न्यायमूर्ति वी० डी० भार्गव के आदेश दिनांक ८ मार्च १९५६ के विरुद्ध विशेष अपील। १६ दिसंबर १९५७।

धरम सिंह — अपीलकर्ता

विरुद्ध

जिलाधीश मुजफ्फरनगर तथा अन्य — उत्तरवादीगण

(अ) उ० प्र० पंचायत राज नियम, नि० १९ (एफ)—क्षेत्र—जिलाधीश नि० १९ (एफ) के अंतर्गत नवीन मतदान का आदेश तभी दे सकता है जब कि मतदान का विवरण पत्र खो जाय या उसकी लिखावट में काटकूट हो जाय और इसका पता मतदान की घोषणा होने के पहले ही चल जाय, अन्यथा नहीं—

(ब) उ० प्र० पंचायत राज अधिनियम धारा १२ सी० का तात्पर्य है कि निर्वाचित व्यक्ति अपने पद पर तब तक रहने का अधिकारी है जब तक कि उसका निर्वाचन चुनावयाचिका द्वारा अवैध घोषित न हो जाय।

मुख्य न्यायाधिपति मूथम—

यह अपीलकर्ता और उत्तरवादी संख्या २ गाँव सभा के प्रधान के लिये चुनावार्थी था। निश्चित तिथि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को चुनाव हुआ और चुनाव के परिणाम स्वरूप अपील कर्ता निर्वाचित घोषित हो गया। उसके निर्वाचित घोषित होने के दूसरे दिन पता चला कि चुनाव के विवरणवाले कागजों में जो अंक लिखे गए थे उनमें काटकूट की गई है। जाँच से पता चला कि पंचायत सेक्रेटरी की चाल से काटकूट की गई है। इस पर जिलाधीश ने आदेश दिया कि चुनाव फिर से हो और चुनाव की तिथि भी निश्चित कर दी गई। इस आदेश का परिणाम हुआ कि इस अपीलकर्ता के प्रधान का चुनाव निराकृत कर दिया गया।

जिलाधीश के इस आदेश से असंतुष्ट होकर अपील कर्ता ने इस न्यायालय में प्रार्थनापत्र दिया कि उत्प्रेषण लेख (रिट आफ सेशियोरकी) द्वारा जिलाधीश का उपर्युक्त आदेश अभिखंडित कर दिया जाय। विद्वान न्यायाधीश ने प्रार्थनापत्र उत्सर्जित कर दिया और निर्णय दिया कि विद्वान् जिलाधीश का आदेश नियम १९ (एफ) के अंतर्गत है। उत्सर्जन के इस आदेश के विरुद्ध यह अपील की गई है। अपील की सुनवाई के बीच में ही पता चला कि दूसरे चुनाव में उत्तरवादी संख्या दो निर्वाचित घोषित हो गया इसलिए अपीलकर्ता ने संशोधन द्वारा इतना और बढ़ा दिया कि द्वितीय उत्तरवादी का निर्वाचन प्रभावशून्य घोषित कर दिया जाय।

नियम १९ (एफ) में है कि चुनाव अधिकारी के पास से कोई चुनाव का कागज खो जाय या उसकी लिखावट में काटकूट की जाय तो जिस चुनाव के संबंध में यह विवरण था वह प्रभावशून्य हो जायगा।

धारा १२ (सी) में है कि प्रधान के लिये किसी के निर्वाचन पर सिवा चुनाव याचिका के किसी अन्य प्रकार से आपत्ति नहीं उठाई जा सकती। अतः यहाँ अपीलकर्ता का कहना है कि जब चुनाव का परिणाम घोषित हो गया तो उसके बाद जिलाधीश फिर से चुनाव करने का आदेश नहीं दे सकते। चुनाव के विवरण आदि में यदि कोई गड़बड़ी ज्ञात हो तो फिर से चुनाव होने का आदेश तभी दिया जा सकता है जब कि उसका परिणाम घोषित न हो चुका हो। परिणाम घोषित होने पर उत्तरवादी को चुनाव याचिका द्वारा अपीलकर्ता के चुनाव की वैधता पर आपत्ति करनी चाहिए थी। कहा गया कि यदि नि० १९ (एफ) का तात्पर्य यह हो भी कि चुनाव की घोषणा के बाद फिर से चुनाव करने का आदेश दिया जा सकता है तो यह धारा १२ (सी०) के विरुद्ध है अतः शक्तिपरस्तात् (उल्टावारस) है।

पहले देखना है कि चुनाव (एलेक्शन) का अभिप्राय क्या होता है। इसका एक अर्थ तो लगाया गया है कि वह विधायन (प्रासेस) जिससे किसी चुनावार्थी का चुनाव होता है। दूसरे स्थल पर कहा गया है कि किसी 'स्थान विशेष पर मतदान'। सत्यापन के समय ही किसी गलती होने का पता चल सकता है जिसके लिये १९ (एफ) में नियम बनाया जा चुका है और यह अवस्था निश्चय ही चुनाव का परिणाम घोषित होने के पहले पड़ेगी। दूसरे, नि० १९ में जो अनेक उपनियम बनाए गए हैं उन सबको देखने से यही प्रतीत होता है कि ये गलतियाँ निर्वाचन का परिणाम घोषित होने के केवल पहले ही ज्ञात हो सकती हैं। अतः हम लोगों के विचार से चुनाव के विवरण पत्रों में गड़बड़ी होने का पता निर्वाचन परिणाम के घोषित होने के बाद चलने से यह नि० १९ एफ० में नहीं आता और इसलिए जिलाधीश को फिर से मतदान करने का आदेश देने का अधिकार नहीं था। जिलाधीश का उपर्युक्त आदेश अवैध था इसलिए यह अभिखंडित किया जाता है। यतः कोई स्थान रिक्त नहीं हुआ जिसे भरना आवश्यक होता इसलिए दूसरे उत्तरवादी का चुनाव प्रभावशून्य घोषित किया जाता है।

अपीलकर्ता को परिव्यय का अधिकार होगा।

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ इलाहाबाद (राजस्व) पृ० — ३५

इलाहाबाद उच्च न्यायालय

मुख्य न्यायाधिपति, मूथम तथा न्यायमूर्ति ए० पी० श्रीवास्तव।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यायमूर्ति एम० एल० चतुर्वेदी के दिनांक २८ अगस्त १९५७ के निर्णय एवं आज्ञप्ति के विरुद्ध विशेष अपील सं० २३३ । १९५७।

१९ नवबंर १९५७

मिट्ठन लाल प्रार्थी अपीलकर्ता

विरुद्ध

एस० डी० ओ०, खेरागढ़, आगरा तथा अन्य
विपक्षी उत्तरवादीगण

उ० प्र० पंचायत राज नियम—नि० १९ बी० (४)—यह नियम उपप्रधान के निर्वाचन में नहीं लागू होगा—उपप्रधान के निर्वाचन के लिये अध्याय १—ई० के नियम लागू होते हैं।

उ० प्र० पंचायत राज नियम, नि० २२ (२) का अभिप्राय—गाँव पंचायत के एक सदस्य को एक ही मतदान (वोट) का अधिकार होता है—"हाथों को उठा कर" और—"सामान्य बहुमत की पद्धति" का अर्थ व्यावहारिक है—इनका अर्थ यह नहीं होता कि एक सदस्य को एक से अधिक मतदान का अधिकार है।

मुख्य न्यायाधिपति, मूथम—

यह अपील न्यायमूर्ति चतुर्वेदी के आदेश के विरुद्ध है। ज्ञात होता है कि यह अपील गलत धारणा के कारण निवेशित कर दी गई है।

इसमें उपप्रधान के चुनाव के लिये २४ सदस्य उपस्थित थे। तथा चुनावार्थी २ व्यक्ति थे। जब पहले व्यक्ति का नाम पुकारा गया तो १२ व्यक्तियों ने उसे अपना मतदान दिया। जब दूसरे चुनावार्थी की बारी आई तो उसके लिये १३ सदस्यों ने हाथ उठाया।

निर्वाचन अधिकारी ने इस प्रार्थी के लिये घोषणा किया कि यह चुन लिया गया। इस पर विपक्षी ने एस० डी० ओ० के न्यायालय में प्रार्थनापत्र निवेशित किया कि प्रार्थी के चुन लिए जाने की घोषणा गलत हुई है। एस० डी० ओ० ने निर्णय दिया कि जब केवल २४ सदस्य उपस्थित रहे और एक चुनावार्थी को १२ तथा दूसरे को १३ व्यक्तियों ने मतदान दिया तो इसका तात्पर्य हुआ कि किसी एक सदस्य ने दो बार मतदान दिया। पंचायत राज नियम के अनुसार एक सदस्य को एक ही मतदान देने का अधिकार है। विद्वान् एस० डी० ओ० का मत था कि प्रत्येक चुनावार्थी को बराबर बराबर मतदान मिले और नियम में है कि यदि बराबर मतदान हो तो चुनाव का परिणाम लाट डाल कर घोषित किया जाय। अतः चुनाव अधिकारी ने लाट नहीं डाला इसलिए एस० डी० ओ० ने चुनाव प्रभाव शून्य ठहराया और फिर से चुनाव करने का आदेश दिया।

अपीलकर्ता ने इसके विरुद्ध भारतीय संविधान के अनुच्छेद २२६ के अंतर्गत प्रार्थनापत्र निवेशित किया। उसका कहना है कि नि० २२ का यदि ठीक अर्थ किया जाय तो यही आता है कि प्रत्येक सदस्य को जितने चुनावार्थी खड़े हैं उतने मतदान देने का अधिकार है और इसलिए जब इस चुनाव में दो चुनावार्थी खड़े थे तो जिस व्यक्ति ने दोनों चुनावार्थियों को मतदान दिया उसने अपने अधिकार का अतिक्रमण नहीं किया। विद्वान् न्यायाधीश ने इस तर्क को नहीं माना और अपील उत्सर्जित कर दिया।

इस अपील में हम लोगों के समक्ष वही प्रतर्क है किंतु हम लोग विद्वान् न्यायाधीश के विचार से सहमत हैं। विद्वान् वकील ने नि० १९ बी० (४) दिखलाया। इसमें है कि :—

"प्रत्येक निर्वाचक को उतने मतदान का अधिकार होगा जितने कि लड़नेवाले चुनावार्थी हैं किंतु कोई 'निर्वाचक किसी चुनावार्थी को एक से अधिक मतदान नहीं देगा।"

कुछ भी हो यह नियम पंचायत राज नियम के अध्याय १ डी० में आता है जो गाँव पंचायत और न्याय पंचायत के सदस्यों के निर्वाचन से संबंध रखता है। यह उप प्रधान के निर्वाचन से कुछ संबंध नहीं रखता। उप प्रधान का निर्वाचन अध्याय १—ई० के अंतर्गत नियम २२ में आता है। यहाँ केवल नियम २२ (२) में प्रयुक्त वाक्यांशों "हाथ उठा कर" (शो आफ हैंड्स) और "सामान्य बहुमत पद्धति" (सिंपुल मेजारिटी सिस्टम) के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ पर ही विचार करना है। ये वाक्यांश व्यावहारिक हैं और इनमें से किसी का भी अर्थ यह नहीं होगा कि किसी निर्वाचक को एक से अधिक मतदान देने का अधिकार है। यदि विधान मंडल का अभिप्राय होता कि उपप्रधान के निर्वाचन में प्रत्येक निर्वाचक को एक से अधिक मतदान देने का अधिकार होगा तो नि० २२ में अवश्य ही कोई ऐसा उपयुक्त उपबंध होता जैसा कुछ दूसरे निर्वाचन के संबंध में अध्याय १—डी० में बनाया गया है।

अपील असफल होती है एवं तदनुसार उत्सर्जित की जाती है।

अपील उत्सर्जित

विधि पत्रिका (१९५८) १८८० इलाहाबाद (राजस्व)३७

(राजस्व मंडल)

फोन्हा, पहाड़पुर, करहल, मैनपुरी

आगरा मंडल के अतिरिक्त आयुक्त के आदेश दिनांक २१ मार्च १९५६ के विरुद्ध द्वितीय अपील (प्रार्थनापत्र सं० ३१६ । १९५५–५६) १६ मई १९५८।

पुत्तू — अपीलकर्ता

विरुद्ध

तिलक इत्यादि — उत्तरवादीगण

व्यवहार प्रक्रिया संहिता १९०८, आ० २३ नि० १, धारा ११—प्रतिवादी जो पहलेवाले एक मुकदमें में वादी था और उसने अपना घोषणात्मक वाद हटा लिया था तथा हटाते समय उसने दूसरा वाद निवेशित करने की अनुमति नहीं माँगी थी—इस मुकदमे में प्रतिवादी उसी अभिवचन का आश्रय ले सकता है यद्यपि वह स्वयं उसी वादमूल पर दूसरा वाद निवेशित नहीं कर सकता—

न्यायिक सदस्य, एम० एम० सिद्दिक—

यह वादी की अपील है जो उ० प्र० भू धारण अधिनियम की धारा ५९ के अंतर्गत निवेशित वाद से आई है। कोई जोधा सिंह था और वादी तथा जोधा सिंह सह कृषक (कोटेनेन्ट्स) थे। जोधा सिंह के मरने पर उसकी संपत्ति के लिये दो दावेदार खड़े हुए। वादी का कहना था कि उसका उत्तरजीवी (सरवाइवर्स) होने से मेरा अधिकार है और प्रतिवादी का कहना था कि मैं जोधा सिंह का दत्तक पुत्र हूँ इसलिए संपत्ति का अधिकारी मैं हूँ। प्रतिवादी तिलक सिंह का नाम कागजों में नहीं था।

प्रतिवादी ने एक घोषणात्मक (डिक्लेरेटरी) वाद निवेशित किया किंतु जब इस बीच उसका नाम सरकारी कागजों में आ गया तो वह मुकदमा छोड़ कर हट गया। छोड़ कर हटते समय उसी वादमूल पर द्वितीय वाद निवेशित करने के लिये उसने न्यायालय की अनुमति नहीं माँगी थी।

इसके बाद वादी ने एक घोषणात्मक वाद निवेशित किया। इसमें प्रतिवादी ने वही बात कही जो उसने अपने पहले वाद में कही थी कि मैं जोधा सिंह का दत्तक पुत्र हूँ और इसलिए मैं संपत्ति का अधिकारी हूँ। अन्वीक्षा न्यायालय ने प्रतिवादी की बात मान लिया कि वह जोधा सिंह का दत्तक पुत्र है इसलिए वाद उत्सर्जित कर दिया गया। इसके विरुद्ध वादी ने अपील किया और अपील के न्यायालय में भी यही निर्णय दिया। अतः वादी यह द्वितीय अपील निवेशित की है।

इस अपील में अपीलकर्ता का कहना है कि यह व्य० प्र० सं० के आ० २३ नि० १ में आता है। उसका कहना है कि उक्त उपबंध के अंतर्गत यदि वादी उसी वादमूल पर दूसरा वाद निवेशित करने की अनुमति न्यायालय से नहीं लेता है और वाद हटा लेता है तो वह उसी वादमूल पर दूसरा वाद निवेशित नहीं कर सकता तथा यही नियम प्रतिवाद में भी लागू होगा और इसलिए यह प्रतिवादी वही बात प्रतिवाद में नहीं कह सकता जिस बात पर कि वह वादमूल के रूप में दूसरा वाद निवेशित कर ही नहीं सकता। तात्पर्य यह कि अपीलकर्ता का कहना है कि यदि प्रतिवादी अब यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहकर कोई वाद निवेशित नहीं कर सकता कि वह जोधा सिंह का दत्तक पुत्र है तो वह प्रतिवाद में भी नहीं कह सकता कि मैं जोधा सिंह का दत्तक पुत्र हूँ। दूसरे अपीलकर्ता का कहना है कि इसमें व्यवहार प्रक्रिया संहिता धारा ११ के प्राङ्न्याय (रेसजुडिकेटा) का सामान्य सिद्धांत लागू होता है।

यह बात मानी नहीं जा सकती। जो १९५१ आर० डी० ४९ की चर्चा की गई है उसमें केवल यही था कि यदि न्यायालय की स्वीकृति नहीं मिली है तो दूसरा वाद आ० २३ नि० १ के कारण चल नहीं सकता। इसकी परिस्थिति दूसरी है और वह रूलिंग इसमें लागू नहीं होती।

ए० आई० आर० १९३७ मद्रास ४३८ में निर्णय हुआ था कि धारा २३ नि० १ किसी वाद का निर्णय नहीं करता जिसमें धा० ११ का प्राङ्न्याय वाला सिद्धांत लागू हो सके। आ० २३ नि० १ केवल दंड स्वरूप है कि यदि अनुमति के बिना ही वाद हटा लिया गया है तो उसी वादमूल पर दूसरा वाद निवेशित करने में उसे रोक दिया जाता है। अतः ऐसी दशाओं में धारा ११ का सामान्य सिद्धांत लागू नहीं होता।

उपर्युक्त रुलिंग से यह स्पष्ट है कि तिलक सिंह यह प्रतिवाद ले सकते हैं कि मैं जोधासिंह का दत्तक पुत्र हूँ। प्रतिवादी यह कहकर न्यायालय में वादी के रूप में नहीं आ सकता कि मैं जोधासिंह का दत्तक पुत्र हूँ। ऐसी रुकावट उसके वाद के लिये हैं, प्रतिवाद में नहीं।

अपील में बल न होने के कारण उत्सर्जित की जाती है।

अपील उत्सर्जित

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ इला० (राजस्व) ३८

(राजस्व मंडल)

सराय दाउद, सादाबाद, मथुरा

मथुरा के जुडिशियल आफिसर के आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र सं० ८ (जेड) १९५६।५७

६ जून १९५८

विद्धा प्रार्थी वि० देश राज विपक्षी

व्यवहार प्रक्रिया संहिता १९०८ आ० ९ नि० १३-'पर्याप्त कारण' की व्याख्या— वाद का उत्सर्जन-उत्सर्जन के आदेश को निराकृत करना न्यायालय के विवेक पर निर्भर करता है—यदि स्वविवेक दुर्भावना से नहीं है तो हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता— सच्चाई का व्यवहार करने पर भी यदि वकील से गलती हो गई हो तो यह प्रमादपूर्ण होने पर भी 'पर्याप्त कारण' है।

न्यायिक सदस्य एम० एम० सिद्दिक—

मथुरा के जुडिशियल आफिसर ने एक वाद अनुपस्थिति के कारण उत्सर्जित कर दिया था और पुनर्स्थापना की प्रार्थना करने पर उसे ४-२-१९५७ को पुनर्स्थापित कर दिया। इसी आदेश के विरुद्ध यह पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र है।

इसके तथ्य इस प्रकार हैं कि यह वाद एक वादपद के निर्णय के लिये व्यवहार (सिविल) न्यायालय में भेज दिया गया था। व्यवहार न्यायालय (सिविल कोर्ट) ने उस वाद पद पर निर्णय देकर उसे जुडिशियल आफिसर के न्यायालय में लौटा दिया और २४ अक्टूबर १९५६ निश्चित किया कि उस तिथि को उभय पक्ष जुडिशियल आफिसर के न्यायालय में उपस्थित हों। वादी के वकील ने व्यवहार न्यायालय के उक्त आदेश पर सूचनार्थ हस्ताक्षर किया था।

२८ अक्टूबर को जब मुकदमों की पुकार जुडिशियल आफिसर के न्यायालय में हुई तो वादी अनुपस्थित मिला जब कि प्रतिवादी उपस्थित था। मुकदमे को अनुपस्थिति में उत्सर्जित कर दिया। उसने बाद वादी ने जब पुनर्स्थापना का प्रार्थनापत्र दिया तो जाँच के लिये जुडिशियल आफिसर ने वादी के वकील का परीक्षण किया। वकील ने कहा कि व्यवहार न्यायालय में जिस दिन उक्त आदेश पारित हुआ था उस दिन मेरा कार्यार्थी (क्लाएंट) उपस्थित नहीं था और उसे सूचना देने का मैंने प्रयत्न किया कि उसे जुडिशियल आफिसर के न्यायालय में २४ अक्टूबर को उपस्थित होना है किंतु मैं उसे सूचना समय के भीतर देने में असमर्थ रहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्वान् जुडिशियल आफिसर ने इसे पर्याप्त कारण मानकर पुनर्स्थापित कर दिया।

इस पुनर्स्थापना के विरुद्ध यहाँ कहा गया है कि जब वकील को सूचना थी तो यह माना जायगा कि स्वयं वादी को सूचना थी और यदि वकील ने प्रमाद से गलती किया तो इसका दुष्परिणाम उसके कार्यार्थी (क्लाएंट) को भुगतना पड़ेगा। पुनरीक्षकों का कहना है कि आ० ६ नि० १३ के अनुसार 'पर्याप्त कारण' नहीं दिखलाया गया इसलिए पुनर्स्थापना का आदेश गलत था। इस बात के समर्थन के लिये ए० आई० आर० १९५४ राजस्थान १२६ का अभिदेश किया गया। इस रुलिंग में निर्णय हुआ था कि वकील की गलती उसके कार्यार्थी की गलती समझी जायगी। किंतु राजस्थान के उक्त विचार के विरुद्ध इलाहाबाद उच्च न्यायालय का एक निर्णय है जो ए० एल० जे० १९५६ पृ० ३६७ पर प्रतिवेदित है। इस रुलिंग में अवधि अधिनियम की धारा ५ में प्रयुक्त वाक्यांश 'पर्याप्त कारण' विचाराधीन था। यही वाक्यांश 'पर्याप्त कारण' आ० ६ नि० १३ में भी प्रयुक्त है इसलिए उपयुक्त रुलिंग की व्याख्या इसमें काम में लाई जा सकती है। इसमें निर्णय हुआ था कि इन शब्दों का अर्थ बहुत उदारता से करना चाहिए और विशेषतया उस समय जब कि दुर्भावना, अकर्मण्यता या प्रमाद नहीं दिखलाई पड़ता। ए० आई० आर० १९२२ इलाहाबाद ४६० में निर्णय हुआ था कि यदि ईमानदारी वर्तने पर भी वकील से गलती हो गई हो तो प्रमादपूर्ण होने पर भी यह 'पर्याप्त कारण' है। यह निर्विवाद है कि जब न्यायालय स्वविवेक का प्रयोग करता है तो अपील में या कम से कम पुनरीक्षण में इस पर हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए जब तक कि यह प्रमाणित न हो जाय कि यह स्पष्टतः गलत है। यहाँ जुडिशियल आफिसर का स्वविवेक स्पष्टतः गलत होने को कौन कहे सर्वथा ठीक ढंग से प्रयुक्त हुआ है। इसकी पुष्टि के लिये उन्होंने वकील का परीक्षण किया और तब जाकर पुनर्स्थापित किया।

वाद के उत्सर्जन के आदेश को निराकृत करने के लिये पर्याप्त कारण था। इस पुनरीक्षण में कोई बल नहीं है इसलिए यह परिव्यय के साथ उत्सर्जित किया जाता है।

पुनरीक्षण उत्सर्जित

विधि पत्रिका १८८० (१९५८) इला० (राजस्व) ३९

(राजस्व मंडल)

तहरपुर, बूदपुर, बिजनौर

राजस्व मंडल के आदेश दिनांक २२ फरवरी १९५५ के विरुद्ध पुनर्स्थापना प्रार्थनापत्र सं० १४। १९५४-५५

७ जून १९५८

उमराव सिंह — प्रार्थी

वि०

राघो इत्यादि — विपक्षी

व्यवहार प्रक्रिया संहिता १९०८ आ० २२ का पुनरीक्षण में लागू होना—'युक्ति संगत समय' (रीजनेबुल टाइम) का तात्पर्य—विधिक प्रतिनिधि का नाम यदि मरने के ९० दिन के बाद प्रतिस्थापित किया जाता है तो साधारणतया पुनरीक्षण स्वीकार नहीं करना चाहिए।

न्यायिक सदस्य, एम० एम० सिद्दिकी—

२२ फरवरी १९५५ को एक पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र अनुपस्थिति के कारण उत्सर्जित कर दिया गया था उसीको पुनर्स्थापित करने के लिये यह प्रार्थनापत्र है।

पुनर्स्थापना के लिये यह प्रार्थनापत्र दिनांक २३ मार्च १९५५ को दिया गया। इसमें कहा कि पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र की सुनवाई की तिथि का पता मुझे अपने वकील द्वारा लगा जो सुनवाई की तिथि से केवल दो दिन पहले थी और उस समय मेरी आँख में कष्ट या इसलिए मैं उस सुनवाई की तिथि को उपस्थित नहीं हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सका। किंतु शपथपत्र में अंक १६ किसी दूसरे अंक पर लिखा हुआ है और इसका अभिप्राय यह प्रतीत होता है कि प्रार्थी इस तिथि को सुनवाई की तिथि के बहुत समीप रखना चाहता था। इसके बाद भी प्रायः एक महीने के पश्चात् प्रार्थी ने पुनर्स्थापना की प्रार्थना की जिससे प्रकट होता है कि उसका कहना कि सुनवाई की तिथि का पता मुझे वकील द्वारा लगा और उस समय मेरी आँख में कष्ट था गलत है।

इस प्रार्थना का विरोध विपक्षी के विद्वान वकील ने एक और आधार पर किया है जो बहुत महत्वपूर्ण है। उनका कहना है कि इसमें आरंभिक प्रार्थी उमरावसिंह था जो जनवरी १९५७ में किसी समय मरा और उनके उत्तराधिकारियों की प्रतिस्थापना के लिये प्रार्थनापत्र उसके ८ महीने के बाद दिया गया। अतः प्रतिस्थापना का प्रार्थनापत्र काल बाधित है और परिणामतः पुनरीक्षण का उपशमन (अबेटमेंट) हो गया। प्रार्थी के विद्वान वकील ने इसका उत्तर दिया है कि आ० २२ पुनरीक्षण में लागू नहीं होता। यह बात भी ठीक है किंतु इसका अभिप्राय यह नहीं हो सकता कि पुनरीक्षण में प्रतिस्थापना जब इच्छा हो तब किया जाय। न्यायालय को इसके लिये देखना है कि साधारणतया मुकदमा लड़ते समय जैसी सतर्कता दिखलाई जाती है वैसी है कि नहीं। देर का यदि कोई युक्तिसंगत कारण नहीं दिखलाया जाता तो कार्यवाही समाप्त हो जानी चाहिए। १९५० इलाहाबाद ६६५ में इस पर विचार किया गया है कि पुनरीक्षण के लिये युक्तिसंगत अवधि क्या होनी चाहिए। इसमें इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने कहा था कि पुनरीक्षण के लिये युक्तिसंगत समय वही होगा जो आ० २२ में दिया गया है। अतः यदि ६० दिन के बाद प्रतिस्थापना के लिए प्रार्थनापत्र दिया जाता है तो साधारणतया इसे स्वीकार नहीं करना चाहिए।

प्रार्थी ने पर्याप्त कारण नहीं दिखलाया कि वह २२ फरवरी १९५५ को क्यों अनुपस्थित रहा और यदि कोई पर्याप्त कारण हो भी तो मरे हुए प्रार्थी के स्थान पर उसके उत्तराधिकारियों का नाम रखने में जो अतिशय विलंब हुआ है उसके कारण पुनरीक्षण टिक नहीं सकता।

अतः प्रार्थनापत्र परिव्यय के साथ उत्सर्जित किया जाता है।

प्रार्थनापत्र उत्सर्जित

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इला० (राजस्व)४०

(राजस्व मंडल)

पर सेहरा, खैराबाद, सीतापुर

लखनऊ मंडल के अतिरिक्त आयुक्त के आदेश के विरुद्ध द्वितीय अपील (प्रार्थनापत्र सं० ५८ । १९५६-५७)

१५ अप्रैल १९५८

डोरे लाल अपीलकर्ता

विरुद्ध

(श्रीमती) भगवती देवी इत्यादि उत्तरवादीगण

उ० प्र० जमींदारी विनाश तथा भूमि सुधार-अधिनियम—१, १९५१ धारा २१ (१) १५७-२०२-धारा २१ (१) में शब्द "निहित तिथि"—इसका तात्पर्य—"भूस्वामी" का संबंध केवल दो तिथि से है पहली, जिस दिन भूमि का बंदोबस्त हुआ—और दूसरी, ९ अप्रैल १९४६; निहित तिथि से भूस्वामी से कुछ संबंध नहीं है—यदि अनर्हता समाप्त हो गई हो तो निहित तिथि के ३ वर्ष के भीतर धारा० २०२ में वाद निवेशित हो सकता है।

न्यायिक सदस्य एस० एन० मित्रा—

श्रीमती भगवती, श्रीमती रामप्यारी और श्रीमती जगरानी वादियों ने ज० वि० तथा भूमिसुधार—अधि-नियम की धारा २०२ के अंतर्गत वाद निवेशित किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Exhausted	निःशेषित, श्रांत, क्लांत
Exhaustion	शून्यीकरण, क्लांति
Exhibit	प्रदर्शित करना, प्रदर्श, संमुख लाना
Exrhibiter	प्रदर्शनकारी, प्रदर्शक
Exhibition	प्रदर्शनी, प्रदर्शन
Exhibitive	प्रदर्शनीय
Exhibitor	प्रदर्शक
Exhibits	प्रदर्शन की वस्तुएँ
Exhort	उत्साहित करना, प्रबोधन, संमति देना, चेतावनी देना
Exhortation	प्रोत्साहन, संमति, चेतावनी, प्रबोधन
Exhortative	प्रबोधक, उपदेशक
Exhorter	प्रबोधक
Exigence	विशेष आवश्यकता, संकट काल
Exigent	अत्यावश्यक
Exist	अस्तित्व होना, होना, विद्यमान होना, जीवित होना
Existence	अस्तित्व, सत्ता, स्थिति, जीवन
Existent	विद्यमान, वर्तमान, स्थित
Existential	विद्यमानता, अस्तित्व
Existing	विद्यमान
Exonerate	निर्दोष ठहराना, भार मुक्त करना, छोड़ देना
Exoneration	दोष मुक्ति, पाप से छुटकारा
Exonerative	मुक्तिदायक, निर्दोष करनेवाला
Exorbitance	आधिक्य, अतिशयता
Exorbitant	अत्यधिक, अतिशय, परिमाणरहित
Exorbitantly	अतिशयता से, अधिकता से
Expect	प्रत्याशा करना, अपेक्षा करना
Expectance	प्रत्याशा, अपेक्षा, प्रतीक्षा
Expectant	आकांक्षी, प्रत्याशा करनेवाला
Expectantly	प्रत्याशा से
Expectation	प्रत्याशा, आशा, आकांक्षा
Expectative	उत्तराधिकार का आकांक्षी, प्रत्याशावाला
Expedience (Expediency)	उपयुक्तता, औचित्य, उपयुक्त, वांछनीय, वांछनीयता
Expedient	उपयुक्त, योग्य, वाँछनीय, लाभकर
Expenses	व्यय, खर्चा
Expensive	बहुव्ययी, मँहगा, अधिक मूल्य की
Expensively	मँहगाई से, बहुत खर्चे से

६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Expensiveness	बहुमूल्यता
Experience	अभिज्ञता, अनुभव
Experienced	कुशल, निपुण, बहुज्ञ, अनुभवी
Experienceless	अनुभवहीन
Experiencer	अनुभवकर्ता
Expert	विशारद, अनुभवी, विशेषज्ञ
Expertise	निपुणता, पूर्णज्ञान
Expertly	कुशलतापूर्वक
Expertness	दक्षतर, निपुणता
Expire	मरण, मृत्यु को प्राप्त होना, अंत, समाप्त होना
Expired	मृत, अवसित
Expiry	अवसान, मरण, समाप्ति, अंत
Explain	विवरण देना, समझाना, स्पष्टीकरण करना
Explainable	समझाने योग्य, व्याख्या करने योग्य
Explainer	व्याख्याकर्ता, समझानेवाला
Explanation	भाष्य, टीका, विवरण, व्याख्या, स्पष्टीकरण
Explanatorily	व्याख्या के रूप में
Explanatory	स्पष्टीकरण योग्य, व्याख्या के संबंध में
Explicit	व्यक्त, सुस्पष्ट, पूर्ण, असंदिग्ध
Explicitly	स्पष्ट रूप में
Explicitness	स्पष्टता
Export	निर्यात, निष्कामण
Export duty	निर्यात कर
Expose	प्रकाश में लाना, स्पष्ट करना, विगोपन, अभिदर्शन
Exposition	स्पष्टीकरण, विवरण, व्याख्या, टीका
Expositive	व्याख्यात्मक, विवरण योग्य
Exposition	व्याख्याकार, अर्थकर्ता, समालोचक भाष्यकर्ता
Expost facto	घटनोत्तर
Exposure	विगोपन, भेद खुलना, संकट की स्थिति
Express	कहना, कथन करना, स्पष्ट, संदेहरहित, प्रत्यक्ष
Expression	अभिव्यक्ति, प्रकटीकरण, अभिव्यंजन, कथन, चेष्टा
Expressive	भावपूर्ण, ठीक प्रकार से व्यक्त, द्योतक
Expressively	स्पष्ट रूप से
Expressiveness	स्पष्टता
Expressure	भावाभिव्यक्ति
Expropriietory	हृतस्वामित्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Expulsion	निष्कासन, निर्वासन, बाहर करना
Expulsive	बाहर करने योग्य, निर्वासन योग्य
Expunction	अपलोपन, लुप्तीकरण, मिटा देना
Expunge	अपलोपित करना, मिटाना, हटाना, काटना नष्ट करना
Excind	काटकर निकाल देना, छाँट देना
Exsilentio (argument from silence)	अभावमूल प्रतर्क
Extend	प्रसारित करना, विस्तृत करना, बढ़ाना, फैलाना, मूल्य आँकना
Extendable	विस्तार करने योग्य, प्रसारित करने योग्य
Extendible	विस्तार करने योग्य, फैलाने योग्य
Extense	विस्तृत, विस्तीर्ण, व्यापक
Extensibility	विस्तीर्णता, व्यापकता
Extensible	विस्तार के योग्य
Extension	व्यापकता, प्रसारण, व्याप्ति, विस्तार, फैलाव, वृद्धि
Extensive	विस्तीर्ण, विस्तृत, व्यापक
Extent	सीमा, मात्रा, विस्तार
Extenuate	न्यूनीकरण, मूल्य घटाना, क्षीण करना; उपशमन करना
Extenuating	लघुकारक
Extenuatingly	उपशमन के रूप में
Extenuation	अपराध घटाकर दिखाना, लघुकरण, उपशमन
Extenuative	लघुकारक, घटानेवाला
Extestaments	इच्छापत्र के द्वारा, इच्छापत्र के अनुसार
Extinct	लुप्त, परिशांत, मृत, समाप्त
Extincted	अप्रचलित, मृत
Extinction	परिसमाप्ति, अंत, नाश, लोप
Extinguish	बुझाना, शमन करना, नष्ट करना
Extort	बलपूर्वक लेना, बलात् आदान
Extort confession	बलपूर्वक अपराध स्वीकार करवाना
Extorsive	बलपूर्वक स्वीकार करानेवाला
Extorsively	बलात् रूप में
Extortion	लूट, बलपूर्वक लेना, बलात् आदान
Extortionary	बलात् आदान संबंधी
Extra	अतिरिक्त, असाधारण, अधिक, भिन्न
Extract	निष्कर्षण, उद्धरण, निस्सारण
Extractable	सार निकालने योग्य
Extraction	प्रत्यर्पण, सार निष्कासन, उद्धरण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Extradite	विदेशी सरकार को अन्वीक्षा के लिये प्रत्यर्पण
Extradition	एक राज्य का दूसरे राज्य को अपराधी प्रत्यर्पण
Extraneous	बाहरी, विषयविरुद्ध, अनावश्यक भिन्न, असंगत
Extraneously	बहिर्भाव से, विषयांतरता से
Extraneousness	विषयांतरत्व, बाह्यत्व
Extraordinary	विलक्षण, अनोखा, असाधारण अद्भुत, असामान्य, विशेष
Extraordinarily.	विचित्रता से, असाधारण रूप से, विलक्षणतापूर्ण
Extraordinaries	विचित्र वस्तुएँ, असाधारण वस्तुएँ
Extravagance	अतिव्यय, अपव्यय
Extravagant	अमितव्ययी, अतिव्ययी, अपव्ययी, धन नष्ट करनेवाला
Extravagancy	अतिशय व्यय करने का स्वभाव, अपव्यय
Extreme	चरम, उग्र, अति, अतिशय, अति दूर, बाह्यतम, नितांत
Extremist	गरम दल के, क्रांतिकारी, उग्रवादी, अतिशयवादी
Extremity	अंतिम सीमा, चरम अवधि
Extricable	विमुक्त करने योग्य
Extricate	मुक्त करना, छोड़ना, छुड़ाना
Extrinsic evidence	बाह्य साक्ष्य
Eye witness	प्रत्यक्ष साक्षी
F	
Fabricated	मिथ्या रचित, कूट
Fabricated adoption	कूट दत्तकग्रहण
Fabricated evidence	मिथ्यारचित साक्ष्य
Fabrication	मिथ्या रचना
Fabulous	कल्पित
Facility	सुविधा (ईजमेंट से)
Facsimile signature	चित्र हस्ताक्षर
Fact	तथ्य
Fact in issue	वाद तथ्य, निर्णेय तथ्य, पादवस्तु
Faction	दल, दलबंदी, विरोध
Facto	वस्तुतः
Factories Act	निर्माणी अधिनियम
Factories rules	निर्माणी नियम
Factories and workshops Acts	निर्माणी और कर्मशाला अधिनियम
Factory Inspector	निर्माणी निरीक्षक
Factory premises	निर्माणी परिसर
Factory workers' society	निर्माणी कर्मचारिसमिति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Facts and figures	तथ्य एवं अंक
Facts of the case	प्रकरण के तथ्य, विचार्य विषय के तथ्य; वाद के तथ्य
Factum	स्वकृत्य
Faculty	शक्ति, क्षमता, योग्यता
Faculty of Advocates	अधिवक्तृ निकाय
„ „ education	शिक्षा निकाय
„ „ hearing	श्रवण शक्ति
„ theory	(टैक्जेशन में) क्षमता सिद्धांत
Fade	कम होना
„ away	लुप्त होना, मुरझाना
Fail	चूकना
Fail to appear	उपस्थित न हो सकना
Failure	असफलता, चूक
Failure in a suit	वाद में विफलता
„ of consideration	प्रतिफल का अभाव
„ „ duty	कर्तव्यच्युति
Fair	उचित, न्याय्य
„ and equitable	उचित और न्याय्य
„ „ reasonable	उचित और युक्तियुक्त
„ comment	उचित समालोचना
„ competition	उचित स्पर्धा
„ copy	स्वच्छ प्रति
„ estimate	उचित प्राक्कलन
Fairest principle	न्याय्यतम सिद्धांत
Fair offer	उचित प्रस्ताव
„ play	निष्पक्ष व्यवहार, न्याय
„ preponderance of evidence	साक्ष्य का (पर्याप्त) बाहुल्य
„ price shop	उचित-मूल्य-आपण
„ returns	उचित प्रत्याय
Fairs law	मेला विधि
Fair trade	वैध व्यापार, समता व्यापार
Faith and credit	विश्वास और प्रत्यय
Faithful	श्रद्धालु, निष्ठावान्
Faithfully yours=yours faithfully	भवन्निष्ठ
Fall	गिरना, पतन होना उतरना, कम होना
Fallacious	भ्रांतिकारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Fallacy	भ्रांति, आभास
Fall due	देय, देना
„ of bullet	गोलिकापात
„ out of cultivation	निष्कृषि हो जाना
Fallow	अनुप्त, पड़ती
„ land	अनुप्त भूमि, पड़त भूमि
Fall short of	न्यून हो जाना, कम पड़ना
Fall through	निष्फल होना
„ within the scope of the rules	नियमों की व्याप्ति के अंतर्गत होना
False	कूट, मिथ्या, झूठा
False account	मिथ्या लेखा
„ accusation	मिथ्या अभियुक्ति
„ and frivolous	झूठा और तुच्छ
„ assumption	मिथ्या अभिधारण
„ claim	मिथ्या अध्यर्थना
„ coin	कूट टंक
„ copy	मिथ्या प्रतिलिपि, झूठी प्रतिलिपि
„ document	कूट लेख्य, झूठा लेख्य
„ entry	मिथ्या प्रवृष्टि
„ evidence	झूठा साक्ष्य, मिथ्या साक्ष्य
„ impression	झूठा प्रभाव
„ imprisonment	अवैध कारावास
„ information	झूठी सूचना
Falsely	मिथ्या, झूठ से
False personation	कूट पररूप धारण, मिथ्या रूप धारण
False pretence	झूठा बहाना
„ property mark	कूट संपत्ति चिह्न
„ return	मिथ्या प्रतिवरण
„ statement	मिथ्या कथन, झूठा कथन
„ swearing	झूठी शपथ लेना
Falsificatien	कूट करण
Falsification of accounts	लेखा कूटकरण
Falsity	मिथ्यात्व
Familial	कुलागत
Family agreement or settlement	पारिवारिक समझौता
Family allotment	परिवारार्थ द्रव्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Family allowance	परिवार अविदेय, परिवार भत्ता
„ management	पारिवारिक व्यवस्था, पारिवारिक समझौता
„ custom	कुलाचार
„ debt	कुलऋण
„ earning	परिवार अर्जन, परिवार की कमाई
„ espense	परिवार व्यय
„ feud	कुल वैर
„ head	कर्ता
„ member	पारिवारिक जन
„ pedigree=Family tree	वंशावलि
„ pension	परिवार निवृत्ति वेतन
„ relation	कुल, संबंध
Famine duty	दुर्भिक्ष कर्तव्य
„ insunance fund	दुर्भिक्ष आगोप-निधि
„ „ grant	दुर्भिक्ष आगोप अनुदान
„ programme	दुर्भिक्ष कार्यक्रम
„ Relief Fund Act	दुर्भिक्ष-सहायता निधि अधिनियम
Fare	भाटक, भाड़ा
Fares and freights	जन तथा वस्तु भाटक
Farm	प्रक्षेत्र, खेत
Farm accounts	प्रक्षेत्र लेखा
„ and dairy book keeping	प्रक्षेत्र तथा गव्यशाला पुस्तपालन
Farming	प्रक्षेमण
Fast	दृढ़, स्थिर, बद्ध, पक्का
Fat	स्थूल, मोटा, वसा
Fatal	घातक
„ accident	घातक दुर्घटना
Fatal assault	घातक प्रहार
Father in law	श्वशुर, ससुर
„ or any other male progenitior	पिता अथवा अन्य पूर्वजनक
Fatigue	श्रांति, थकान
Fault	दोष, अपराध
Favourable consideration	अनुकूल विचार
Feast	भोज
Feature	आकृति
Federal	संघानीय, संघान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Federal animal husbandry research institute	संधानीय पशुपालन अन्वेषालय
Federal constitution	संधानीय संविधान
,, court	संधानीय न्यायालय, संधान न्यायालय
,, executive	संधानीय निष्पादक वर्ग
,, financial integration	संधानीय वैत्तिक एकीकरण
,, goverment	संधानीय शासन
,, legislature	संधानीय विधान मंडल
,, Parliament	संधानीय संसद
,, subject	संधान विषय
Federation	संधान, संधान राज्य
,, of associations	मंडल संधान, पार्षत् संधान
,, of chambers of commerce	व्यापार मंडल संधान
Fee	संपत्, शुल्क, देय
,, simple	परम संपत्
,, ,, absolute	निरुपाधि संपत्
,, tail	परिमित संपत्
Feeble	दुर्बला, मंद क्षीण
Feeding at parties restrictions order	सहभोज निबंध आदेश (स० नि० आ०)
Fee expectant	आपेक्षिक संपत्
Feel	अनुभव करना, स्पर्श करना
Feeling	भावना
Feign	स्वाँग करना
Fell	गिराना, काटना
Fellow election	अधिसदस्यों का निर्वाचन
,, servants	सहसेवक
Fellowship	अधिसदस्यता, अधिछात्रवृत्ति
Female	स्त्री, महिला
,, convict	बंदिनी
,, criminal prisoner	आपराधिक बंदिनी
,, heir	दायादा
,, line	मातृ परंपरा
,, progenitor	पूर्व जननी
,, tree	मातृ वृक्ष
,, covert	परिणीता
,, sole	अपरिणीता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि पत्रिका के नियम

(१) "विधि पत्रिका" का वार्षिक, षाण्मासिक और त्रैमासिक शुल्क क्रमशः १०), ५॥) और ३॥) है; एक प्रति का मूल्य १) है। शुल्क मनीआर्डर या वी० पी० द्वारा देय है। वी० पी० से मँगाने में डाकव्यय अतिरिक्त लगेगा।

(२) शुल्क, 'मंत्री, नागरीप्रचारिणी सभा, "विधि पत्रिका" विभाग, वाराणसी-१' के पते से आना चाहिए।

(३) "विधि पत्रिका" प्रत्येक सौर मास के अंतिम सप्ताह में अर्थात् प्रत्येक अँगरेजी मास के दिनांक १५ तक प्रकाशित होगी।

(४) "विधि पत्रिका" में विधि संबंधी लेख तथा विधि विषयक पत्रों, पुस्तकों आदि की समालोचनाएँ भी प्रकाशित होंगी। समालोचनार्थ पुस्तकों की दो प्रतियाँ आनी चाहिए। लेख, समालोचनार्थ पुस्तकें आदि संपादक, "विधि पत्रिका", नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी—१' के पते से भेजनी चाहिए।

———

जहाँगीर का आत्मचरित

अनुवादक—ब्रजरत्नदास

मुग़ल सम्राट् अकबर के पुत्र चतुर्थ मुगल सम्राट् बादशाह जहाँगीर ने अपना आत्मचरित लिखा है जिसका अनुवाद इस ग्रंथ में प्रस्तुत किया गया है। इसमें उसके राज्यकाल के अठारह वर्षों का विस्तृत ऐतिहासिक विवरण दिया गया है और साथ ही बहुत सी ऐसी घरेलू बातें भी आ गई हैं जिनका अन्य इतिहासों में उल्लेख नहीं मिलता। जहाँगीर ने अपने पिता की बहुत सी बातों का, आकृति, प्रकृति, रुचि आदि का वर्णन अपनी रचना में यत्र तत्र किया है जो अत्यंत प्रमाणिक है। इसने अपनी यात्राओं, मदिरोत्सवों, अहेरों आदि का ऐसा सुंदर वर्णन दिया है जो कहीं कहीं बहुत आकर्षक हो गया है। इसने हिंदुओं के मंदिरों, विचारों आदि की आलोचना की है। इसमें जब एक ओर कट्टर धर्मांधता है तब दूसरी ओर उदारता भी स्पष्ट है। इसने अपने अत्याचारों, कमजोरियों आदि सभी का स्पष्ट वर्णन कर डाला है, कहीं छिपाने का प्रयत्न नहीं किया है। अपने मदिरापान की अति को उसने कुछ नहीं छिपाया और उसकी बहक में इसने अपने बड़ों तथा ईश्वर के प्रति अपनी श्रद्धा खूब दरसाई है। फारस आदि की कुछ कहानियों तथा स्वरचित शैरों का भी इसमें समावेश किया है। पुस्तक हर दृष्टि से पढ़ने तथा मनन करने योग्य हैं। पृ० संख्या लगभग ६०० तथा अनेक चित्रों युक्त, पक्की दृढ़ ज़िल्द सहित पुस्तक का मूल्य केवल १५)।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशक और मुद्रक—नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी की ओर से तथा उसके लिये श्री सिद्धनाथ सिंह,
। नागरी मुद्रण, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि पत्रिका के नियम

(१) "विधि पत्रिका" का वार्षिक, षाण्मासिक और त्रैमासिक शुल्क क्रमशः १०), ५।।) और ३।।) है; एक प्रति का मूल्य १) है। शुल्क मनीआर्डर या वी० पी० द्वारा देय है। वी० पी० से मँगाने में डाकव्यय अतिरिक्त लगेगा।

(२) शुल्क, 'मंत्री, नागरीप्रचारिणी सभा, "विधि पत्रिका" विभाग, वाराणसी—१' के पते से आना चाहिए।

(३) "विधि पत्रिका" प्रत्येक सौर मास के अंतिम सप्ताह में अर्थात् प्रत्येक अँगरेजी मास के दिनांक १५ तक प्रकाशित होगी।

(४) "विधि पत्रिका" में विधि संबंधी लेख तथा विधि विषयक पत्रों, पुस्तकों आदि की समालोचनाएँ भी प्रकाशित होंगी। समालोचनार्थ पुस्तकों की दो प्रतियाँ आनी चाहिए। लेख, समालोचनार्थ पुस्तकें आदि संपादक, "विधि पत्रिका", नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी—१' के पते से भेजनी चाहिए।

जहाँगीर का आत्मचरित

अनुवादक—व्रजरत्नदास

मुग़ल सम्राट् अकबर के पुत्र चतुर्थ मुगल सम्राट् बादशाह जहाँगीर ने अपना आत्मचरित लिखा है जिसका अनुवाद इस ग्रंथ में प्रस्तुत किया गया है। इसमें उसके राज्यकाल के अठारह वर्षों का विस्तृत ऐतिहासिक विवरण दिया गया है और साथ ही बहुत सी ऐसी घरेलू बातें भी आ गई हैं जिनका अन्य इतिहासों में उल्लेख नहीं मिलता। जहाँगीर ने अपने पिता की बहुत सी बातों का, आकृति, प्रकृति, रुचि आदि का वर्णन अपनी रचना में यत्र तत्र किया है जो अत्यंत प्रामाणिक है। इसने अपनी यात्राओं, मदिरोत्सवों, अहेरों आदि का ऐसा सुंदर वर्णन दिया है जो कही कहीं बहुत आकर्षक हो गया है। इसने हिंदुओं के मंदिरों, विचारों आदि की आलोचना की है। इसमें जब एक ओर कट्टर धर्मांधता है तब दूसरी ओर उदारता भी स्पष्ट है। इसने अपने अत्याचारों, कमजोरियों आदि सभी का स्पष्ट वर्णन कर डाला है, कहीं छिपाने का प्रयत्न नहीं किया है। अपने मदिरापान की अति को उसने कुछ नहीं छिपाया और उसकी बहक में इसने अपने बड़ों तथा ईश्वर के प्रति अपनी श्रद्धा खूब दरसाई है। फारस आदि की कुछ कहानियों तथा स्वरचित शैरों का भी इसमें समावेश किया है। पुस्तक हर दृष्टि से पढ़ने तथा मनन करने योग्य है। पृ० संख्या लगभग ६०० तथा अनेक चित्रों युक्त, पक्की दृढ़ जिल्द सहित पुस्तक का मूल्य केवल १५)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशक और मुद्रक—नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी की ओर से तथा उसके लिये श्री सिद्धनाथ सिंह,
नागरी मुद्रण, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी

विधि पत्रिका

वर्ष २] आषाढ़ (सौर) सं० २०१५ : शक १८८० : जून-जुलाई १९५८ [अंक ८

विधिविषयक लेखों, केंद्रीय-राज्य अधिनियमों आदि से युक्त, इलाहाबाद तथा भारत के अन्य उच्च न्यायालयों के महत्वपूर्ण अँगरेजी निर्णयों का हिंदी रूपांतर तथा विवरण प्रकाशित करनेवाली हिंदी जगत् की एकमात्र मासिक पत्रिका

विषय सूची

वाद तालिका	१	इलाहाबाद उच्च न्यायालय	१११-१२६
लेख खंड	१-३	,, (राजस्व)	४१-४८
अधिनियम खंड	११-१५	विधिक अंग्रेजी-हिंदी-शब्दसंग्रह	११५-१२२
सर्वोच्च न्यायालय	५३-६०		

वार्षिक शुल्क १०)

एक प्रति का १)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परामर्शदातृ समिति

(१) श्री कमलाकांत वर्मा, भूतपूर्व मुख्य न्यायाधिपति, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद
(२) श्री बलराम उपाध्याय, न्यायाधीश, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद।
(३) श्री कन्हैयालाल मिश्र, महाधिवक्ता, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद।
(४) श्री गोपालचंद्र सिंह, विशेष अधिकारी, सचिवालय, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ।
(५) श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प्राध्यापक, हिंदी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय।

संपादक मंडल

(१) श्री गिरिजाभूषण जोशी, आचार्य ला कालेज, काशी हिंदू विश्वविद्यालय
(२) श्री ब्रजरत्नदास, वकील, वाराणसी।
(३) श्री प्रतापनारायण सिंह, राजकीय अधिवक्ता, वाराणसी।
(४) श्री गौरीनंदन उपाध्याय, ऐडवोकेट, वाराणसी।
(५) श्री देवीनारायण, ऐडवोकेट, वाराणसी।
(६) श्री कैलासपति त्रिपाठी, ऐडवोकेट, वाराणसी।
(७) श्री गोपीकृष्ण, बार-ऐट-ला, वाराणसी।
(८) श्री चतुर्भुजदास पारिख, ऐडवोकेट, वाराणसी।
(९) श्री राघवराम वर्मा, वकील, वाराणसी।
(१०) चौधरी शुकदेव सिंह, वकील, वाराणसी।
(११) श्री मोतीलाल बापुली, ऐडवोकेट, वाराणसी।

श्री चंद्रभूषण मिश्र, ऐडवोकेट
श्री रामसुरत सिंह, ऐडवोकेट } प्रतिवेदक, इलाहाबाद

संपादक (संयोजक)—सिद्धनाथ सिंह बी० ए०, एल-एल० बी०, वकील
सहायक संपादक—पारसनाथ सिंह बी० ए०, एल-एल० बी०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि पत्रिका जून-जुलाई १९५८

(शक १८८०)

वाद तालिका

१—काशीबाई वि० सुधारानी घोष	सर्वो० न्या०	५५
२—केशवलाल वि० लालभाई	” ”	६०
३—गणेशदीन वि० विश्वनाथ	इला० उ० न्या०	१११
४—न्यू सिंघल दाल मिल वि० फर्म शिवप्रसाद	” ” ”	१२०
५—नाथू वि० राज्य	” ” ”	११४
६—प्रागदत्त वि० बद्री	इला० (राजस्व)	४३
७—ब्रह्मादेव सिंह वि० बेचू सिंह	” ”	४६
८—ब्रह्मादीन वि० चंद्रशेखर शुक्ल	इला० उ० न्या०	११९
९—बिहार राज्य वि० बसावन सिंह	सर्वो० न्या०	५६
१०—महादेव वि० एस० डी० ओ०	इला० उ० न्या०	११२
११—मैमेशाह वि० राज्य	” ” ”	१२४
१२—मुहम्मद इब्राहीम वि० गोपीलाल	” ” ”	१२६
१३—रामेश्वर वि० श्रीमती परभूदेई	इला० (राजस्व)	४२
१४—रोशन हज्जाम वि० बालगोविंद	” ”	४५
१५—लीलाधर वि० याकूबअली	” ”	४८
१६—सोमेश्वर वि० लालमनशाह की विधवा	इला० उ० न्या०	११७
१७—शोभनाथ वि० अंबिका प्रसाद	” ” ”	१२२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि पत्रिका

[लेख खंड]

वर्ष २]   आषाढ़ (सौर) सं० २०१५ : शक १८८० : जून-जुलाई १९५८   [अंक ८

संपादकीय

अर्थ और न्याय

न्याय पर विचार करते हुए इस प्रारंभिक सिद्धांत को स्वीकार करना पड़ेगा कि न्याय सबके लिये सुलभ हो, न्याय के कंधों पर अर्थ का बोझ न हो। न्यायार्थी चाहे निर्धन हो या धनवान, उसे न्याय पाने की स्वतंत्रता रहे। अर्थ का अभाव न्याय के मार्ग का रोड़ा न बन सके। इस दृष्टिकोण से विचार करने पर यह स्वीकार करना पड़ेगा कि आज की न्यायपद्धति में सर्वप्रथम दोष यह है कि अर्थहीन प्राणी के लिये न्याय का पाना अत्यंत कठिन है। दूसरे, आज का न्याय बहुत मँहगा है। सफल न्यायार्थी भी अंत में अर्थ के भार से, रह रहकर होनेवाली उसकी पीड़ा से, बेबसी की साँस लेता है और उसे सोचना पड़ता है कि अच्छा होता वह न्यायालय में पग न रखा होता। असफल व्यक्ति की तो मृत्यु ही हो जाती है। एक एक वाद, सात आठ वर्ष तक चले जाते हैं। उससे शाखा प्रशाखा उत्पन्न होती है और आज की न्यायपद्धति में कोई लड़ाना चाहे तो विपक्षी को न्यायालय में वर्षों तक दौड़ा सकता है। इस बात को पृथक् भी रखा जाय तो सर्वसाधारण को आज न्याय पाने में जो धनराशि व्यय करनी पड़ती है वह सर्वथा अनुचित है।

इंगलैंड और भारत की न्यायपद्धति में भी मौलिक अंतर है। उदाहरण के लिये किसी ने किसी को ऋण दिया, वह व्यक्ति ऋण को नहीं चुकाता और उसे न्यायालय में जाने की आवश्यकता प्रतीत हुई तो सर्वप्रथम ऋण देनेवाला व्यक्ति उस व्यक्ति को सूचित करेगा कि वह ऋण चुका दे। उस अवधि तक न चुकाने पर वह न्यायालय की शरण लेगा। उस समय इस वाद पर उसे न्यायालय शुल्क के रूप में कुछ देने की आवश्यकता नहीं पड़ती। न्यायालय की ओर से ऋण लेने वाले को तिथि की सूचना दी जाती है जिसपर वह उपस्थित होकर अपनी बातों को प्रस्तुत करता है। उभय पक्ष की ओर से बातें सुनी जाती हैं दोनों ओर के साक्ष्य अपनी अपनी बातों की पुष्टि करते हैं। दोनों पक्षों का प्रमाण लेने के बाद न्यायालय जब इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि वादी की डिग्री दे दी जानी चाहिए तो वाद की डिग्री देते समय न्याया० न्या० विषयक व्यय की धनराशि को भी इसमें समावेश कर देता है और यह निर्धारित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर देता है कि उस व्यक्ति को अमुक धनराशि वादी को देना है तथा अमुक धनराशि न्यायालय को। इस प्रकार न्यायालय प्रतिवादी से वह धनराशि प्राप्त करता है। वादी ऋणदाता पर उसका भार नहीं पड़ता। जब वादी-ऋणदाता वाद में असफल होता है तब उसे न्यायालय का व्यय आदि देना पड़ता है। प्रारंभ में वह न्यायालय शुल्क आदि से बचा रहता है। किंतु भारतवर्ष में सफलता या असफलता का विचार न करते हुए वादी को सर्वप्रथम न्यायालय शुल्क देना पड़ता है जो उसकी आर्थिक क्षमता से कहीं अधिक होता है। यदि उसके पास पैसे नहीं हैं तो वह वाद निवेशित कर ही नहीं सकता। न्याय के विचार से यह सिद्धांत सर्वथा अनुचित है। अर्थ के अभाव में कोई व्यक्ति न्याय न पा सके यह नितांत अव्यावहारिक तथा अन्याय है। व्यवहार न्यायालय-शुल्क बहुत अधिक है। दस रुपया प्राप्त करने के लिये उसे पहले ही दस रुपया व्यय करना पड़ता है। उसी प्रकार एक हजार का बैनामा लिखाने में उसे चौंतीस रुपया स्टांप देना पड़ता है और रजिस्ट्री शुल्क इत्यादि अनेक व्यय हैं। इस प्रकार अर्थभार उसे अधमरा बना देता है।

दंड संहिता के मुकदमों में भी यही दशा है। उसमें न्यायालय शुल्क तो व्यवहार न्यायालय जैसा नहीं है किंतु उसमें तारीखें इतनी अधिक पड़ती हैं कि वह व्यक्ति दौड़ते दौड़ते थक जाता है। न्याय और शासन में पृथकता न रहने के कारण कठिनाइयाँ और भी बढ़ जाती हैं। मजिस्ट्रेट लोगों को न्याय करने के साथ साथ शासन का भी काम करना पड़ता है। न्यायालय छोड़कर वे शासन प्रबंध में चले जाते हैं जिससे न्यायालय में आए हुए व्यक्तियों को लौट जाना पड़ता है। इंगलैंड की व्यवस्था इससे कुछ भिन्न है। वहाँ पुलिस न्यायालय कहे जाते हैं। न्यायकर्ता थाने पर ही मुकदमों को सुनता है किंतु यह स्मरण रखना चाहिए कि वहाँ की पुलिस से वह प्रभावित नहीं हो सकता; न वहाँ की पुलिस इस ढंग की है, न मजिस्ट्रेट और न तो वहाँ के लोगों की स्वार्थ-भरी मनोवृत्ति ही है। वहाँ का वातावरण यहाँ से भिन्न है। वहाँ साक्षी न्याय में सहयोग देना अपना कर्तव्य समझते हैं। अपराधी को दंड दिलाने में उनका सक्रिय सहयोग होता है और वे निरपराधी को निर्दोष देखना चाहते हैं। भारतवर्ष में कुछ लोगों का साक्ष्य देना व्यवसाय सा हो गया है। दिन रात न्यायालय में असत्य बातें कहने के लिये वे तत्पर रहते हैं। वे राग द्वेष तथा पैसे के प्रलोभन में असत्य बातें कहते हैं। जिस घटना को वे प्रत्यक्ष देखे भी नहीं रहते उसके संबंध में अपने को प्रत्यक्षदर्शी कहकर साक्ष्य देते हैं, तोते की तरह संपूर्ण घटना का वर्णन करते हैं। आज की न्यायपद्धति में साक्षी न्याय के आधार हैं पर साक्ष्य धर्म से साक्षी अपरिचित रहते हैं। ऊपर जैसा कहा गया है थानों पर न्यायालय होने से इंगलैंड में बहुत सुविधा होती है।

भारतवर्ष में बीस तीस मील से जाकर न्यायालय में उपस्थित होना पड़ता है और तब भी निश्चय नहीं है कि उस दिन कुछ काम होगा कि नहीं। वहाँ यहाँ की तरह तारीखें पर तारीखें नहीं पड़तीं। इसी प्रकार प्राचीन न्यायपद्धति में और आज की न्यायपद्धति में अंतर है। प्राचीन काल में वकील की परंपरा आज की सी न थी। वकील समुदाय इस प्रकार का व्यवसायी नहीं था। वह धन का लोभी नहीं था। न्याय में सहयोग देना उसका प्रधान लक्ष्य था, इसी में उसे आनंद मिलता था। कभी कभी लोग उनके गाउन में अशर्फियाँ डाल देते थे। पर आज वकालत एक प्रमुख व्यवसाय हो गया है। घूस और भ्रष्टाचार के कारण न्याय और मँहगा हो गया है।

जो जितना ही दुःखी और आर्त है उसकी मनोभावना से उतना ही लाभ उठाकर न्यायालय में उससे रुपया लिया जाता है। किसी का पुत्र यदि किसी कारण-वश पकड़ लिया जाता है तो जमानत कराने में जेल से छुड़ाने में उसके दुःख के अनुपात से कहीं अधिक रुपया लिया जाता है। उसे अधिक कष्ट है इसलिए उसे अधिक व्यय करना पड़ेगा, शीघ्रता है इसलिए भी उससे बहुत अधिक माँग की जायगी। यही दूषित मनोवृत्ति न्यायालय में काम करती है। न्याय पर अर्थ का भार अधिक न हो, न्यायालय शुल्क कम हो, तारीख पर तारीख न पड़े,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साक्षी अपना कर्तव्य समझें, उन्हें न्यायधर्म का ज्ञान हो। शासन न्याय विभाग से पृथक् हो, वकील समुदाय की व्यावसायिक मनोवृत्ति न हो, न्यायालय इतनी दूरी पर स्थित न हों इन सब बातों पर गंभीरता पूर्वक विचार और इन समस्याओं का निराकरण करना है। इन समस्याओं के समाधान पर ही न्याय की सफलता अवलंबित है। न्याय के सस्ता और सुलभ होने पर ही समाज में शांति स्थापित होगी। न्याय के क्षेत्र में लाभ का दृष्टिकोण अव्यावहारिक और अमानवीय है।

करों के रूप में दूसरे क्षेत्रों से पैसे लिए जाँय और उन क्षेत्रों से प्राप्त धनराशि न्याय के क्षेत्र में व्यय की जाय। जिस प्रकार जल लेकर वाष्प समूह बनते हैं और फिर वही वाष्प आवश्यकतानुसार वर्षा के रूप में हमारे खेतों पर आकर अन्न उत्पादन में सहायक होतीं है उसी प्रकार विभिन्न क्षेत्रों से कर के रूप में प्राप्त धनराशि आर्त, दुःखी, असहाय, दीनप्राणी को न्याय प्रदान कर सके, ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए। दीन के प्रति दया और अपराधी के प्रति घृणा से समाज में न्याय के प्रति आस्था होगी, लोगों के मन में शांति होगी और न्याय का ठीक ढंग से प्रयोग होगा और इसके फलस्वरूप समाज में राग द्वेष और कलह धीरे धीरे समाप्त हो जायगा।

—सिद्धनाथ सिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्वानुबद्ध

प्रवेश के निषेध का आदेश चालू है, उस स्थान पर बिना अनुमति के प्रवेश करता है, अथवा,

(ब) यह जानते हुए कि किसी स्त्री या लड़की को इस धारा के अंतर्गत उस स्थान से चले जाने का आदेश हो चुका है और उस स्त्री या लड़की ने तत्संबंधी पुनः प्रवेश की आवश्यक अनुमति नहीं प्राप्त की है, उस स्त्री या लड़की को उस स्थान पर शरण देता है या छिपाता है।

वह २०० रुपए तक के अर्थ दंड का भागी होगा और उस अवस्था में जब कि अपराध बराबर चलता रहे उसे अतिरिक्त अर्थ दंड भी दिया जा सकता है जो कि पहले दिन के अपराध के बाद यदि आगे चले तो उस अवधि तक बीस रुपए प्रतिदिन के अपराध तक का हो सकता है।

२०—संरक्षणीय घर।

(१) राज्य सरकार स्वविवेक के आधार पर इस धारा के अंतर्गत जितने आवश्यक समझे उतने संरक्षणीय मकान की स्थापना कर सकती है और ऐसे मकान जब स्थापित हो जायँ तो उसका प्रबंध उस प्रकार होगा जैसा बाद में निश्चित हो।

(२) इस अधिनियम के प्रारंभण के पश्चात् राज्य सरकार को छोड़कर कोई व्यक्ति या कोई प्राधिकारी सिवा इस धारा के अंतर्गत राज्य सरकार द्वारा अनुज्ञप्ति जारी हुए—किसी संरक्षणीय मकान की न तो स्थापना करेगा और न प्रबंध।

(३) किसी व्यक्ति या प्राधिकारी द्वारा इस धारा के अंतर्गत इस प्रयोजन के लिये प्रार्थनापत्र देने पर राज्य सरकार संरक्षणीय घर की स्थापना के लिये या व्यवस्था के लिये या जैसी परिस्थिति हो व्यवस्था के लिये निर्धारित प्रपत्र पर अनुज्ञप्ति जारी कर सकती है और इस प्रकार जारी की हुई अनुज्ञप्ति में इस अधिनियम के अंतर्गत नियमों के अनुसार ऐसे प्रतिबंध भी हो सकते हैं जिन्हें लगाना राज्य सरकार उचित समझती हो।

किंतु प्रतिबंध है कि इन शर्तों में से कोई शर्त कह सकती है कि संरक्षणीय घर का प्रबंध जहाँ संभव हो सके किसी स्त्री को सौंपा जाय—

आगे यह भी प्रतिबंध है कि कोई व्यक्ति या प्राधिकारी यदि इस अधिनियम के प्रारंभण के समय किसी संरक्षणीय मकान की व्यवस्था करता है तो इस अधिनियम के प्रारंभण से उसे ६ महीने का अवसर दिया जायगा कि इसके भीतर वह ऐसी अनुज्ञप्ति के लिये प्रार्थनापत्र दे सकता है।

(४) अनुज्ञप्ति जारी करने के पहले राज्य सरकार ऐसे कर्मचारी या प्राधिकारी को, जिसे वह इस प्रयोजन के लिये नियुक्त करे, ऐसे प्रार्थनापत्र के विषय में पूरी जाँच और अन्वेषण करके इसके परिणाम के विषय में प्रतिवेदन देने की आज्ञा दे सकती है तथा ऐसे अन्वेषण के लिये वह कर्मचारी या प्राधिकारी उस प्रक्रिया का पालन करेंगे जो इस संबंध में निश्चित हो।

(५) यदि अनुज्ञप्ति और पहले ही अस्वीकार नहीं कर दी जाती तो वह उस अवधि तक लागू रहेगी जिसका अभिदेश अनुज्ञप्ति पत्र में हो और अंतिम समय बीतने की तिथि से एक महीना पहले अनुज्ञप्ति फिर उसी समय तक के लिये पुनः नवीन कर दी जा सकती है।

(६) इस अधिनियम के अंतर्गत जारी की हुई या पुनः नवीन की हुई किसी अनुज्ञप्ति का हस्तांतरण नहीं किया जायगा।

(७) जहाँ किसी व्यक्ति या प्राधिकारी को इस अधिनियम के अंतर्गत अनुज्ञप्ति जारी की गई है और वह या उस व्यक्ति या प्राधिकारी का कोई अभिकर्ता या नौकर उसकी शर्तों का पालन नहीं करता है या इस अधिनियम के किसी उपबंध का या इस अधिनियम के अंतर्गत नियमों का पालन नहीं करता है अथवा जहाँ राज्य सरकार संरक्षणीय घर का प्रबंध, उसकी अवस्था या उसकी देख रेख को संतोषप्रद नहीं पाती है तो उस दशा में राज्य सरकार इस अधिनियम के किसी उपबंध के अंतर्गत दंडित होने पर भी उन कारणों का अभिलेख करने पर लिखित आदेश द्वारा उक्त अनुज्ञप्ति को प्रभाव-शून्य कर सकती है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किंतु प्रतिबंध है कि ऐसा आदेश तब तक नहीं दिया जायगा जब तक कि अनुज्ञप्तिधारी को यह कारण दिखलाने का अवसर न दिया गया हो कि उसकी अनुज्ञप्ति क्यों न प्रभावशून्य कर दी जाय।

(८) जब संरक्षणीय घर के संबंध में कोई अनुज्ञप्ति उपर्युक्त उपधाराओं के अंतर्गत प्रभावशून्य कर दी गई हो तो ऐसा संरक्षणीय घर ऐसे प्रभावशून्य करनेवाले आदेश की तिथि से काम करना बंद कर देगा।

(९) इस संबंध में बनाए हुए किसी नियम से नियंत्रित रहकर इस अधिनियम के अंतर्गत जारी की हुई या पुनर्नवीन की हुई किसी अनुज्ञप्ति में राज्य सरकार परिवर्तन भी कर सकती है या उसमें संशोधन भी कर सकती है।

१०—जो कोई इस अधिनियम के उपबंधों के अतिरिक्त किसी संरक्षणीय घर की स्थापना करता है या व्यवस्था करता है वह प्रथम अपराध में अर्थ दंड से दंडित होगा जो एक हजार रुपए तक हो सकता है और दूसरे तथा पश्चात्वर्ती अपराध के लिये बंदीगृह के दंड से दंडित होगा जो एक वर्ष तक का हो सकता है तथा इसके साथ अर्थदंड भी दिया जा सकता है जो दो हजार रुपए तक हो सकता है या दोनों दंड दिया जा सकता है।

२२-अन्वीक्षाएँ—

धारा २ के उपवाक्य सी० में जिस मजिस्ट्रेट के न्यायालय की परिभाषा दी गई है उससे छोटी श्रेणी का न्यायालय धारा ३, धारा ४, धारा ५, धारा ६, धारा ७ या धारा ८ के अंतर्गत अपराधों की अन्वीक्षा नहीं करेगा।

२३-नियम बनाने का अधिकार—

(१) राज्य सरकार सरकारी राजपत्र में विज्ञप्ति द्वारा इस अधिनियम के प्रयोजनों का पालन करने के लिये नियम बना सकती है।

(२) विशेष रूप से एवं उपर्युक्त अधिकारों की व्यावहारिकता पर बिना ठेस पहुँचाए ऐसे नियम ऐसे विधान कर सकते हैं कि—

(अ) किसी स्थान के बारे में विज्ञप्ति कि यह एक सार्वजनिक स्थान है;

(ब) धारा १० की उपधारा (१) के अंतर्गत उद्धार की गई स्त्रियों या लड़कियों का अभिरक्षा में रखा जाना या जिनको सुरक्षित रखने के लिये धारा १७ की उपधारा (१) के अंतर्गत आदेश पारित हो चुके हैं तथा उनके भरण पोषण के लिये;

(स) धारा १० की उपधारा २, धारा १७ (२) और धारा १६ के अंतर्गत स्त्रियों या लड़कियों का संरक्षणीय घरों में रोक रखा जाना या रखा जाना तथा उनका भरण-पोषण;

(द) छूटे हुए अपराधियों के संबंध में उनका निवास स्थान, निवास स्थान में परिवर्तन या, निवास-स्थान से अनुपस्थिति के बारे में विज्ञप्ति संबंधी धारा ११ के उपबंधों का पालन किए जाने के लिये,

(य) धारा १३ की उपधारा १ के अंतर्गत विशेष पुलिस अधिकारी की नियुक्ति का अधिकार किसी अन्य प्राधिकरण को दिए जाने के संबंध में,

(र) धारा १८ के उपबंधों को लागू करने के लिये,

(ल) (१) संरक्षणीय घरों की स्थापना, व्यवस्था, प्रबंध एवं देखरेख के लिये तथा इन घरों में नियुक्त व्यक्तियों की नियुक्ति, अधिकार एवं कर्तव्य के लिये;

(२) वह प्रपत्र जिसमें अनुज्ञप्ति के लिये प्रार्थनापत्र दिया जाय और ऐसे प्रार्थनापत्र के विवरण के लिये;

(३) अनुज्ञप्ति के जारी करने या उसके नवीनीकरण की प्रक्रिया, समय जिसके भीतर अनुज्ञप्ति का जारी करना या उसका नवीनीकरण होगा तथा अनुज्ञप्ति के लिये दिए गए प्रार्थनापत्र की पूरी जाँच के लिये प्रक्रिया (प्रोसीजर) का निर्धारण;

(४) अनुज्ञप्ति या प्रपत्र एवं उसके भीतर प्रतिबंधों का निर्देश;

(५) वह ढंग जिससे संरक्षणीय घरों का हिसाब रखा जाय और उसकी जाँच हो;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(६) अनुज्ञप्तिधारी द्वारा रजिस्टर रखा जाना एवं उसका विवरण तथा इन रजिस्टरों एवं विवरणों का रूप;

(७) संरक्षणीय घरों में रहनेवालों की देखभाल दवादारू, भरणपोषण, शिक्षा, निर्देश, नियंत्रण और अनुशासन;

(८) उसमें रहनेवालों के यहाँ पहुँचने और उनसे संपर्क स्थापित करने के लिये,

(९) इन स्त्रियों एवं लड़कियों के लिये समय जिन्हें संरक्षणीय घरों में रखे जाने का आदेश हो चुका है वहाँ रखे जाने के संबंध में जब तक प्रबंध नहीं हो जाता तब तक के लिये रोक रखने की व्यवस्था;

(१०) किसी स्त्री या लड़की का एक संरक्षणीय घर से दूसरे संरक्षणीय घर में स्थानांतरण;

(११) उस स्त्री या लड़की का संरक्षणीय घर से बंदीगृह में हस्तांतरण करने के लिये न्यायालय का आदेश, जब कि यह निश्चय हो जाय कि वह स्त्री या लड़की सुधर नहीं सकती और वह अपने सहवासियों पर बुरा प्रभाव डालती जा रही है तथा ऐसे बंदीगृह में उसे रोक रखने की अवधि;

(१२) धारा ७ और धारा ८ में जिन स्त्रियों या लड़कियों को दंडादेश हुआ है उनका संरक्षणीय घरों में स्थानांतरण तथा ऐसे घरों में उनके रोक रखने की अवधि;

(१३) संरक्षणीय घरों में रहनेवालों की वहाँ से पूर्णरूपेण मुक्ति या कुछ शर्तों के अधीन मुक्ति तथा उन शर्तों का उल्लंघन करने पर पुनः बंदी कर लेने की व्यवस्था;

(१४) वहाँ रहनेवालों को थोड़ी अवधि तक की अनुपस्थिति के बारे में अनुमति प्रदान करना;

(१५) संरक्षणीय घरों या अन्य संस्थाओं का निरीक्षण जिनमें स्त्रियाँ या लड़कियाँ रखी जायँ, रोक रखी जायँ या जिनका वहाँ पालनपोषण होता है,

(व) कोई अन्य विषय जिसका निर्धारण होनेवाला हो या जिसका निर्धारण हो सके।

(३) उपधारा २ के वाक्यखंड (द) या वाक्य खंड (ल) के अंतर्गत नियम बनाते समय राज्य सरकार यह उपबंध रख सकती है कि उसके उल्लंघन करने पर २५० रु० तक का अर्थदंड हो सकता है।

(४) इस अधिनियम के अंतर्गत बनाए गए समस्त नियम बन जाने के पश्चात् यथासंभव शीघ्र ही राज्य विधान मंडल के समक्ष रखे जायेंगे।

२४—यह अधिनियम कुछ अन्य अधिनियमों की अवहेलना नहीं करता—

इस अधिनियम के किसी उपबंध का अर्थ यह नहीं समझा जायगा कि यह सुधारक शिक्षालय अधिनियम १८९७ की या राज्य सरकार का कोई अन्य अधिनियम जो उक्त अधिनियम के परिष्कार के रूप में अधिनियमित हुआ हो या अन्य प्रकार शिशु अपराध से संबद्ध हो उनकी अवहेलना करता है।

२५—निरसन (रिपील) और बचाव—

(१) किसी राज्य में इस अधिनियम के उपबंधों, धारा १ को छोड़कर, के लागू होने की तिथि से स्त्रियों एवं लड़कियों के अनैतिक व्यापारीय दमन संबंधी या वेश्यावृत्ति निरोध संबंधी समस्त राज्य अधिनियम जो उस राज्य में उक्त तिथि से ठीक पहले लागू हों निरसित हो जायँगे।

(२) कोई राज्य अधिनियम जिसका अभिदेश उपधारा १ के अंतर्गत हुआ है उसका इस अधिनियम द्वारा निरसन होने पर भी कोई किया हुआ काम या कोई कार्यवाही (जिसमें दिया हुआ कोई निर्देश, कोई पंजिका, नियम या दिया गया आदेश और प्रतिबंध भी संमिलित है) जो उक्त राज्य अधिनियम के उपबंधों के अंतर्गत हो और वह यदि इस अधिनियम के उपबंधों से असंगत न हो तो समझा जायगा कि वह कार्यवाही इस अधिनियम के उपबंधों के अंतर्गत की गई है मानो वह उपबंध उस समय लागू था जब कि वह कार्यवाही की गई और वे तब तक लागू रहेंगे जब तक कि वे इस अधिनियम के अंतर्गत किसी किए गए काम या किसी कार्यवाही द्वारा निष्प्रभावित न कर दिए जाँय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याख्या—इस धारा के अंतर्गत 'राज्य अधिनियम' की अभिव्यक्ति में प्रांतीय अधिनियम' भी संमिलित है।

संपत्ति-कर अधिनियम, १९५७

(अधिनियम २७, १९५७)

(१२ सितंबर १९५७)

संपत्ति कर लगाने के लिये उपबंध बनानेवाला एक अधिनियम भारतीय गणतंत्र के अष्टम वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित प्रकार से अधिनियमित हो—

अध्याय १

प्रारंभिक

१—संक्षिप्त शीर्षक, विस्तार एवं प्रारंभण।

१–यह अधिनियम संपत्ति-कर अधिनियम १९५७ पुकारा जायगा,

२–इसका विस्तार समस्त भारतवर्ष में है।

३–समझा जायगा कि यह पहली अप्रैल सन् १९५७ को लागू हुआ।

टिप्पणी—उद्देश्य और प्रयोजनों के अभिकथन के लिये भारतीय गजट, १५-५-५७ देखिए और प्रवर समिति के प्रतिवेदन के लिये भारतीय गजट १७ ८-१९५७ देखिए।

२—परिभाषाएँ—

इस अधिनियम में जब तक कि प्रसंग से कोई अन्य बात नहीं आती,—

(अ) 'अपील के सहायक आयुक्त' से तात्पर्य उस व्यक्ति से है जो धारा ९ के अंतर्गत संपत्ति-कर के अपील के सहायक आयुक्त का काम करने के लिये अधिकृत किया गया हो।

(ब) 'अपील का न्यायाधिकरण' का तात्पर्य अपील के उस न्यायाधिकरण से है जिसकी नियुक्ति आयकर अधिनियम की धारा ५ ए० के अंतर्गत हुई हो।

(स) 'करदाता' का तात्पर्य उस व्यक्ति से है जिसके द्वारा इस अधिनियम के अंतर्गत संपत्ति कर या अन्य कोई धनराशि देय हो और इसमें वह प्रत्येक व्यक्ति संमिलित है जिसके संबंध में उसके परिसंपत् (ऐसेट्स) के मूल्य निर्धारण के लिये इस अधिनियम के अंतर्गत कोई कार्यवाही की गई हो;

'कर निर्धारण वर्ष' का तात्पर्य उस वर्ष से है जिसके लिये धारा ३ के अंतर्गत कर प्रभार्य हो;

(य) परिसंपत् (ऐसेट्स) में सभी प्रकार की चल और अचल संपत्ति आती है किंतु इसमें—

(१) कृषि भूमि और उगे हुए पौदे, घास या ऐसी भूमि पर खड़े निर्माण-काष्ठ,

(२ कोई मकान जिसका स्वामी एवं धारण करनेवाला कोई कृषक हो या कृषिभूमि की लगान या राजस्व प्राप्त करनेवाला व्यक्ति हो—

किंतु प्रतिबंध यह है कि मकान उस भूमि पर हो या उस भूमि के निकट पड़ोस में हो और वह मकान ऐसा हो जिसे कृषक अथवा उस भूमि से संबंध रहने के कारण लगान या राजस्व प्राप्त करनेवाला व्यक्ति उसे निवासस्थान के रूप में प्रयोग करता हो अथवा वह संग्रहागार हो या कोई छावनी हो;

(३) जानवर;

(४) किसी अवस्था में वार्षिकी का वह अधिकार जहाँ—तत्संबंधी शर्तें एवं अनुबंध उसके किसी अंश के लघूकरण से एकमुष्ठि धनराशि की स्वीकृति में बाधक हों;

संमिलित नहीं हैं;

(र) मंडल (बोर्ड) का तात्पर्य केन्द्रीय राजस्व मंडल अधिनियम, १९२४ के अंतर्गत निर्मित केंद्रीय राजस्व मंडल से है।

(ल) 'आयुक्त' (कमिश्नर) का तात्पर्य उस व्यक्ति से है जो धारा १० के अंतर्गत संपत्ति कर के आयुक्त का काम करने के लिये अधिकृत हो;

(व) 'कंपनी' का तात्पर्य किसी कंपनी से है जिसकी परिभाषा कंपनी अधिनियम, १९५६ की धारा ३ में दी गई है और उसमें उस अधिनियम की धारा ५९१ के अभिप्राय के अंतर्गत विदेशी कंपनी भी संमिलित है;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(व १) 'निष्पादक' का तात्पर्य किसी मृत व्यक्ति की संपदा के निष्पादक या प्रशासक से है;

(व २) 'आयकर अधिनियम' का तात्पर्य भारतीय आयकर अधिनियम १९२२ से है,

(व ३) 'आयकर अधिकारी' का तात्पर्य उस व्यक्ति से है जो आयकर अधिनियम के अंतर्गत आयकर अधिकारी के पद पर नियुक्त किया गया हो;

(व ४) 'संपत्ति-कर निरीक्षक सहायक आयुक्त' का तात्पर्य उस व्यक्ति से है जो धारा ११ के अंतर्गत संपत्ति-कर निरीक्षक सहायक आयुक्त का काम करने के लिये अधिकृत किया गया हो,

(व ५) 'शुद्ध संपत्ति' (नेट वेल्थ) का तात्पर्य उस धनराशि से है जो इस अधिनियम के उपबंधों द्वारा गणना की हुई उसकी सभी परिसंपत के संपूर्ण मूल्यांकन, और परिसंपत् (ऐसेट्स) चाहे जहाँ स्थित हो किंतु वह मूल्यांकन की तिथि को करदाता की हो और इसमें वह परिसंपत् भी संमिलित है जो उसकी शुद्ध संपत्ति में संमिलित की जानेवाली हो जैसा कि इस अधिनियम के अंतर्गत उक्त तिथि को करदाता द्वारा दिए जानेवाले समस्त ऋण के संपूर्ण मूल्य से अधिक हो किंतु इसमें—

(१) वे ऋण नहीं हैं जिन पर धारा ६ के अंतर्गत विचार नहीं किया जाता, और—

(२) इसमें वे ऋण भी नहीं हैं जो किसी परिसंपत् जिस पर कि इस अधिनियम के अंतर्गत संपत्ति कर देय नहीं है उस पर सुरक्षित हैं या जो इस संबंध में प्राप्त किए गए हैं।

(व ६) 'निर्धारित' का तात्पर्य है कि इस अधिनियम के नियमों द्वारा निर्धारित हो,

(व ७) "मुख्य अधिकारी" यदि किसी कंपनी के प्रसंग में प्रयुक्त हुआ हो तो इसका अभिप्राय होगा, मंत्री, व्यवस्थापक, प्रबंधकारी अभिकर्ता अथवा कंपनी का प्रबंधकारी निर्देशक और इसमें कोई वह व्यक्ति भी संमिलित है जो कंपनी के कामों के प्रबंध करने के संबंध में नियुक्त हो और जिसपर संपत्ति कर अधिकारी ने नोटिस इस अभिप्राय से तामील कर दी हो कि वह उसे उसका मुख्य अधिकारी समझता है;

(व ८) 'शासक' (रुलर) का अर्थ वह शासक है जिसकी परिभाषा संविधान के अनुच्छेद ३६६ के उपवाक्य (२२) में दी गई है;

(व ९) "मूल्यांकन तिथि" जो किसी उस वर्ष से संबंधित हो जिसके लिये इस अधिनियम के अंतर्गत कर निर्धारण होनेवाला हो तो उसका तात्पर्य गत वर्ष का अंतिम दिन होगा जिसकी परिभाषा आयकर अधिनियम की धारा २ के उपवाक्य (११) में दी गई है मानों उस अधिनियम के अंतर्गत उस वर्ष के लिये कर निर्धारण होनेवाला है;

किंतु प्रतिबंध है कि यदि आयकर अधिनियम के अंतर्गत किसी करदाता के लिये भिन्न भिन्न आय के साधनों के लिये भिन्न भिन्न गत वर्ष हों तो इस अधिनियम के प्रयोजन के लिये मूल्यांकन तिथि उपर्युक्त अंतिम गत वर्षों की अंतिम तिथि होगी;

(व १०) 'मूल्य निर्धारक' का तात्पर्य उस मूल्य निर्धारक से है जिसकी नियुक्ति संपदा शुल्क अधिनियम १९५३ की धारा ४ के अंतर्गत हुई हो।

(व ११) संपत्ति कर अधिकारी' का तात्पर्य आयकर अधिकारी से है जो धारा ९ के अंतर्गत संपत्ति कर अधिकारी का काम करने के लिये अधिकृत किया गया हो।

अध्याय २

संपत्ति कर एवं परिसंपत् का प्रभार ऐसे प्रभार के अधीन है

संपत्ति कर का लिया जाना—

इस अधिनियम के अंतर्गत अन्य उपबंधों के अधीन प्रत्येक वित्तीय वर्ष के लिये जो अप्रैल १, १९५७ से आरंभ होगा एक कर लिया जायगा जो (एतत्पश्चात् संपत्ति-कर से अभिदिष्ट होगा) प्रत्येक व्यक्ति, अविभाजित हिंदू परिवार और कंपनी के संगती मूल्यांकन तिथि की शुद्ध संपत्ति पर होगा और उसकी दर या दरें अनुसूची में निर्दिष्ट दर या दरें होंगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसे मुख्य न्यायाधिपति के समक्ष भेजने पर उन्होंने तृतीय न्यायाधीश रघुबर दयाल की संमति के लिये अभिदेश कर दिया।

न्यायमूर्ति रघुबर दयाल ने निर्णय दिया कि 'प्रतिलिपि' का तात्पर्य प्रमाणित प्रतिलिपि से है। अतः अंत में अपील उत्सर्जित कर दी गई क्योंकि अपील के स्मृतिपत्र के साथ अवधि के भीतर निर्णय की प्रमाणित प्रतिलिपि नहीं दी गई थी और समय बढ़ाने का प्रार्थनापत्र पहले ही अस्वीकार हो चुका था। किंतु इसके साथ ही सर्वोच्च न्यायालय में अपील करने के लिये प्रमाणपत्र दे दिया गया कि यह अपील करने के लिये उपयुक्त है।

इस अपील में केवल इसी पर जोर दिया गया कि सादी प्रतिलिपि का धा० ४१९ के अंतर्गत दिया जाना पर्याप्त है। शब्दकोश के सहारे कहा गया कि 'प्रतिलिपि' शब्द के अर्थ में अस्पष्टता है ही नहीं इसलिए इसके अन्वय (कांस्ट्रक्शन) की कोई आवश्यकता नहीं है। कहा गया कि यदि प्रमाणित प्रतिलिपि दी जाती है तो इसका भी अर्थ प्रतिलिपि ही हुआ। प्रमाणित प्रतिलिपि और प्रतिलिपि दोनों समान हैं।

इसमें संदेह नहीं कि जब किसी परिनियम में प्रयुक्त शब्द के अर्थ में संदेह हो तो उसके लिये कड़ाई से व्याकरण और व्युत्पत्ति पर ही नहीं आ जाना चाहिए वरन् अधिनियम के वस्तुविषय और विधानमंडल के उद्देश्य के साथ साथ चलनेवाला अर्थ लगाना चाहिए।

इसके लिये दं० प्र० सं० की कतिपय धाराओं के आधार पर विचार करना आवश्यक होगा। धारा ३७१ (४) के अंतर्गत अभियुक्त के न माँगने पर भी जो पूरे निर्णय की प्रतिलिपि देने का नियम है वह ज्ञात होता है कि इसीलिए है कि वह निश्चय करले कि दोषसिद्धि और दंडादेश के विरुद्ध अपील करे कि नहीं। किंतु धारा ४१७ के अंतर्गत दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील करने के लिये सरकार को निर्णय की प्रतिलिपि प्राप्त करना होगा और तब उसे धा० ४१९ में स्मृतिपत्र के साथ देना होगा। भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा ७४ के अंतर्गत निर्णय सार्वजनिक विलेख में आता है। दं० प्र० सं० की धारा ५४८ के अंतर्गत जो निर्णय से असंतुष्ट है वह उसकी प्रतिलिपि पाने का अधिकारी है। धारा ७६ में वह अधिकारी जिसकी देख रेख में निर्णय रखा है वह इसका शुल्क इत्यादि लेकर प्रमाणित करके प्रतिलिपि दे देगा। इसी प्रतिलिपि को प्रमाणित प्रतिलिपि कहते हैं। इसलिए चाहे अभियुक्त धारा ३७१ (१) (२) में प्रतिलिपि के लिये प्रार्थनापत्र देता हो चाहे सरकार लोक अधिकारी से प्रतिलिपि चाहती हो यह प्रमाणित प्रतिलिपि ही होनी चाहिए। जब धारा ४१९ में प्रतिलिपि देने का नियम है तो यह प्रमाणित प्रतिलिपि ही होनी चाहिए।

अवधि अधिनियम के अनुच्छेद १५४, १५५ और १५७ में निर्दिष्ट अवधि के भीतर ही अपील निवेशित हो जानी चाहिए किंतु प्रमाणित प्रतिलिपि को प्राप्त करने में देर होती है इसीलिए अवधि अधिनियम की धारा १२ के अंतर्गत प्रतिलिपि पाने तक का समय और बढ़ा दिया जाता है। इन अनुबंधों के देखने से यही प्रतीत होता है कि प्रतिलिपि प्रमाणित प्रतिलिपि ही होनी चाहिए।

धारा ४१९ में जो प्रतिलिपि देने का नियम है वह विशेष अभिप्राय से है। प्रतिलिपि इसलिए दी जाती है कि न्यायाधीश इसके द्वारा दो प्रकार का आदेश दे सकते हैं। एक यह कि यों ही देखने पर जब ज्ञात होता है कि अपील में कोई आधार नहीं है तो यह सरसरी ढंग पर उत्सर्जित कर दी जायगी। दूसरे यदि अपील का आधार महत्वपूर्ण प्रतीत होता है तो उत्तरवादी को सूचना दी जायगी कि इसकी सुनवाई कब और कहाँ पर होगी। इसमें संदेह नहीं कि ये सब आदेश न्यायिक आदेश हैं और इसके लिये प्रतिलिपि का ठीक रहना आवश्यक है। इतनी ही नहीं, अपील निवेशित करते समय ही आदेश के निष्पादन की कार्यवाही स्थगित करने के लिये प्रार्थना की जा सकती है या सरकार प्रार्थनापत्र दे सकती है कि सुनवाई के पहले ही अभियुक्त बंदी कर लिया जाय, इत्यादि। इन सब आदेशों के लिये उपयुक्त आधार होना चाहिए। प्रमाणित प्रतिलिपि के बिना आधार उपयुक्त नहीं हो सकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसलिए धा० ४१६ में प्रतिलिपि प्रमाणित प्रतिलिपि होनी चाहिए।

कहा गया कि अपील का न्यायालय अभिलेख को देखकर तभी अपील सरसरी ढंग पर उत्सर्जित कर सकता है, बिना देखे नहीं। ऐसी बात नहीं है। जब अभियुक्त के व्यक्तिगत स्वातंत्र्य का प्रश्न है तो निर्णय शीघ्र होना चाहिए। अभिलेख देखने के लिये अपील का न्यायालय बाध्य नहीं है। अभिलेख मँगाने और देखने में देर होती है। अतः यदि धा० ४१६ में प्रमाणित प्रतिलिपि हो तो यह सब कठिनाई नहीं पैदा होगी और यही धारा का उद्देश्य भी है।

विद्वान् वकील ने फिर कहा कि यदि मामला आवश्यक हो तो यह आवश्यक नहीं है कि न्यायालय अभिलेख की प्रतीक्षा करता रहे। वह तुरत अपीलकर्ता को बुला सकता है कि वह साक्ष्य दे कि निर्णय शुद्ध है कि नहीं और तब न्यायालय इस पर न्यायिक आदेश पारित कर सकता है। इस कथन को न मानने के लिये निम्नलिखित आधार हैं :—

१—दंड प्रक्रिया संहिता में ऐसा कोई नियम नहीं है।

२—इसको इस प्रकार प्रमाणित करने में और विलंब होगा।

३—शुद्धता के बारे में पूछने पर अपीलकर्ता अधिक से अधिक यही कह सकता है कि मैंने निर्णय पढ़ा है और जहाँ तक मुझे स्मरण है उसकी यह सही प्रतिलिपि है। यदि ऐसा साक्ष्य दिया गया तो यह गौण साक्ष्य होगा, मुख्य नहीं। विलेख के अंतर्विषय पर मौखिक साक्ष्य देने या मुख्य साक्ष्य न देकर गौण साक्ष्य देने इत्यादि की अनेक अड़चने पड़ेंगी और अंत में यह भारी समस्या उपस्थित होगी कि ऐसा साक्ष्य प्रतिग्राह्य है कि नहीं। धा० ७४ में निर्णय 'सार्वजनिक विलेख' में आता है। इसके लिये गौण साक्ष्य देने की मनाही है। धारा ६५ के अंतर्गत इसकी प्रमाणित प्रतिलिपि-प्रतिग्राह्य हो सकती है। प्रसंग से यह प्रगट होता है कि धा० ४१६ में प्रतिलिपि प्रमाणित होनी चाहिए।

राज्य की ओर से कहा गया कि न्यायालय को अधिकार है कि धा० ४१६ में प्रतिलिपि निवेशित करने के बंधन को पूर्णतया हटा दे। अतः जब प्रतिलिपि देने की माँग ही दूर की जा सकती है, तो सादी प्रतिलिपि पर्याप्त है। यह बात भी मानने योग्य नहीं है। हो सकता है कि प्रमाणित प्रतिलिपि किसी दूसरे मुकदमें में दी गई हो और दूसरी लेने में देर हो या दूसरे कारण भी हो सकते हैं और मामला आवश्यक हो तो प्रतिलिपि का न देना न्यायालय क्षमा कर सकता है। ऐसा काम न्यायालय परिस्थिति को देखते हुए करता है। किंतु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि न्यायालय को सादी प्रतिलिपि से भी संतुष्ट हो जाना चाहिए जिसके बारे में कोई प्रमाण नहीं है कि यह ठीक है या गलत।

राज्य का प्रतर्क है कि दं० प्र० सं० के अन्य स्थलों पर जहाँ प्रमाणित प्रतिलिपि की आवश्यकता होती है वहाँ धारा सर्वथा स्पष्ट है। यहाँ केवल 'प्रतिलिपि' ही लिखा है। इसके लिये धा० ४२५, ४२८, ४४२ और ५११ की ओर संकेत किया गया है। किंतु इन धाराओं के पढ़ने से ज्ञात होता है जिस विषय पर यहाँ चर्चा हो रही है उससे वे संबंध नहीं रखतीं।

प्रतिलिपि के संबंध में जब यह विवाद हो कि इसकी प्रमाणित प्रतिलिपि चाहिए या सादी तो उसके प्रसंग द्वारा इसे जानने का यत्न करना चाहिए। प्रतिलिपि कुछ दशाओं में केवल सूचना के लिये होती है। वहाँ सादी प्रतिलिपि दी जा सकती है किंतु जिस प्रतिलिपि के आधार पर न्यायिक आदेश पारित करना है, वहाँ प्रतिलिपि का प्रमाणित होना आवश्यक है। इन प्रसंग के आधार पर धा० ४१६ के अंतर्गत प्रमाणित प्रतिलिपि ही निवेशित की जानी चाहिए।

व्यवहार प्रक्रिया संहिता की अनेक धाराओं का अभिदेश किया गया कि विभिन्न स्थलों पर 'प्रतिलिपि' शब्द का क्या अर्थ होता है किंतु यहाँ प्रतिलिपि शब्द की ऐसी विशिष्ट व्याख्या की आवश्यकता नहीं है। प्रत्येक धाराओं में प्रतिलिपि शब्द का अर्थ भाषा, प्रसंग और परिस्थिति के अनुसार बदलता रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपर्युक्त कारणों से इलाहाबाद उच्च न्यायालय का ८ फरवरी १९५५ का आदेश ठीक था और यह अपील उत्सर्जित की जानी चाहिए।

अपील उत्सर्जित

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ सर्वो० न्या० ५५

२५ फरवरी १९५८

व्यवहार अपील सं० ११८।११९।१९५६

काशी बाई — प्रार्थी

वि०

सुधारानी घोष तथा अन्य — उत्तरवादीगण

(ए० एफ० ओ० डी० सं० २५२ और २५४। १९४८ दिनांक २७-९-१९५१ पटना से)

अवधि अधिनियम (१९०८) अनु० १४४ कोयले की खान पर सविराम धारण होना प्रतिकूल धारण के लिये पर्याप्त है कि नहीं—

कोयले की खान पर जब समय समय पर रुक रुककर पुनः काम आरंभ किया जाता रहा हो तो इस प्रकार १२ वर्ष की अवधि तक का प्रतिकूल धारण (एडवर्स पोजेशन) अधिकार प्रदान नहीं कर सकता। ऐसे खंडित धारण के प्रति विधि की यह अभिधारणा समाप्त नहीं हो जाती कि जब जब खान में काम बंद रहता था तब तक इसका धारण इसके वास्तविक स्वामी के पास लौट जाया करता था।

न्यायमूर्ति कपूर—

धनबाद में दो प्रतिवाद (क्रास सूट्स) समान तथ्यों पर निवेशित हुए और उनमें पहले का वादी दूसरे में प्रतिवादी था तथा दूसरे का प्रतिवादी पहले में वादी। पटना उच्च न्यायालय ने एक निर्णय और दो डिग्री द्वारा इसका निर्वर्तन किया। पटना उच्च न्यायालय की अनुमति पर अपील सुनवाई के लिये आई हैं। दो डिग्री पर अपीलकर्ता ने दो अपील इस न्यायालय में निवेशित किया है जो एक में मिला दी गई हैं और इसी एक ही निर्णय द्वारा दोनों का निर्वर्तन होगा। इसमें प्रमुख विचाराधीन प्रश्न प्रतिकूल धारण (ऐडवर्स पोजेशन) का है।

अपीलकर्ता की ओर से इसमें कहा गया है कि १२ वर्ष तक धारण में रहने से उसने कोयले की ख़ान पर प्रतिकूल धारण से अधिकार प्राप्त कर लिया है। इसमें प्रमाणित हो चुका है कि १९१७-१८ में खान में काम किया गया फिर १९२३ तक खान में कोई काम नहीं हुआ। १९२३ में जब काम फिर आरंभ हुआ तो वह १९२६ तक चला। वह १९३१ में काम फिर आरंभ हुआ और १९३९ में बंद हो गया। यह स्पष्ट नहीं होता कि १९३९ में काम हुआ कि नहीं। उसके बाद १९४४ में काम आरंभ हुआ। यह भी प्रमाणित हो चुका है कि धारण खान के पूरे क्षेत्र पर नहीं था वरन् कुछ भाग पर था।

धनबाद के विद्वान् अधरिक न्यायाधीश ने निर्णय दिया था कि उपर्युक्त भाँति खंड खंड धारण होने से यह प्रतिकूल धारण होकर स्वत्व (टाइटिल) नहीं प्रदान कर सकता और दूसरे, धारण केवल एक भाग पर ही था अतः यदि यह प्रमाणित भी हो जाय कि अपील-कर्ता का धारण लगातार रहा है तो भी संपूर्ण खान पर उसका स्वत्व नहीं हो सकता।

अपील करने पर पटना उच्चन्यायालय ने भी विद्वान अधरिक न्यायाधीश के उपर्युक्त निर्णय का स्थिरीकरण किया।

इस न्यायालय में भारतीय महा न्यायवादी (अटार्नी जनरल आफ इंडिया) का कहना है कि परिनियमित १२ वर्ष की अवधि तक प्रतिकूल धारण में रहने से अपील-कर्ता को स्वत्व प्राप्त हो गया।

प्रतिकूल धारण से अधिकार परिपक्व करने के लिये आवश्यक है कि धारण निर्धारित अवधि तक लगातार रहा हो, स्पष्ट रहा हो तथा विरुद्ध अधिकार का दावा करते हुए रहा हो। इसके लिये कहा गया कि आवश्यक नहीं है कि धारण बिना किसी रुकावट के रहा हो थोड़ी बहुत रुकावट होने पर भी प्रतिकूल धारण से अधिकार प्राप्त हो सकता है या जैसी परिस्थिति यहाँ है लंबी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवधि तक रुकावट पर भी प्रतिकूल धारण से अधिकार प्राप्त हो सकता है।

यह बात मानने योग्य नहीं है। कोयले की खान पर प्रतिकूल धारण दिखलाने के लिये यह आवश्यक है कि धारण लगातार रहा हो। यहाँ १९१७-१८ में काम हुआ फिर बंद हुआ, १९२३ में आरंभ हुआ तो १९२६ में बंद हो गया। १९३१ में आरंभ हुआ तो १९३३ में बंद हो गया और १९३९ तक बंद रहा। १९३९ में काम हुआ कि नहीं यह स्पष्ट नहीं है किंतु १९३९ से १९४४ तक यह बंद रहा। ऐसे धारण से अधिकार प्राप्त नहीं हो सकता तथा विधि की यह अभिधारणा समाप्त भी नहीं होती कि जब जब खान का काम बंद रहा, तब तब धारण वास्तविक स्वामी के पास लौट जाया करता था।

ए० आई० आर० १९३१ प्रिवी कौंसिल १८६ का अभिदेश किया गया किंतु उसमें धारण संपूर्ण क्षेत्र पर हो गया था। उसमें संपूर्ण क्षेत्र में चाहे जो काम किया जाता कोई रुकावट नहीं थी। ऐसी परिस्थिति में प्रिवी कौंसिल ने निर्णय दिया था कि वाद अवधि अधिनियम के अनु० १४४ से बाधित है। उसमें विद्वान् न्यायाधीश ने कहा था कि 'धारण तथ्य का प्रश्न है और धारण का विस्तार तथ्य का निष्कर्ष हो सकता है'। उसमें धारण के संबंध में विद्वान् न्यायाधीश ने कहा था कि यों तो प्रतिकूल धारण पर स्वत्व आधारित रहता है किंतु स्वत्व वहीं तक सीमित रहना चाहिए जिस सीमा तक वास्तविक धारण रहा हो। किंतु इस सामान्य नियम को वाद विशेष की परिस्थिति पर निर्भर करना चाहिए।

विद्वान् महा न्यायवादी ने एक दूसरे वाद पर निर्भर किया। वह ए० आई० आर० १९३४ प्रिवी कौंसिल २३ है। उसमें एक जमींदार सरकार के विरुद्ध मछली मारने के अधिकार का दावेदार था। उसमें निर्णय हुआ था कि धारण के लिये आवश्यक नहीं है कि हर क्षण धारण रहे। यह सच है कि धारण की प्रकृति परिस्थिति के अनुसार बदलती रहती है तथा इसी सिद्धांत के अनुसार इस मामले में ऐसा खंडित धारण स्वत्व प्रदान नहीं कर सकता। उच्चन्यायालय का निर्णय ठीक था अतः अपील उत्सर्जित की जाती हैं।

—अपील उत्सर्जित

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ सर्वोच्च न्या० ५६

(पटना से)

२१ मार्च १९५८

आपराधिक अपील सं० १३४।१९५५

बिहार राज्य — अपीलकर्ता

वि०

बसावन सिंह — उत्तरवादी

(अ) साक्ष्य अधिनियम (१८७२), १३३—सहापराधी (एकंप्लिस) के साक्ष्य के संपोषण की आवश्यकता—न्यायालय का कर्तव्य (दं० प्र० सं० धारा ३६७)—सहापराधी और मजिस्ट्रेट—

(ब) दंड प्रक्रिया संहिता (१८९८), धारा ३६७—साक्ष्य के मूल्यांकन में न्यायालय का कर्तव्य—

(स) साक्ष्य अधिनियम (१८७२), धारा १३३-सहसाक्रमणकारी पक्ष का साक्ष्य एवं उसका संपोषण (दं० प्र० सं० (१८९८) धा० ३६७)—संपोषण की प्रकृति एवं उसकी व्याप्ति—

(द) भारतीय संविधान, अनुच्छेद १३६ के अंतर्गत अधिक्षेत्र का प्रयोग—

न्यायमूर्ति एस० के० दास —

गया के विशेष न्यायाधीश ने उत्तरवादी को दंड संहिता की धारा १६१ के अंतर्गत दंड दिया था किंतु अपील करने पर पटना उच्चन्यायालय के एकाकी न्यायाधीश ने उसे छोड़ दिया। इस दोषमुक्ति के विरुद्ध विशेष अनुमति पर बिहार राज्य ने यह अपील निवेशित की है।

इसकी घटना इस प्रकार है। गया जिले में अरवल नामक स्थान पर भगवान दास की एक राशन की दूकान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी । भगवानदास इसमें अभियोजन साक्षी है। उस क्षेत्र के थाने में एक दिन सूचना पहुँची कि महावीर प्रसाद उस दूकान से चोर बाजारी (ब्लैक मार्केटिंग) करके दो टट्टुओं पर गेहूँ लाद-कर ले जा रहा है। सूचना पाकर बसावन सिंह थानेदार जो यहाँ उत्तरवादी है पहुँचा और रास्ते में ही गेहूँ लदे हुए दोनों टट्टुओं को पकड़ा। महावीर प्रसाद साइकिल पर आगे आगे जा रहा था। उन्होंने गेहूँ अपने कब्जे में कर लिया। भगवान दास से पूछने पर उसने बतलाया कि गेहूँ चोर बाजारी से नहीं बेचा गया किंतु कार्ड पर की इकाई (यूनिट) के अनुसार दिया गया। उसके भांडार का मिलान जब उसके रजिस्टर से किया गया तो दोनों ठीक ठीक मिल गए। इसी बीच महावीर प्रसाद जिसको बुलवाया गया था अपना राशन कार्ड और कैश बुक लेकर पहुँच गया। थानेदार ने दोनों को पकड़ लिया और थाने पर ले गए। थाने पर पहुँच कर कहा गया है कि उत्तरवादी ने महावीर प्रसाद से ५०० रु० माँगा। महावीर प्रसाद ने कहा कि मैं अपने भाई से पूँछ लूँ कि कितना रुपया दिया जाय। थानेदार ने उन दोनों को जमानत पर छोड़ दिया। दूसरे दिन उन्हें फिर बुलवाया और ५०० रु० माँगा। कहा जाता है कि थानेदार ने कहा कि यदि पाँच, पाँच सौ रुपया दे दो तो मैं अंतिम प्रतिवेदन दे दूँगा कि मामला झूठा है और इसके समर्थन में कोई साक्ष्य नहीं है और न देने पर मैं बहुत हैरान करूँगा।

कहा जाता है कि भगवान दास का मामला ५०० रु० से कम होते होते ३०० रु० पर आया। इसी बीच थानेदार ने उसकी दूकान से कुछ गेहूँ लिया और इसे भिन्न भिन्न व्यक्तियों के नाम से लिखवाया तथा इसका मूल्य चुकता नहीं किया। थानेदार ने तब भगवान दास से कहा कि शेष ५० रु० नगद दे दो। और इस प्रकार ३०० रु० पूरा हो जायगा। ३१ दिसंबर १९५१ इस ५० रु० के लेन देन के लिये तय हुआ।

भगवान दास ने जब सोच लिया कि यह ५० रु० देना ही पड़ेगा और इससे बचने के लिये अब कोई उपाय नहीं है तो वह पटना में जाकर दो दिन भ्रष्टाचार निवारक प्राधिकारी से मिला। उनको उसने इस संबंध में एक प्रार्थनापत्र दिया और उसमें उन १० रु० के ५ नोटों का नंबर भी लिखा था। विभाग के प्राधिकारी श्री मुकर्जी ने उन नोटों पर अपना हस्ताक्षर किया। श्री मुकर्जी ने जिलाधीश से प्रार्थना की कि इस काम के लिये किसी प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट को नियुक्त कर दें। मजिस्ट्रेट इसके लिये नियुक्त हो गए। इस वर्ग के लोगों ने आपस में तय कर लिया कि कैसे रुपया दिया जाय और कैसे पकड़ा जाय। जब लोग एक स्थान पर थे तो भगवान दास ने उन लोगों से कहा कि थानेदार ने महावीर के गेहूँ को छोड़ने के लिये भी उसके भाई परमेश्वर प्रसाद से ५० रु० माँगा है। श्री मुकर्जी ने परमेश्वर प्रसाद का बयान लिखा और उसमें उन दस दस रुपए के ५ नोटों का नंबर लिख लिया तथा उन पर अपना हस्ताक्षर बना दिया।

८ दिसंबर १९५१ को यह घूस का रुपया दिया जानेवाला था किंतु उस दिन उत्तरवादी थाने पर नहीं था इसलिए ६ दिसंबर को रुपया देना तय हुआ। यह दल थाने पर पहुँचा। भगवान दास और परमेश्वर उत्तरवादी के निवास स्थान पर पहुँचे। अधिकारी लोग सादी वेश भूषा में केवल धोती कुर्ता पहने हुए बरामदे के बाहर बैठे। इनके बारे में कहा गया कि ये लोग भगवान दास के संबंधी हैं। उत्तरवादी भगवान दास से बरामदे की सीढ़ी पर ही मिला और उसने रुपया दिया। रुपया उसने बाँयें हाथ में लिया। इसी बीच परमेश्वर ने भी रुपया दिया। तब तक मजिस्ट्रेट, श्री मुकर्जी और पुलिस के उपअधीक्षक भी वहाँ पहुँच गए। उन्होंने उत्तरवादी को अपना परिचय बतलाया और कहा कि आपने घूस लिया है। थानेदार के नकारने पर एक हाथ मजिस्ट्रेट ने पकड़ा और एक हाथ पुलिस के उप-अधीक्षक ने। हाथा बाहीं होते होते उत्तरवादी बरामदे से बाहर ले जाया गया। थाने के बगल में एक खुले स्थान पर पहुँच कर तलाशी ली गई। दस दस रुपए के ९ नोट उनके पास से निकले। उनके नंबर वही थे जो पहले लिखा गया था तथा उनपर हस्ताक्षर थे। एक नोट नहीं मिल रही थी। जब पेट्रोमैक्स लालटेन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से खोज की गई तो गणेश प्रसाद और जानकी साहु की उपस्थिति में वह नोट सिकुड़ी हुई अवस्था में बरामदे के एक कोने में पाई गई। प्रतिवेदन तैयार करके उस थाने के अधिकारी को दिया गया। पुलिस के एक दूसरे अधीक्षक ने इसकी जाँच की और उपयुक्त अधिकारी के संमोदन (सैंक्शन) पर अभियोजन आरंभ हुआ। गया के विशेष न्यायाधीश के न्यायलय में यह मुकदमा चला और उन्होंने उत्तरवादी को दंड संहिता की धारा १६१ के अंतर्गत दोषी पाया और १ वर्ष कठोर कारावास का दंड दिया।

अपनी बचत में उत्तरवादी का कहना था कि ८ अक्टूबर १९५१ को ही उसने अंतिम प्रतिवेदन दे दिया था कि कोई बात नहीं थी और चोर बजारी के बारे में संदेह गलत था। उसने रुपया माँगनेवाले तथ्य से इनकार किया। वहाँ की घटना के बारे में कहा गया कि अधिकारियों ने घटना को प्रत्यक्ष नहीं देखा। वे बाहर थे और बाद में पहुँचे। जो एक नोट फेंकी हुई थी उसके बारे में कहा गया कि हो सकता है कि भगवानदास जब झुका तब उसने फेंक दिया हो।

विद्वान् विशेष न्यायाधीश ने अभियोजन का कहना सत्य माना था और उत्तरवादी की बचत की कहानी पर विश्वास नहीं किया था।

उच्च न्यायालय में जब विद्वान् एकाकी न्यायाधीश ने अपील की सुनवाई की तो उन्होंने वाद के तथ्यों को तो सत्य माना था किंतु सर्वोच्च न्यायालय के एक निर्णय के कारण वे भ्रम में पड़ गए। ए० आई० आर० १९५४ सर्वोच्च न्यायालय ३२२ में एक ऐसा ही निर्णय हुआ था कि जो दल सहसाक्रमण करके घूस का दिया जाना पकड़ता है उसके साक्ष्य पर अभियुक्त की दोषसिद्धि ठीक नहीं है। यह साक्ष्य लांछित रहता है। अतः इसी कारण उच्च न्यायालय द्वारा वह अभियुक्त छोड़ दिया गया।

किंतु ए० आई० आर० १९५४ सर्वोच्च न्यायालय ३२२ को देखने से प्रतीत होता है कि उसमें यह कोई अटल सिद्धांत निश्चित नहीं हुआ था कि सहसाक्रमण करके घूस के लेनदेन को पकड़नेवाले दल का अभि साक्ष्य विश्वसनीय नहीं होगा। यह प्रत्येक परिस्थिति पर निर्भर करता है।

सहापराधी (एकंप्लिस) के बारे में ए० आई० आर० १९५२ सर्वोच्च न्यायालय ५४ में कहा गया था उसका साक्ष्य प्रतिग्राह्य होता है किंतु इस साक्ष्य को काम में लाते समय थोड़ी सावधानी बरतनी चाहिए और यह परंपरा एक प्रकार से विधि हो गई है कि न्यायाधीश को चाहिए कि असंपोषित सहापराधी के साक्ष्य की प्रतिग्राह्यता की निर्बलता के बारे में जूरी को चेतावनी दे दें। किंतु एक कठिनाई उस समय उपस्थित हो सकती है जब कि मुकदमे की अन्वीक्षा जूरी लोग नहीं करते। ऐसी परिस्थिति आने पर कहा गया है कि न्यायाधीश को चाहिए कि कारण स्पष्ट कर दें कि वे क्यों मुकदमें की परिस्थिति विशेष के कारण सहापराधी के साक्ष्य के संपोषण पर आग्रह नहीं करते हैं और बिना संपोषण के ही अभियुक्त की दोषसिद्धि करते हैं।

ऐसे साक्षी जो मुकदमें से बद्धहित (इंटरेस्टेड) होते हैं उनके साक्ष्य को स्वीकार करने के लिये यह आवश्यक होता है कि स्वतंत्र साक्ष्य से संपोषण कर लें। किंतु इसका यह अभिप्राय निकालना गलत है कि यह कोई अटल सिद्धांत है कि जब तक स्वतंत्र साक्ष्य संपोषण के लिये उपलब्ध न हो तब तक ऐसे साक्ष्य पर दोषसिद्धि आधारित नहीं की जा सकती। थोड़े में सहापराधी का साक्ष्य और बद्ध हित (इंटरेस्टेड) साक्षी का साक्ष्य स्वीकार करने के लिये इतने ही नियम हैं।

एक बात यह कही गई कि पुलिस का काम है कि अपराध करने से रोके न कि अपराध करने में स्वयं साधन बन जावे। इसके बारे में १९४७-२ इलाहाबाद ई० आर० ५७२ में कहा गया था कि पुलिस को स्वयं अपराध करके किसी के विरुद्ध साक्षी उपस्थित नहीं करना चाहिए।

ए० आई० आर० १९५४ सर्वोच्च न्यायालय ३२२ में कहा गया था कि घूस पकड़ने के लिये मजिस्ट्रेटों की नियुक्ति करना ठीक नहीं है। न्याय और शासन दोनों अलग-अलग रहना चाहिए। भारतीय संविधानों के निदेशक सिद्धांत (डाइरेक्टिव प्रिंसिपुल) के संबंध में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुच्छेद ५० के अंतर्गत दिया हुआ है कि न्याय और शासन दोनों अलग अलग रहेगा। अतः मजिस्ट्रेटों को बद्धहित बनाकर उनका साक्ष्य दिलाना ठीक नहीं है। इसके बारे में कहा गया कि यदि इस प्रकार के भ्रष्टाचार वाले मुकदमें में मजिस्ट्रेट न रहें तो बड़ी कठिनाई होगी। ऐसी कठिनाई यदि हो भी तो वह न्यायाधीश के मस्तिष्क पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकती। न्यायाधीश को तो प्रतिग्राह्य साक्ष्य पर वादविशेष की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए विचार करना होता है—शासन में क्या कठिनाई है इससे कुछ संबंध नहीं रहता।

वैध फंदा और अवैध फंदा में विभेदकरण करने का प्रयत्न किया गया है तथा दो प्रकार के साक्ष्यों, सहापराधी का लांछित साक्ष्य और बद्धहित या भागीदार का साक्ष्य, में अंतर दिखलाने का प्रयत्न किया गया है कि सहापराधी के लांछित साक्ष्य के लिये संपोषण की मात्रा अपेक्षाकृत बद्धहित साक्षी के अधिक होनी चाहिए। यह सब विभेदकरण बनावटी है। साक्ष्य के महत्त्व के मूल्यांकन या संपोषण की मात्रा के संबंध में कोई अकाट्य सिद्धांत नहीं बनाया जा सकता कि उसके आधार पर यह जाना जा सके कि वह विश्वसनीय है। यह परिस्थिति विशेष के अनुसार बदलता रहता है।

विद्वान् न्यायाधीश ने ए० आई० आर० १९५४ सर्वोच्च न्यायालय ३२२ का अभिप्राय यह समझ लिया कि यह एक अटल सिद्धांत निश्चित करता है कि सहसाक्रमणकारी दल के साथियों का साक्ष्य बिना स्वतंत्र संपोषण के दोषसिद्धि का आधार नहीं हो सकता। उक्त रूलिंग का यह अभिप्राय नहीं है। ठीक परिस्थिति यह है कि ऐसे मुकदमों में जो साक्षी स्वयं अपराध में भाग लेते हैं उनके साक्ष्यगुण का मूल्यांकन सहापराधी के साक्ष्य के समान करना चाहिए और जो साक्षी बद्धहित होते हैं या जो केवल इस बात से संबंध रखते हैं कि फंदा सफल हो जाय उनके साक्ष्य का परीक्षण उसी प्रकार करना चाहिए जिस प्रकार अन्य बद्धहित साक्षियों का परीक्षण अन्य मुकदमों में किया जाता है और जो मुकदमों की परिस्थितियों के अनुसार भिन्न भिन्न बातों पर निर्भर करता है। कुछ परिस्थितियों में न्यायालय दोषसिद्धि के लिये स्वतंत्र संपोषण का आग्रह कर सकता है। यहाँ यदि मजिस्ट्रेट ने अपने को बद्धहित साक्षी की अवस्था में रख दिया है तो वे दोषसिद्धि के लिये अपने साक्ष्य का महत्त्व अन्य साधारण बद्धहित साक्षियों से अधिक होने का दावा नहीं कर सकते।

इस मुकदमें में अब स्वतंत्र संपोषण पर विचार करना है। गणेश और जानकी कहा गया है कि इसमें दो स्वतंत्र साक्षी हैं जिनके सामने एक मसली हुई दस रुपए की नोट मिली थी। वे तात्त्विक विवरण के लिये स्वतंत्र इसलिए नहीं माने जा सकते कि यह प्रमाणित नहीं है कि वह दस रुपए की एक नोट वहाँ बरामदे में कैसे आई जब तक कि सहसाक्रमणकारी दल का साक्ष्य विश्वसनीय नहीं मान लिया जाता। इसके बारे में कहा गया है कि साक्षीगण बाद में आए। कुछ भी हो स्वतंत्र संपोषण का अभिप्राय यहाँ तक नहीं होता कि प्रत्येक सूक्ष्म से सूक्ष्म विवरण का संपोषण स्वतंत्र साक्षियों द्वारा किया जाय। इसका उद्देश्य केवल इतना ही होता है कि एक अतिरिक्त साक्ष्य मिल जाय जिससे इस पर विश्वास हो सके कि सहापराधी की कहानी संभव है और युक्ति कहती है कि इस पर दोषसिद्धि करना सुरक्षित है। संपोषण के लिये सीधा साक्ष्य नहीं चाहिए जो बतलावे कि अभियुक्त ने अपराध किया है, यह केवल पारिस्थितिक साक्ष्य भी हो सकता है जो अभियुक्त का अपराध से संबंध जोड़ दे।

विद्वान् न्यायाधीश ने इस मुकदमें के तथ्यों को ठीक माना था अतः सहसाक्रमणकारी दल के साक्ष्य पर दोषसिद्धि करने में कोई अड़चन नहीं है जब कि यहाँ दो स्वतंत्र साक्षी भी हैं।

एक बात यह कही गई कि इस न्यायालय को उच्च न्यायालय द्वारा दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील में अपने अनुच्छेद १३६ के अंतर्गत विशेषाधिकार का प्रयोग बहुत कम करना चाहिए और बहुत असाधारण होने पर ही दोषमुक्ति के आदेश को निराकृत करना चाहिए। यह बात ठीक है। यहाँ अभियुक्त के विरुद्ध सभी आरोप प्रमाणित हैं। जो वह छोड़ा गया वह एक मात्र इसी न्यायालय के एक निर्णय के कारण अतः इसमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय संविधान के अनुच्छेद १३६ में अंतर्गत अधिकार के प्रयोग करने का अवसर है।

परिणामतः यह अपील स्वीकार की जाती है। पटना उच्च न्यायालय का दिनांक १३ जनवरी १९५५ का आदेश निराकृत किया जाता है और उत्तरवादी को दोषसिद्धि दंडसंहिता की धारा १६१ के अंतर्गत की जाती है और १ वर्ष कठोर कारावास का दंड दिया जाता है। उत्तरवादी दंड भुगतने के लिये आत्मसमर्पण कर दे।

अपील स्वीकृत

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ सर्वोच्च न्यायालय ९०

(बंबई से)

२१ मार्च १९५८

व्यावहारिक अपील सं० ७८।१९५४

केशव लाल लल्लू भाई पटेल तथा अन्य — अपीलकर्ता

वि०

लालभाई त्रिकूमल मिल्स लिमिटेड — उत्तरवादी गण

(अ) व्यवहार प्रक्रिया संहिता (१९०८), धा० ११२—तथ्य एवं विधि का प्रश्न (भारतीय संविधान अनुच्छेद १३३)

(ब) संविदा अधिनियम (१८७२) धा० ६३ और २९ – संविदा के पालन में समय के बढ़ाए जाने वाले प्रतिबंध में यदि अस्पष्टता हो तो इसका प्रभाव—साक्ष्य।

(स) व्यवहार प्रक्रिया संहिता धा० (१९०८) धा० ३५ और ११२ - यदि उत्तरवादी का ध्येय सद्भावना युक्त नहीं था और मुकदमें में जो उसने अपना पहला आधार लिया था उसे न्यायालय ने नहीं माना किंतु उसके एक दूसरे आधार पर जो उसने पहले पहल अपील में लिया उसी पर निर्णय उसके पक्ष में हुआ तो ऐसी परिस्थिति में सर्वोच्च न्यायालय ने आदेश दिया कि उभय पक्ष अपने अपने परिव्यय सायंत सहन करें।

(द) व्यवहार प्रक्रिया संहिता (१९०८) आ० ४१, नि० २—अक्षरों के अन्वयन (कांस्ट्रक्शन) पर यदि अभिकथन आधारित हो तो यह विधि का प्रश्न है और पहले पहल अप्रील में उठाया जा सकता है— लेख्य के अन्वयन के लिये किसी बाह्य साक्ष्य की प्रतिग्राह्यता (साक्ष्य अधिनियम (१८७२) धारा ९३।

न्यायमूर्ति पी० बी० गजेंद्रगादकर—

वादी ने संविदा के उल्लंघन करने पर प्रतिवादी गण के विरुद्ध १,५२,३३४ रु० ८ आना ९ पा० हानिपूर्ति (डैमेजेज) के लिये एक वाद निवेशित किया था। अन्वीक्षा न्यायालय ने वादी के पक्ष में निर्णय दिया और वाद में डिग्री दे दी। अपील करने पर बंबई उच्च न्यायालय ने वादी के विरुद्ध निर्णय दिया तथा उसका वाद उत्सर्जित कर दिया। बंबई उच्च न्यायालय के इसी निर्णय के विरुद्ध वादी ने यह अपील निवेशित की है।

वादियों ने प्रतिवादियों की मिल से कुछ सामान भेजे जाने के विषय में एक संविदा की थी। यह संविदा १९४२ में हुई थी। इसी बीच १९४२ ई० में आंदोलन आरंभ हुआ और प्रतिवादी उत्तरवादी गण की मिल बहुत समय तक बंद रही। जब मिल बंद थी उसी समय उत्तरवादी ने अपीलकर्ता को १५ अगस्त १९४२ को एक पत्र लिखा कि आंदोलन में तथा मिल में हड़ताल होने के कारण सामान भेजने का समय स्वतः बढ़ाया हुआ मान लिया जायगा और वह तब तक के लिये होगा जब तक कि मिल चलने नहीं लगती और साधारण वातावरण पुनः स्थापित नहीं हो जाता।

जब उपर्युक्त संविदा हुई थी उस समय उत्तरवादी के मिल के प्रबंधकारिणी अभिकरण के प्रभार में चिनू भाई लाल भाई थे और इसके बाद १८ सितंबर १९४२ को चिनू भाई के भाइयों में समझौता होने पर मिल के प्रबंधकारिणी अभिकरण के प्रभार में बासू भाई और बाबू भाई आए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्णय अंतिम रूप में प्रतिवादी के विरुद्ध किया जा चुका है। अतः इस कथन में बल नहीं है कि मुकदमे का निर्णय नहीं हुआ। निर्णय हुआ है और इस प्रकार पहली आपत्ति अस्वीकार की जाती है।

दूसरी आपत्ति के विषय में कहना है कि स्थगित करते-समय २५ रुपया परिव्यय का आदेश देना ज्ञात होता है कि व्यवहार प्रक्रिया संहिता के आ० १७ नि० १ के अंतर्गत है। इसके अंतर्गत प्रतिबंध के साथ भी वाद स्थगित किया जा सकता है किंतु प्रतिबंध को स्पष्ट कर देना चाहिए कि यदि इसका पालन नहीं किया गया तो क्या दंड मिलेगा। प्रतिवादी को चेतावनी दी जानी चाहिए थी कि परिव्यय न देने का क्या परिणाम होगा। यहाँ प्रतिवादी को पता नहीं था कि क्या दंड मिल सकता है और सहसा उसे भीषण दंड मिला।

अंतिम सुनवाई की तिथि अभी तक आई नहीं थी। उस तिथि को यदि प्रतिवादी मुकदमें के आगे की कार्यवाही में भाग लेता तो आ० १७ नि० ३ में न्यायालय को उसका निर्णय करना पड़ता यद्यपि वह परिव्यय देने में चूक गया था। कुछ भी हो वह परिस्थिति आई ही नहीं। अंतिम सुनवाई के लिये जो तिथि निश्चित थी उसके पहले ही प्रतिवाद काट दिया गया।

इसमें संदेह नहीं कि मुंसिफ को समय न बढ़ाने का अधिकार था। किंतु यदि मुंसिफ समय न बढ़ाते तो इसका परिणाम यही होता कि मुकदमे का परिणाम चाहे जो होता यह परिव्यय प्रतिवादी से वसूल किया जाता। परिव्यय के लिये औपचारिक एवं निष्पाद्य आदेश पारित किया जा सकता था। किसी भी रूप में यह रुपया मुकदमें में मान्य परिव्यय होता और वसूल किया ही जाता।

यदि प्रतिवाद काट देने का आदेश स्पष्ट हो तभी ऐसा आदेश दिया जा सकता है अन्यथा नहीं। इसके लिये वादी ने कुछ प्रमाण दिया है किंतु अंतर यह है कि उन वादों में उसे चेतावनी पहले से दी गई थी कि यदि आदेश का पालन न किया गया तो उसका परिणाम क्या होगा। यहाँ कोई चेतावनी नहीं दी गई थी।

विद्वान् मुंसिफ का आदेश कि प्रतिवाद काट दिया जाय और मुकदमे की सुनवाई एकपक्षीय हो अधिक्षेत्र के बाहर है और इसमें औचित्य नहीं है। अतः यह आदेश निराकृत किया जाता है। तथा इसी सीमा तक प्रार्थनापत्र स्वीकार किया जाता है। मुकदमा पुराना हो गया है इसलिए इसके अभिलेख नीचे के न्यायालय में निर्वर्तन के लिये शीघ्र ही वापस कर दिए जाँय। प्रार्थी विपक्षी से परिव्यय पाएगा।

प्रार्थनापत्र स्वीकृत

———

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इला० उच्च न्या० १११

न्यायमूर्ति एम० सी० देसाई

गणेश दीन — प्रार्थी

वि०

विश्वनाथ — विपक्षी

इलाहाबाद के सी० सी० जे० के निर्णय दिनांक १७-७-१९५४ के विरुद्ध व्यवहार पुनरीक्षण सं० १०३७ १९५४ दिनांक १४-८-१९५७

व्यवहार प्रक्रिया संहिता (१९०८) आ० २२, नि० ४, आ० ९ नि० ९ और १३-एक पक्षीय डिग्री के बाद निर्णीत ऋणी की मृत्यु तथा उसके मृत्योपरांत उसके पुत्र द्वारा डिग्री का निराकृत किया जाना-वाद का चलते रहना मानों निर्णीत ऋणी (जजमेंट डेटर) जीवित है—यह न्यायालय का कर्तव्य था कि प्रत्यस्थापन (सब्स्टीट्यूशन) का आदेश दे—वाद का उपशमन (अबेटमेंट) नहीं हो सकता—चूक (डिफाल्ट) में यदि वाद उत्सर्जित हो गया हो तो उसका पुनर्स्थापन हो सकता है।

आदेश—

विपक्षी ने दानीराम के विरुद्ध एक वाद निवेशित किया था और १९४५ ई० में इसमें एक पक्षीय डिग्री भी पारित हो चुकी थी। दानीराम इस प्रार्थी का पिता था। जब तक दानीराम जीवित रहा डिग्री के निष्पादन के लिये कोई कार्यवाही नहीं की गई। उसके मरने पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब डिग्री के निष्पादन की कार्यवाही की गई तो उसमें इस प्रार्थी की कुछ संपत्ति कुर्क कर ली गई। कुर्की होने के बाद प्रार्थी को उस एकपक्षीय (एकसपार्टी) डिग्री का पता चला। एकपक्षीय डिग्री को निराकृत करने के लिये प्रार्थी ने ५-१-१६५३ को एक प्रार्थनापत्र दिया। २८-३-१६५३ को वह डिग्री निराकृत कर दी गई। विपक्षी ने न तो दानीराम के स्थान पर उसके पुत्र इस प्रार्थी का नाम रखने का प्रार्थनापत्र दिया न तो न्यायालय ने ही दानीराम का नाम काटकर उसके स्थान पर प्रार्थी को रखने की कार्यवाही की। मुकदमा यथावत् चलने लगा मानों दानीराम अभी भी जीवित है। ६-४-५४ को वादी की अनुपस्थिति में वाद उत्सर्जित कर दिया गया। वाद के उत्सर्जन पर वादी ने तुरत एक प्रार्थनापत्र दिया कि मैं ज्योंही निवृत्त होने के लिये बाहर गया कि मुकदमे की पुकार हो गई इस लिये इसे पुनर्स्थापित किया जाय। अनुपस्थिति का यह आधार उपयुक्त समझकर न्यायालय ने १० रु० परिव्यय (कास्ट) लगाकर इसे पुनर्स्थापित कर दिया।

पुनर्स्थापन के इस आदेश के विरुद्ध यह प्रार्थनापत्र है। इसमें कहा गया कि विपक्षी ने आ० २२ नि० ४ के अंतर्गत या प्रत्यस्थापन के लिये कोई प्रार्थनापत्र नहीं दिया इसलिए ६-४-१६५४ को वास्तव में कोई वाद था ही नहीं जो उत्सर्जित होता।

आ० २२ के उपबंध इसमें लागू नहीं होंगे क्योंकि दानीराम मुकदमें के चलते रहने के बीच ही में नहीं मरा किंतु वह उस समय मरा जब डिग्री पारित हो चुकी थी। एकपक्षीय डिग्री इस प्रार्थी के प्रार्थनापत्र पर निराकृत की गई इसका अभिप्राय हुआ कि न्यायालय ने इस प्रार्थी को दानीराम का उत्तराधिकारी माना क्योंकि एकपक्षीय डिग्री का निराकरण किसी अपरिचित व्यक्ति के प्रार्थनापत्र पर नहीं किया जा सकता। आ० २१ नि० ४ में या प्रत्यस्थापन का प्रार्थनापत्र न देने पर भी ज्योंही यह डिग्री निराकृत हुई त्योंही यह प्रार्थी समझा जाना चाहिए कि वाद का एक पक्ष हो गया।

ऐसी परिस्थिति के संबंध में व्यवहार प्रक्रिया संहिता में कोई नियम नहीं है किंतु यहाँ ठीक यही प्रतीत होता है कि एकपक्षीय डिग्री के निराकरण के पश्चात् न्यायालय को स्वतः दानीराम के स्थान पर प्रार्थी को रख देना चाहिये था। इसके लिये विपक्षी द्वारा किसी प्रार्थनापत्र के दिये जाने की आवश्यकता नहीं थी न्यायालय को स्वतः प्रत्यस्थापन कर देना चाहिए था। यतः आ० २२ इसमें लागू नहीं होता, उपशमन (अबेटमेंट) का प्रश्न नहीं उठता। न्यायालय की गलती से ही दानीराम का नाम अभिलेख में रह गया - गलती विपक्षी की नहीं थी जिसके लिये उसे दंड दिया जाय। अतः ६-४-१६५४ के पहले वाद का उपशमन (अबेटमेंट) नहीं हुआ था। यह अनुपस्थिति में उत्सर्जित हो सकता था और यदि उत्सर्जित हो गया तो आ० ६ के अंतर्गत प्रार्थनापत्र द्वारा यह पुनर्स्थापित हो सकता था।

नीचे के न्यायालय ने विपक्षी का अभिकथन माना था जो ठीक था।

प्रार्थनापत्र परिव्यय के साथ उत्सर्जित किया जाता है।

प्रार्थनापत्र उत्सर्जित

विधि पत्रिका (१८८०) १६५८ इला० उ० न्या० ११२

न्यायमूर्ति वी० जी० ओक

व्यवहार प्रकीर्णक लेख सं० १७४२। १६५६

१६ जनवरी १६५८

महादेव तथा अन्य — प्रार्थीगण

वि०

सब डिविजनल आफिसर, कुंडा तथा अन्य — विपक्षीगण

उ० प्र० पंचायतराज नियम, नि० २५—नि० २५ के अंतर्गत एस० डी० ओ० चुनावयाचिका की सुनवाई करते समय न्यायालय नहीं है—भारतीय साक्ष्य अधिनियम के उपबंध नि० २५ के अंतर्गत चुनाव याचिका की सुनवाई में लागू नहीं होते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यायमूर्ति वी० जी० ओकः—

जिला प्रतापगढ़ के कुंडा के एस० डी० ओ० ने एक चुनाव याचिका को उत्सर्जित कर दिया था। उसी उत्सर्जन के आदेश के विरुद्ध भारतीय संविधान के अनुच्छेद २२६।२२७ के अंतर्गत यह लेख प्रार्थनापत्र है। इसमें प्रार्थी का कहना है कि—

१—उत्तरवादी विपक्षी की आयु ३० वर्ष से कम है।

२—चुनाव में बहुत ही अनियमितता हुई है।

३—केवल ३० वर्ष से कम आयुवाले का विषय पर एस० डी० ओ० ने साक्ष्य का अभिलेख किया है, प्रार्थी ने शेष साक्ष्य के बारे में साक्ष्य दिया किंतु एस० डी० ओ० ने उसका अभिलेख न करके टाल दिया।

४—एस० डी० ओ० ने इसके समर्थन में कि आयु ३० वर्ष से अधिक है अप्रतिग्राह्य साक्ष्य (इन ऐड मिसिबुल एविडेंस) लिया है जो गलत है।

एस० डी० ओ० ने केवल इसी प्रमुख आधार पर चुनाव याचिका उत्सर्जित कर दिया था कि निर्वाचित विपक्षी की आयु ३० वर्ष से अधिक है।

उपर्युक्त कथन के विरुद्ध विपक्षी ने प्रतिशपथपत्र दिया है जिसमें कहा गया है कि एस० डी० ओ० ने दिए गए सभी साक्ष्यों का अभिलेख किया।

आयुवाले वादपद (ईशू) पर जब एस० डी० ओ० ने इतने विस्तार से साक्ष्य का अभिलेख किया है तो कोई कारण नहीं कि शेष वादपदों पर दिए गए साक्ष्यों को वे क्यों न लिखते। अतः इस विषय पर प्रार्थी का अभिकथन ठीक नहीं प्रतीत होता।

साक्ष्य की प्रतिग्राह्यता के संबंध में जो आपत्ति है वह ज्ञात होता है कि इस अभिधारणा पर उठाई गई है कि इसमें साक्ष्य अधिनियम लागू होता है। किंतु ऐसी बात नहीं है। नि० २५ में लिखा है कि व्यवहार प्रक्रिया संहिता के उपबंध इसमें लागू होंगे। उसमें ऐसा नहीं लिखा है कि साक्ष्य अधिनियम लागू होगा कि नहीं।

साक्ष्य अधिनियम की धारा १ के अनुसार यह न्यायालय के समक्ष न्यायिक प्रक्रिया में लागू होता है। उसमें नहीं लिखा है कि यह न्यायाधिकरण (ट्रिबुनल) में लागू होता है कि नहीं। ए० आई० आर० १९५० सुप्रीम कोर्ट १८८ में कहा गया था कि यों तो औद्योगिक न्यायाधिकरण कई न्यायिक ढंग का काम करता है किंतु यह न्यायालय नहीं है। इसी प्रकार चुनाव न्यायाधिकरण न्यायालय नहीं है। चुनाव न्यायाधिकरण का काम औद्योगिक न्यायाधिकरण के समान है। धारा १२ सी० में है कि निर्वाचन पर आपत्ति एक मात्र चुनाव याचिका द्वारा ही निर्धारित अधिकारी के समक्ष की जा सकती है। धारा १२ सी० का अधिकारी नि० २४ द्वारा निर्धारित किया गया है। अतः नि० २५ के अंतर्गत चुनाव याचिका की सुनवाई करने वाला एस० डी० ओ० का काम न्यायाधिकरण में आता है न्यायालय में नहीं है।

नियम २५ के अंतर्गत चुनाव याचिका की सुनवाई में भारतीय साक्ष्य अधिनियम लागू नहीं होता।

तर्क के लिये यदि मान भी लिया जाय कि चुनाव याचिका में साक्ष्य अधिनियम लागू ही होता है तो विपक्षी की आयु के बारे में जो प्रमाण माना गया वह प्रतिग्राह्य था कारण कि जब एक्स० रे चित्र डाक्टर की देख रेख में लिया गया तो डाक्टर का अभिकथन एक्सरे के चित्र को प्रमाणित करने के लिये पर्याप्त है। इस चित्र से डाक्टर ठीक आयु का अनुमान लगा सकते हैं। इस आधार पर न्यायाधिकरण का निष्कर्ष मान्य है कि विपक्षी की आयु ३० वर्ष से अधिक है। चुनाव याचिका का उत्सर्जन ठीक हुआ है।

यह प्रार्थनापत्र परिव्यय के साथ उत्सर्जित किया जाता है।

प्रार्थनापत्र उत्सर्जित

——

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि पत्रिका (१८८०) १६५८ इला० उच्च न्या० ११४

नाथू — अपीलकर्ता

वि०

राज्य — उत्तरवादी

फतेहपुर के सत्र न्यायाधीश के आदेश निर्णय १८-६-१६५७ के विरुद्ध आपराधिक अपील सं० ६२८। १६५५, दिनांक १८-६-१६५७

साक्ष्य अधिनियम (१८७२) धा० २७ 'एक व्यक्ति' का अर्थ—दो या दो से अधिक अभियुक्त यदि एक साथ सूचना दें तो इसकी प्रतिग्राह्यता—सामान्य वाक्यांश अधिनियम (१८६७) धा० १३ में है कि एकवचन का अभिप्राय बहुवचन भी होता है।

ब—साक्ष्य अधिनियम (१८७२) धा० २७ में अभिकथन लिखते समय आवश्यक है कि अभियुक्त द्वारा प्रयुक्त शब्दों को लिखा जाय।

स—साक्ष्य अधिनियम (१८७२) धा० २७—यदि कई अभियुक्तों का अभिकथन हो तो उसके क्रम के लिये आवश्यक नहीं है कि जिस क्रम में 'केस' डायरी में लिखा है वह क्रम का निश्चायक प्रमाण है।

द—दंड संहिता (१८६०) धारा २०१ की प्रयोज्यता के लिये क्या आवश्यक है—

न्यायमूर्ति टंडन—

कोई रामगुलाम नामक व्यक्ति रोशनपुर टिकरी गाँव थाना खागा जिला फतेहपुर में रहता था। उसके तीन लड़के थे। एक घर पर रहकर खेती करता और दो लड़कों में से एक कानपुर में नौकरी करता था और दूसरा कानपुर-शहर में ही पढ़ रहा था। रामगुलाम की पाही उसी गाँव में थोड़ी दूर पर थी जहाँ उसके दो घर थे तथा उसके चौपाए वहीं बाँधे जाते थे। रामगुलाम रात को वहीं सोता था।

नित्य की तरह वह घटना की रात को भी वहीं सोने के लिये गया किंतु सबेरे वह घर पर वापस नहीं—आया। उसका जो लड़का घर पर रह कर खेती करता था वह वहाँ गया और अपने पिता को न पाकर इधर उधर खोजा किंतु जब कहीं पता न चला तो वह कानपुर चला गया कि कदाचित् वह वहाँ उसके भाइयों के पास चला गया हो। कानपुर पहुँचने पर पता चला कि उसका पिता कानपुर आया ही नहीं तो वे तीनों फिर साथ ही घर लौट आए।

खोज करते समय कहा गया है कि इन लोगों की भेंट एक अभियोजन साक्षी से हुई और इस साक्षी ने बतलाया कि उससे नाथू गडेरिया, जो यहाँ अपीलकर्ता है पास से बहनेवाली नदी के किनारे भेंट हुई और नाथू के कपड़े भीगे थे; नाथू से पूछने पर उसने कुछ उत्तर नहीं दिया। इतनी बात ज्ञात होने पर वे लोग उसी दिशा में बढ़े और थोड़ी दूर जाने पर उन्होंने देखा कि एक लाश नदी में लटकी हुई सेमर वृक्ष की एक डाली से बँधी हुई है। उस लाश में सिर और हाथ नहीं थे। इन लोगों ने पहचान किया कि लाश हमारे पिता की है।

इसके बाद उसके एक लड़के ने प्रथम सूचना प्रतिवेदन लिखाया और उसमें कहा गया कि नाथू को हमारा पिता सिंचाई करने से रोक रहा था इसलिए उससे द्वेष हो गया था तथा दशरथ पासी से भी वैमनस्य था और रामफल को उनका साथी बतलाया गया कि संदेह है कि इन्हीं लोगों ने मिलकर मेरे पिता की हत्या की है।

अंत में पुलिस ने नाथू, दशरथ, शिवप्रसाद, ठाकुरदीन और रामफल को भारतीय दंड संहिता की धा० ३०२।३४ और २०१।३४ के अंतर्गत आरोपित किया।

अभियोजन का यह कहना है कि नाथू दशरथ और शिवप्रसाद को जब १८-८-५४ को पकड़ा गया तब शिवप्रसाद से पूछने पर उसने अपनी दोष स्वीकृति की और उसके बतलाने पर उसके घर से कुल्हाड़ी और खुरपा प्राप्त हुआ जिससे कहा गया है कि राम गुलाम का बध किया गया। इसकी प्राप्ति शिवप्रसाद ने स्वयं की थी। नाथू से प्रश्न करने पर उसने बतलाया कि मैंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिव प्रसाद और दशरथ ने रामगुलाम मृतक का सिर और उसके हाथ छिपा करके एक स्थान पर गाड़ दिया है और कहा गया है कि उसने स्वयं जाकर खोदकर निकाला और थानेदार को दिया। शिवप्रसाद और दशरथ ने भी ऐसी ही बात बतलाई और तीनों उस स्थान पर एक साथ गए जहाँ से नाथू ने हाथ और सिर निकाल कर थानेदार को दिया था।

२२-८-५४ को ठाकुरदीन और रामफल पकड़े गए और प्रश्न करने पर कहा गया कि इन्होंने बतलाया कि हम लोग उन कपड़ों को दे सकते हैं जिन्हें मृतक हत्या के समय पहने हुए था। कहा गया है कि बाद में इन दो अभियुक्तों ने उन कपड़ों को पास के एक तालाब में से निकाल कर थानेदार को दिया।

अभियोजन कहानी थोड़े में है कि इन ५ व्यक्तियों ने मिलकर रामगुलाम की हत्या की और दंड से बचने के लिये हत्या के साक्ष्य को छिपाने का प्रयत्न किया। इसमें कोई प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं है। अभियोजन केवल पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित है।

विद्वान् सत्र न्यायाधीश ने पर्याप्त साक्ष्य न होने से केवल नाथू के अतिरिक्त सभी अभियुक्तों को छोड़ दिया। नाथू को दंड संहिता की केवल धारा २०१ में ७ वर्ष के कठोर कारावास का दंड दिया गया जिसके विरुद्ध यह अपील निवेशित की गई है। उसकी दोष सिद्धि का आधार उसकी वह दोष स्वीकृति मानी गई जिसमें उसने सिर और हाथ छिपाने की बात कही थी।

इस अपील में मुख्यतः इसी विषय पर बहस की गई है कि तीनों अभियुक्तों के एक साथ बयान देने पर उपर्युक्त वस्तुएँ प्राप्त हुईं और इसलिए धारा २७ इसमें लागू नहीं हो सकती। कहा गया है कि धारा २७ में प्रयुक्त शब्द एक व्यक्ति (ए परसन) है इसलिए जब दो या दो से अधिक व्यक्तियों ने बयान दिया तो वह बहुवचन हो गया और बहुवचन धारा का उद्देश्य नहीं है।

यह अपील पहले एकाकी न्यायाधीश के समक्ष सुनवाई के लिये आई थी किंतु धारा २७ की व्याख्या का महत्वपूर्ण प्रश्न होने से इसे विभागीय न्यायासन के समक्ष भेज दिया गया"।

इसके समर्थन में कि अनेक अभियुक्तों के बयान देने पर धारा २७ लागू नहीं होती पोशाकी वि० राज्य १९५३ इलाहाबाद ५२६ जिसमें पुत्तू वि० सम्राट ए० आई० आर० १९४५, २३५ का अनुसरण हुआ या अभिदिष्ट हुआ किंतु विचार करने पर प्रतीत होता है कि उपर्युक्त प्रमाण इसमें लागू नहीं होता।

पोशाकी के मुकदमे में निर्णय हुआ था कि बयान के बाद वह वस्तु प्राप्त की जानी चाहिए ऐसा नहीं कि वस्तुएँ लगातार प्राप्त की जाँय। उसमें २ अभियुक्तों ने एक साथ बयान दिया था और इसे धारा २७ के अंतर्गत नहीं माना गया था। किंतु पोशाकी वाला प्रमाण इसमें लागू नहीं होता। उसमें वस्तुएँ दो बार में प्राप्त की गई थीं एक बार एक अभियुक्त के साथ और दूसरी बार दूसरे अभियुक्त के साथ में और इसके लिये कोई संदेह नहीं कि जब पुलिस पहले से ही उस वस्तु के बारे में जानकारी रखती है तो धारा २७ के अंतर्गत यह नहीं कहा जा सकता कि दूसरे अभियुक्त के बतलाने पर वह वस्तु प्राप्त की गई। ए० आई० आर० १९५६ सर्वोच्च न्यायालय २१७ में यही बात स्पष्ट रूप से कह दी गई थी कि ऐसी परिस्थिति में धारा २७ लागू नहीं होती।

ए० आई० आर० १९४५ अवध २३५ में जो एक साथ दिए गये बयान को नहीं माना गया था तो उसमें परिस्थिति यह थी कि यह ठीक ठीक पता ही नहीं चलता था कि प्रत्येक अभियुक्त ने क्या बयान दिया। केवल अस्पष्टता के कारण उसे धारा २७ के अंतर्गत नहीं माना गया था। और ऐसा निर्णय ठीक भी था क्योंकि धारा २७ अपने पहले वाली दो धाराओं के अपवाद स्वरूप है और इसीलिए इसकी व्याख्या बहुत कड़ाई से करनी चाहिए और देखना चाहिए कि परिस्थिति ठीक ठीक धारा २७ के अंतर्गत आती है कि नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ए० आई० आर० १९४५ अवध २३५ में धारा २७ में प्रयुक्त शब्द 'एक व्यक्ति' (ए परसन) के संबंध में उसे एकवचन का सूचक माना गया था किंतु उसमें विद्वान् न्यायाधीशों का ध्यान सामान्य वाक्यांश अधिनियम (जेनरल क्लाजेज ऐक्ट) की धारा १३ की ओर नहीं दिलाया गया। इस अधिनियम की धारा १३ में स्पष्ट दिया हुआ है कि यदि प्रसंग से कोई विरुद्ध बात न आती हो तो एकवचन में बहुवचन और बहुवचन में एक वचन संमिलित होता है।

अपीलकर्ता के विद्वान् वकील ने ए० आई० आर० १९३२ कलकत्ता २६७ का अभिदेश किया किंतु वह रूलिंग इसमें लागू नहीं हो सकती क्योंकि उस मुकदमे में अभियुक्त ने जो बयान दिया था वह बँदी होने के पहले ही दे दिया था जब कि धारा २७ का अर्थ होता है कि ऐसा बयान पुलिस की अभिरक्षा में होने पर दिया जाय। धारा अपवादस्वरूप है इसलिए जब तक इसमें दी गई पूरी शर्तों का पालन नहीं हो जाता, यह धारा लागू नहीं हो सकती।

अतः ए० आई० आर० १९३२ कलकत्ता २६७ ए० आई० आर० १९४२ कलकत्ता ५९३ का निर्णय मान्य है जिसमें कहा गया है कि धारा २७ के अंतर्गत अनेक बयान प्रतिग्राह्य हो सकते हैं किंतु प्रतिबंध है कि अन्य शर्तों का पालन ठीक ठीक होता हो। साथ ही एक साथ बयान देना असंभव नहीं है जैसे यदि अनेक अभियुक्त एक कागज पर लिखकर और हस्ताक्षर करके देते हैं या एक साथ ही शब्दों का उच्चारण भी कर सकते हैं और यदि ऐसी परिस्थिति है तो उनका बयान धा० २७ की अन्य शर्तों को पूरा करने पर प्रतिग्राह्य हो सकता है। यह बात दूसरी है कि यदि अभियुक्तों ने बयान आगे पीछे दिया है और अगले बयान के आधार पर कोई वस्तु प्राप्त कर ली जाती है तो पिछला बयान धारा २७ में नहीं आ सकता कारण कि अधिक से अधिक पिछले बयान के आधार पर वही वस्तु पुनः प्राप्त की जा सकती है। धारा २७ का अभिप्राय वस्तु की प्राप्ति (डिस्कवरी) से है न कि पुनर्प्राप्ति (रीडिस्कवरी) से, इसलिए पिछला बयान धारा २७ में नहीं आता।

अतः यह तथ्य प्रत्येक मुकदमें की विशेष परिस्थित पर निर्भर करता है कि बयान एक साथ दिया गया या आगे पीछे और इसका निर्णय परिस्थिति के अनुसार भिन्न भिन्न हो सकता है।

इस मुकदमें में भी यह ठीक ठीक पता नहीं चलता कि बयान एक साथ दिया गया या आगे पीछे। प्रदर्श ३ पर इस बयान का उल्लेख है जो केवल उनके कथन का सारांश है। इस न्यायालय द्वारा तथा अन्य न्यायालयों द्वारा कई बार चेतावनी दी गई कि अन्वेषण अधिकारी ऐसे बयान ठीक ठीक उन्हीं के शब्दों में लिखें किंतु ऐसा होता नहीं। कुछ भी हो किसी नियम के पालन की कड़ाई उसके पालन की अपेक्षा उसके उल्लंघन से ही आँकी जा सकती है।

इस विषय पर अन्य साक्षी भी भिन्न भिन्न बात कहते हैं और अभियोजन ने एक स्थल पर यह दिखलाने का प्रयत्न किया है कि पहले नाथू अपीलकर्ता ने गड़े हुए हाथ और सिर के बारे में बतलाया और तब उसके बाद शेष दोनों अभियुक्तों ने। किंतु प्रतीत होता है कि बयान के एक साथ देने और आगे पीछे देने में जो अंतर पड़ सकता है उसी से बचने के लिये ऐसी बात बहुत बाद में चलकर कही गई। अन्वीक्षा न्यायालय में इस संबंध में ऐसी बात नहीं कही गई थी।

विद्वान् सत्र न्यायाधीश का विचार था कि 'केस डायरी' में नाथू का बयान पहले लिखा गया था इसलिए ज्ञात होता है कि नाथू ने पहले बयान दिया किंतु 'केस डायरी' के इस क्रम से ऐसा निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता।

नाथू की दोषसिद्धि दंड संहिता की धारा २०१ के अंतर्गत हुई है। धारा २०१ का अभिप्राय है कि अभियुक्त जानता हो कि कोई अपराध किया गया है और यह जानकर वह अपराध के साक्ष्य को छिपाने का प्रयत्न करता हो। यह बात नहीं है। नाथू ने केवल यही बयान दिया है कि:—

"चलो नदी के किनारे मुँह हाथ गड़ा हैं, दें।" इससे यह प्रतीत नहीं होता कि नदी के किनारे मुँह हाथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैसे गड़ा या किसने गाड़ा। अधिक से अधिक इसका अभिप्राय केवल इतना ही हो सकता है कि उसने उस स्थान पर मुँह और हाथ का होना बतलाया। धारा के अंतर्गत इसके आगे यह नहीं पता चलता कि उसने मुँह और हाथ को छिपाया था। धारा २०१ के अंतर्गत केवल इतनी ही बात से वह अपराधी सिद्ध नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त इस विषय पर कोई अन्य साक्ष्य नहीं है।

अपील तद्नुसार स्वीकार की जाती है दोषसिद्धि और दंडादेश निराकृत किया जाता है और अभियुक्त उन्मुक्त किया जाता है। यदि किसी अन्य अपराध के लिये उसकी आवश्यकता न हो तो निर्देश है कि वह स्वतंत्र कर दिया जाय।

—अपील स्वीकृत

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ इला० उच्च न्या० ११७

(लखनऊ न्यायासन)

बी० मुकर्जी और रणधीर सिंह न्यायमूर्तिगण

सोमेश्वर दयाल तथा अन्य — अपीलकर्ता गण

वि०

लालमन शाह की विधवा तथा अन्य विरोधी

खेरी के मुंसिफ के आदेश दिनांक २८-११-१९५० से प्रार्थनापत्र सं० १०।१९५१ दिनांक ३१-१०-१९५७

व्यवहार प्रक्रिया संहिता (१९०८) धा० १४८, आ०.२० नि० ३ और ६—विक्रय संविदा के यथावत् पालन की डिग्री की अंतर्वस्तु—समय बढ़ाने में न्यायालय का अधिकार (विशिष्ट साहाय्य अधिनियम (१८७७) धारा ३५)

न्यायमूर्ति मुकर्जी—

वादी ने प्रतिवादी के विरुद्ध विक्रय संविदा पालन के लिये एक वाद निवेशित किया था जिसमें १६ नवंबर १९४४ को वादी के पक्ष में आज्ञप्ति पारित की गई। डिग्री में कहा गया कि वादी को एक महीने का समय दिया जाता है कि वह २७५ रु० जमा करे और प्रतिवादी आज की तिथि से तीन महीने के भीतर वादी के पक्ष में विक्रय विलेख का निष्पादन कर देगा और यदि प्रतिवादी ने विलेख का निष्पादन इस निर्धारित अवधि के भीतर न किया तो वादी को अधिकार होगा कि न्यायालय द्वारा वह अपने पक्ष में विलेख का निष्पादन करा ले। निष्पादन आदि का पूरा व्यय वादी पर रहेगा।

इस आदेश के विरुद्ध प्रतिवादी ने अपील निवेशित किया। अपील में इसी निर्णय को मान लिया गया। अपील का निर्णय दिनांक २३ फरवरी १९४५ को हुआ और वादी ने २३ मार्च १९४५ को २७५ रु० जमा किया। रुपया जमा करने पर भी प्रतिवादियों ने जब विक्रय विलेख का निष्पादन नहीं किया तो वादी ने निष्पादन न्यायालय में एक प्रार्थनापत्र दिया कि वह प्रतिवादी द्वारा विक्रय विलेख का निष्पादन करा दे।

प्रतिवादी ने कतिपय आधारों पर इस प्रार्थनापत्र का विरोध किया जिसमें से एक प्रमुख आधार यह था कि मुंसिफ ने १६-११-१९४४ से एक महीना के भीतर ही रुपया जमा करने को कहा था और यतः रुपया एक महीने के भीतर नहीं जमा किया गया इसलिए अब उसके आधार पर संविदा के यथावत् पालन की कार्यवाही नहीं की जा सकती। निष्पादन न्यायालय भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचा कि प्रतिवादी को अब विक्रय विलेख के निष्पादन के लिये बाध्य नहीं किया जा सकता और इसलिए उसने प्रार्थनापत्र उत्सर्जित कर दिया।

अपील पर मामला इस न्यायालय में आया और माननीय न्यायमूर्ति ने भी यही निर्णय दिया निष्पादन न्यायालय ने निष्पादन प्रार्थनापत्र का उत्सर्जन ठीक ही किया है क्योंकि मुंसिफ के न्यायालय में समय बढ़ाने का कोई प्रार्थनापत्र नहीं दिया गया और मुंसिफ द्वारा निर्धारित समय को निष्पादक न्यायालय बढ़ा नहीं सकता।

इसके बाद वादी ने मुंसिफ के न्यायालय में समय बढ़ाने का प्रार्थनापत्र दिया। वादी का कहना था कि जब मुंसिफ के आदेश के विरुद्ध अपील हो गई तो मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपील के निर्णय की प्रतीक्षा करता रहा कि कदाचित् अपील से यदि निर्णय बदल गया तो रुपया जमा करने की परिस्थिति आएगी ही नहीं और जब अपील के न्यायालय ने निर्णय दे दिया तो रुपया उस निर्णय की तिथि से एक महीना के भीतर ही जमा कर दिया गया।

मुंसिफ ने इसे मान लिया और समय बढ़ा दिया। इसी आदेश के विरुद्ध यह पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र है। इसमें कहा गया कि मुंसिफ को समय बढ़ाने का अधिक्षेत्र नहीं था। इसका कारण बतलाया गया कि मुंसिफ ने समय व्य० प्र० सं० की धारा १४८ में बढ़ाया और धारा १४८ इसमें लागू नहीं होती। धारा १४८ का कहना है कि इस संहिता (कोड) द्वारा निर्धारित काम को करने के लिये न्यायालय जब समय निर्धारित करे तो उसे अधिकार होगा कि वह समय को बढ़ाता चले। विद्वान् मुंसिफ ने जो समय बढ़ाया उसके लिये संहिता में कुछ दिया ही नहीं है। संहिता में संविदा के यथावत् पालन के लिये कोई नियम नहीं दिया गया है न तो उसके लिये कोई निर्धारित रूप ही है। जब कि अग्रक्रय (प्रीएमशन) की डिग्री के लिये संहिता के आ० २० नि० १४ में दिया गया है कि यह किस रूप में हो।

यथावत् पालन (स्पेसिफिक परफार्मेंस) की डिग्री का सामान्य स्वरूप इतना ही होना चाहिए कि वादी को उसका अधिकार है। उसके लिये समय का निर्धारित करना कि उस बीच रुपया जमा किया जाय या समय निर्धारित करना कि उस अवधि तक विक्रय विलेख का निष्पादन हो जाय न तो व्यवहार प्रक्रिया संहिता में कहीं दिया हुआ है और न तो कहीं विशिष्ट साहाय्य अधिनियम में ही दिया है। भारतवर्ष में यथावत् पालन के लिये समय निर्धारित कर दिया जाता है किंतु यह समय निर्धारण सुविधा की दृष्टि से है न कि संहिता के अंतर्गत किसी उपबंध के कारण।

विशिष्ट साहाय्य अधिनियम की धारा ३५ में यह अवश्य दिया हुआ है कि जिस पक्ष के लाभ के लिये डिग्री पारित हुई है वह यदि चूक (डिफाल्ट) करता है तो उसका विपक्षी या तो उस संविदा को ही समाप्त करने का वाद निवेशित कर सकता है या न्यायालय में प्रार्थनापत्र दे सकता है कि वह अपना अपनी डिग्री काट दे।

ए० आई० आर० १९२३ मद्रास २८४ में यही प्रश्न विचाराधीन था कि संविदा के यथावत् पालन की आज्ञप्ति में यदि समय निर्धारित किया गया है तो उसे बढ़ाया जा सकता है कि नहीं। उसमें विद्वान् न्यायाधीश ने निर्णय दिया था कि समय बढ़ाया जा सकता है क्योंकि जबतक रुपया जमा नहीं कर दिया जाता और विक्रय का विलेख लिख नहीं जाता तब तक, वह डिग्री अंतिम डिग्री नहीं होती। अतः समय प्रदान करनेवाली डिग्री केवल आरंभिक (प्रेलिमिनरी) डिग्री है और इसलिए समय बढ़ाया जा सकता है।

न्यायमूर्ति वालस ने कहा था कि संविदा के यथावत् पालन की डिग्री संविदा है और जैसे संविदा में यदि समय संविदा का तत्व न हो तो न्यायालय को समय बढ़ाने का अधिकार है उसी प्रकार न्यायालय ऐसी परिस्थिति में निर्धारित समय को बढ़ा सकता है।

विशिष्ट साहाय्य अधिनियम को धारा ३५ का भी उद्देश्य है कि चूक (डिफाल्ट) में जब तक संविदा प्रभावशून्य नहीं कर दी जाती या डिग्री काट नहीं दी जाती तब तक यथावत् पालन की डिग्री अस्तित्व में रहती है।

ए० आई० आर० १९४६ नागपुर २९ में वादी को संविदा के यथावत् पालन के लिये प्रतिफल का रुपया जमा करने के लिये समय निश्चित करने को आरंभिक डिग्री (प्रेलिमिनरी डिग्री) कहा गया था। किंतु यह विचार मान्य नहीं हो सकता। यह आदेश अंतिम डिग्री भी नहीं है कि न्यायालय समय बढ़ाने से रुक जाता है। यह आदेश एक संविदा की तरह है और जब तक संविदा का प्रवर्तन रोक नहीं दिया जाता यह चालू रहता है और समय बढ़ाया जा सकता है।

प्रार्थी की ओर से कहा गया कि यह एक डिग्री है और डिग्री के अनुबंधों में सिवा पुनर्विचार प्रार्थना के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या धा० १५२ के अधिकार के परिवर्तन नहीं किया जा सकता। यह कथन माना नहीं जा सकता, कारण कि व्यवहार प्रक्रिया संहिता में जो डिग्री की परिभाषा दी गई है उसका तात्पर्य है कि किसी विवादास्पद बात का न्यायालय द्वारा अंतिम निर्णय हो। यहाँ समय बढ़ाने की बात विवादास्पद नहीं थी इसलिए यह डिग्री नहीं हुई। यदि यह डिग्री नहीं है तो इसमें हेर फेरकिया जा सकता है। अग्रक्रय (प्रीएमशन) की डिग्री में कुछ अंतर होता है। वह आ० २० नि० १४ के अनुसार बनाई जाती है और उसमें रुपया देने के लिये समय निर्धारण का भी विधान है।

उस समय इस मुकदमे में यह बात विचाराधीन थी कि निष्पादन न्यायालय को समय बढ़ाने का अधिकार है कि नहीं। यहाँ अन्वीक्षा न्यायालय ने समय बढ़ाया है। यदि निष्पादन न्यायालय ने निर्णय दे दिया है तो उसका प्रभाव ऐसे निर्णय पर नहीं पड़ेगा। पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र उत्सर्जित किया जाता है। पक्ष अपने अपने परिव्यय को सहन करेंगे।

पुनरीक्षण उत्सर्जित

——

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ इलाहाबाद उच्च न्यायालय ११६

ओ० एच० मूथम मुख्य न्यायाधिपति और न्यायमूर्ति ए० पी० श्रीवास्तव।

ब्रह्मादीन तथा अन्य — अपीलकर्ता

वि०

चंद्रशेखर शुक्ल — उत्तरवादी

प्रकीर्णक मुकदमा सं० ३४७-१९५५ दिनांक १५-११-१९५७।

विधि व्यवसाय अधिनियम (१८७९), धा० १३—दुर्व्यवहार—अउत्तरदायित्वपूर्ण पहचान—

मुख्य न्यायाधिपति ओ० एच० मूथम—

१९४५ में कानपुर के विकास निकाय ने कुछ मकानों को लेना चाहा। उसमें सूरज प्रसाद और ब्रह्मादीन जो दो भाई थे उनका भी मकान आया। मकान गिराने का इन लोगों ने विरोध किया और कई प्रार्थनापत्र भी दिए। अंत में प्रार्थनापत्र अस्वीकार हुआ और मकान ले लिया गया। मकान का प्रतिकर ६२९२ रु० ९ आना जिला न्यायाधीश के यहाँ जमा कर दिया गया। यह रुपया प्रतिकर का था जो इन मकान मालिकों को दिया जाता।

एक दिन एक व्यक्ति वकील के यहाँ कचहरी आया और उसने अपना नाम ब्रह्मादीन बतलाया। उसने कहा कि मेरा भाई सूरज प्रसाद और उनकी स्त्री मर गई है और मुझे जिला न्यायाधीश के यहाँ से प्रतिकर (कंपेंसेशन) का रुपया दिला दिया जाय। वकील ने शपथपत्र बनाया और उसमें उस व्यक्ति ने कहा कि मैं अमुक मुहल्ले का रहनेवाला हूँ और हमारा भाई और भाई की स्त्री दोनों मर चुके हैं इसलिए केवल मैं ही संपत्ति का अधिकारी हूँ और वह प्रतिकर मुझे मिलना चाहिए।

वकील ने उस पर लिखा—

'ब्रह्मादीन की पहचान किया।''

वकील ने रुपया जिला न्यायाधीश के यहाँ से लेकर उस व्यक्ति को दे दिया। बाद में पता चला कि वह व्यक्ति ब्रह्मादीन नहीं था किंतु एक दूसरा व्यक्ति था।

वकील ने यह इनकार नहीं किया कि वह ब्रह्मादीन नहीं था। उनका कहना था कि सद्विचार से मैंने काम किया। जिस व्यक्ति ने वकील से यह बात बतलाई उसके बारे में वकील ने स्वतंत्र जाँच नहीं की कि वास्तव में वह व्यक्ति ब्रह्मादीन था कि नहीं।

यहाँ पर तर्क उपस्थित किया गया है कि यह काम वकील ने केवल प्रमाद (नेगलिजेंस) के कारण किया और प्रमाद चाहे कितना हूँ बड़ा हो उसे व्यावसायिक दुर्व्यवहार नहीं कहा जा सकता।

पहचान की कार्यवाही बड़ी ही उत्तरदायित्वपूर्ण होती है फिर भी प्रायः ऐसे व्यक्ति आते हैं जिनको वकील व्यक्तिगत रूप से नहीं पहचानते। यदि ऐसी बात हो तो इसके लिये व्य० प्र० सं० के आ० १९ नि० ११ ए० में दिया गया है कि वकील पहचानने के आधार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की चर्चा करके अपने को सुरक्षित रख सकते हैं और इसके बाद न्यायालय इसपर विचार करेगा कि पहचान की ऐसी कार्यवाही पर्याप्त है कि नहीं।

यहाँ वकील ने यह सब कुछ नहीं किया। उन्होंने जो लिखा कि ब्रह्मादीन की पहचान किया उससे यही प्रतीत होता है कि वे उसे व्यक्तिगत रूप से पहचानते थे।

इस मुकदमे में घटना १९४८ में घटी। इस वकील ने वही किया जो साधारणतया वकील लोग किया करते हैं। ऐसी परिस्थिति में वकील को कोई दंड देना ठीक नहीं समझा जाता किंतु इस आचरण की भर्त्सना की जाती है और पहचान के ऐसे गलत मुकदमे जब भविष्य में आवेंगे तो उनमें नम्रता का व्यवहार नहीं किया जायगा।

आदेश तद्नुसार

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इ० उ० न्या० १२०

एम० सी० देसाई और नसीरुल्ला बेग न्यायमूर्तिगण

न्यू सिंघल दाल मिल — प्रतिवादी प्रार्थी

वि०

फर्म शिवप्रसाद जयंतीप्रसाद — वादी विपक्षी

आगरा के लघुवाद न्यायालय के न्यायाधीश की डिग्री दिनांक २७-४-१९५७ के विरुद्ध व्यवहार पुनरीक्षण सं० ८६७।१९५७ दिनांक १-११-१९५७

(अ) प्रांतीय लघुवाद न्यायालय अधिनियम (१८८७), धारा २५ जिसका संशोधन उ० प्र० अधिनियम १७,१९५७ द्वारा हुआ है उसकी प्रयोज्यता (अप्लिकेबिलिटी)—परिनियम की व्याख्या—अतीत प्रभावी होने का लक्षण।

(ब) उ० प्र० सामान्य उपवाक्य अधिनियम (यू० पी० जेनरल क्लाजेज ऐक्ट १९०४ का १) की धारा ६—संशोधन में इस धारा का लागू होना—न्यायमूर्ति एम० सी० देसाई—

लघुवाद न्यायालय द्वारा पारित एक डिग्री के पुनरीक्षण के लिये लघुवाद न्यायालय की धारा २५ के अंतर्गत यह प्रार्थनापत्र दिया गया है। एक वाद सन् १९५६ में निवेशित हुआ और उसमें दिनांक २७-४-१९५७ को लघुवाद न्यायालय द्वारा एक डिग्री पारित हुई। उस समय यही नियम था कि ऐसे मुकदमों में उच्च न्यायालय मुकदमों को मँगाकर पुनरीक्षण कर सकता था।

उ० प्र० विधान मंडल ने उ० प्र० संशोधन अधिनियम सं० १७ १९५७ द्वारा उपर्युक्त धारा २५ का संशोधन किया। इस संशोधन द्वारा 'उच्च न्यायालय' के स्थान पर 'जिला न्यायाधीश' करके इसमें आवश्यक परिवर्तन किया गया। राष्ट्रपति ने ३०-५-१९५७ को इसपर स्वीकृति दी और ४-६-१९५७ को यह सरकारी राजपत्र में प्रकाशित हुआ। यह तत्क्षण लागू होने को था इसलिए ४-६-१९५७ को यह लागू हुआ। इस न्यायालय में यह प्रार्थनापत्र २७-७-१९५७ को निवेशित हुआ और इसपर विपक्षी ने एक आरंभिक आपत्ति की कि यह प्रार्थनापत्र संधार्य नहीं हो सकता।

आपत्ति थी कि ४-६-१९५७ के बाद उच्च न्यायालय में यह प्रार्थनापत्र नहीं दिया जा सकता। इसे संशोधन के अनुसार जिला न्यायाधीश के न्यायालय में देना चाहिए था। इसके उत्तर में प्रार्थी का कहना था कि उक्त संशोधन के लागू होने के पहले मैंने वाद निवेशित किया था और उसकी डिग्री भी संशोधन के लागू होने के पहले ही पारित हुई इसलिए संशोधन लागू नहीं होता और हमारा अधिकार उच्च न्यायालय में पुनरीक्षण निवेशित करने का यथावत् है।

इस प्रकार की डिग्री में पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र किस न्यायालय में निवेशित होगा इसके लिये संशोधन में कुछ नहीं लिखा है। संशोधन केवल इतना ही कहता है कि यह तुरत लागू हो जायगा।

अधिनियम जो ४-६-१९५७ को लागू हुआ उसका अभिप्राय केवल इतना ही है इस तिथि के बाद जिला न्यायाधीश को नीचे के न्यायालय से अभिलेख मँगा कर पुनरीक्षण करने का अधिकार है। इसमें यह नहीं है कि पहले के निवेशित या निर्णय किए हुए वादों में यह लागू नहीं होगा। २७-७-५७ को केवल जिला न्याया-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धीश को ही पुनरीक्षण का अधिकार है। इस न्यायालय को पहले इस प्रकार का अधिकार था किंतु अब वह ले लिया गया है।

इस प्रश्न पर विधि सामान्य वाक्यांश अधिनियम धारा ६ है। किंतु धारा ६ के लिये कहा गया है कि यह विधि के निरसन (रिपील) से संबंध रखती है संशोधन (अमेंडमेंट) से नहीं। निरसन (रिपील) को स्पष्ट किया गया है कि जब किसी विधि का केवल निरसन होता है और उसके स्थान पर किसी नए विधि का सृजन नहीं होता तो उसे निरसन कहेंगे और केवल इसी के लिये उपर्युक्त अधिनियम की धारा ६ लागू होती है। यहाँ यतः निरसन के बाद नया विधान बनाया गया है इसलिए कहा गया है कि धारा ६ के अनुबंध इसमें लागू नहीं होंगे। इसके लिये ए० आई० आर० १९३६ इलाहाबाद ६३ में मुख्य न्यायाधिपति सुलेमान का कथन उद्धृत किया गया है।

किंतु संमानपूर्वक इस कथन के मानने में असमर्थता प्रकट की जाती है। यों तो धारा ६ में निरसन के लिये दिया हुआ है कि इसका प्रभाव क्या होगा किंतु संशोधन के लिये कोई अन्य उपबंध है ही नहीं। किसी विधि के निरसन के बाद प्रायः नया विधान बनाया ही जाता है। निरसन और संशोधन दोनों एक ही हैं; जब उसमें परिवर्तन थोड़ा किया जाता है तो उसे संशोधन कहते हैं और जब परिवर्तन अधिक रहता है तो उसे निरसन कहते हैं, दोनों का आधार एक है। अतः यह कहना ठीक नहीं है कि जब निरसन के बाद नया विधि बन जाता है तो धारा ६ लागू नहीं होती और उसके लिये नए विधि का ही उपबंध लागू होगा। ए० आई० आर० १९५६ सर्वोच्च न्यायालय ७७ में स्पष्ट कह दिया गया है कि जब निरसन के पश्चात् पुनः अधिनियमन होता है उसमें धारा ६ लागू होती है। ए० आई० आर० १९३६ इलाहाबाद जिसका अभिदेश ऊपर हो चुका है उससे सर्वोच्च न्यायालय ने ए० आई० आर० १९५५ सर्वोच्च-न्यायालय ८४ में विरुद्ध मत प्रकट किया है। सर्वोच्च-न्यायालय का इसमें निर्णय था कि संशोधन का पिछले व्यवहारों पर क्या प्रभाव पड़ेगा इसका निर्णय सामान्य वाक्यांश अधिनियम की धारा ६ के आधार पर होगा। तात्पर्य यह कि इस मामले में भी धारा ६ लागू होती है और उसी के अनुसार इस प्रश्न का निर्णय करना है।

धारा ६ में है कि निरसन की तिथि के पहले के 'अधिकारों या विशेषाधिकारों' (राइट्स ऐंड प्रिविलेजेज) पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, उनके लिये उपाय यथावत् रहेंगे इत्यादि। अब यहाँ देखना है कि पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र देना क्या धारा ६ के अंतर्गत 'अधिकार' में आता है। पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र का देना कोई अधिकार नहीं है। अपील की स्थिति पुनरीक्षण से भिन्न होती है। अपील का अधिकार परिनियम द्वारा दिया हुआ है, पुनरीक्षण का अधिकार परिनियम द्वारा नहीं दिया गया है। इस कारण अपील करने पर न्यायालय उसकी सुनवाई से इनकार नहीं कर सकता जब कि पुनरीक्षण में यह जानते हुए कि अनियमितता बरती गई है न्यायालय कह सकता है कि आदेश में कोई परिवर्तन नहीं किया जायगा क्योंकि अनियमितता के रहते हुए भी पर्याप्त न्याय हुआ है।

यों तो न्यायालय को पुनरीक्षण का अधिकार है किंतु इस अधिकार के साथ उसका यह कर्तव्य (ड्यूटी) नहीं है। यदि यह कर्तव्य नहीं है तो तत्संबंधी अधिकार भी नहीं हो सकता।

धारा २५ का व्यवहार प्रक्रिया संहिता की धारा ११५ के अंतर्गत पुनरीक्षण का अधिकार निहित अधिकार (वेस्टेड राइट) नहीं है। इसीलिए इन दोनों धाराओं में किसी पक्ष की चर्चा नहीं है न तो इसमें अवधि ही निर्धारित है। केवल न्यायालय को अधिकार है कि वह पुनरीक्षण कर ले किंतु यह किसी पक्ष का अधिकार नहीं है कि वह न्यायालय को पुनरीक्षण के लिये बाध्य कर सके। न्यायालय का यह अधिकार भी नीचे के न्यायालयों के काम का पुनरीक्षण करने के लिये दिया गया है कि देख लिया जाय कि नीचे के न्यायालय ठीक ढंग से काम कर रहे हैं कि नहीं। यह किसी पक्ष का अधिकार नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके विरुद्ध मत के समर्थन में कुछ रूलिंग दी गई है कि जैसे अपील करने का अधिकार होता है उसी प्रकार पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र निवेशित करने का भी अधिकार होता है। ए० आई० आर० १९३२ प्रिवी कौंसिल १६५ का अभिदेश किया गया। किंतु उस मुकदमें में जो ऐसी बात कही गई थी वह नितांत भिन्न प्रसंग में कही गई थी। वहाँ यह बात विचाराधीन थी कि अवधि अधिनियम के अनुच्छेद १८२ के अंतर्गत अवधि किस तिथि से प्रारंभ होती है। उसमें कहा गया कि यों तो अनुच्छेद १८२ में केवल 'अपील' शब्द प्रयुक्त है किंतु इसमें पुनरीक्षण भी आता है। दूसरे शब्दों में उपर्युक्त मुकदमें में निर्णय हुआ था कि अपील के अंतिम आदेश की तिथि से अवधि आरंभ होती है और इस प्रकार पुनरीक्षण के अंतिम आदेश की भी तिथि से अवधि का आरंभ होगा। वहाँ अपील और पुनरीक्षण दोनों की प्रकृति की बात विचाराधीन नहीं थी वरन् दोनों में पारित अंतिम आदेश का क्या प्रभाव होगा यह बात विचाराधीन थी। और स्पष्ट शब्दों में अपील और पुनरीक्षण के बाद एक समान हो जाते हैं, इसके पहले तो उनमें अधिकार संबंधी अंतर रहता ही है और यह बात उपर्युक्त रूलिंग में विचाराधीन थी ही नहीं इसलिए वह इस मुकदमें की परिस्थिति में लागू नहीं होती। इसी प्रकार अन्य रूलिंग भी अंतर रखती हैं और इसमें लागू नहीं हो सकतीं।

न्यायालय तो सबके लिये समान रूप से खुला रहता है। सभी को अधिकार है कि वह जाकर प्रार्थनापत्र दे सकता है किंतु ऐसे अधिकार को अधिकार तब तक नहीं कहा जा सकता जब तक कि दूसरे का इस संबंध में कर्तव्य न हो। यहाँ न्यायालय का ऐसा कर्तव्य नहीं है इसलिए धारा २५ में पक्ष का तत्संबंधी अधिकार भी नहीं है।

यदि पक्ष का पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र देने का अधिकार हो भी तो वह यह नहीं कह सकता कि उच्च न्यायालय में ही देगा। संशोधन के बाद यह अधिकार अब जिला न्यायाधीश का हो गया है। दूसरे, धारा ६ के अंतर्गत यह कोई ऐसा मुकदमा नहीं है जो चल रहा हो और इसलिए संशोधन के पहले का ही अधिकार लागू हो। इसमें निर्णय हो चुका है। अतः वह अधिकार यदि हो भी तो लागू नहीं हो सकता। यह विशेषाधिकार (प्रिविलिज) भी नहीं है।

अतः संशोधन के बाद पुनरीक्षण का अधिकार केवल जिला न्यायाधीश को है। वह अधिनियम अतीत प्रभावी नहीं है और जिला न्यायाधीश संशोधन अधिनियम के लागू होने के पहले के पारित आदेश का भी पुनरीक्षण कर सकते हैं।

प्रार्थनापत्र अस्वीकार किया जाता है।

—प्रार्थनापत्र अस्वीकृत

———

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ इलाहाबाद उच्च न्यायालय १२२

आर० एन गुर्टू एवं डी० एन० राय न्यायमूर्तिगण (१२-२-५८)

शोभनाथ — अपीलकर्ता

वि०

अंबिका प्रसाद तथा अन्य — उत्तरवादीगण

बनारस के अतिरिक्त व्यवहार न्यायाधीश के निर्णय दिनांक १७-३-१९५२ से द्वितीय अपील सं० ६५२।१९५२

भारतीय संविधान, अनुच्छेद १३ और १९ (१) एफ० अतीत प्रभावी नहीं हैं—अग्रक्रय (प्रीएम्शन) का वाद संविधान के लागू होने की तिथि को यदि चल रहा था तो इसकी डिग्री में संविधान का कुछ प्रभाव नहीं पड़ेगा—मुहम्मदन विधि में अग्रक्रय का अधिकार कब पैदा होता है और कब समाप्त होता है—

न्यायमूर्ति आर० एन० गुर्टू—

प्रतिवादी सं० २ ने प्रतिवादी सं० १ शोभनाथ के पक्ष में २१-६ ४९ को एक विक्रय विलेख का निष्पादन किया था। इसी के विरुद्ध वादी ने अग्रक्रय वाद निवेशित किया था। इस अग्रक्रय वाद का विरोध कई आधारों पर किया गया है। अन्वीक्षा न्यायालय ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभी वाद पदों का निर्णय वादी के पक्ष में दिया किंतु अंत में वाद इसलिए उत्सर्जित कर दिया कि मुहम्मदन विधि के अनुसार 'तलब' नहीं पूरा किया गया।

अपील करने पर अपील के न्यायालय ने निर्णय दिया कि 'तलब' ठीक ढंग से पूरा हुआ है और अपील स्वीकार की गई। इसमें निर्णय दिया गया कि वादी १९४० रु० प्रतिवादी सं० १ को दे और ६६० रु० प्रतिवादी सं० २ को दे और यदि वादी ने रुपया दे दिया तो वाद की डिग्री हो गई हुई मान ली जायगी और यदि नहीं दिया तो वाद उत्सर्जित हो जायगा।

प्रतिवादी जो हस्तांतरिती है उसने द्वितीय अपील निवेशित की है। यह अपील दो प्रमुख आधारों पर आधारित है। एक यह कि संविधान के लागू होने पर अग्रक्रय का विधि प्रभावशून्य हो गया इसलिए वाद उत्सर्जित हो जाना चाहिए। दूसरे, सारा रुपया प्रतिवादी हस्तांतरिती को ही मिलना चाहिये था दूसरे प्रतिवादी को नहीं।

दूसरी आपत्ति के विषय में उत्तरवादी के विद्वान वकील ने मान लिया कि सारा २६०० रु० इस अपील कर्ता को ही मिलना चाहिए। इसलिए इस विषय पर अब कोई विवाद नहीं है।

पहली आपत्ति महत्वपूर्ण है। इस विषय में कहा गया है कि संविधान के अनुच्छेद १९ (१) एफ० में है कि सबको संपत्ति की प्राप्ति, धारण और निर्वर्तन का अधिकार होगा और यतः अग्रक्रय का अधिकार संविधान के उपर्युक्त मौलिक अधिकार के विरुद्ध है इसलिए यह प्रभावशून्य है। कहा गया कि यों तो संविधान अतीत प्रभावी नहीं है किंतु मुहम्मदन विधि के अनुसार अग्रक्रय के वाद में डिग्री तभी पारित हो सकती है जब कि डिग्री की तिथि को भी वादी का अग्रक्रय अधिकार ज्यों का त्यों हो। यहाँ जिस दिन डिग्री पारित हुई उस दिन संविधान लागू हो चुका था और उसके लागू होने से अग्रक्रयाधिकार प्रभावशून्य हो गया।

इसके समर्थन में दो रूलिंग्स भी दी गई, ए० आई० आर० १९५४ राजस्थान २३१ और ए० आई० आर० १९५५ हैदराबाद १२०। इन दोनों रूलिंग्स में यह कहा गया था कि अग्रक्रय का अधिकार विक्री के दिन और वाद निवेशित करने के दिन तक ही रहना अनिवार्य नहीं है वरन् इसे डिग्री पारित होने की तिथि को भी रहना आवश्यक है। और इसलिए संविधान के लागू होने की तिथि को अग्रक्रय के विचाराधीन वाद नहीं चल सकते।

यहाँ विचारणीय प्रश्न केवल यही है कि जब संविधान अतीतप्रभावी नहीं है तो वादी का वह अधिकार जो संविधान के पूर्व ही प्राप्त हुआ और संविधान के लागू होने के पहले ही जिस अधिकार के लिये वाद निवेशित किया गया वह संविधान के लागू होने पर वाद समाप्त हो जायगा कि नहीं।

अग्रक्रय का अधिकार निम्नलिखित ३ श्रेणी के व्यक्तियों को प्राप्त होता है। १—'शफी-ए-शरीक अर्थात् जो उस संपत्ति का सह भागीदार होता है २—'शफी-ए-खलीत' अर्थात् जो उस संपत्ति का लाभ लेता है जैसे रास्ते का अधिकार इत्यादि और ३—'शफी-ए-जार' जब वह उससे संबद्ध अचल संपत्ति का स्वामी होता है। ज्योंही कोई संपत्ति बेची गई और उपर्युक्त तीनों श्रेणी में से, किसी श्रेणी के व्यक्ति ने मुहम्मदन विधि के अनुसार 'तलब' किया कि अग्रक्रय का अधिकार पूरा हो जाता है। इसके बाद इस अधिकार का प्रयोग वह वाद द्वारा कर सकता है। अग्रक्रयाधिकार तब तक चलता रहता है जब तक कि डिग्री की तिथि को जिस अधिकार से उसने दावा किया था वह समाप्त न हो जाय या हस्तांतरिती डिग्री की तिथि को ऐसा अधिकार प्राप्त न कर ले जिससे वादी का अग्रक्रयाधिकार ही समाप्त हो जाय। मान लिया जाय कि उत्तराधिकार से या किसी अन्य प्रकार हस्तांतरिती भी उस संपत्ति का सह भागीदार हो जाता है तो वादी का अग्रक्रयाधिकार भी समाप्त हो जायगा। तात्पर्य यह कि उपर्युक्त परिस्थिति में वादी को अग्रक्रय का अधिकार प्राप्त होता है और साथ ही डिग्री के पहले तक उस अधिकार को निरर्थक करने का अधिकार हस्तांतरिती को भी प्राप्त है और वह इस प्रकार कि य तो वादी का अधिकार स्वतः समाप्त हो जाय या हस्तांतरिती को ऐसा अधिकार प्राप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जाय कि उससे वादी का अधिकार समाप्त हो जाय। सारांश यह है कि वादी को वाद निवेशित करने की तिथि को या डिग्री पारित होने की तिथि को किसी नए अधिकार को नहीं दिखलाना है उसे यही दिखलाना है कि उसे अधिकार है और वह अधिकार उपर्युक्त परिस्थितियों के अंतर्गत समाप्त नहीं हो गया।

इसलिए यदि संविधान अतीत प्रभावी नहीं है तो वह अग्रक्रय के इस अधिकार पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकता क्योंकि अधिकार संविधान के लागू होने के पहले ही आ चुका है।

हैदराबाद और राजस्थान न्यायालयों ने जिस विचार का अनुसरण किया वह था कि जब कि डिग्री के दिन अग्रक्रय विधि मर चुका था तो वादी डिग्री नहीं पा सकता था क्योंकि अग्रक्रय विधि के लिये एक आवश्यकता यह थी कि अग्रक्रयाधिकार डिग्री के दिन भी अस्तित्व में रहे। दूसरे शब्दों में दोनों न्यायालयों ने वादी के अग्रक्रय वाद को इसलिए मार डाला कि उसमें अग्रक्रय विधि के एक शर्त का पालन नहीं किया गया था जब कि साथ ही साथ निर्णय यह कहता है कि अग्रक्रय विधि (ला आफ प्रीएंपशन) अब है ही नहीं। तात्पर्य यह कि इन न्यायालयों के निर्णय के अनुसार यद्यपि डिग्री के दिन अग्रक्रय विधि मर चुका था फिर भी मुकदमे को मारने के लिये उपर्युक्त विधि का एक प्रतिबंध (वर्तमान अधिकार का) जो उस विधि के ही अंतर्गत था पुनः जीवित किया गया। यदि विधि का एक भाग पुनर्जीवित करके लागू किया जा सकता है तो कोई कारण नहीं कि पूरा विधि ही क्यों न पुनर्जीवित करके लागू किया जाय और जब विधि संपूर्णतः लागू किया जाता है तो मुकदमें को केवल उसी विधि के अंतर्गत ही असफल किया जा सकता है—वह विधि है कि यदि वादी के 'शफी' का अधिकार समाप्त हो जाय या हस्तांतरिती को ऐसा अधिकार प्राप्त हो जाय जिससे वादी का अग्रक्रयाधिकार नष्ट हो जाय। ऐसा नहीं हो सकता कि विधि संपूर्णतः मर जाय और उसके एक भाग को मुकदमें को असफल करने के लिये जीवित कर दिया जाय। संमानपूर्वक कहा जाता है कि उन दोनों न्यायालयों का निर्णय गलत था।

जब संविधान के लागू होने के पहले ही अग्रक्रयाधिकार प्राप्त हुआ और उसकी सभी शर्तों का पालन करते हुए वाद निवेशित हुआ तो डिग्री के पारित होने के पहले यदि संविधान लागू हो गया तो इसका कुछ प्रभाव नहीं पड़ेगा। यदि इसे भी प्रभावित करने लगे तो यह अतीतप्रभावी हो जायगा और निस्संदेह संविधान अतीत प्रभावी नहीं है। अग्रक्रयाधिकार का निर्णय अग्रक्रय विधि द्वारा ही करना चाहिए। जब कहा जाता है कि अग्रक्रय का सारा विधि मर चुका है तो अग्रक्रय के एक विधि को लाकर मुकदमा असफल नहीं किया जा सकता।

जब यहाँ यह निर्णय हो चुका है कि अग्रक्रय का वह विधि जो यहाँ लागू हो रहा है संविधान से प्रभावित नहीं है तो अब इसकी आवश्यकता नहीं है कि विचार किया जाय कि भारतीय संविधान के अंतर्गत वह उक्त विधि प्रभावशून्य है कि नहीं।

तद्नुसार अपील आंशिक रूप में स्वीकार की जाती है और नीचे के न्यायालय की डिग्री में परिवर्तन किया जाता है कि २६०० रु० पूरा धन केवल प्रतिवादी सं० १ को ही दिया जाय। रुपया जमा करने के लिये ३ महीने की अवधि आज के दिन से ६ महीना तक बढ़ा दी जाती है उभय पक्ष अनुपात के अनुसार परिव्यय सहन करेंगे।

अपील अंशतः स्वीकृत

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इला० उच्च न्या० १२४

एच० पी० अस्थाना और एस० एन० सहाय
न्यामूर्तिगण

मैमे शाह — प्रार्थी
वि०
राज्य — विपक्षी

आपराधिक पुनरीक्षण सं० १४३। १९५५, दिनांक २१-११-१९५७-दंड प्रक्रिया संहिता (१८९८) धा० २३७, २३६, ४२३, ५३७—आरोप दं० सं० की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारा ४५७ के अंतर्गत था और अन्वीक्षा न्यायालय ने अभियुक्त को इसी धारा के अंतर्गत दंड दिया था किंतु अपील करने पर अपील के न्यायालय ने दोष सिद्धि धारा ४५७ से बदल कर धारा दंड संहिता की धारा ४११ में की—इसकी वैधता—

न्यायमूर्ति एच० पी० अस्थाना—

इस न्यायालय के एकाकी न्यायाधीश ने पहले पुनरीक्षण की सुनवाई की थी किंतु उनके मतानुसार इसी न्यायालय के एकाकी न्यायाधीश के निर्णय के कारण जो ए० आई० आर० १९२६ इलाहाबाद ३३ में प्रतिवेदित है न्यायासन के निर्णय के लिये इसका अभिदेश आवश्यक था। उन्होंने इसीलिए इसका अभिदेश किया।

प्रार्थी मैमे शाह का अभियोजन किया गया था कि वह अप्रैल १९५२ की २६ और २७ तारीख के बीच रात्रि के समय किसी शिवशंकर लाल तिवारी के मकान में चोरी करने के लिये घुस गया था। विद्वान् मजिस्ट्रेट ने साक्ष्यों के आधार पर निर्णय दिया कि अभियुक्त दोषी सिद्ध होता है और उन्होंने उसे दं० सं० की धारा ४५७ के अंतर्गत दंड दिया।

अपील करने पर अपील के न्यायालय ने कहा कि साक्ष्यों से अपराधी धारा ४५७ में दोषी सिद्ध नहीं हो सकता और इसलिए अपील के न्यायालय ने उसकी दोष सिद्धि धारा ४११ के अंतर्गत की क्योंकि उसके पास कुछ चोरी के सामान मिले थे जिन्हें वह जानता था कि वे चोरी के हैं।

इसपर अभियुक्त ने पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र निवेशित किया। इसमें उसका कहना था कि आरोप केवल धारा ४५७ में लगा था और जब उस धारा के अंतर्गत उसकी दोषसिद्धि नहीं हुई तो एक दूसरी धारा ४११ में उसकी दोषसिद्धि नहीं हो सकती जिसका कि इसमें ऊपर आरोप था ही नहीं। इस कथन के समर्थन में उसने ए० आई० आर० १९२६ इलाहाबाद ३३ का प्रमाण दिया जिसमें ऐसी ही परिस्थिति में निर्णय दिया गया था कि उस धारा के अंतर्गत जिसमें आरोप न लगा हो दोषसिद्धि नहीं की जा सकती।

यह बात मानने योग्य नहीं है क्योंकि दं० प्र० सं० की धारा २३६, २३७ और ५३७ को देखने से प्रतीत होता है कि यदि किसी धारा में आरोप न लगा हो किंतु साक्ष्य से उक्त धारा के अंतर्गत अपराध बनता हो और अभियुक्त को किसी प्रकार की हानि न हुई हो तो यह अनियमितता धारा ५३७ के अंतर्गत ठीक की जा सकती है।

यहाँ पर इस मुकदमे में इसमें कोई संदेह नहीं कि आरोप केवल धारा ४५७ में लगा था किंतु यह निश्चय है कि कुछ चोरी गए सामान उसके यहाँ मिले थे और इसके बारे में अभियुक्त से स्पष्ट प्रश्न भी पूछा गया था और उसने इनकार किया। यह साक्ष्य से स्पष्ट है। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि अभियुक्त को चोरी गए हुए सामानों का उसके यहाँ से प्राप्त होने वाले साक्ष्यों के बारे में कोई सूचना नहीं थी।

वेगू वि. इंपरर ए. आई. आर. १९२५ प्रिवी कौंसिल १३० में निर्णय हुआ था कि जब अभियुक्त पर धारा ३०२ का आरोप हो और साक्ष्य में हो कि उसने बध के साक्ष्य को मिटाया तो उसकी दोषसिद्धि धारा ३०२ के अंतर्गत न होकर धारा २०१ के अंतर्गत हो सकती है।

अतः सर्वदा यह आवश्यक नहीं है कि अभियुक्त की दोषसिद्धि के पहले उसके विरुद्ध विशिष्ट आरोप हो। यदि अभिलेख पर के साक्ष्य से यह प्रतीत होता है कि उसने कोई दूसरा अपराध किया है और यदि दूसरे अपराध में उसपर आरोप होता तो उसकी दोषसिद्धि हो सकती थी तो उसपर विशिष्ट आरोप के न रहने पर भी दोषसिद्धि हो सकती है।

इसीलिए केवल इस कारण कि उसके ऊपर धारा ४११ के अंतर्गत विशिष्ट आरोप नहीं लगा था यह नहीं कहा जा सकता कि धारा ४११ के अंतर्गत उसकी दोषसिद्धि अवैध है। उसके यहाँ से चोरी का सामान प्राप्त हुआ था और वह जानता था कि सामान चोरी का है।

इसलिए यह पुनरीक्षण अस्वीकार किया जाता है। और अभियुक्त की धारा ४११/७५ दं० सं० के अंतर्गत की दोषसिद्धि और दंडादेश मान्य होता है। प्रार्थी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जमानत पर है वह तुरत शेष दंड भुगतने के लिये आत्म-समर्पण कर दे।

पुनरीक्षण उत्सर्जित

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इलाहाबाद उच्च न्यायालय १२६

आपराधिक प्रकीर्णक प्रार्थनापत्र सं० १६१-१९५७ १० फरवरी १९५८।

मुहम्मद इब्राहीम — परिवादी

वि०

गोपीलाल तथा अन्य — अभियुक्त विपत्ती

अवधि अधिनियम धारा ५—दंड प्रक्रिया संहिता की धारा ४१७ (३) में यह लागू नहीं हो सकती।

न्यायमूर्ति जेम्स—

मुहम्मद इब्राहीम ने कुछ लोगों का दंड संहिता की धारा २९७ के अंतर्गत अभियोजन किया था। अन्वीक्षा न्यायालय ने इसमें अभियुक्तों की दोषसिद्धि की किंतु अपील से सत्र न्यायाधीश ने उन्हें छोड़ दिया।

छोड़ देने पर इब्राहीम ने इसके विरुद्ध अपील निवेशित करने की विशेष अनुमति के लिये प्रार्थनापत्र निवेशित किया। धारा ४१७ (४) के अनुसार यह प्रार्थनापत्र दोषमुक्ति के आदेश से ६० दिन के भीतर होना चाहिए था किंतु यह ६० दिन के बाद दिया गया। इस विलंब को क्षमा करने के लिये इब्राहीम ने अवधि अधिनियम की धारा ५ के अंतर्गत एक प्रार्थना पत्र दिया। यह प्रार्थनापत्र न्यायमूर्ति देसाई के समक्ष सुनवाई के लिये आया। उनके समक्ष कहा गया कि धारा ४१७ (३) में अवधि अधिनियम की धारा ५ लागू नहीं हो सकती। न्यायमूर्ति देसाई के मन में यह तर्क बैठ गया किंतु इस विषय पर अनेक निर्णयों में मतभेद होने के कारण इसे न्यायासन के समक्ष अभिदेश करने की आवश्यकता पड़ी। इस अभिदेश पर यह सुनवाई के लिये आया है।

इस संबंध में पक्षों की बात सुनने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जब धारा ४१७ (४) में यह स्पष्ट दे दिया गया है कि धारा ४१७ (३) के अंतर्गत अपील करने के लिये विशेष अनुमति का प्रार्थनापत्र यदि दोषमुक्ति के आदेश से ६० दिन के पश्चात् दिया जाता है तो उस पर विचार नहीं किया जायगा तो यह मामले का निश्चायक है कि ६० दिन के बाद उच्च न्यायालय ऐसा प्रार्थनापत्र नहीं लेगा। न्यायमूर्ति देसाई से हम सहमत हैं और प्रार्थनापत्र कालबाधित होने से उत्सर्जित कर देने योग्य है।

यदि हम मानते कि इसमें धारा ५ लागू होती है तब भी यह प्रार्थी उसका लाभ नहीं उठा सकता था क्योंकि उसने प्रार्थनापत्र देते समय देर को क्षमा करने के लिये कोई प्रार्थनापत्र नहीं दिया। बहुत दिन के बाद उसने धारा ५ के अंतर्गत प्रार्थनापत्र दिया और इसमें उसका कहना था कि मैं इनफ्लुएंजा से बीमार हो गया था परंतु उसके साथ उसने बीमार होने का प्रमाणपत्र नहीं दिया। यह प्रमाणपत्र भी उसे बाद में मिला। इसको खुर्जा के एक डाक्टर ने दिया जिनकी योग्यता एल० एम० पी० थी। उन्होंने बयान दिया कि इब्राहीम को बहुत कड़ा इनफ्ल्यूएंजा हो गया था और वह ८ जुलाई सन् १९५७ से २४ जुलाई १९५७ तक मेरी चिकित्सा के अंतर्गत रहा। इनफ्लूएंजा की बीमारी इतने दिन तक चलती रही मानने योग्य नहीं है। दूसरे उच्चन्यायालय में उनकी उपस्थिति आवश्यक नहीं थी। अपने किसी मित्र को वह आवश्यक कागज पत्र देकर उच्च न्यायालय में वकील के यहाँ भेज सकता था। यदि कोई मित्र न मिला तो डाकघर तो सर्वदा यह काम करने के लिये तत्पर था। इन कारणों से वह धारा ५ का लाभ नहीं उठा सकता।

अतः हमें प्रार्थनापत्र अस्वीकार करने में कोई रुकावट नहीं दिखलाई पड़ती। धारा ४१७ (३) के अंतर्गत अनुमति का प्रार्थनापत्र असफल होता है और वह एतद् द्वारा उत्सर्जित किया जाता है।

प्रार्थनापत्र उत्सर्जित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वादियों का कहना है कि दुर्गा सिंह की विधवा स्त्री श्रीमती गौरा देवी थीं और श्रीमती गौरा देवी और उनकी पतोहू विवादग्रस्त भूमि की स्वामिनी थीं जो कि इन लोगों की संयुक्त 'सीर' थी। वादियों का यह कहना था कि श्रीमती गौरा देवी का स्वामित्व अधिकार भारग्रस्त संपदा अधिनियम के अंतर्गत गोविंद प्रसाद और सोहन लाल के यहाँ बन्धक रख गया था। अपने 'सीर' के खेतों पर वह हृतस्वामित्व (एक्सप्रोप्राइटरी) अधिकार प्राप्त कर ली थी जो उसमें से निकाल लिया गया था और अकेले हीं उसके धारण में थी। श्रीमती गौरा देवी २५० रु० से कम लगान देती थी। वादियों का कहना था कि श्रीमती गौरा देवी ने सन् १९४५ में भूमि का बंदोबस्त डोरेलाल के साथ कर दिया और वह १२ मार्च १९५१ को मरी तथा वादीगण उसी के उत्तराधिकारी हैं। वादी का कहना है कि गौरा देवी के मरने पर विधि के प्रवर्तन से भूमि का लक्षण 'सीर' में परिवर्तित हो गया और वादीगण उसके 'भूमिधर' हो गए हैं। प्रतिवादीगण उसके असामी हुए। वादियों का कहना है कि हम लोग उस भूमि को स्वयं जोतना चाहती हैं और आरंभिक भूस्वामी की अनर्हता समाप्त हो गई है।

प्रतिवादी ने उपर्युक्त कथन को अस्वीकार किया। उसका कहना था कि हम असामी नहीं हैं इसलिए हमारा अधिनिष्कासन नहीं हो सकता।

अन्वीक्षा न्यायालय ने निर्णय दिया था कि प्रतिवादीगण असामी नहीं हैं और इसलिए वाद उत्सर्जित कर दिया। अपील में विद्वान अतिरिक्त आयुक्त ने अन्वीक्षा न्यायालय के आदेश को निराकृत कर दिया और अपील स्वीकृत हुई।

यहाँ प्रतिवादी अपीलकर्ता के विद्वान वकील का कहना है कि नीचे के अपील के न्यायालय ने यह गलत निर्णय दिया था कि प्रतिवादी अपीलकर्ता के अधिकार का निर्णय निहित तिथि के आधार पर नहीं होगा। यह निर्विवाद है कि वादीगण विवाहित स्त्रियाँ हैं और उनके पति जीवित हैं। ये स्त्रियाँ अनर्हता की परिभाषा में नहीं आतीं इसलिए प्रतिवादी अपीलकर्ता भूमि के अधिवासी हुए न कि धारा २१ के अंतर्गत असामी।

यह बात धारा २१ का ठीक अर्थ न लगने के कारण कही जा रही है। धारा २१ के संबद्ध शब्द इस प्रकार हैं:—"......प्रत्येक व्यक्ति जो निहित होने की तिथि के ठीक पहले भूमि का......धारण या उसे सीर के कृषक रूप में लिए हुए था...' इसका अर्थ हुआ कि निहित होने की तिथि से ठीक पहले उस व्यक्ति के लिये प्रयुक्त है जो असामी घोषित होनेवाला है। निहित होने की तिथि का संबंध भूस्वामी से नहीं है। इसके अंतर्गत भूस्वामी के लिये प्रतिबंध केवल इतना ही है कि वह जिस दिन भूमि का बंदोबस्त करे उस दिन और ९ अप्रैल १९४६ को अनर्हता (डिसएबिलिटी) में रहे। उसके लिये यह आवश्यक नहीं है कि वह निहित होने की तिथि को भी अनर्हता (डिसएबिलिटी) में रहे। बंदोबस्त की तिथि को और ९ अप्रैल १९४६ को तथा निहित होने की तिथि को, जैसा कि इस मुकदमे में है, भूस्वामी दूसरे दूसरे हो सकते हैं। यदि अनर्हता समाप्त हो चुकी है तो निहित तिथि से ३ वर्ष के भीतर भूस्वामी जमींदारी विनाश तथा भूमिसुधार अधिनियम की धारा २०२ (एफ) (२) के अंतर्गत वाद निवेशित कर सकता है। यहाँ जब कि भूमि का बंदोबस्त श्रीमती गौरा देवी ने सन् १९४५ में किया तो यह मान्य है कि वह विधवा थी इसलिए डोरेलाल केवल 'असामी' हुआ और उसका अधिनिष्कासन जमींदारी विनाश तथा भूमिसुधार अधिनियम की धारा २०२ के अंतर्गत किया जा सकता है।

विद्वान अतिरिक्त आयुक्त ने जो अपील स्वीकार की है और वादियों के वाद में आज्ञप्ति दी है वह ठीक है।

द्वितीय अपील असफल होती है और परिव्यय के साथ उत्सर्जित की जाती है।

अपील उत्सर्जित

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इला० (रा०) ४२

(राजस्व मंडल)

न्यायिक सदस्य एस० एन० मित्रा (राजस्व मंडल) खरका, बिजनौर, लखनऊ ।

लखनऊ फैजाबाद मंडल के अतिरिक्त आयुक्त के आदेश ११-१२-१९५७ के विरुद्ध द्वितीय अपील (प्रार्थनापत्र संख्या ६ (जेड) १९५७/५८)

११ अप्रैल १९५८

रामेश्वर इत्यादि — अपीलकर्ता

वि०

श्रीमती परभूदेई — उत्तरवादी

उ० प्र० भूमिसुधार अनुपूरक अधिनियम ३१। १९५२ धा० ४ (१), (२)—कागजों की शुद्धि के बारे में जाँच-क्षेत्र-जाँच यदि असिस्टेंट कलक्टर द्वितीय श्रेणी से नीचे के स्तर के अधिकारी ने किया तो ऐसी जाँच के आधार पर शुद्धि के लिये पारित आदेश की वैधता—

न्यायिक सदस्य, एस० एन० मित्रा—

लखनऊ के अतिरिक्त आयुक्त के आदेश के विरुद्ध यह द्वितीय अपील है। श्रीमती परभूदेई ने उ० प्र० जमींदारी विनाश तथा भूमिसुधार अधिनियम की धारा २३२ के अंतर्गत एक प्रार्थनापत्र निवेशित किया । इस प्रार्थनापत्र में उसका कहना था कि वह १३५९ और १३६० फ० में भूमि पर खेती करती थी और धारण में थी इसलिए अधिनियम ३१, १९५२ की धारा ३ के अंतर्गत उसे अधिवासी अधिकार प्राप्त हुआ। विपक्षियों ने उसे जुलाई १९५३ में धारणच्युत कर दिया था इसलिए धारण के लिये प्रार्थनापत्र है ।

अन्वीक्षा न्यायालय ने प्रार्थनापत्र स्वीकार किया किंतु एक दूसरी ही बात पर इसे प्रतिप्रेषित कर दिया था कि इसके आवश्यक पक्ष नहीं बनाए गए थे। अमरनाथ, माताप्रसाद और बिंदा प्रसाद अपनी माता के द्वारा पक्ष बनाए गए। अन्वीक्षा न्यायालय ने निर्णय दिया कि अधिनियम ३१, १९५२ के अंतर्गत वह अधिवासी है और उसका प्रार्थनापत्र अवधि के अंतर्गत है। इस प्रकार वह प्रार्थनापत्र स्वीकृत हुआ। अपील पर विद्वान अतिरिक्त आयुक्त ने यह आदेश मान लिया और अपील उत्सर्जित कर दिया ।

इस द्वितीय अपील में अपीलकर्ता ने निम्नलिखित आपत्ति किया है:—

१—अमरनाथ, माता प्रसाद और बिंदा प्रसाद अवधि बीतने पर पक्ष बनाए गए। ये लोग आवश्यक पक्ष थे अतः नीचे की अपील के न्यायालय में अपील अक्षम थी ।

२—परभूदेई पहले से ही से ही धारण में नहीं थी और इस संबंध में उसने कागजों की शुद्धि के लिये एक प्रार्थनापत्र निवेशित किया था। उस प्रार्थनापत्र पर तहसीलदार ने जो आदेश दिया था वह अधिनियम ३१, १९५२ की धारा ४ के अंतर्गत आदेश नहीं था। इस प्रकार दोनों न्यायालयों का आदेश गलत था और वह निराकृत कर देने योग्य है ।

उत्तरवादी का कहना है कि:—

१—रामेश्वर ने स्वीकार किया था कि तीनों लड़के हमारे साथ रहते हैं और हम तथा श्रीमती जगदेई भूमि के स्वामी हैं। रामेश्वर आवश्यक पक्ष थे और वे पक्ष बनाए गए ।

२—नीचे के न्यायालय ने जो उसे प्रतिप्रेषित किया था उसमें उसका कहना था कि यों तो इसको वापस करने की कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती किंतु भविष्य की उलझनों से बचने के लिये इसे प्रतिप्रेषित किया जाता है। किसी आवश्यक कारणवश यह प्रतिप्रेषित नहीं किया गया था ।

३—अधिनियम ३१, १९५२ की धारा ४ के अंतर्गत सहायक कलक्टर द्वितीय श्रेणी को ही कागज को ठीक करने का अधिकार है किंतु इसका अभिप्राय यह नहीं हो सकता कि वे ही इसकी जाँच भी करें। यहाँ पूरी जाँच करके तब कागज ठीक किया गया। इसलिए दोनों न्यायालयों का निर्णय ठीक था ।

अपीलकर्ता के विद्वान वकील का कहना था कि अमरनाथ, माताप्रसाद और विद्याप्रसाद का नाम बाद में जोड़ा जाना मुकदमे के लिये घातक है, ठीक नहीं है। यदि यह घोषणात्मक वाद होता तो अवधि के बाद इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार नाम जोड़े जाने पर दूसरी परिस्थिति उत्पन्न हो सकती थी, यहाँ नहीं। इस आधार पर प्रार्थनापत्र को उत्सर्जित कर देना ठीक नहीं है।

अधिनियम ३१, १९५२ धारा ४ के अंतर्गत यह आवश्यक नहीं है कि सहायक कलक्टर द्वितीय श्रेणी के अधिकारी इसकी जाँच व्यक्तिगत रूप से करें। जाँच उनके नीचे के अधिकारी भी कर सकते हैं, अंतिम आदेश केवल वही पारित कर सकते हैं। नीचे के न्यायालय ने यह निर्णय दिया था कि रामेश्वर और श्रीमती जगदेई भू स्वामी हैं और जाँच के पश्चात् यह निश्चित है कि श्रीमती परभू देई १३५६ फसली में धारण में थीं और खेती करती थी। ये प्रश्न तथ्य के प्रश्न हैं और यतः यह नहीं दिखलाया गया है कि ये निष्कर्ष गलत हैं इसलिए इस द्वितीय अपील में इन प्रश्नों पर आपत्ति नहीं उठाई जा सकती।

यह अपील असफल होती है और परिव्यय तथा वकील के फीस के साथ उत्सर्जित की जाती है।

अपील उत्सर्जित

———

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ इ० (राजस्व) ४३

(राजस्व मंडल)

जुनादपुर, आजमगढ़, एटा

आगरा मंडल के अतिरिक्त आयुक्त के आदेश दिनांक २१ फरवरी १९५५ के विरुद्ध द्वितीय अपील (प्रार्थनापत्र सं० १६३।१९५४–५५)

प्रागदत्त — अपीलकर्ता

वि०

बद्री तथा अन्य — उत्तरवादीगण

उ० प्र० जमींदारी विनाश तथा भूमि सुधार अधिनियम १, १९५१, धारा २०—भू अभिलेख नियमावली अनुच्छेद ७२—व्याख्या—'साझी' और 'सहकृषक' में प्रभेद—धारा २० के अंतर्गत अध्यासी (आकूपैंट) का अर्थ—'साझी' को अधिवासी का अधिकार नहीं प्राप्त हो सकता—

न्यायिक सदस्य भजनलाल चतुर्वेदी—

इन तीनों वादों में वादी प्रागदत्त ने अपने को श्रीमती रामप्यारी की लड़की का लड़का कहा है। श्रीमती रामप्यारी जगराज की विधवा स्त्री है। इस प्रकार प्रागदत्त का कहना है कि वह श्रीमती रामप्यारी की लड़की का लड़का और उसका उत्तराधिकारी है। वादी प्रागदत्त ने प्रतिवादियों के अधिनिष्कासन के लिये वाद इस आधार पर निवेशित किया था कि वे अनधिप्रवेशी (ट्रेसपासर्स) हैं।

प्रतिवादीगण ने वादपत्र के विरोध में कहा है कि :—

१ प्रागदत्त श्रीमती रामप्यारी की लड़की का लड़का नहीं है।

२ रामप्यारी के जीवन काल में ही हम लोग उसके प्रतिकूल धारण में थे और इस प्रकार धारण में रहने के कारण हम लोगों ने उ० प्र० भू धारण अधिनियम की धारा १८० (२) के अंतर्गत वंशानुगत कृषक का अधिकार प्राप्त कर लिया है।

३ यह अवधि से बाधित है।

४ किसी भी दशा में हम लोग उसके अधिवासी हो गए हैं।

अन्वीक्षा न्यायालय ने वादी के पक्ष में निर्णय दिया था किंतु अपील में अतिरिक्त आयुक्त ने वाद उत्सर्जित कर दिया। इस उत्सर्जन आदेश के विरुद्ध वादी की यह द्वितीय अपील है।

अपील में वादी—अपीलकर्ता का कहना है कि :—

१—विद्वान् अतिरिक्त आयुक्त ने गलती से प्रतिवादीगण को श्रीमती राम्प्यारी का सहकृषक (कोटेनेंट) मान लिया था जब कि प्रतिवादीगण का स्वयं कहना था कि हम लोग श्रीमती रामप्यारी के साझेदार थे।

२—१३५६ फ० में प्रवृष्टि केवल साझेदार की है इसलिए साझेदारी की प्रवृष्टि पर प्रतिवादीगण को अधिवासी का अधिकार नहीं प्राप्त हो सकता।

३—प्रतिवादी बद्री ने यह स्वीकार किया है कि हम श्रीमती रामप्यारी के साझीदार थे। इसलिए प्रतिकूल धारण का अभिकथन मान्य नहीं हो सकता। यदि प्रतिकूल धारण नहीं था तो उ० प्र० भू धारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिनियम की धारा १८० (२) के अंतर्गत उन्हें वंशानुगत कृषक का अधिकार नहीं प्राप्त हो सकता।

४—बद्री १३५६ में अभिलिखित अध्यासी (आकूपैंट) नहीं था।

५—१३५६ फ० में "बटाई निस्फी" की प्रवृष्टि एस० डी० ओ० ने अनधिकृत ठहराया था और प्रतिवादी के लिये आदेश दिया था कि उसका नाम उपवाक्य २० के स्वत्व के अधिकार के बिना शिकमी में केवल एक वर्ष के धारण में होना लिख लिया जाय।

६—भूखंड सं० ३६२८।२ बाग है और बाग में अधिवासी का अधिकार नहीं पैदा हो सकता। अपील के न्यायालय ने अन्वीक्षा न्यायालय के इस निष्कर्ष को बदले बिना ही कि वह बाग है गलती से आदेश पारित कर दिया है।

प्रतिवादी उत्तरवादी के विद्वान वकील ने अवधि के प्रश्न और सहकृषकत्व के प्रश्नों को छोड़ दिया। उन्होंने मान लिया कि प्रतिवाद में सहकृषकत्व का अभिकथन नहीं उठाया गया था। उनका कहना है कि प्रतिवादी उत्तरवादी गण इसके अधिवासी हो गए हैं कारण कि १३५६ फ० के खसरा और खतौनी में वे अभिलिखित अध्यासी हैं। यदि एस० डी० ओ० का उपर्युक्त आदेश अंतिम हो गया है और उन्होंने प्रतिवादी को उपवाक्य २० के अंतर्गत शिकमी माना है तो कोई कारण नहीं है कि उसे धारा २० के अंतर्गत अधिवासी का अधिकार क्यों नहीं प्राप्त हो सकता। इसके समर्थन में ए० डब्ल्यू० आर० १९५६ (रेवेन्यू) १२३ का प्रमाण दिया गया। इस मुकदमे में निर्णय हुआ था कि १३५६ का शिकमी अभिलिखित अध्यासी माना जायगा और इस प्रकार वह धारा २० के अंतर्गत अधिवासी होगा।

प्रतिकूल धारण के अभिकथन को प्रतिवादी के वकील ने छोड़ दिया है इसलिए यहाँ प्रमुख विचारणीय प्रश्न यही है कि १३५६ फ० की प्रवृष्टि के आधार पर प्रतिवादी अधिवासी हो सकता है कि नहीं। इस संबंध में बद्री ने दो विरोधी बातें कही हैं। एक बार उसने कहा था कि मुझसे और श्रीमती रामप्यारी से कोई साझेदारी नहीं थी और दूसरी बार कहा था कि जब श्रीमती रामप्यारी जीवित थीं तो मैं उनका साझीदार था। एस० डी० ओ० ने भी माना है कि बद्री १३५६ फ० में श्रीमती रामप्यारी का साझीदार था। इन सबके प्रमाण अभिलेख पर हैं।

आयुक्त ने अपने निर्णय में सहकृषक और साझीदार में कोई अंतर नहीं माना था और इसी कारण उन्होंने कहा कि बद्री वंशानुगत कृषक हो गया है और उसका अधिनिष्कासन नहीं हो सकता। हमारे विचार से 'साझी' और सहकृषक (कोटेनेंट) में बहुत अंतर है। सहकृषक वह व्यक्ति है जो अपने भू-धारण में सभी अधिकारों का प्रयोग करता है और भू स्वामी को रोकड़ (कैश) में या प्रकार (काइंड) में लगान देता रहता है। 'साझी' वह व्यक्ति है जो कृषि संबंधी अपनी संपूर्ण क्षमता को संगठित करने पर राजी होता है और इस प्रकार संगठित श्रम एवं क्षमता को दूसरे की भूमि और अधिक साधनों में मिला देता है। यह नामकरण गलत है कि 'साझी' आधा देता है, वास्तव में साझी आधा देता नहीं वरन् आधा पाता है। भू-स्वामी ही वह व्यक्ति है जो साझेदार के परिश्रम और योग्यता के बदले उसके लाभार्थ उत्पत्ति का आधा भाग ले लेने की अनुमति देता है।

भू अभिलेख नियमावली उ० प्र० के अनुच्छेद ८० ७२ की व्याख्या का अर्थ यही होता है।

उ० प्र० जमींदारी विनाश तथा भूमि सुधार अधिनियम की धारा २० के अंतर्गत वह व्यक्ति भू स्वामी को हटाकर स्वयं धारण में हो तब उसे अधिवासी का अधिकार प्राप्त हो सकता है; भू स्वामी के अंतर्गत ही यदि कोई साझी हो तो उसे यह अधिकार नहीं प्राप्त हो सकता।

अन्वीक्षा न्यायालय ने इन पक्षों के बीच चले हुए धारा १४५ के एक मुकदमे की भी चर्चा की है जिसमें धारण प्रागदत्त को मिला था। अतः अन्वीक्षा न्यायालय का यह निष्कर्ष ठीक था कि प्रतिवादी विवादग्रस्त भूमि के धारण में १३५६ फ० में नहीं थे।

अतः अपील परिव्यय के साथ स्वीकार की जाती है।

अपील स्वीकृत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इला० (राजस्व) ४५

(राजस्व मंडल)

नवापुरा, शिवपुर, बनारस

बनारस मंडल के अतिरिक्त आयुक्त के आदेश दिनांक ३० अगस्त १९५१ के विरुद्ध द्वितीय अपील (प्रार्थना पत्र सं० ६।१९५१–५२)

रोजन हज्जाम — अपीलकर्ता

वि०

बालगोविंद — उत्तरवादी

व्यवहार प्रक्रिया संहिता, १९०८, धा० १४४—शिकमी के विरुद्ध प्रत्यास्थापन (रेस्टीट्यूशन) किया जा सकता है कि नहीं—शिकमी का धारण चलते रहना और इस प्रकार उसे कृषक के अधिकार की प्राप्ति हो जाना – प्रमुख कृषक की प्रत्यास्थापना—शिकमी अपनी आरंभिक स्थिति को लौट नहीं जाता।

न्यायिक सदस्य, ए० एन० सप्रू—

उ० प्र० भूधारण अधिनियम की धारा ५९ के अंतर्गत एक वाद निवेशित किया गया था उसी के संबंध में प्रतिवादी की यह द्वितीय अपील है। अन्वीक्षा न्यायालय ने वाद को उत्सर्जित कर दिया था और अपील करने पर विद्वान अतिरिक्त आयुक्त ने उस आदेश को निराकृत कर दिया और वादी के वाद में डिग्री दे दी।

वादी ने घोषणा के निमित्त एक वाद निवेशित किया था कि मैं उस भूमि का प्रमुख कृषक हूँ और प्रतिवादी उसका केवल शिकमी है तथा वह अपने स्वतंत्र अधिकार के बल पर उसका प्रमुख कृषक नहीं है।

इसके तथ्य थोड़े में इस प्रकार हैं कि वादी बालगोविंद के पिता गनेश सिंह एक समय इसके प्रमुख कृषक थे और प्रतिवादी का पिता नेवाल उनका शिकमी था। लगान बाकी पड़ने पर जमींदार ने बालगोविंद के पिता गनेश सिंह का अधिनिष्कासन कर दिया। यह अधिनिष्कासन बकाया लगान की डिग्री के निष्पादन के संबंध में १२ जनवरी १९३३ को हुआ। पुनर्विचार प्रार्थनापत्र निवेशित करने पर यह आदेश ७ अप्रैल १९३८ को निराकृत कर दिया गया। निराकरण के पश्चात् ३१ मई १९४१ को गनेश सिंह मुख्य कृषक के रूप में प्रतिस्थापित हुआ। किंतु कागजों में इसका कोई अमल दरामद नहीं हुआ। वादी प्रमुख कृषक और प्रतिवादी उसके शिकमी चलते आए।

गनेश सिंह के अधिनिष्कासन के बाद और उनकी प्रतिस्थापना के पहले जमींदार ने इस भूमि का बंदोबस्त प्रतिवादी के साथ कर दिया। इस प्रकार प्रतिवादी उसका प्रमुख कृषक हो गया। अतः वादी का कहना है कि जब आरंभिक डिग्री में परिवर्तन हुआ तो प्रतिस्थापना पर सबकी स्थिति पूर्ववत् हो जायगी। इस प्रकार वादी के कथनानुसार प्रतिस्थापना होने पर प्रतिवादी अपने पहले के शिकमी की स्थिति को लौट आएगा और वह उसका प्रमुख कृषक नहीं हो सकता।

प्रतिवादी का कहना है कि जब वादी का अधिनिष्कासन हुआ तब उसके भूस्वामित्व के अधिकार का उपशमन हो गया। जब उपशमन (एक्सटिंक्शन) हो गया तथा शिकमी के अधिकार की समाप्ति के बाद जमींदार ने हमको प्रमुख कृषक बनाया और हम आज तक उसे लगान देते चले आ रहे हैं धारण में हैं। अवधि तक लगातार धारण रहने के कारण हम उसके मुख्य कृषक हो चुके हैं। इस संबंध में जमींदार के एक कारिंदा ने प्रमाणित किया कि प्रतिवादी लगान देता रहा है। प्रतिवादी का कहना है कि जब वादी का धारण प्रतिस्थापित हुआ तो उसे चाहिए था कि हमको अनधिप्रवेशी (ट्रेसपासर) कहकर हमारे अधिनिष्कासन के लिये वाद निवेशित करता और जब उन्होंने ऐसा नहीं किया तो अब उन्हें हमारे विरुद्ध कोई उपाय नहीं रह गई है क्योंकि १९३९ से १९४९ तक जिस वर्ष वाद निवेशित किया गया हमारा लगातार धारण रहा है अतः हम उसके प्रमुख कृषक हैं न कि शिकमी।

वादी ने जो यह कहा कि हमारी प्रतिस्थापना के पश्चात् प्रतिवादी मुख्य कृषक के अधिकार से शिकमी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिकार पर लौट आए, यह यदि पूर्णतया नहीं तो मुख्यतया धारा १४४ व्य० प्र० सं० पर निर्भर करता है। धारा १४४ में है कि उभयपक्ष अपनी अपनी आरंभिक स्थिति को लौट आवेंगे जिस स्थिति में वे इस डिग्री के पहले थे। अतः यहाँ वादी और जमींदार अपनी अपनी आरंभिक स्थिति को लौट आए। वादी प्रमुख कृषक हो गया। किंतु इसका प्रभाव प्रतिवादी के प्रमुख कृषकत्व पर नहीं पड़ सकता। प्रतिवादी भी प्रमुख कृषक है। यदि वादी का कहना माना जाय तो इसका परिणाम यह होगा कि जब उसका अधिनिष्कासन हो गया था और जब तक उसकी प्रतिस्थापना नहीं हुई थी तब तक भी उस भूमि पर प्रमुख कृषकत्व का उसका अधिकार यथावत् था। यह बात नहीं मानी जा सकती। जब वादी का अधिनिष्कासन हुआ तो भूमि का कोई प्रमुख कृषक नहीं था। ऐसी रिक्तावस्था में प्रतिवादी को जमींदार ने मुख्य कृषक बनाया। वह पक्षों में से नहीं है कि धारा १४४ के आदेश से बाध्य होवें।

प्रतिवादी जमींदार का प्रतिनिधि नहीं है। प्रतिवादी वह व्यक्ति अवश्य है जो जमींदार से अपना स्वत्व पाता है किंतु इसका अभिप्राय केवल इतना ही होता है कि उसे जमींदार के ही विरुद्ध नहीं वरन् प्रतिवादी अपीलकर्ता के विरुद्ध भी प्रतिस्थापना की अभ्यर्थना करनी चाहिए थी। किंतु इसके और आगे जाकर हम यह निर्णय नहीं दे सकते कि जब प्रतिवादी ने प्रतिकूल धारण से अधिकार परिपक्व कर लिया तब भी प्रतिस्थापना होने पर वह अपनी आरंभिक शिकमी के अधिकार को लौट जायगा। इसके समर्थन में १६४२ आर० डी० ३८६ और १६४२ आर० डी० ३३७ हैं।

अपील परिव्यय के साथ स्वीकार की जाती है।

अपील स्वीकृत

विधि पत्रिका (१८८०) १६५८ इला० (राजस्व) ४६

(राजस्व मंडल)

घमहापुर, कसवार राजा, बनारस

उ० प्र० भूधारण अधिनियम धारा ४६ के अंतर्गत वाद में सर्वोच्च न्यायालय में अपील की अनुमति के लिये एस० सी० प्रार्थनापत्र सं० २५।१६५१-५२

ब्रह्मदेव सिंह — प्रार्थी

वि०

बेचू सिंह इत्यादि — विपक्षी

भारतीय संविधान, अनुच्छेद १३५—व्यवहार प्रक्रिया संहिता (१६०८), धारा १०९ और ११०—अपील का अधिकार—अनुच्छेद १३५ की प्रयोज्यता—

व्य० प्र० सं० धारा ११० में 'वाद विषय' (सब्जेक्ट मैटर आफ द सूट) का अर्थ—१६४५ में वाद निवेशित हुआ और १६५१ में निर्णय हुआ—यदि वाद विषय का मूल्य २०,००० रु० से कम है तो बोर्ड सर्वोच्च न्यायालय में अपील निवेशित करने की अनुमति नहीं दे सकता—

न्यायिक सदस्य, ए० एन० सप्रू—

उ० प्र० भूधारण अधिनियम की धारा ४६ के अंतर्गत एक वाद निवेशित हुआ था उसके उत्तरवादी द्वारा यह प्रार्थनापत्र दिया गया है कि सर्वोच्च न्यायालय में अपील निवेशित करने की अनुमति प्रदान की जाय। उस वाद में राजस्व मंडल अपील का अंतिम प्राधिकरण है और इसी के एक आदेश के विरुद्ध अपील करने की अनुमति मांगी जा रही है। इस आदेश पर पुनर्विचार करने के लिये एक प्रार्थनापत्र दिया गया था जिसे राजस्व मंडल ने अस्वीकार कर दिया है। यहाँ से अन्वीक्षा न्यायालय में एक आदेश संपत्ति का मूल्यांकन करने के लिये गया था। मूल्यांकन ३४३३० रु० १२ आ० ८ पा० पर हुआ था। वादी ने इस संपत्ति के आधे भाग के बँटवारे के लिये वह वाद निवेशित किया है।

पहले अपील संघानीय न्यायालय (फेडरल कोर्ट) में होती थी। जब वर्तमान भारतीय संविधान लागू हुआ तो संघानीय न्यायालय समाप्त हो गया और उसके स्थान पर सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना हुई। संघानीय न्यायालय में वादग्रस्त संपत्ति का मूल्य कम से कम दस हजार होना चाहिए था। सर्वोच्च न्यायालय में कम से कम मूल्य २०००० रु० है। यह वाद १६४५ में निवेशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ था जब कि इस प्रकार की अपील संघानीय न्यायालय में हो सकती थी, इस वाद की अंतिम डिग्री १९५१ में पारित हुई थी जब कि संघानीय न्यायालय समाप्त हो चुका था और सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना हो चुकी थी।

अतः यहाँ प्रार्थी का कहना है मैं व्य० प्र० सं० की धारा १०९ और ११० के अंतर्गत अपील करने की अनुमति पा सकता हूँ। विपक्षी का कहना है कि सर्वोच्च न्यायालय में अपील निवेशित नहीं हो सकती कारण कि संविधान के अनुच्छेद १३५ के अंतर्गत संघानीय न्यायालय ऐसी अपील नहीं सुन सकता था।

राजस्व मंडल अपील करने की अनुमति संविधान के अनुच्छेद १३५ के अंतर्गत ही दे सकता है। अनुच्छेद १३५ के अंतर्गत प्रार्थी को दिखलाना चाहिए कि संविधान के लागू होने के ठीक पहले ऐसे मामलों में संघानीय न्यायालय का अधिक्षेत्र एवं अधिकार प्रयुक्त हो सकता था। इस शर्त के पालन करने पर ही सर्वोच्च न्यायालय में अपील करने की अनुमति दी जा सकती है।

प्रार्थी का कहना है कि अपील का अधिकार निहित अधिकार (वेस्टेड राइट) है और यह अधिकार वाद निवेशित करने की तिथि को ही प्राप्त हो जाता है। इसलिए यदि इस वाद के निवेशित करने की तिथि को ऐसी अपील सुनने का अधिकार संघानीय न्यायालय (फेडरल कोर्ट) को था तो संविधान के लागू होने पर भी संघानीय न्यायालय में अपील करने का अधिकार है और यदि संघानीय न्यायालय अपने अधिकार और अधिक्षेत्र का प्रयोग कर सकती थी तो इसमें अनुमति दी जानी चाहिए।

इसके उत्तर में विपक्षी ने ए० आई० आर० १९५६ इलाहाबाद ३२१ का अभिदेश किया। इसमें भी ऐसी ही परिस्थिति थी। एक मुकदमा संविधान लागू होने के पहले ही निवेशित किया गया था किंतु उसमें अंतिम डिग्री संविधान के लागू होने के बाद पारित हुई अतः अनुच्छेद १३५ के आधार पर उसमें निर्णय हुआ कि यह संघानीय न्यायालय का अधिकार और अधिक्षेत्र प्रयोग करने योग्य नहीं है। अनुच्छेद १३५ के देखने से प्रतीत होता है कि इसका अर्थ यही है कि जब राजस्व मंडल अपील का निर्वर्तन करे उस समय संघानीय न्यायालय का अधिक्षेत्र और अधिकार प्रयोग करने योग्य होना चाहिए। अतः यह कथन माना नहीं जा सकता कि यतः अपील का अधिकार एक निहित अधिकार है इसलिए यह एकमात्र व्य० प्र० सं० की धा० १०९ और ११० से ही शासित होगी और अनुच्छेद १३३ के साथ इस पर विचार नहीं किया जा सकता।

विपक्षी के विद्वान वकील का कहना है कि धारा ११० में जो 'वाद विषय' शब्द प्रयुक्त हैं उनका अर्थ यह नहीं होता कि संपत्ति का संपूर्ण मूल्य इसमें संमिलित हो। इसका अभिप्राय है केवल वादी के भाग का मूल्य। यहाँ संपूर्ण संपत्ति का मूल्य ३४,३३० रु० से कुछ ऊपर है और प्रार्थी के भाग का मूल्य केवल १७,००० रु० से कुछ ऊपर हुआ। सर्वोच्च न्यायालय में अपील के लिये मूल्य कम से कम २०,००० रु० होना चाहिए। यदि अपील संघानीय न्यायालय में होती तो वहाँ मूल्य १०,००० रु० ही होना चाहिए था।

अपील की अनुमति के संबंध में एक प्रतिबंध और है कि यदि अंतिम न्यायालय का निर्णय नीचे के न्यायालय के निर्णय के स्थिरीकरण (अफर्मेंस) में हो तो अपील विधि के किसी तात्विक प्रश्न पर ही हो सकती है अन्यथा नहीं। यहाँ यह प्रतिबंध लागू नहीं हो सकता, कारण कि राजस्व मंडल ने नीचे के दोनों न्यायालयों के समान निर्णय के विरुद्ध अपना निर्णय दिया है। इसमें इस शर्त के पालन करने की आवश्यकता नहीं है कि इसमें विधि का तात्विक प्रश्न है।

इस प्रकार उपर्युक्त कारणों से व्य० प्र० सं० धा० १०९ और ११० तथा भारतीय संविधान अनुच्छेद १३५ के उपबंधों के अनुसार सर्वोच्च न्यायालय में अपील निवेशित करने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

प्रार्थनापत्र परिव्यय के साथ उत्सर्जित किया जाता है।

प्रार्थनापत्र उत्सर्जित

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इला० (राजस्व) ४८
(राजस्व मंडल)

अकराबाद, अलीगढ़

आगरा के अतिरिक्त आयुक्त के आदेश दिनांक १९ जून १९५६ के विरुद्ध द्वितीय अपील (प्रार्थनापत्र संख्या ३४० । १९५५-५६)

लीलाधर — अपीलकर्ता

विरुद्ध

याकूब अली — उत्तरवादी

अ—उ० प्र० जमींदारी विनाश तथा भूमि सुधार अधिनियम धा० २०—यदि डिग्री के आधार पर प्रवृष्टि की गई हो और डिग्री अपील में निराकृत कर दी गई हो तो अधिवासी का अधिकार प्राप्त नहीं हो सकता।

ब—उ० प्र० जमींदारी विनाश तथा भूमि सुधार अधिनियम, १, १९५१ की अनुसूची २—क्रम संख्या १६—ए०—उ० प्र० अधिनियम २०, १९५४—वाद निवेशित करने और अपील करने के अधिकार की प्रकृति—उपर्युक्त अनुसूची का संशोधन अतीत-प्रभावी नहीं हैं—अनुसूची दो के संशोधन के लागू होने के पश्चात् जब अतिरिक्त आयुक्त ने निर्णय दिया तो द्वितीय अपील निवेशित नहीं की जा सकती।

स—व्य० प्र० सं०, १९०८, धारा १४४—धारा १४४ के अंतर्गत प्रतिस्थापना के लिये प्रार्थनापत्र देने पर यदि द्वितीय पक्ष को अधिवासी के अधिकार पर अन्य उपबंधों के अंतर्गत धारण वापस पाने का अधिकार है और धारा १४४ के प्रार्थनापत्र पर आपत्ति के समय उसने अपने को अधिवासी नहीं कहा तो वह तत्पश्चात् की कार्यवाही में अधिवासी का अभिकथन उठा सकता है और इसके लिये उस पर कोई रोक नहीं है।

द—पुनरीक्षण—अपील का पुनरीक्षण में परिवर्तित किया जाना—पुनरीक्षण में हस्तक्षेप ।

न्यायिक सदस्य भजनलाल चतुर्वेदी—

१९४२ में जमींदार ने विवादग्रस्त भूमि पर से अपीलकर्ताओं को अधिनिष्कासित करने के लिये उ०प्र० भू धारण अधिनियम की धारा १८० के अंतर्गत एक वाद निवेशित किया। अन्वीक्षा न्यायालय और अपील करने पर अतिरिक्त आयुक्त दोनों ने वादी के पक्ष में निर्णय दिया और इन निर्णयों के बल पर वादी ने १८ फरवरी १९४४ को धारण प्राप्त कर लिया।

अपीलकर्ताओं ने इसके विरुद्ध राजस्व मंडल में अपील निवेशित किया और राजस्व मंडल ने दोनों न्यायालयों के आदेश के विरुद्ध निर्णय दिया और डिग्री निराकृत कर दी गई।

जब जमींदार ने १९४४ में धारण पाया और जब अपील विचाराधीन थी उसी समय उसने इस भूमि का बंदोबस्त याकूब अली के साथ कर दिया था। अपील का निर्णय होने पर अपीलकर्ताओं ने व्य० प्र० सं० की धारा १४४ के अंतर्गत प्रतिस्थापना का प्रार्थनापत्र दिया। इस पर अपीलकर्ता को उस भूमि का धारण मिल गया।

इसके बाद याकूब अली ने ज० वि० तथा भूमि सुधार अधिनियम की धा० २०।२३२ के अंतर्गत प्रार्थना पत्र दिया जिसमें उसका कहना था कि हम १३५६ फ० में अभिलिखित अध्यासी (रिकार्डेड आकूपैंट) थे और धारण में थे तथा ३० जून १९४८ के पश्चात् हमारा अभिनिष्कासन हुआ है इसलिए अधिवासी के अधिकार के आधार पर हमें धारण वापस मिलना चाहिए।

इस प्रार्थनापत्र पर वर्तमान अपीलकर्ताओं ने आपत्ति की थी कि याकूब अली जमींदार के संबंधी ही हैं, उनके साथ कोई बंदोबस्त नहीं हुआ और न तो वे कभी धारण में आए। सरकारी कागजों में उनके नाम की प्रवृष्टि फर्जी है और ऐसी प्रवृष्टि पर विश्वास नहीं किया जा सकता। अन्वीक्षा न्यायालय ने निर्णय दिया कि याकूब अली ने सिंचाई इत्यादि की कोई रसीद नहीं दी, न तो लगान की ही रसीद अभिलेख पर है और पूछने पर याकूब अली ने बतलाया कि वे सब रसीदें खो गईं। अन्वीक्षा न्यायालय ने वर्तमान अपीलकर्ताओं का अभिकथन माना और याकूब अली का प्रार्थनापत्र उत्सर्जित कर दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Ferry	नौघाट, नाव
Ferry boat	तरणी
Ferryman	तरणी नाविक
Ferry money	नौतरण शुल्क
Fertile	उर्वर, उपजाऊ
Fetch	ले आना, उठा ले आना; से प्राप्त होना
Fete	पर्व, संभोज
Fetish	जड़पूजा, अंधभक्ति
Feud	कुलवैर
Fiction	परिकल्पना
Fiction of law	विधि परिकल्पना
Fictitious	अवास्तविक, काल्पनिक, कृत्रिम, झूठा
Fictitious account	अवास्तविक लेखा
Fictitious action	अवास्तविक वाद
Fictitious assets	अवास्तविक परिसंपत्
Fictitious bill	अवास्तविक विपत्र
Fictitious stamp	कूट मुद्रांक
Fidelity	विश्वस्तता, भक्ति, स्वामिभक्ति, पातिव्रत्य
Fiduciary	विश्वासाश्रित
Fiduciary contract	विश्वासाश्रित संविदा
Fiduciary paper money	विश्वासाश्रित पत्रमुद्रा
Fiduciary reserve	विश्वासाश्रित संचिति
Field	खेत, क्षेत्र
Figure	अंक; चित्र, आकृति
File	नस्ती, नत्थी, (क्रि०) निवेशित करना
File a doccument	लेख्य निवेशित करना
File band	नस्तिपट्टी
File board	नस्ति फलक
File number	नस्ति संख्या
File order	नस्तिक्रम
File register	नस्तिपंजी
File tags	नस्ति नस्या
Filial	पुत्रीय, अपत्य, संतति
Filial duty	पुत्रधर्म
Filiality	पितृभक्ति
Filial piety	पितृ भक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Filiation	पुत्रत्व, पुत्रीकरण
Filibuster	विलंबकर्ता
Filing	नस्तीयन, नस्ती बंधन, नस्तीकरण, नत्थी करना
Fill	पूरण, पूर्ति करना
Fill in form	प्रपत्र भरना
Fill up	भरना, पूरा करना
Final	अंतिम
Final and binding	अंतिम और बंधनकारी
Final award	अंतिम परिनिर्णय
Final balance	अंतिम शेष
Final bid	अंतिम बोली
Final bill	अंतिम देयक
Final call	अंतिम याचना
Final call account	अंतिम-याचना-लेखा
Final call money	अंतिम-याचना-राशि
Final call register	अंतिम-याचना-पंजी
Final decision	अंतिम विनिश्चय
Final degree	अंतिम डिग्री, अंतिम आज्ञप्ति
Final disposal	अंतिम निर्वर्तन, अंतिम निबटारा
Final dividend	अंतित लाभांश
Final estimate	अंतिम प्राकलन
Finalise	अंतिम रूप देना, निश्चय करना
Finality of orders	आदेशों की अंतिमता
Final judge	अंतिम निर्णायक
Final judgment	अंतिम निर्णय
Finally decided	अंतिम रूप से विनिश्चित
Finally disposing of the matter	विषय का अंतिम निबटारा
Final notice	अंतिम सूचना
Final order	अंतिम आदेश
Final order passed on appeal	अपील पर पारित अंतिम आदेश
Final payment	अंतिम शोधन
Final process	अंतिम आदेशिका
Final receipt	अंतिम प्राप्ति
Final recommendation	अंतिम अभिस्ताव
Final release	अंतिम मोचन
Final report	अंतिम प्रतिवेदन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Final result	अंतिम परिणाम
Final rules	अंतिम नियम
Final settlement	अंतिम परिशोधन
Final surrender	अंतिम अध्यर्पण
Finance	वित्त, वित्त व्यवस्था, व्यय करना
Finance Act	वित्त अधिनियम
Finance bill	वित्त-प्रपत्र, वित्त-विधेयक
Finance Commission	वित्त आयोग (संवि०)
Finance Company	वित्त समवाय
Finance corporation	वित्त निगम
„ department	वित्त विभाग
„ member	वित्त सदस्य
„ Minister	वित्त मंत्री, अर्थ मंत्री
„ Ministry	वित्त मंत्रालय
Finances	वित्त साधन, वित्त संपद्, वित्त व्यवस्था, आर्थिक स्थिति
Finance service	वित्त सेवा
„ value	वित्त अर्हा
Financial	वित्तीय, वैत्तिक
„ Advisor	वित्त मंत्रणाकार
„ „ and chief Accounts officer	वित्त मंत्रणाकार तथा मुख्य लेखाधिकारी
„ „ to Government	शासकीय वित्त मंत्रणाकार
„ affair	वित्तीय कार्य
„ aid	वित्त सहायता
„ agreement	वित्तीय प्रबंध
„ aspect	वित्तीय दृष्टिकोण
„ assistance	वित्त साहाय्य
„ authority	वित्त प्राधिकारी
„ benefits	वित्तीय लाभ
„ bills	वित्त प्रपत्र
„ book	वित्त पुस्त
„ budget	वित्तीय आयव्ययक
„ business	वित्तीय कार्य
„ capacity	वैत्तिक क्षमता
„ commissioner	वित्त आयुक्त
„ Commissioner's Act	वित्तायुक्त अधिनियम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Financial condition	वित्तीय स्थिति
,, control	वैत्तिक नियंत्रण
,, crisis	वित्तीय संकट
,, forecast	वित्तीय पूर्वानुमान
,, gain	वित्त लाभ
,, integration	वैत्तिक एकीकरण
,, journal	वित्त पत्रिका
,, matter	वित्तीय विषय, वित्त विषय (संवि०)
,, obligation	वित्तीय भार (संवि०)
,, problems	वैत्तिक समस्याएँ
,, propriety	वित्तीय औचित्य
,, quarter	वित्तीय त्रिमास
,, records	वित्तीय अभिलेख
,, review	वैत्तिक पुनर्विलोकन
,, rules	वित्त नियम
,, stability	वित्तीय स्थायित्व
,, standing	वित्तीय स्थिति
,, statement	वित्तीय विवरण (संविधान); वित्त विवरण
,, transaction	वित्तीय व्यवहार
,, year	वित्त वर्ष
Financier	वित्त प्रबंधक, वित्तविनियोक्ता
Financing	वित्त प्रबंधन
,, bank	वित्तदायी अधिकोश
Find	प्राप्त करना, उपपादित करना
Fine	अर्थदंड, सूक्ष्म, सुंदर
,, adjustment	सूक्ष्म व्यवस्थापन
,, art	ललित कला
,, statement	अर्थदंड विवरण
Finishing charge	परूपण प्रभार
F. I. R. (First information report)	प्र० सू० प्र० (प्रथम-सूचना-प्रतिवेदन)
Fire	गोली चलाना
Firearm	अग्न्यस्त्र
Fire inspector	अग्निनिरीक्षक
,, insurance	अग्नि आगोप
,, raising	आग लगाना, अग्निदहन
Firm market	दृढ़ विपणि, स्थिर विपणि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Firm name	सार्थ नाम
„ representative	सार्थ प्रतिनिधि
Firms deposits	सार्थ निक्षेप
„ in impersonal name	अवैयक्तिक नाम पर सार्थ
First Class Magistrate	प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट
„ entry	प्रथम प्रविष्टि
„ generation	प्रथम संतति
„ grade	प्रथम प्रक्रम
„ hand	प्रत्यक्ष; मूल श्रोत प्राप्त, स्वयंदृष्ट
„ hearing	पहली सुनवाई
„ informant	प्रथम ज्ञापक
„ instance	प्रथमतः
Firstly	प्रथमतः, पहले
First of exchange	विपत्र प्रथमक
„ opinion	प्रथम अभिमत
„ priority	प्रथम पूर्वता
„ quality	प्रथम श्रेणी
„ rate	प्रथम श्रेणी का, वरेण्य
„ reading	प्रथम पठन (संवि०)
First step	पहला पग
Fisc	राजकोष
Fiscal	राजकोषीय
„ commission	उद्योगरक्षा आयोग
„ policy	उद्योग रक्षा नीति, राजकोषीयनीति
„ year	राजकोषीय वर्ष
Fisheries	मत्स्यग्रहण, मत्स्य पालन
„ Development Officer	मत्स्यपालन-विकास-अधिकारी
Fishery	मीन क्षेत्र (संवि०), मत्स्याधिकार
„ Inspector	मीनक्षेत्र निरीक्षक
„ officer	मत्स्याधिकारी
Fish processing	मत्स्य विधायन
Fit	समुपयुक्त, योग्य, उचित
„ certificate	स्वस्थता प्रमाणपत्र
„ for trial	अन्वीक्षा के योग्य
Fitness for trial	अन्वीक्षा के लिये समुपयुक्तता
„ to pass an efficiency bar	दक्षतावरोध पार करने की समुपयुक्तता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Five-year plan	पंचवर्षीय योजना
Fix	स्थिरीकरण, निश्चय करना, नियत करना
Fixation of compensation	प्रतिकर निश्चयन
" " pay	वेतन निश्चयन
" " price	मूल्य निर्धारण
Fixed assets	स्थिर परिसंपत्
" capital	स्थिर पूँजी
" charges	निश्चित प्रभार
" contingencies	नियत संभाव्यताएँ
" debt	निधिबद्ध ऋण, अनिश्चित काल-ऋण
" demand	स्थिर अभियाचन
" deposit	सावधि निक्षेप
" " account	सावधि-निक्षेप-लेखा
" " receipt	सावधि-निक्षेप-प्राप्ति
" emoluments	नियत उपलब्धियाँ
" establishment	स्थिर कर्मचारी
" exchange rate	स्थिर विनिमय-अर्घ
" fiduciary issue	नियत विश्वासाश्रित निर्गम
" " reserve	स्थिर विश्वासाश्रित संचिति
" instalment	नियत प्रभाग
" land revenue	नियत राजस्व
" loan	सावधि उधार
" preference shares	नियत पूर्वाधिकार अंश
" price	निश्चित मूल्य
" rate	नियत अर्घ
" " tenant	नियत अर्घ भाटकी
" travelling allowance	निश्चित यात्रा-धिदेय
" trust	नियत न्यास
Flagrant	अतिघोर
Flat	चपटा, वासकक्ष
Flaw	त्रुटि, दोष, छिद्र
Flexible	लचीला, आनम्य
" constitution	आनम्य संविधान
Float	तैरना, प्रारंभण, नया निकालना
Floatation of company	समवाय प्रारंभण
" " bonds	बंध प्रारंभण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Floatation of loans	उधार प्रारंभण
Floating	अस्थायी, चल
" account	अस्थायी लेखा, चल लेखा
" capital	अस्थायी पूँजी, चल पूँजी
" debt	अल्पकाल ऋण
" indebtedness	अल्पकाल ऋणता
" list	चल सूची
" mortgage	चल बंधक
" population	अस्थायी जनसंख्या
" security	चल प्रतिभूति
Flock	झुंड
Flood	बाढ़
Floor	भूमितल
Fluctuate	उतार चढ़ाव होना
Fluctuating land revenul	परिवर्ती भूराजस्व
Foil	विफलता
Fold	मोड़ना
Follow	अनुसरण करना, पीछे चलना
Follower	अनुयायी
Following day	आगामी दिन, अगला दिन
" procedure should be Followed	निम्नलिखित प्रक्रिया का अनुसरण करना चाहिए
Following sub-clause	निम्नलिखित उपखंड
Follow the same sequence	उसी क्रम में होना
" up cultivation	अनुवर्ती कृषि
Fondness	आसक्ति, अनुराग
Food	अन्न
" Accountant	अन्न लेखापाल
" Adulteration Act	अन्न अपमिश्रण अधिनियम
" advisory committee	अन्न-मंत्रणा-समिति
" and Agriculture Organisation F. A. O.	अन्न-कृषि-संस्था (अ० कृ० सं०)
" and Civil Supplies Inspector	अन्न तथा जानपद प्रदाय निरीक्षक
" crisis	अन्न संकट
" crop	अन्न सस्य
" department	अन्न विभाग
" executive officer	निष्पादक अन्नाधिकारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Foodgrains	अनाज, अन्नधान्य
,, Clearance Inspector	अन्य धान्य निष्कासन निरीक्षक
,, Control Order	अन्य धान्य-नियंत्रण-आदेश
,, Export Restrictions Order	अन्नधान्य-निर्यात-निर्बंध-आदेश
,, license	अन्नधान्य अनुज्ञप्ति
Food industry	अन्न उद्योग
,, laboratory	अन्न प्रयोगशाला
,, Manual	अन्न नियमावलि
,, Material	खाद्य पदार्थ
,, Ministry	अन्न मंत्रालय
,, Operating Committee	अन्न पचन-समिति
,, policy	अन्न नीति
,, position	अन्न की स्थिति
,, Processing Committee	अन्न-विधायन-समिति
,, procurement and rationing	अन्न प्राप्ति और समभाजन
,, special	अन्न विशेषयान
,, Standard] Committee	अन्न प्रमापसमिति
Foodstuffs Coordination Committee	खाद्यपदार्थ समन्वय समिति
Food subsidy	अन्न के लिये राजसाहाय्य
,, supply	अन्न प्रदाय
,, surplus	अन्नाधिक्य, अन्नातिरेक
,, technology	अन्न प्रौद्योगिका
,, value	अन्न-अर्हा
Fool	मूर्ख
Footing	स्थायित्व
Foot mark	पदचिह्न
,, note	पद-टिप्पण, टिप्पण
For account of	तत्कृते, तदर्थ, के लिये
,, administrative purposes	प्रशासनार्थ
,, approval	अनुमोदनार्थ
,, a term	अवधि के लिये
Forbear	विरत रहना
Forbearance	विरति
Forbid	निषेध करना (संवि०)
Forbiddance	निषेध
Forbidden	निषिद्ध (संवि०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि पत्रिका के नियम

(१) "विधि पत्रिका" का वार्षिक, षाण्मासिक और त्रैमासिक शुल्क क्रमशः १०), ५॥) और २॥।) है; एक प्रति का मूल्य १) है। शुल्क मनीआर्डर या वी० पी० द्वारा देय है। वी० पी० से मँगाने में डाकव्यय अतिरिक्त लगेगा।

(२) शुल्क, 'मंत्री, नागरीप्रचारिणी सभा, "विधि पत्रिका" विभाग, वाराणसी-१' के पते से आना चाहिए।

(३) "विधि पत्रिका" प्रत्येक सौर मास के अंतिम सप्ताह में अर्थात् प्रत्येक अँगरेजी मास के दिनांक १५ तक प्रकाशित होगी।

(४) "विधि पत्रिका" में विधि संबंधी लेख तथा विधि विषयक पत्रों, पुस्तकों आदि की समालोचनाएँ भी प्रकाशित होंगी। समालोचनार्थ पुस्तकों की दो प्रतियाँ आनी चाहिए। लेख, समालोचनार्थ पुस्तकें आदि संपादक, "विधि पत्रिका", नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी—१' के पते से भेजनी चाहिए।

———

जहाँगीर का आत्मचरित

अनुवादक—ब्रजरत्नदास

मुगल सम्राट् अकबर के पुत्र चतुर्थ मुगल सम्राट् बादशाह जहाँगीर ने अपना आत्मचरित लिखा है जिसका अनुवाद इस ग्रंथ में प्रस्तुत किया गया है। इसमें उसके राज्यकाल के अठारह वर्षों का विस्तृत ऐतिहासिक विवरण दिया गया है और साथ ही बहुत सी ऐसी घरेलू बातें भी आ गई हैं जिनका अन्य इतिहासों में उल्लेख नहीं मिलता। जहाँगीर ने अपने पिता की बहुत सी बातों का, आकृति, प्रकृति, रुचि आदि का वर्णन अपनी रचना में यत्र तत्र किया है जो अत्यंत प्रामाणिक है। इसने अपनी यात्राओं, मदिरोत्सवों, अहेरों आदि का ऐसा सुंदर वर्णन दिया है जो कहीं कहीं बहुत आकर्षक हो गया है। इसने हिंदुओं के मंदिरों, विचारों आदि की आलोचना की है। इसमें जब एक ओर कट्टर धर्मांधता है तब दूसरी ओर उदारता भी स्पष्ट है। इसने अपने अत्याचारों, कमजोरियों आदि सभी का स्पष्ट वर्णन कर डाला है, कहीं छिपाने का प्रयत्न नहीं किया है। अपने मदिरापान की अति को उसने कुछ नहीं छिपाया और उसकी बहक में इसने अपने बड़ों तथा ईश्वर के प्रति अपनी श्रद्धा खूब दरसाई है। फारस आदि की कुछ कहानियों तथा स्वरचित शेरों का भी इसमें समावेश किया है। पुस्तक हर दृष्टि से पढ़ने तथा मनन करने योग्य है। पृ० संख्या लगभग ६००.तथा अनेक चित्रों युक्त, पक्की दृढ़ जिल्द सहित पुस्तक का मूल्य केवल १५) ।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काशी नागरी-प्रचारिणी सभा

प्रकाशक और मुद्रक—नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी की ओर से तथा उसके लिये श्री सिद्धनाथ सिंह,
नागरी मुद्रण, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी

विधि पत्रिका

वर्ष २] श्रावण (सौर) सं० २०१५ : शक १८८० : जुलाई-अगस्त १९५८ [अंक ९

विधिविषयक लेखों, केंद्रीय-राज्य अधिनियमों आदि से युक्त, इलाहाबाद तथा भारत के अन्य उच्च न्यायालयों के महत्वपूर्ण अँगरेजी निर्णयों का हिंदी रूपांतर तथा विवरण प्रकाशित करनेवाली हिंदी जगत् की एकमात्र मासिक पत्रिका

विषय सूची

वाद तालिका	१	इलाहाबाद उच्च न्यायालय	१२७–१४२
लेख खंड	१–२	,, (राजस्व)	४६–५६
अधिनियम खंड	१६–२१	विधिक अंग्रेजी-हिंदी-शब्दसंग्रह	१२३–१३०
सर्वोच्च न्यायालय	६१–६८		

वार्षिक शुल्क १०) एक प्रति का १)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परामर्शदातृ समिति

(१) श्री कमलाकांत वर्मा, भूतपूर्व मुख्य न्यायाधिपति, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद
(२) श्री बलराम उपाध्याय, न्यायाधीश, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद।
(३) श्री कन्हैयालाल मिश्र, महाधिवक्ता, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद।
(४) श्री गोपालचंद्र सिंह, विशेष अधिकारी, सचिवालय, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ।
(५) श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प्राध्यापक, हिंदी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय।

संपादक मंडल

(१) श्री गिरिजाभूषण जोशी, आचार्य ला कालेज, काशी हिंदू विश्वविद्यालय
(२) श्री ब्रजरत्नदास, वकील, वाराणसी।
(३) श्री प्रतापनारायण सिंह, राजकीय अधिवक्ता, वाराणसी।
(४) श्री गौरीनंदन उपाध्याय, ऐडवोकेट, वाराणसी।
(५) श्री देवीनारायण, ऐडवोकेट, वाराणसी।
(६) श्री कैलासपति त्रिपाठी, ऐडवोकेट, वाराणसी।
(७) श्री गोपीकृष्ण, बार-ऐट-ला, वाराणसी।
(८) श्री चतुर्भुजदास पारिख, ऐडवोकेट, वाराणसी।
(९) श्री राघवराम वर्मा, वकील, वाराणसी।
(१०) चौधरी शुकदेव सिंह, वकील, वाराणसी।
(११) श्री मोतीलाल बापुली, ऐडवोकेट वाराणसी।

श्री चंद्रभूषण मिश्र, ऐडवाकेट } प्रतिवेदक, इलाहाबाद
श्री रामसुरत सिंह, ऐडवोकेट }

संपादक (संयोजक)—सिद्धनाथ सिंह बी० ए०, एल-एल बी०, वकील
सहायक संपादक—पारसनाथ सिंह बी० ए०, एल-एल० बी०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि पत्रिका जुलाई-अगस्त १९५८

(शक १८८०)

वाद तालिका

१—अनवर हुसेन वि० फ्रैंक्लिन	इ० उ० न्या०	१३१
२—गोकुल वि० राज्य	,, ,,	१३८
३—चौधरी धरम सिंह वि० पंजाब राज्य	सर्वो० न्या०	६३
४—छंगा वि० केदार	इ० उ० न्या०	१२७
५—द्वारिका वि० नगर पालिका	,, ,,	१३०
६—दुर्गा प्रसाद वि० स्वामी अविधानंद	,, ,,	१३७
७—पारस राम वि० नगर पालिका	,, ,,	१३४
८—पुरुषोत्तम लाल धींगरा वि० भारत संघ	सर्वो० न्या०	६४
९—बाबू तुलसी पत वि० नायक सिंह	इ० उ० न्या०	१३३
१०—भिक्खू लाल वि० बटियन	,, ,,	१२८
११—मकबूल आलम वि० जावद हुसेन	,, ,,	१२९
१२—महाराजा सुखजीत सिंह वि० उ० प्र० राज्य	इला० (राजस्व)	५४
१३—मुहम्मद यूसुफ खाँ वि० बागला	,, ,,	५०
१४—राम दयाल वि० बहादुर	इ० उ० न्या०	१२७
१५—राम कलप वि० बंशीधर	,, ,,	१३५
१६—राधेलाल वि० राम किशोर	,, ,,	१४१
१७—राम भरोस वि० राम प्रताप सिंह	इला० (राजस्व)	५५
१८—सय्यद मुहम्मद जमीन वि० एस० डी० ओ०	,, ,,	५१
१९—हरद्वारी वि० गुलजारी	,, ,,	५२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि पत्रिका

[लेख खंड]

वर्ष २] श्रावण (सौर) सं० २०१५ : शक १८८० : जुलाई-अगस्त १९५८ [अंक ९

संपादकीय

भारत की न्याय पद्धति पर विचार करते हुए हमें भारतीय वातावरण, यहाँ की परंपरा विचार पद्धति, भारतीय मनोविज्ञान तथा आध्यात्मिक विचार की आधार शिला पर भी ध्यान देना आवश्यक होगा। इंगलैंड या दूसरे देशों में न्याय पद्धति में जो परिवर्तन हुए हैं उनसे मुख मोड़ने की आवश्यकता जहाँ हमें संकीर्ण बनावेगी वहीं दूसरी ओर यहाँ की अर्वाचीन तथा प्राचीन संस्कृति और सभ्यता की पृष्ठभूमि को त्याग करके किसी विदेशी न्यायपद्धति का अंधाधुंध अनुकरण भी हमारी सफलता में बाधक हुए बिना नहीं रहेगा। हमारे दृष्टिकोण में विस्तार होना चाहिए पर वह दृष्टिकोण ऐसा न हो जो यहाँ के आधार भूत सिद्धांतों और मूल प्रवृत्तियों के अध्ययन से शून्य हो।

जिस संस्कार में आज तक मानवता का पालन हुआ है उसकी भावनाओं से कानून में यदि मुठभेड़ हुई तो कानून चकनाचूर होकर रहेगा और उसके प्रति कभी आदर नहीं होगा। कानून की मर्यादा का पालन हो या कानून का अतिक्रमण करके भी न्याय के वास्तविक स्वरूप की रक्षा की जाय सिद्धांततः इनमें से एक को ग्रहण करना होगा।

साधारण सी बात है। राम ने रजक की बातों पर सीता का परित्याग किया। कानून की आँखों में यह राम का दोष था। बिना साक्षी लिए रजक की बातों की पुष्टि न होने पर भी राम को ऐसा नहीं करना चाहिए था। राम भी यह अनुभव करते थे कि रजक की बातों का कोई आधार नहीं है पर कानून एक ओर था, न्याय दूसरी ओर। उन्हें समस्त नर नारी के दिलों को जीतना था जो कानून के तर्क के अनुसार हो नहीं सकता था। राजा का कर्तव्य था न्याय की मर्यादा स्थापित करना। उस मर्यादा पालन में पीड़ा थी पर समाज में लोक कल्याण की भावना को जाग्रत करने तथा न्याय में आस्था उत्पन्न करने की एक प्रबल आकांक्षा थी; उसमें सीता झुलस उठीं, राम कराह उठे पर वह न्याय आज भी अपने एक ठोस रूप में वर्तमान है और आज भी वह न्याय हमें अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूक करने के लिये एक सजीव कहानी है। उसी प्रकार भीष्म पितामह की कहानी है। पिता के लिये उन्होंने अपने आप की आहुति दे दी। राज्य का मोह छोड़ दिया। जीवन भर ब्रह्मचारी रहे। कानून से उनके अधिकारों की रक्षा हो सकती थी किंतु उस स्थिति में पितृ भक्ति के बीच संघर्ष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जाता। रणक्षेत्र में उन्होंने अपनी मृत्यु का मार्ग स्वयं बतला कर न्याय पक्ष का समर्थन किया। विधान बनाने के पीछे एक उद्देश्य होता है कि समाज की मर्यादा की रक्षा हो, उसमें शांति बनी रहे, संघर्ष कम हो और एक दूसरे के स्वाभिमान की रक्षा करें।

कानून से भी बड़ी वस्तु वह है जिसके लिये कानून बनाया गया। इसलिए धर्म का स्वरूप कानून से बड़ा था। चाल क्या हो, कौन पथ श्रेयस्कर है और कौन भयावह यह सब धर्म के अंतर्गत था। यह चाल किसी काल विशेष से सीमित नहीं थी इसका अर्थ व्यापक था। युगों की अनुभूति से जो भी श्रेयस्कर प्रतीत हुआ उसे ग्रहण करके सत्पथ का उपदेश दिया गया, उसी पर आचरण करने की प्रेरणा हुई। कार्य करने का एक अभ्यास बन गया, उससे एक संस्कार का जन्म हुआ। यह एक व्यक्ति का संस्कार नहीं संपूर्ण समाज का संस्कार बन गया। सोचने की, कार्य करने की एक पद्धति बन गई। कानून बनाकर उससे कोई विरत करना चाहे तो मानस में उथल पुथल मच जायगी और हमारे आदर्शों से मुठभेड़ होगा। जब हृदय में एक बार पाप के प्रति घृणा उत्पन्न हो गई तो मनुष्य पाप से बच सकता है। राम राज्य नियम या देश परंपरा दृष्टि में राज्य पाने के अधिकारी थे। उसी प्रकार संविदा के आधार पर भरत को अधिकार होता, कैकेयी के वरदान को आज की संविदा की संज्ञा दी जा सकती है। कैकेयी और राजा दशरथ में यह संविदा हुई थी। कानून के आधार पर दोनों व्यक्ति अपने अपने अधिकारों के लिये लड़ सकते थे। राज्य की परंपरा राम के पक्ष में थी और संविदा कैकेयी के पक्ष में थी पर यहाँ कानून नहीं देखा गया। अपनी संस्कृति और सभ्यता पर दृष्टिपात किया गया। कानून के विपरीत भी जाकर उन्होंने मर्यादा के सेतु का निर्माण किया। कानून अधिकारों की रक्षा के लिये साधन प्रस्तुत करता है पर उन अधिकारों का परित्याग करना कानून से भी बड़ा है। आज कानून ने यहाँ की परंपरा में एक मोड़ उत्पन्न कर दिया है। राजा के हाथों में शक्ति थी, शासन था, सेना थी पर उस राजा से बड़ा वह था जो जंगल में रहकर राज्य नियमों का उपदेश करता था। चाणक्य की कुटिया में जो नियम बनता था उससे सम्राट शासित होता था। उस समय न्याय और धर्म ही प्रमुख था कानून गौड़।

—सिद्धनाथ सिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पूर्वानुबद्ध)

४—शुद्ध संपत्ति में कुछ परिसंपत् भी संमिलित हैं—

(१) किसी व्यक्ति की शुद्ध संपत्ति की गणना करते समय उसमें उसकी,—

(अ) परिसंपत् का मूल्य जो मूल्यांकन की तिथि को—

(१) उसकी स्त्री का है और जिसे उस व्यक्ति ने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में हस्तांतरित कर दिया है किंतु इसके लिये वह परिसंपत छोड़ दी जायगी जो पर्याप्त प्रतिफल के बदले में हस्तांतरित कर दी गई हो या अलग रहने के संविद् के संबंध में दे दी गई हो, अथवा

(२) अवयस्क बच्चे का है और जो विवाहित पुत्री न हो तथा जिस परिसंपत् को उस व्यक्ति ने पर्याप्त प्रतिफल के बदले में न देकर किसी अन्य प्रकार दे दिया हो, अथवा

(३) किसी व्यक्ति या व्यक्ति के उस समुदाय का हो और जिसे उस व्यक्ति ने उस व्यक्ति के लाभ या उसकी पत्नी या अवयस्क पुत्र के लाभ के लिये बिना पर्याप्त प्रतिफल के किसी अन्य प्रकार से हस्तांतरित कर दिया हो, अथवा

(४) (अ) किसी व्यक्ति अथवा व्यक्ति के समुदाय का हो जिसे उस व्यक्ति ने उसके लिये हस्तांतरित कर दिया हो और हस्तांतरण अप्रतिसंहार्य (इरेवोकेबुल) न हो — चाहे उपर्युक्त वाक्यांशों में से किसी में अभिदिष्ट परिसंपत् जिस रूप में हस्तांतरण की गई हो उसी रूप में हो या अन्य प्रकार से हो

(ब) फर्म की संपत्ति या समुदाय की संपत्ति का मूल्य होगा जब कि करदाता उस फर्म में भागीदार हो या व्यक्तियों के उस समुदाय का सदस्य हो और यह मूल्य निर्धारित प्रकार से निश्चित होगा।

(२) उपधारा (१) वाक्य खंड (बी०) में अभिदिष्ट संपत्ति के मूल्यांकन के संबंध में कोई नियम बनाते समय बोर्ड तत्कालीन उस प्रवर्ती विधि का ध्यान रखेगा जो फर्म के या व्यक्तियों के समुदाय के विघटन के समय जैसी अवस्था हो उसके भागीदारों के बीच हिसाब किताब ठीक करने के ढंग से संबंध रखता हो।

(३) उपधारा के वाक्य खंड (ए०) के अनुसार जहाँ किसी परिसंपत् का मूल्य करदाता की शुद्धि संपत्ति' में संमिलित किया जानेवाला हो वहाँ जहाँ तक ऐसा ऋण परिसंपत् से संबंधित करने योग्य हो हस्तांतरिती का वह ऋण जो मूल्यांकन की तिथि को था ऐसे मूल्य में से घटा दिया जायगा।

(४) उपधारा (१) के वाक्य खंड (ए०) में दी गई कोई बात ऐसे हस्तांतरण में लागू नहीं होगी जिसको कि उस व्यक्ति ने पहली अप्रेल १६५६ के पहले किया है और इस प्रकार हस्तांतरण किए हुए परिसंपत् का मूल्य उसकी शुद्ध संपत्ति की गणना करते समय संमिलित नहीं किया जायगा।

५—वह परिसंपत् जो अप्रतिसंहार्य हस्तांतरण के अंतर्गत् हस्तांतरित कर दिया गया है उसका मूल्य जब उसके प्रतिकार का अधिकार प्राप्त होता है हस्तांतरकर्ता की शुद्ध संपत्ति की गणना करते समय उसमें संमिलित करने योग्य होगा।

व्याख्या—इस धारा के प्रयोजन के लिये अभिव्यक्ति "हस्तांतरण" में कोई निवर्तन, न्यास, संविदा, संविद् या व्यवस्था संमिलित है और किसी "अप्रतिसंहार्य हस्तांतरण" में उस परिसंपत का हस्तांतरण संमिलित है जो इसके विलेख के अनुबंधों द्वारा यह निश्चित करता है कि ६ वर्ष से अधिक तक के समय के लिये यह अभिखंडित नहीं किया जा सकता अथवा हस्तांतरिती के जीवन काल तक यह अभिखंडित नहीं किया जा सकता।

५—कुछ परिसंपत् के विषय में छूट—

किसी करदाता द्वारा निम्नलिखित परिसंपत् के विषय में संपत्ति कर देय नहीं होगा और इस प्रकार के परिसंपत् करदाता की शुद्ध संपत्ति में संमिलित नहीं किए जायँगे—

(१) उसकी कोई संपत्ति जो वह न्यास या अन्य किसी विधिक बंधनों के अंतर्गत किसी सार्वजनिक प्रयोजन के लिये जो भारत में दातव्य या धर्मार्थ प्रकृति का समझा जाता हो धारण करता है;

(२) करदाता की वह संपत्ति जो हिंदू अविभाजित परिवार में हो और जिसका कि करदाता एक सदस्य है;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) कोई एक भवन जो कि केंद्रीय सरकार द्वारा राज्य विलयन (कराधन छूट) आदेश १९४९ के अनुच्छेद १३ अथवा भाग बी० राज्य (कराधन छूट) आदेश १९५० के अनुच्छेद १५ के अंतर्गत किसी शासक का सरकारी निवासस्थान घोषित हो चुका है और जो भवन ऐसे शासक के धारण में है।

(४) भवन जो केवल करदाता का हो और वही इसका प्रयोग अपने निवास स्थान के लिये करता हो और वह ऐसे स्थान पर स्थित हो जहाँ की जनसंख्या दस हजार से अधिक न हो और जो उस क्षेत्र से पाँच मील से अधिक दूरी पर हो जहाँ के लिये कि कोई नगर-पालिका हो और उस क्षेत्र की जनसंख्या दस हजार से अधिक हो।

(५) कोई एकस्व या प्रतिलिप्याधिकार (पेटेंट ऐंड कापीराइट) जो करदाता का हो।

किंतु प्रतिबंध यह है कि वे सब उसके व्यापार और व्यवसाय के परिसंपत् न हों और उनसे कोई आय या किसी प्रकार का लाभ नहीं होता।

(६) करदाता का किसी आगोप-लेख (इंश्योरेंस पालिसी) की वह संपत्ति जो उस रुपए के संबंध में जो मिलनेवाला और करदाता को देय होता है उसके पहले की अवस्था में;

(७) करदाता को अपने स्वामी से पहले की की हुई सेवाओं के बदले में मिलनेवाली पेंसन या अन्य जीवन वार्षिकी को प्राप्त करने का अधिकार;

(८) करदाता के कमरे के सामान, घरेलू सामान, पहनने के वस्त्र भोजन के तथा अन्य सामान जो उसके घरेलू तथा व्यक्तिगत प्रयोग के लिये रखा गया हो;

(९) करदाता का खेती करनेवाला औजार;

व्याख्या—इस उपवाक्य के प्रयोजनों के लिये औजार में चाय या अन्य रोपण में काम में लाई जाने-वाली मशीनें या प्लांट संमिलित नहीं हैं जो खेती के उत्पत्ति के कामों में आती हैं या खेती से उत्पन्न हुए पदार्थों से कोई सामान बनाने के काम में लाई जाती हैं।

(१०) औजार या अन्य कल पुर्जे जो करदाता के व्यवसाय के लिये आवश्यक हैं किंतु यह अधिक से अधिक बीस हजार रुपए तक के मूल्य के अधीन होगा;

(११) कल पुर्जे या अन्य सामान जो करदाता द्वारा वैज्ञानिक आविष्कार के लिये प्रयोग किए जाते हैं;

(१२) कला, पुरातत्व, वैज्ञानिक, कला-संग्रह, हस्तलेख या पुस्तकों संबंधी कोई काम जो करदाता का है और उसका अभिप्राय उसे वेचने का नहीं है;

(१३) कोई ड्राइंग, चित्रकारी, फोटोग्राफ मुद्रण और अन्य कोई दायस्व जो उपवाक्य (१२) में नहीं आता और जिसे वेचने का अभिप्राय नहीं है किंतु उसमें रत्नाभूषण संमिलित नहीं है;

१४—किसी शासक के धारण में वह रत्नाभूषण जो उसकी व्यक्तिगत संपत्ति नहीं है और जो इस अधिनियम के प्रारंभण के पहले केंद्रीय सरकार द्वारा उसका दायस्व मान्य हो चुका है अथवा जहाँ इस प्रकार की कोई मान्यता नहीं है और जिसे बोर्ड केंद्रीय सरकार द्वारा इस संबंध में बनाए गए नियमों के अधीन इस अधिनियम के अंतर्गत पहली बार संपत्ति कर के कर निर्धारण के समय उसका दायस्व (एयरलूम) मान्य कर ले;

१५—करदाता के रत्नाभूषण जो अधिक से अधिक २५ हजार के मूल्य के अधीन होंगे;

१६—दस वर्ष कोष बचत में जमा किया हुआ प्रमाण पत्र, १५ वर्ष की वार्षिकी प्रमाण पत्र, पोस्ट आफिस सेविंङ्स बैंक में जमा की हुई धन राशि, पोस्ट आफिस कैश प्रमाण पत्र और पोस्ट आफिस नेशनल सेविंङ्स प्रमाणपत्र जो करदाता का हो;

१७—यदि करदाता वेतन पाता है तो उसके स्वामी द्वारा रखा हुआ उसका प्राविडेंट फंड जो प्राविडेंट फंड अधिनियम १९२५ के अंतर्गत है या आयकर अधिनियम के अध्याय ९-ए० के अंतर्गत प्राविडेंट फंड मान्य है;

१८—वह संपत्ति जिसे करदाता सरकार से वीरता या योग्यता के बदले पावे और जो केंद्रीय सरकार द्वारा प्रतिस्थापित हो या अनुमोदित हो;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१६—किसी भी अवस्था में जिसमें कि करदाता एक कंपनी हो करदाता द्वारा किसी अन्य कंपनी में उसके भाग का मूल्य;

२०—करदाता का किसी कंपनी में उसके भाग का मूल्य जो धारा ४५ के उपवाक्य डी० में अभिदिष्ट है, यदि संबद्ध मूल्यांकन की तिथि को इस अधिनियम के उपबंध उक्त धारा के उपबंधों के कारण उस कंपनी में लागू न हों;

(२१) किसी कंपनी की शुद्ध संपत्ति का वह भाग जो कंपनी कि धारा ४५ के उपवाक्य डी० की व्याख्या के अभिप्राय के अंतर्गत प्रयोजनों के लिये भारतवर्ष में औद्योगिक कार्य के लिये स्थापित की गई है और जो कि इसके औद्योगिक कार्य के सारभूत विस्तार द्वारा इस अधिनियम के प्रारंभण के पश्चात् स्थापित एक अलग एवं नवीन इकाई में है;

किंतु प्रतिबंध यह है कि:—

(१) (अ) ऐसी इकाई के लिये अलग लेखा रखा जाता हो; और

(ब) धारा ४५ के उपवाक्य (डी०) में उल्लिखित शर्तों का ऐसी इकाई के संस्थापन के संबंध में पालन किया गया हो

किंतु आगे प्रतिबंध यह है कि ऐसी कंपनी को यह छूट केवल पाँच लगातार कर निर्धारण के वर्षों तक के लिये होगी और इस अवधि का प्रारंभण जिस दिन कि वह कंपनी ऐसी इकाई के संस्थापन का कार्य आरंभ करती है उस तिथि से आगे दूसरे कर निर्धारण वर्ष से होगा।

(२) किसी करदाता द्वारा संपत्तिकर उसके द्वारा सरकार के पास जमा की हुई धनराशि में या सरकारी प्रतिभूति में या उस स्थानीय प्राधिकरण में जमा की हुई धनराशि में स्थानीय प्राधिकरण का उल्लेख उपधारा (१) के वाक्यखंड (१६) में नहीं है और जिसे केन्द्रीय सरकार सरकारी गजट की विज्ञप्ति द्वारा संपत्ति कर से मुक्त कर दे, देय नहीं होगा; किंतु जमा की हुई ऐसी धनराशि का मूल्य अथवा छूट दी हुई ऐसी प्रतिभूति का मूल्य करदाता की शुद्ध संपत्ति की गणना करते समय संमिलित किया जायगा।

(३) उपधारा (१) में किसी बात के रहते हुए भी किसी करदाता द्वारा संपत्ति कर उपधारा १ के उपवाक्य (१६), उपवाक्य १६, उपवाक्य २० में अभिदिष्ट परिसंपत् के विषय में किसी कर निर्धारण वर्ष के लिये देय होगा अथवा उपधारा २ में अभिदिष्ट परिसंपत् के विषय में देय होगा जब कि उसकी परिसंपत् निम्नलिखित श्रेणियों में न आती हो—

अ—किसी कंपनी के भागों की दशा में उस दिन से जिस दिन कि कंपनी द्वारा भाग पहले पहल जारी किया गया, अथवा कम से कम ६ महीने की अवधि के लिये जिसकी समाप्ति संबद्ध मूल्यांकन की तिथि को होती हो—इनमें से जो भी कम हो;

और—

ब—अन्य परिसंपत् की अवस्था में कम से कम ६ महीने की अवधि के लिये जिसकी समाप्ति संबद्ध मूल्यांकन की तिथि को होती हो

६ - भारतवर्ष के बाहर के ऋण एवं परिसंपत् (ऐसेट्स) का छोड़ दिया जाना।

किसी व्यक्ति या अविभाजित हिंदू परिवार की शुद्ध संपत्ति की उस वर्ष की गणना करते समय जो मूल्यांकन की तिथि को समाप्त होता हो और जो कि भारतवर्ष में नहीं रहता या यदि निवासी हो तो साधारणतया निवास न करता हो या उस कंपनी की शुद्ध संपत्ति की गणना करते समय जो कि उक्त तिथि को भारत में न हो निम्नलिखित की गणना नहीं की जायगी—

(१) परिसंपत् और ऋण जो कि भारत के बाहर स्थित हो, और—

(२) भारतवर्ष में परिसंपत् का मूल्य जो कि करदाता पर के ऋण से संबद्ध हो और कुछ भी हो जब इस ऋण पर देय कोई हित (इंटरेस्ट) आयकर अविनियम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की धारा ४ (३) के अंतर्गत करदाता की कुल आय में नहीं जोड़ा जाता।

व्याख्या १—मूल्यांकन तिथि को समाप्त होनेवाले वर्ष में किसी व्यक्ति या हिंदू अविभाजित परिवार का भारत में निवासी न होना या निवासी होना किंतु भारत में साधारणतया निवासी न होना तब समझा जायगा जब कि वह व्यक्ति या परिवार जैसी अवस्था हो आयकर अधिनियम के अभिप्राय के अंतर्गत निवासी नहीं है या यदि निवासी है तो साधारणतया निवासी नहीं है।

व्याख्या २—मूल्यांकन तिथि को समाप्त होनेवाले वर्ष में किसी कंपनी का भारत में होना तब समझा जायगा जब कि:—

(अ) वह एक ऐसी कंपनी हो जो कंपनी अधिनियम १९५६ के अंतर्गत बनी हो और पंजयित हो या उक्त अधिनियम के अभिप्राय के अंतर्गत वह कंपनी वर्तमान हो; अथवा

(ब) उस वर्ष में कंपनी का नियंत्रण और कंपनी की व्यवस्था सभी भारत में स्थित हो।

७—परिसंपत् का मूल्य कैसे तय किया जायगा—

(१) किसी परिसंपत् का मूल्य (रोकड़ को छोड़कर) जो इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिये अनुमानित होगा वह संपत्तिकर अधिकारी के विचार से संपत्ति की वह कीमत होगी जो कि मूल्यांकन तिथि को खुले हाट में यदि बेचा जाय तो आवे।

(२) उपधारा १ में किसी बात के रहते हुए भी,

(अ) यदि करदाता ऐसा व्यापार करता है जिसका लेखा ठीक से रखा जाता है तो संपत्तिकर अधिकारी करदाता के इस व्यापार के अलग अलग परिसंपत् पर विचार न करके सारे व्यापार के परिसंपत् के शुद्ध मूल्य पर विचार करेगा और ऐसा करते समय मूल्यांकन तिथि की स्थिति विवरण (बैलेंश सीट) को ध्यान में रखेगा और परिस्थिति के अनुसार आवश्यक समायोजन (ऐडजस्टमेंट) करेगा।

(ब) जब कि करदाता जो व्यापार करता है वह एक ऐसी कंपनी है जो भारत में निवास नहीं करती और भारत में कारबार के संबंध में कोई अलग स्थिति विवरण न होने से उपवाक्य (अ) के अनुसार गणना नहीं की जा सकती तो संपत्तिकर अधिकारी भारत में उस व्यापार की परिसंपत् का शुद्ध मूल्य चाहे जहाँ व्यापार होता हो उन सबकी शुद्ध संपत्ति का वह अनुपात समझेगा जिसका निश्चय उपर्युक्त प्रकार से उस आय के रूप में किया जाता है जो मूल्यांकन तिथि को समाप्त होनेवाले वर्ष के लिये भारत के किसी व्यापार से होती हो और इसका उपर्युक्त अनुपात उन समस्त आय से हो जो कि उस वर्ष चाहे जहाँ के व्यापार से हुई हो।

अध्याय ३

संपत्तिकर प्राधिकरण

८—संपत्तिकर अधिकारी

प्रत्येक आयकर अधिकारी जिसका अधिक्षेत्र या कार्य करने का अधिकार आयकर अधिनियम के अंतर्गत किसी व्यक्ति हिंदू अविभाजित परिवार या कंपनी के संबंध में होता है वह इस अधिनियम के अंतर्गत संपत्तिकर अधिकारी का काम ऐसे व्यक्ति, हिंदू अविभाजित परिवार या कंपनी के संबंध में पूरा करेगा।

९—संपत्तिकर के अपील के सहायक आयुक्त

बोर्ड इस अधिनियम के अंतर्गत जितने व्यक्तियों को उचित समझे उतने व्यक्तियों को संपत्तिकर की अपील के सहायक आयुक्त का काम करने के लिये अधिकृत कर सकता है और इस प्रकार अधिकृत होने पर अपील के सहायक आयुक्त ऐसे क्षेत्र या ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियों के ऐसे वर्ग के संबंध में बोर्ड जैसा निर्देश करे कार्य करेंगे और उस समय जब कि ऐसा निर्देश उसी क्षेत्र में, उन्हीं व्यक्तियों के लिये या उन्हीं व्यक्तियों के वर्ग के लिये कार्य दो या दो से अधिक अपील के आयुक्तों को सौंप दिया जाता है तब वे अपना कार्य बोर्ड के ऐसे आदेश के अनुसार करेंगे जो कि कार्य वितरण या कार्य का अलग अलग व्यक्तियों को रूप से निर्धारित करके दे दिए जाने के संबंध में हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१०—संपत्तिकर के आयुक्त

बोर्ड जितने व्यक्तियों को उचित समझे इस अधिनियम के अंतर्गत संपत्ति कर के आयुक्त का कार्य करने के लिये नियुक्त कर सकता है और इस प्रकार अधिकृत होने पर संपत्ति कर के आयुक्त ऐसे क्षेत्र, ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियों के ऐसे वर्ग के संबंध में अपना काम करेंगे जिसे कि बोर्ड निर्देश करे और जहाँ पर निर्देश द्वारा उसी क्षेत्र उन्हीं व्यक्तियों या उन्हीं व्यक्तियों के वर्गों के संबंध में कार्य दो या दो से अधिक संपत्ति कर के आयुक्तों को सौंप दिया गया है तो उनका अधिक्षेत्र सहवर्ती होगा किंतु वह बोर्ड के उस आदेश के, यदि कोई हो अधीन होगा जिसे कि बोर्ड किए जाने वाले कार्य के वितरण या उसे अलग अलग बाँट दिए जाने के संबंध में पारित करे।

११—संपत्ति कर के निरीक्षक सहायक आयुक्त

संपत्ति कर के आयुक्त जितने व्यक्तियों को उचित समझें इस अधिनियम के अंतर्गत संपत्ति कर के निरीक्षक सहायक आयुक्त का कार्य करने के लिये अधिकृत कर सकते हैं और इस प्रकार अधिकृत होने पर संपत्ति कर के निरीक्षक सहायक आयुक्त ऐसे क्षेत्र, ऐसे व्यक्तियों या व्यक्तियों के ऐसे वर्गों के संबंध में अपना कार्य करेंगे जिसे आयुक्त निर्देश करें और जहाँ उसी क्षेत्र में, उन्हीं व्यक्तियों के प्रति या व्यक्तियों के उन्हीं वर्गों के संबंध में कार्य दो या दो से अधिक निरीक्षक सहायक आयुक्तगण को सौंप दिया गया है वे अपना कार्य आयुक्त के उस आदेश के अनुसार करेंगे जो कि कार्य के वितरण या उसके अलग अलग बाँट दिए जाने के संबंध में हो।

१२—संपत्ति कर अधिकारी संपत्ति कर के आयुक्त और संपत्ति कर के निरीक्षक सहायक आयुक्त के अधीन होंगे।

संपत्ति कर अधिकारी जो कि संपत्ति कर के आयुक्त और संपत्ति कर के निरीक्षक सहायक आयुक्त के अधिक्षेत्र के भीतर कार्य करते हों उनके अधीन होंगे।

१३—संपत्ति कर के अधिकारीगण को बोर्ड के आदेश इत्यादि का पालन करना होगा।

इस अधिनियम के अंतर्गत कार्य संपादन करने के लिये नियुक्त समस्त अधिकारीगण एवं अन्य व्यक्ति बोर्ड के आदेश, अनुदेश और निदेश का पालन करेंगे,

किंतु प्रतिबंध यह है कि बोर्ड द्वारा कोई ऐसा आदेश, अनुदेश या निदेश नहीं दिया जायगा जो कि संपत्ति कर के अपील के सहायक आयुक्त के अपील संबंधी स्वविवेक में हस्तक्षेप करे।

अध्याय ४

कर निर्धारण

१४—संपत्ति विवरण

(१) प्रत्येक व्यक्ति जिसकी शुद्ध संपत्ति मूल्यांकन तिथि को वह धन राशि थी जिस पर कि वह इस अधिनियम के अंतर्गत संपत्ति कर का दायी है तो वह कर निर्धारण तत्संबद्ध वर्ष में ३० जून के पहले संपत्ति कर अधिकारी के यहाँ निर्धारित प्रपत्र पर विवरण भेज देगा और इस विवरण में मूल्यांकन तिथि को उसकी शुद्ध संपत्ति के बारे में तथ्य रहेगा तथा यह विहित ढंग पर सत्यापित रहेगा।

किंतु प्रतिबंध यह है कि कर निर्धारण वर्ष जो पहली अप्रैल १९५७ से आरंभ होता है उसके लिये विवरण ३१ दिसंबर से पहले किसी समय बनाया जायगा।

(२) यदि संपत्ति कर अधिकारी का यह विचार होता है कि किसी व्यक्ति की शुद्ध संपत्ति एक ऐसी धन राशि है जिस पर इस अधिनियम के अंतर्गत संपत्ति कर लग सकता है तब उपधारा (१) में किसी बात के रहते हुए भी वह ऐसे व्यक्ति पर एक नोटिस तामिल कर सकता है कि जैसा नोटिस में दिया हुआ हो ऐसी अवधि के भीतर जो ३० दिन से कम न हो निर्धारित प्रपत्र पर विवरण दे और यह विवरण निर्धारित प्रकार से सत्यापित हो तथा जिसकी माँग नोटिस में हो उसके संबंध में अन्य विवरण के साथ नोटिस में दी गई मूल्यांकन तिथि को उसकी शुद्ध संपत्ति के बारे में हो।

(३) संपत्ति कर अधिकारी यदि इस बात से संतुष्ट हो जाय कि ऐसा करना आवश्यक है तो इस अधिनियम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अंतर्गत विवरण दी जानेवाली तिथि को बढ़ा सकता है।

१५—विवरण निश्चित तिथि के बाद तथा विवरण का संशोधन।

यदि किसी व्यक्ति ने धारा १४ में दिए गए समय के भीतर विवरण नहीं दिया है या उक्त अधिनियम के अंतर्गत विवरण देने पर उसमें कोई गलती पाता है या कोई बात छूट गई रहती है तो जैसी स्थिति हो वह विवरण या संशोधित विवरण कर निर्धारण होने के पहले किसी समय दे सकता है।

१६—कर निर्धारण

(१) यदि संपत्ति कर अधिकारी करदाता की उपस्थिति या उसके साक्ष्य के बिना ही इस बात से संतुष्ट हो जाता है कि धारा १४ के अंतर्गत दिया हुआ विवरण पूर्ण है तो वह करदाता को शुद्ध संपत्ति को निर्धारित करेगा और उस पर उसके द्वारा देय संपत्ति कर की धन राशि निश्चित कर देगा।

(२) संपत्ति कर अधिकारी यदि इस प्रकार संतुष्ट नहीं होता तो वह करदाता पर एक नोटिस तामील कर देगा कि नोटिस में दी गई तिथि को या तो वह स्वतः उपस्थित होवे या उक्त तिथि को अपने विवरण के समर्थन में कोई साक्ष्य उपस्थित करे।

(३) उस व्यक्ति द्वारा दिए गए साक्ष्य पर विचार करने के बाद या किसी विषय पर साक्ष्य उपस्थित किए जाने की माँग पर ऐसे उपस्थित किए गए साक्ष्यों का परीक्षण करने के बाद संपत्ति कर अधिकारी अपने लिखित आदेश द्वारा उसकी शुद्ध संपत्ति का निर्धारण करेगा और वह धन राशि निश्चित कर देगा जो कि उस व्यक्ति द्वारा संपत्ति कर के रूप में देय होगी।

(४) इस अधिनियम के अंतर्गत कर निर्धारण के लिये संपत्ति कर अधिकारी किसी भी ऐसे व्यक्ति पर जिसने धा० १४ (१) के अंतर्गत विवरण प्रस्तुत किया है या जिस व्यक्ति पर उक्त अधिनियम की उपधारा (२) के अंतर्गत नोटिस तामील हुई है नोटिस इस बात के लिये तामील कर सकता है कि नोटिस में दी गई तिथि को ऐसा लेखा, अभिलेख या अन्य विलेख उपस्थित करे जिसकी आवश्यकता संपत्ति कर अधिकारी को प्रतीत हो।

(५) यदि कोई व्यक्ति धा० १४ की उपधारा (२) के अंतर्गत दी गई नोटिस के उत्तर में विवरण नहीं देता है या उपधारा २ या उपधारा ४ के अंतर्गत जारी की हुई नोटिस के अनुबंधों का पालन नहीं करता है तब संपत्ति कर अधिकारी अपने सर्वोत्तम निर्णय के अनुसार कर निर्धारण करेगा और ऐसे कर निर्धारण के आधार पर वह धनराशि निश्चित करेगा जो कि ऐसे व्यक्ति द्वारा संपत्तिकर के रूप में देय होगी।

१७—कर निर्धारण से बची हुई संपत्ति —

यदि संपत्ति कर अधिकारी—

(अ) को विश्वास हो जाता है कि धारा १४ के अंतर्गत किसी कर निर्धारण वर्ष के लिये करदाता अपनी शुद्ध संपत्ति का विवरण देने में चूक गया है या इस वर्ष के कर निर्धारण के लिये समस्त आवश्यक तत्वों को पूर्ण रूपेण और ठीक ठीक प्रकट करने में असफल रहा है तथा उस वर्ष में उसकी शुद्ध संपत्ति कर लगने से बच गई है—चाहे यह कम मूल्य पर कर निर्धारण द्वारा या बहुत ही कम दर से कर निर्धारण द्वारा या अन्य प्रकार से हों, अथवा—

(ब) यदि संपत्ति कर अधिकारी को उसके पास आई हुई किसी सूचना द्वारा यह विश्वास हो जाता है कि जैसा उपवाक्य (ए०) में कहा गया है कोई चूक या असफलता नहीं हुई है जिससे कि उसकी शुद्ध संपत्ति उस वर्ष कर लगने से बच गई हो चाहे कम मूल्य पर कर निर्धारण द्वारा या बहुत ही कम दर पर निर्धारण द्वारा या अन्य प्रकार से—तब अन्य किसी बात के रहते हुए भी :— (उत्तरानुबद्ध)

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६ दिसंबर १९४२ को उक्त जासू भाई ने अपील कर्ताओं को लिखा कि उक्त संविदा अब प्रभावशून्य हो चुकी है। इसपर १७ दिसंबर १९४२ को अपीलकर्ता ने लिखा कि अपने १५ अगस्त १९४२ के पत्र के आधार पर उत्तरवादीगण पर सामान भेजने का पूरा बंधन है और उक्त संविदा अब तक चालू है और यदि उत्तरवादीगण ने इस पर ध्यान नहीं दिया और सामान नहीं भेजा तो बाध्य होकर अपीलकर्ताओं को कानून की शरण लेनी पड़ेगी। इसके उत्तर में उत्तरवादी ने वही पुरानी बात दोहराई। इसपर अपीलकर्ताओं ने सामानों की माँग औपचारिक ढंग पर की किंतु जब उसका पालन नहीं हुआ तो अपीलकर्ताओं ने १,५२,३३४ रु० ८ आना० ६ पा० तक ब्याज एवं परिव्यय के सहित हानिपूर्ति का वाद निवेशित कर दिया।

वादपत्र में कहा गया कि वाद अवधि के भीतर है क्योंकि १५ अगस्त १९४२ के पत्र द्वारा समय बढ़ाया गया है। वादपत्र का विरोध प्रतिवादियों ने दो आधार पर किया कि पक्षों के बीच समय के बढ़ाए जाने के विषय में कोई संविद् नहीं हुई है इसलिए यह वाद काल बाधित है। अन्वीक्षा न्यायालय ने कतिपय वाद पद बनाया जिनमें से दो से हमारा यहाँ संबंध है। पहला संविदा के पालन के विषय में समय के बढ़ाने पर और दूसरा अवधि का अभिकथन।

अन्वीक्षा न्यायालय ने इन दोनों वादपदों का निर्णय वादी अपीलकर्ता के पक्ष में दिया किंतु अपील करने पर उच्च न्यायालय का निर्णय हुआ कि उत्तरवादी ने समय बढ़ाने की संविद् को स्वीकार किया ही नहीं और यदि १५ अगस्त १९४२ के पत्र के बारे में यह मान भी लिया जाय कि समय बढ़ाने की संविद स्वीकार की गई तो भी वह इतना अस्पष्ट है कि उस पर कोई कानूनी अधिकार आधारित हो ही नहीं सकता। उच्च न्यायालय ने वादी अपीलकर्ता के इस कथन को भी नहीं माना कि प्रतिवादी-उत्तरवादी गण का पश्चात्वर्ती आचरण ऐसा था जिससे समझा जा सकता था कि उन्होंने समय बढ़ाना और उसे कार्यरूप में परिणित करना स्वीकार किया था। अतः उच्च न्यायालय ने वाद को अवधि बाधित मानकर उत्सर्जित कर दिया। यतः इस मुकदमे की धन राशि २०,००० रुपए से अधिक की है और अन्वीक्षा न्यायालय की डिग्री के प्रतिकूल उच्च-न्यायालय ने निर्णय दिया है इसलिए यह अपीलकर्ताओं का अधिकार है कि वे हमारे समक्ष तथ्य एवं विधि दोनों प्रश्नों को उठाकर बहस कर सकते हैं।

साक्ष्यों के देखने से प्रतीत होता है कि अपील कर्ताओं ने समय का बढ़ाना स्वीकार किया और इसके लिये एक प्रमाण यह भी है कि यदि समय का बढ़ाना स्वीकार न किया गया होता तो अपीलकर्ता उस पहले की निश्चित तिथि को ही सामानों की माँग करते न कि उसके बादवाली तिथि को जिस दिन कि उन्होंने वास्तव में माँग की। पश्चात्वर्ती यह आचरण स्पष्ट करता है कि अपीलकर्ताओं ने समय का बढ़ाना स्वीकार किया।

समय बढ़ाने के लिये उसकी विधिक स्थिति पर निश्चित सिद्धांत भारतीय संविदा अधिनियम की धारा ६३ में है। उसमें है कि प्रत्येक प्रतिज्ञाती (प्रामिसी) संविदा का समय बढ़ा सकता है। यह प्रश्न कि समय बढ़ाने के लिये उसके पक्षों में सहमति किस प्रकार हो यहाँ विवादास्पद है। यह सत्य है कि समय बढ़ाने के लिये विक्रेता और क्रेता दोनों की सहमति आवश्यक है। प्रतिज्ञाती (प्रामिसी) को ही केवल यह अधिकार देना कि वह एक पक्षीय ढंग पर अपने लाभ के अनुसार समय बढ़ा ले ठीक नहीं है। दोनों पक्षों की सहमति आवश्यक है। सहमति कैसे प्रमाणित की जाय इसके लिये कोई निश्चित सिद्धांत निर्धारित नहीं किया जा सकता। पक्षों के तत्संबंधी आचरण और सामान्य परिस्थिति के आधार पर ही इसका निश्चय किया जा सकता है। प्रत्येक वाद की परिस्थिति के अनुसार उसमें दिए गए साक्ष्यों के आधार पर इस प्रश्न का निर्णय करना है। अतः इस परिस्थिति में उत्तरवादी का समय बढ़ानेवाला प्रस्ताव मौखिक साक्ष्य के आधार पर स्वीकृत माना जाना चाहिए। इस प्रश्न पर अन्वीक्षा न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीश का विचार मान्य होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किंतु इन बातों का निर्णय अपीलकर्ता के पक्ष में होने पर भी अन्य कारणों से वह सफल नहीं हो सकता। समय बढ़ानेवाले पत्र में दो शर्तें थीं। एक शर्त यह थी कि मिल में हड़ताल समाप्त हो जाय और दूसरी शर्त थी कि साधारण परिस्थिति (नार्मल कंडीशन रिस्टोर्ड) हो जाय। पहली शर्त तो स्पष्ट है क्योंकि किसी एक निश्चित समय में हड़ताल समाप्त हो सकती है। किंतु दूसरी शर्त अस्पष्ट अनिश्चित और अक्षम है। साधारण परिस्थिति पुनर्स्थापित होने में कई एक कारण हैं और उन सबको जोड़कर कहा जा सकता है कि सामान्य परिस्थिति पुनर्स्थापित हो गई। अतः दूसरी शर्त के बारे में यह निश्चित नहीं कहा जा सकता कि साधारण परिस्थिति कब स्थापित हुई और इसके स्पष्ट न होने से समय बढ़ानेवाला कोई संविद् हुआ ही नहीं।

इसके उत्तर में कहा गया है कि पहली शर्त अर्थात् हड़ताल समाप्त होना ही प्रमुख शर्त है और दूसरी शर्त निरर्थक है और व्यर्थ ही उसमें जोड़ दी गई है इसलिए संविद होना केवल पहली ही शर्त से पूरा हो जाता है। इसके लिये निकोलेन लिमिटेड वि० सिमांड्स १६५३-१ क्यू० बी० ५४६ का एक प्रमाण दिया गया। इसमें विद्वान् न्यायाधीश ने कहा था कि अस्पष्ट और निरर्थक अंश संविदा में से निकाल देने पर भी यदि संविदा का अभिप्राय स्पष्ट रहता है तो संविदा यथावत् है और केवल उस वाक्यांश के कारण सारी की सारी संविदा प्रभाव शून्य नहीं हो सकती। निर्णय के प्रसंग में विद्वान् न्यायाधीश ने उसमें कहा था कि जिनको संविदा का पालन करना नहीं होता वे पहले ही इस प्रकार के निरर्थक वाक्यांश रख देते हैं अतः इन वाक्यांशों का प्रभाव संविदा पर नहीं पड़ सकता।

किंतु इस वाद में उपर्युक्त प्रमाण लागू नहीं होता। यहाँ इन दो शर्तों पर ही समय बढ़ाने का संविद् हुआ था और बाद में जब एक शर्त निरर्थक प्रतीत हुई तो इसका अभिप्राय यह नहीं हुआ कि पक्षों ने इसे व्यर्थ ही जोड़ा था। दोनों शर्तों के मानने पर ही संविद् हुआ था और केवल इसी के आधार पर धारा ६३ के अंतर्गत यह एक वैध संविदा थी। इस बात के समर्थन के लिये १६४१ ए० सी० २५१ का इंगलैंड का एक मुकदमा है।

अतः उच्च न्यायालय का यह निष्कर्ष ठीक था कि दूसरी शर्त इतनी अस्पष्ट और अनिश्चित है कि उस पर कोई वैध अधिकार नहीं प्राप्त हो सकता और संविदा अधिनियम की धारा २६ के अंतर्गत यह प्रभावशून्य है।

उच्च न्यायालय में एक प्रश्न यह उठाया गया कि दूसरी शर्त अस्पष्ट और अनिश्चित है किंतु वह भी उच्च न्यायालय में निवेशित की गई अपील के आधार में नहीं था वरन् अलग से उठाया गया और उच्च न्यायालय ने ऐसे अभिकथन की अनुमति भी दे दिया।

उच्च न्यायालय का इसे अनुमित करना ठीक था क्योंकि यह विधि का प्रश्न है। विधि का प्रश्न यह इसलिए है कि यह एकमात्र अक्षरों के अन्वयन पर आधारित है और इसी पर संविदा में समय का बढ़ाया जाना निर्भर करता है। अतः व्यवहार प्रक्रिया संहिता के आ० ४१ नि० २ के अंतर्गत ऐसा अभिकथन उठाया जा सकता है और यदि अक्षर के अन्वयन से यह प्रतीत होता है कि शर्त अस्पष्ट और अनिश्चित है तो इस अस्पष्टता या अनिश्चितता को हटाने के लिये कोई बाहरी साक्ष्य स्वीकार नहीं किया जा सकता। साक्ष्य अधिनियम की धारा ६३ के अंतर्गत ऐसा साक्ष्य बर्जित है। यदि ऐसा साक्ष्य देने का प्रयत्न किया जाय तो पक्षों के बीच में यह एक नई संविदा बनावेगा। अतः अपीलकर्ता यह नहीं कह सकता कि उच्च न्यायालय को अस्पष्टता का अभिकथन स्वीकार नहीं करना चाहिए था।

परिणामतः उच्च न्यायालय का अस्पष्टता संबंधी निर्णय मान्य होता है और इसलिए बाद उत्सर्जित किया जाता है।

उत्तरवादी का विचार इस वादशीलता में अच्छा नहीं रहा है। वह यह कहकर आया था कि समय बढ़ाने वाला पत्र ही अधिकार के भीतर नहीं था और उसका बंधन हम पर नहीं है। उत्तरवादी की इस बात को नीचे के दोनों न्यायालयों ने नहीं माना था। उत्तरवादी तो यहाँ एक दूसरे ही आधार पर सफल हो रहा है जिसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने पहले पहल अपील में कहा था। अतः अपील असफल होती है और उत्सर्जित की जाती है किंतु साधंत परिव्यय के बारे में कोई आदेश नहीं दिया जाता है।

अपील उत्सर्जित

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ सर्वो० न्या० ६३

बंदी प्रत्यक्षीकरण (हेबियस कार्पस) की प्रकृति के लेख के लिये संविधान के अनुच्छेद ३२ के अंतर्गत प्रार्थनापत्र सं० १३५।१९५७

(२५ नवंबर १९५७ को निर्णीत)

चौधरी धरम सिंह रथी — प्रार्थी

वि०

पंजाब राज्य तथा अन्य — उत्तरवादी गण

निवारक निरोध अधिनियम (प्रिवेंटिव डिटेंशन ऐक्ट) १९५०, धा०—१०—सप्ताह के भीतर परामर्श दातृ समिति द्वारा प्रतिवेदन का न दिया जाना—निरुद्ध व्यक्तिगत स्वातंत्र्य से वंचित किए जाने के संबंध में परिवाद कर सकता है।

मुख्य न्यायाधिपति दास—

प्रार्थी करनाल के जिलाधीश के आदेश द्वारा निवारक निरोध अधिनियम की धारा ३ के अंतर्गत बंदी कर लिया गया था। प्रार्थी १८-८-१९५७ को बंदी किया गया और २९-८-१९५७ को सरकार ने इसका अनुमोदन किया। बंदी प्रत्यक्षीकरण लेख के लिये इसमें प्रार्थना की गई है।

प्रार्थनापत्र के अनुच्छेद १० (१२) में प्रार्थी का कहना है कि परामर्शदातृ समिति के समक्ष मैंने प्रतिनिवेदन किया था और दो बार इसके समक्ष उपस्थित भी हुआ किंतु उक्त समिति ने अब तक कोई आदेश पारित नहीं किया इसलिए यह निरोध विधि विरुद्ध और बुरा है।

निवारक निरोध अधिनियम की धारा १० के अंतर्गत समिति को अन्य कार्यवाही के साथ निरोध की तिथि से १० सप्ताह के भीतर प्रतिवेदन दे देना चाहिए। प्रतिवेदन पाने पर धारा ११ के अंतर्गत यदि प्रतिवेदन निरोध के विरुद्ध है तो सरकार उसे तुरत छोड़ देगी और यदि प्रतिवेदन निरोध के पक्ष में है तो सरकार या तो निरोध जारी रख सकती है या उसे छोड़ सकती है। इस दशा में सरकार यदि निरोध जारी रखना चाहती है तो वह अवधि निर्धारित कर देगी।

प्रार्थी का कहना है कि पहलेवाली स्थिति में जब कि तुरत छोड़ देने का विधान है और दूसरी स्थिति में जब कि सरकार को नया निर्णय लेना पड़ता है—दोनों ही दशा में समिति का प्रतिवेदन समय के भीतर आना बहुत ही अधिक महत्व रखता है। प्रतिवेदन की अवधि २७-१०-५७ को समाप्त हुई इसलिए २८-१०-५७ से निरोध विधि विरुद्ध हो गया है।

सरकार की ओर से विद्वान् वकील का कहना है कि प्रार्थी ने अपने प्रार्थनापत्र में यह नहीं कहा कि समिति ने प्रतिवेदन समय के भीतर नहीं दिया वरन् उसने जो कुछ कहा है वह यही कहा है कि समिति ने कोई आदेश पारित नहीं किया और आदेश पारित करने का अधिकार परामर्शदातृ समिति को नहीं है।

यह कथन मान्य नहीं हो सकता कारण कि प्रार्थी के प्रार्थनापत्र के परिच्छेद १० (१२) के पढ़ने से यही आता है कि उसे असंतोष केवल इसी बात से था कि समिति ने समय के भीतर प्रतिवेदन नहीं दिया। उसके असंतोष का तत्व यही है अतः आदेश या प्रतिवेदन का अंतर महत्त्व का नहीं है।

सरकार के विद्वान् वकील का कहना है कि इसकी सुनवाई स्थगित कर दी जाय और इस बीच हम इस बात का निश्चय कर लें कि समय के भीतर परामर्श दातृ समिति ने प्रतिवेदन दिया है कि नहीं। ऐसी परिस्थिति में मैं यह ठीक नहीं समझता की सुनवाई स्थगित की जाय कारण कि प्रार्थी ने यह बात अपने प्रार्थनापत्र में स्पष्ट कही है और इसके विरोध में सरकार ने दो शपथपत्र भी निवेशित किया है किंतु उनमें कहीं भी इस बात की चर्चा है ही नहीं। अतः स्थगित करने का कोई उपयुक्त कारण नहीं दिखाया गया।

इस परिस्थिति में किसी दूसरी बात पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है, इसलिए आदेश होता है कि जिस लेख के लिये प्रार्थना की गई है वह जारी किया जाय और प्रार्थी तुरत छोड़ दिया जाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ सर्वो० न्या० ६४

१ नवंबर १९५७

मुख्य न्यायाधिपति एस० आर० दास, न्यायमूर्ति वेंकटारामा अय्यर, न्यायमूर्ति एस० के० दास, न्यायमूर्ति सरकार तथा न्यायमूर्ति बोस

व्यवहार अपील सं० ६५।१९५७

पुरुषोत्तम लाल धिंगरा	—	अपीलकर्ता
	वि०	
भारत संघ	—	उत्तरवादी
आर० एस० खुलर	—	अंतःस्थ

(एल० पी० ए० सं० २८।१९५५, दिनांक १६-१-१९५६ पंजाब, दिल्ली से)

अ—भारतीय संविधान, अनुच्छेद ३१० और ३११—"कामन ला" के इस नियम की कि लोक सेवक का पद "क्राउन" की कृपा पर है भारत में प्रयोज्यता—(भारत सरकार) अधिनियम (१९१५) धा० ९६ बी० (१) और भारत सरकार अधिनियम (१९३५) धा० २४० (१)

ब—भारतीय संविधान अनुच्छेद ३१० के अंतर्गत संरक्षण की प्रवृत्ति—अनुच्छेद ३११ की व्याप्ति—लोक सेवक को इसका लाभ कब मिल सकता है—

स—भारतीय संविधान अनुच्छेद ३११ (२) सेवा की समाप्ति या श्रेणी में न्यूनीकरण दंड कब होता है—

द—भारतीय संविधान अनुच्छेद ३१० और ३११—लोकसेवक का स्थायी या अस्थायी पद धारण करने का अंतर— अनुच्छेद ३११ का लागू होना—

मुख्य न्यायाधिपति सुधि रंजन दास—

अपीलकर्ता रेलवे में वर्ग ३ में सेवा करता था और उसे वर्ग २ में स्थानापन्न होकर काम करने का अवसर प्रदान किया गया। उत्तरी रेलवे के मुख्य प्रबंधक ने अपने आदेश दिनांक १९ अगस्त १९५३ द्वारा अपीलकर्ता को वर्ग २ में से नीचे करके पहलेवाले वर्ग ३ में कर दिया। इस आदेश के विरुद्ध प्रार्थी ने लेख जारी करने के लिये उच्च न्यायालय में प्रार्थनापत्र दिया और न्यायमूर्ति श्री हरनाम सिंह ने प्रार्थी का प्रार्थनापत्र स्वीकार किया और आदेश दिनांक १९ अगस्त १९५३ को निराकृत किया। एकस्व-पत्र (लेटर्स पेटेंट) अपील में विभागीय न्यायासन ने न्यायमूर्ति श्री हरनाम सिंह का निर्णय उलट दिया। इसी निर्णय और आदेश के विरुद्ध पंजाब उच्च न्यायालय द्वारा समुपयुक्तता के प्रमाणपत्र दिए जाने पर यह अपील निवेशित की गई है।

थोड़े में इसके तथ्य इस प्रकार हैं:—

अपीलकर्ता १९२४ में रेलवे की सेवा में पहले पहल आया और क्रमशः उन्नति करता गया किंतु उन्नति किए हुए ये सभी पद वर्ग ३ के थे। १९५१ में वर्ग २ के एक पद के चुनाव के लिये ७ अभ्यर्थी बुलाए गए जिसमें अपीलकर्ता भी एक था। उन सातों में से अपीलकर्ता ही उक्त पद के लिये चुना गया। इसकी जो नियुक्ति पत्र की सूचना मिली उसमें लिखा था कि अपीलकर्ता को साहू राम के स्थान पर स्थानापन्न चीफ कंट्रोलर के पद पर नियुक्त किया जाता है। प्रार्थी ने नियत समय पर कार्यभार ग्रहण भी कर लिया।

अपीलकर्ता के ऊपर के अधिकारियों ने अपीलकर्ता के विरुद्ध कुछ बातें लिख दी थीं जो कि गुप्त अभिलेख में था और यह गुप्त अभिलेख जब मुख्य प्रबंधक के समक्ष पहुँचा तो उन्होंने निम्नलिखित ढंग पर अपना विचार प्रकट किया।

'इन प्रतिवेदनों को पढ़कर मुझे बहुत दुःख हुआ है। वह नीचे की श्रेणी में चला आवे जब तक कि एक अधिकारी के पद पर काम करने के अवसर पर उसमें जो कमी पाई गई है वह दूर न हो जाय। जो स्थल लाल स्याही से चिह्नित किए गए हैं उनसे वह अवगत करा दिया जाय।'

उच्च अधिकारियों ने गुप्त प्रतिवेदन में अपीलकर्ता में जो कमी पाई थी वह थी कि वह अपने निर्णय में अनावश्यक शीघ्रता करता है, उसमें अपने को महत्वपूर्ण समझने का भाव वर्तमान है-इत्यादि।

अपीलकर्ता अपने स्थानापन्न पद से नीचे आ गया।

अपीलकर्ता ने मुख्य प्रबंधक से प्रार्थना की कि वे उस आदेश पर फिर से विचार करें और उसके बाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने रेलवे बोर्ड में अपील की। अपीलकर्ता ने राष्ट्रपति के यहाँ भी प्रतिनिवेदन किया। रेलवे बोर्ड ने मुख्य प्रबंधक को लिखा कि उसका काम देखते रहना चाहिए और जब वह योग्य हो जाय तो उस पद के लिये उस पर विचार किया जायगा। यह निर्णय जब अपीलकर्ता को भेजा गया उस समय तक संविधान के अनुच्छेद २२६ के अंतर्गत वह उच्च न्यायालय में लेख प्रार्थनापत्र निवेशित कर चुका था। इसमें उसका कहना था कि ऐसा आदेश श्रेणी का न्यूनीकरण (रिडक्शन इन रैंक) था इसलिए भारतीय संविधान के अनुच्छेद ३११ (२) का पालन न करने से वह आदेश अवैध है।

इस अपील में हमारे समक्ष विचारणीय प्रमुख प्रश्न है कि मुख्य प्रबंधक का दिनांक १६ अगस्त १९५३ का आदेश संविधान के अनुच्छेद ३११ (२) के अभिप्राय के अंतर्गत श्रेणी का न्यूनीकरण है कि नहीं कारण कि यदि उक्त आदेश श्रेणी का न्यूनीकरण है तो यह अवैध इसलिए होगा कि उक्त अनुच्छेद की शर्तों का पालन, यह मान्य है कि नहीं किया गया।

इंगलैंड में 'कामन ला' विधि के अनुसार राज्य के सभी लोक सेवक 'क्राउन' की कृपा तक ही अपने पद पर रहते हैं और 'क्राउन' के इस विस्तृत अधिकार पर कोई रोक नहीं है किंतु यह विस्तृत अधिकार भारतवर्ष में उस सीमा तक लागू नहीं है। भारत सरकार अधिनियम १९१५ की धारा ९६ बी० में 'क्राउन' के इस अधिकार पर एक प्रमुख प्रतिबंध लगा दिया गया कि जिस प्राधिकरण द्वारा वह नियुक्त किया गया है उससे नीचे के प्राधिकरण द्वारा वह पदच्युत नहीं किया जा सकता। भारत सरकार अधिनियम १९३५ की धारा २४० (१) और (२) उपर्युक्त धारा ९६ बी० का दूसरा रूप है। इसमें एक तो वही नियम है कि कोई सेवक अपने नियुक्त किए जानेवाले प्राधिकरण से नीचे के प्राधिकरण द्वारा पदच्युत नहीं किया जायगा और दूसरा यह जोड़ दिया गया कि ऐसा कोई व्यक्ति जब तक उसके विरुद्ध प्रस्तावित कार्यवाही के संबंध में कारण दिखलाने का युक्तिसंगत अवसर नहीं दे दिया गया हो पदच्युत या श्रेणी से नीचे नहीं किया जायगा। धा० ९६ बी० (१) में श्रेणी में न्यूनीकरण नहीं था किंतु यह पहले पहल उपधारा (३) में पदच्युति के साथ जोड़ा गया।

इसके बाद २६ जनवरी १९५० को हमारा संविधान आया और उसके अनुच्छेद ३१० और ३११ में उपर्युक्त अनुबंधों के समान उपबंध थे। हमारे संविधान के अनुच्छेद ३१० (१) और ३११ इस प्रकार हैं :—

"३१० (१) संविधान में जहाँ स्पष्टतः कोई बात कह दी गई हो उसे छोड़कर प्रत्येक व्यक्ति जो संघ या अखिल भारतीय सेवा की प्रतिरक्षा सेवा का सदस्य है या व्यवहार सेवा का सदस्य है या संघ के अंतर्गत प्रतिरक्षा सेवा से संबंधित या व्यवहार सेवा से संबंधित किसी पद पर है वह अपने पद पर राष्ट्रपति की कृपा पर्यंत है और प्रत्येक व्यक्ति जो राज्य की व्यवहार सेवा में है या राज्य के अंतर्गत किसी व्यवहार पद पर है वह अपने पद पर राज्यपाल की कृपा पर्यंत है।

३११ (१) कोई भी व्यक्ति जो संघ या अखिल भारतीय सेवा या राज्य में व्यवहार सेवा पर है अथवा संघ या किसी राज्य के अंतर्गत किसी व्यवहार सेवा पर है वह जिस प्राधिकरण द्वारा नियुक्त किया गया है उससे नीचे के प्राधिकरण द्वारा पदच्युत या हटाया नहीं जायगा।

(२) उपर्युक्त कोई भी ऐसा व्यक्ति जब तक कि उसके विरुद्ध प्रस्तावित कार्यवाही करने के संबंध में उसे कारण दिखलाने का युक्तियुक्त अवसर प्रदान नहीं कर गया हो वह पदच्युत, पद से हटाया या पद से नीचे की श्रेणी में नहीं किया जा सकता।

किंतु प्रतिबंध है कि—"

सारांश यह है कि 'संविधान में जहाँ स्पष्टतः कोई बात कह दी गई हो उसे छोड़कर' इसका तात्पर्य यह है कि संविधान में यह दिया हुआ है कि सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशगण तथा उसमें दिए हुए अन्य उच्च अधिकारी किस प्रक्रिया के पालन करने के साथ हटाए जायँगे। उनके लिये यह नहीं है कि वे राष्ट्रपति की कृपा पर्यंत अपने पद पर हैं। इस प्रकार अनुच्छेद ३११ अनुच्छेद ३१० (१) परंतुक के समान है। ए० आई० आर १९५४ सर्वोच्च न्यायालय २४५ में यह निर्णय हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुका है कि यह नियम कि पद कृपा पर्यंत रहेगा इंगलैंड में जितनी कड़ाई से लागू होता है उतना भारत में नहीं। अनुच्छेद ३११ कृपा पर्यंत सेवा के संबंध में दो प्रकार का संरक्षण स्वीकार करता है; पहला यह कि नियुक्तिकारी प्राधिकरण से नीचे का प्राधिकरण उसे पद-च्युत नहीं कर सकता और दूसरा यह कि उसके विरुद्ध प्रस्तावित कार्यवाही के संबंध में कारण दिखलाने का अवसर प्रदान किया जाय। अनुच्छेद ३११ से दो प्रश्न पैदा होते हैं: १—संरक्षण के अधिकारी हैं कौन? और २—संरक्षण का क्षेत्र और उसकी व्याप्ति कितनी है ?

मौलिक नियमों के अंतर्गत दिया हुआ है कि सेवाओं के लिये एक संवर्ग (कैडर) होता है। संवर्ग के अंतर्गत कई एक पद (पोस्टिंग) होते हैं। इन पदों में स्थायी पद वह पद होता है जिसके लिये वेतन की एक निश्चित दर रहती है और वह किसी अवधि तक सीमित नहीं रहता। व्यापार बढ़ने से या अन्य कारण से कुछ अस्थायी पदों की आवश्यकता पड़ जाती है। अस्थायी पद वह पद है जिसके लिये निश्चित दर से वेतन निर्धारित अवधि तक के लिये स्वीकृत रहता है। अस्थायी पद साधारण तथा संवर्ग के बाहर होते हैं और प्रायः एक वर्ष के लिये होते हैं और वर्ष प्रतिवर्ष इनका नवीनीकरण होता रहता है। इनमें से कुछ पद एक निर्धारित अवधि तक के लिये भी होते हैं। स्थायी या अस्थायी पदों पर जब सरकारी नौकरों की नियुक्ति होती है तो वे प्रत्यक्ष या परोक्ष में नियुक्ति संविदा से शासित रहते हैं तथा पद विशेष के लिये बने हुए नियमों के अधीन रहते हैं।

स्थायी पदों पर सरकारी नौकरों की नियुक्ति तीन प्रकार की हो सकती है—

१—मौलिक रूप में २--परीक्षण पर और ३—स्थानापन्न आधार पर।

१—मौलिक रूप में—इस प्रकार नियुक्त सेवक का उक्त पद पर धारणाधिकार हो जाता है और वह केवल दो ही ढंग पर पद से हटाया जा सकता है:—

(अ) नियुक्ति संविदा के अनुबंध विशेष द्वारा जैसे यदि नोटिस देने की बात तय हुई हो और

(ब) सेवाओं के संबंध में बनाए हुए नियमों के अंतर्गत जैसे अनिवार्य सेवा निवृत्ति की शर्त का पालन करते हुए इत्यादि।

२—परीक्षण पर—इस प्रकार की सेवा में नियुक्त किए हुए व्यक्ति का काम देखा जाता है कि वह उक्त सेवा में चल सकता है कि नहीं। जब उक्त व्यक्ति का काम ठीक नहीं होता तो नोटिस देकर उसे हटाया जा सकता है और परीक्षण की अवधि समाप्त होने पर स्वामी और सेवक का संबंध समाप्त हो जाता है।

३—स्थानापन्न सेवा—दो प्रकार से इस पद पर नियुक्ति होती है। एक यह जब कि उस पद पर का व्यक्ति छुट्टी पर रहता है और दूसरा यह कि जब उस पद पर कोई मौलिक नियुक्ति नहीं हो गई रहती। निम्नलिखित परिस्थिति में वह व्यक्ति हटाया जा सकता है:—

१—जब उस पद पर का व्यक्ति छुट्टी से पुनः काम पर आ जाय।

२—जब मौलिक नियुक्ति हो जाय और—

३—सामान्य विधि में युक्तिसंगत परिस्थिति में नोटिस देकर या यदि तय हुआ हो तो यों ही नोटिस देकर।

इन सबका तात्पर्य यह हुआ कि स्थायी पद पर यदि परीक्षण या स्थानापन्न स्थान पर नियुक्ति हुई हो तो उसमें सेवा सामान्य क्रम में नोटिस देकर समाप्त की जा सकती है किंतु प्रतिबंध है कि यदि इसके विरुद्ध किसी अन्य बात की संविदा न हुई हो।

अस्थायी पद पर नियुक्ति यदि किसी निर्धारित अवधि तक के लिये होती है तो उस अवधि तक के लिये सेवक का अधिकार हो जाता है कि बिना उपयुक्त कारण के जो कई एक होते हैं जैसे प्रमाद आदि वह हटाया नहीं जा सकता। इस प्रकार के पद पर नियुक्त व्यक्ति को वेतन एवं छुट्टी के संबंध में उस व्यक्ति की अपेक्षा अधिकार अधिक होते हैं जो अस्थायी पद पर परीक्षण या स्थानापन्न सेवा के लिये नियुक्त होता है। बादवाले पद के व्यक्ति केवल एक नोटिस देकर हटाए जा सकते हैं सिवा उस दशा में जब कि उनकी सेवा १६४६ के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियमों के अंतर्गत आभास स्थायी सेवा (क्वासी परमानेंट सर्विस) में परिपक्व न हो गई हो।

सारांश यह कि यदि कोई विशेष संविदा न हुई हो तो किसी स्थायी पद पर मौलिक नियुक्ति उसे उस पद पर रहने का तब तक के लिये अधिकार प्रदान करती है जब तक कि वह नियम के अंतर्गत अधिवार्षिकी आयु को प्राप्त न हो जाय या निर्धारित अवधि तक सेवा कर चुकने के बाद अनिवार्यतः सेवा निवृत्त न हो जाय।

यदि वह पद समाप्त हो जाय तो उस पर का व्यक्ति सिवा अक्षमता दुर्व्यवहार, प्रमाद और अयोग्यता पर जो दंडस्वरूप हो हटाया नहीं जा सकता और ऐसी अयोग्यता उसे नोटिस देने के बाद किसी उचित जाँच करने पर पाई गई हो। अस्थायी पद पर जब किसी निश्चित अवधि तक के लिये नियुक्ति होती है तो उस अवधि तक के लिये उसका उस पर अधिकार हो जाता है जब तक कि दंडस्वरूप उस अवधि के बीच वह पदच्युत या सेवा से हटा न दिया जाय। इन दो नियुक्तियों के अतिरिक्त अन्य नियुक्तियाँ उस पर नियुक्त व्यक्ति को उस सेवा में कोई अधिकार नहीं प्रदान करती जब तक कि नियमानुकूल वह सेवा आभास स्थायी सेवा में परिपक्व न हो गई हो।

यहाँ केवल एक यही प्रश्न विचारणीय है कि अ० ३११ का संरक्षण इन सरकारी कतिपय सेवाओं में प्रत्येक में लागू होता है कि नहीं।

कुछ निर्णय हुए हैं कि अनुच्छेद ३११ के संरक्षण के संबंध में स्थायी या अस्थायी नियुक्ति का भेद नहीं किया जा सकता और सभी प्रकार की सेवाओं में अनुच्छेद ३११ का लाभ मिलना चाहिए –ए० आई० आर० १९५१ इलाहाबाद ७६३। कुछ निर्णय इसके विरुद्ध हुए हैं और उनमें यह कहा गया है कि जब तक वह व्यक्ति स्थायी रूप की सेवा का सदस्य नहीं हो जाता तब तक वह संविधान के अनुच्छेद ३११ (२) के लाभ का अधिकारी नहीं है— ए० आई० आर० १९५६ नागपुर ११३। इस प्रकार जो दो विरोधी निर्णय विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा दिए गए हैं उन सबको देखने पर सबसे अधिक निर्णय इस बात के समर्थन में है कि पदच्युति, पद से हटाया जाना या श्रेणी में न्यूनीकरण जब दंड के कारण होता है तभी अनुच्छेद ३११ (२) का संरक्षण दिया जा सकता है किंतु ऐसा जब दंड के कारण नहीं होता वरन् नियुक्ति के समय यदि ऐसा अधिकार तय रहता है या सेवा की शर्तों में जो कि नियुक्ति का एक अंग होती है यह बात रहती है और इस अधिकार के बल पर पदच्युति, पद से हटाया जाना और श्रेणी का न्यूनीकरण होता है तब अनुच्छेद ३११ (२) का लाभ नहीं दिया जा सकता। यों तो सामान्यतः यह स्पष्ट दिखलाई देता है कि अनु० ३११ (२) का संरक्षण कब प्राप्त किया जा सकता है किंतु कार्य रूप में यह इतना सरल नहीं है कारण कि यह तय करने के लिये कि अमुक पदच्युति आदि दंड स्वरूप है या सेवा के नियमों के अंतर्गत या पदों की संविद् के अंतर्गत है—कोई आधार नहीं है। दूसरे "अस्थायी" "स्थानापन्न" "परीक्षण पर" आदि शब्दों का प्रयोग कड़ाई से उसी अर्थ में न करने से भी बड़ी गड़बड़ी पैदा हो जाती है। अतः इसके लिये संविधान के संबद्ध स्थलों पर विचार करना आवश्यक है।

अनुच्छेद ३११ का अभिप्राय यह नहीं है कि जो स्थायी सेवा का सदस्य है उसी के लिये या जो स्थायी व्यवहारिक सेवा के पद पर है उसीमें यह लाभ मिलेगा। ऐसा सीमित अर्थ लगाना अनु० ३११ को संकुचित कर देना है जो संविधान या किसी परिनियम की व्याख्या के सामान्य नियम के विरुद्ध है। अनुच्छेद ३११ (२) में है "उपर्युक्त व्यक्ति" इसके लिये ३११ (१) पर आ जाना है। अनुच्छेद ३११ (१) में जो जो व्यक्ति हैं वे सब अनुच्छेद ३१० में हैं। अनुच्छेद ३१० में जो जो अधिकारी हैं वे सब राष्ट्रपति या राज्यपाल जैसी स्थिति हो, उनकी कृपा पर्यंत अपने पद पर हैं। अनु० ३१० और ३११ में कहीं 'स्थायी' या, अस्थायी शब्द नहीं है। यदि मान लिया जाय कि वे सब अधिकारी एकमात्र स्थायी सेवावाले अधिकारीगण ही हो सकते हैं तो इसका परिणाम यहाँ तक हो सकता है कि अस्थायी सेवावाले व्यक्ति राष्ट्रपति या राज्यपाल की कृपा पर्यंत अपने पद पर नहीं रहते, यह परिणाम सिद्धांत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के सर्वथा विरुद्ध है। अनुच्छेद ३१० और ३११ स्थायी और अस्थायी सेवा में विभेद नहीं करते। दूसरे, यह कहा गया है कि जो स्थानापन्न आदि सेवाओं में होता है वह केवल वहाँ का काम करता है—सेवा का धारण (होल्ड) नहीं करता और उपर्युक्त अनुच्छेदों में "धारण" या होल्ड शब्द ही प्रयुक्त है। यदि "धारण" (होल्ड) का अर्थ यही हो तब तो संविधान के अनुच्छेद ५८ और ६६ में जहाँ शब्द "धारण" (होल्ड) ही प्रयुक्त हैं वहाँ अस्थायी सेवावाला व्यक्ति राष्ट्रपति आदि के चुनाव के लिये उठ सकता है। इस प्रकार का तर्क मन में बैठता नहीं। अनुच्छेद ३१० और अनुच्छेद ३११ में स्थायी और अस्थायी का भेद नहीं है। स्थायी और अस्थायी दोनों प्रकार के सरकारी सेवक राष्ट्रपति या राज्यपाल की कृपा पर्यंत अपने पद पर रहते हैं। इसके विरुद्ध निर्णय मान्य नहीं हो सकता।

अनुच्छेद ३११ (१) में केवल "पदच्युति" और "हटाया जाना" दो ही पद प्रयुक्त हैं कि जिस प्राधिकरण द्वारा नियुक्ति की गई है उसमें नीचे का प्राधिकरण पदच्युत या पद से हटा नहीं सकता। ३११ (२) में "पदच्युत", "हटाया जाना" और 'श्रेणी से न्यूनीकरण' तीन पद प्रयुक्त हैं। इन पदों का अर्थ क्या होता है? ए० आई० आर० १९५१ इलाहाबाद ७६३ में कहा गया कि ये शब्द (टेक्निकल) हैं और दंड के लिये प्रवृत्त हुए हैं। यहाँ कहा गया कि ये शब्द सेवा नियमावलि से लिए गए हैं। सेवा नियमावलि देखने से पता चलता है कि पहले केवल नीचे के प्राधिकरण द्वारा पदच्युति करने के संबंध में ही संरक्षण था किंतु बाद में स्थिति में सुधार हुआ और भारत सरकार अधिनियम १९३५ की धारा २४० (३) के अंतर्गत एक और संरक्षण बढ़ाया गया। दूसरे शब्दों में १९३० की वर्गीकरण नियमावलि जिसमें उपर्युक्त तीन प्रकार का दंड देने के पहले एक विशेष प्रक्रिया का पालन करना था उसे परिनियम (स्टैट्यूट) में रखकर सरकारी नौकरों को परिनियमित संरक्षण प्रदान किया गया। ये परिनियमित संरक्षण जो उसी रूप में अनुच्छेद ३१० और ३११ में आए संविधान विहित संरक्षण हो गए। पहले विधि द्वारा संरक्षण का पालन नहीं कराया जा सकता था, बाद में परिनियम द्वारा इसको कराने का विधान हुआ और अब अनु० ३१० और ३११ द्वारा संरक्षण के अधिकार को संविधान विहित मान्यता प्राप्त हो चुकी है।

सारांश यह कि जब उपर्युक्त तीन प्रकार का दंड देने का विचार सरकार करे केवल तभी उस व्यक्ति को दंड के विरुद्ध कारण दिखलाने का उचित अवसर देना अनिवार्य है। इसलिए इसका परिणाम हुआ कि यदि सेवा की समाप्ति दंड के आधार पर न होकर किसी अन्य प्रकार से की जा रही हो तो सरकारी नौकर अनुच्छेद ३११ (२) का संरक्षण नहीं पा सकता और इस विषय पर जितने निर्णय इस प्रकार हुए हैं सब ठीक हैं। अनुच्छेद ३१० का यह उपबंध कि सभी सरकारी सेवक राष्ट्रपति या राज्यपाल जैसे स्थिति हो, के कृपा पर्यंत हैं—अनुच्छेद ३११ से प्रतिबंधित है।

किंतु इतने से ही कठिनाई दूर नहीं हो जाती। यह निश्चित करना कठिन रह ही जाता है कि सेवा की समाप्ति कब दंड स्वरूप है (जिसमें ३११ (२) लागू होता है) और कब अन्य प्रकार से है। इसके लिये सरकारी नौकरी तीन भागों में विभाजित की जा सकती है जिसकी चर्चा पहले की जा चुकी है)

१—स्थायी सेवा—यदि इस प्रकार के सेवा की समाप्ति की जाती है तो यह स्वतः दंडस्वरूप होता है कारण कि पद को धारण करने का उसका जो अधिकार है वह समाप्त हो जाता है और समाप्ति से उसे अन्य प्रकार की हानि होती है।

२—अस्थायी सेवा में शर्तों के विरुद्ध अपरिपक्वावस्था में यदि सेवा की समाप्ति होती है तो उस दशा में भी यह दंड स्वरूप होता है। और—

३—अन्य सेवाएँ जैसे—'स्थानापन्न' 'परीक्षण' आदि में सेवा समाप्ति दंड नहीं होता। सेवा केवल एक नोटिस देकर ही समाप्त की जा सकती है।

संक्षेप में सिद्धांत यह है कि जब उस सेवक का उस पद या उस श्रेणी में प्रत्यक्षतः या परोक्षतः किसी संविदा द्वारा या सेवा की शर्तों द्वारा अधिकार रहता है तो ऐसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इला० उच्च न्या० १२७

(लखनऊ न्यायासन)

न्यायमूर्ति सिंह

पुनरीक्षण प्रार्थना पत्र सं० ८३।१९५२–१०–२–१९५८

छंगा — वादी प्रार्थी

वि०

केदार तथा अन्य — प्रतिवादी विपक्षी

उन्नाव के जिलाधीश के आदेश दिनांक ४ फरवरी १९५२ के आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र

उ० प्र० कृषक साहाय्य अधिनियम १९३४ धारा २४ (२)—पक्षों के अधिकार को दिखलाने के लिये जब वार्षिक रजिस्टर पर के अधिकारों का अभिलेख प्रस्तुत नहीं किया गया तो तत्संबंधी मौखिक साक्ष्य को इनकार किया जा सकता है।

न्यायमूर्ति सिंह—

व्यवहार प्रक्रिया संहिता की धारा ११५ के अंतर्गत यह प्रार्थनापत्र है।

उ० प्र० कृषक साहाय्य अधिनियम की धारा १२ के अंतर्गत एक प्रार्थनापत्र दिया गया था। वह प्रार्थनापत्र एक बंधक विलेख के संबंध में था।

कृषक साहाय्य अधिनियम की धारा २४ (२) में है कि बंधकदाता के उस तिथि को जिस दिन बंधक दिया गया 'कृषक' होने के प्रमाण में यदि कोई कागजी प्रमाण न हो, तो राजस्व अधिनियम १९०१ के अंतर्गत वार्षिक रजिस्टरों में लिखे हुए अधिकारों की प्रवृष्टि प्रमाण के लिये ली जायगी।

इसके देखने से प्रतीत होता है कि विधान मंडल ने इसके लिये मौखिक साक्ष्य देने की अनुमति नहीं दिया। यतः कोई अभिलेख प्रस्तुत नहीं किया गया इसलिए विद्वान् न्यायाधीश ने जो मौखिक साक्ष्य अस्वीकार कर दिया वह ठीक ही किया है। ऐसा करना उनके अधिकार के अंतर्गत था और ए० आई० आर० १९४७ इलाहाबाद ४०७ की रुलिंग भी इसके समर्थन में है।

किसी अन्य बात पर जोर नहीं दिया गया।

इस पुनरीक्षण में कोई बल नहीं है इसलिए परिव्यय के साथ यह उत्सर्जित किया जाता है।

—प्रार्थनापत्र उत्सर्जित

———

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इलाहाबाद उच्च-न्यायालय १२७

मुकदमा सं० ५५ ए० में कन्नौज के एस० डी० एम० के आदेश के विरुद्ध आपराधिक अभिदेश सं० ३१७।१९५५

(१५ जनवरी १९५७)

रामदयाल — प्रार्थी

वि०

बहादुर तथा अन्य — विपक्षी

दंड प्रक्रिया संहिता १८९८, धा० १४५—जब शांतिभंग की कोई आशंका नहीं थी तो मजिस्ट्रेट एक पक्ष विशेष को कुर्की हटाकर संपत्ति दे देने का अधिकार नहीं रखते—इसके लिये उपयुक्त आदेश यही हो सकता था कि वे कुर्की उठा लेते और आगे की कार्यवाही अभिखंडित कर देते—

न्यायमूर्ति अस्थाना—दंड प्रक्रिया संहिता की धारा १४५ के अंतर्गत एक मुकदमें में यह फरूखाबाद के सत्र-न्यायधीश का अभिदेश है।

राम दयाल ने एक प्रार्थनापत्र दिया कि उसका स्वामी विवादग्रस्त भूखंडों का स्वामी है और उसके धारण में है और विपक्षीगण उसके शांतिमय धारण में हस्तक्षेप करते हैं इसलिए शांति भंग हो जाने की आशंका है। मजिस्ट्रेट ने इस पर पुलिस का प्रतिवेदन माँगा। पुलिस ने प्रतिवेदन दिया कि शांति भंग की आशंका है। इस पर मजिस्ट्रेट ने आरंभिक आदेश पारित किया और उस भूमि का उस पर की फसल के सहित कुर्की का आदेश दिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा संबंधित व्यक्तियों को अपने अपने अधिकार के विषय में लिखित अभिकथन निवेशित करने का आदेश दिया।

जब वह भूमि धारा १४५ में कुर्क की गई उसके पहले ही विपक्षी ने राजस्व न्यायालय में इन खेतों के लिये एक वाद निवेशित किया था जिसमें उसका कहना था कि विवादग्रस्त भूमि के हम धारण में हैं। जब धारा १४५ की कार्यवाही चल रही थी उसी बीच उस मुकदमे में निर्णय हो गया और निर्णय में विपक्षियों का धारण माना गया।

इस निर्णय के बाद विद्वान् मजिस्ट्रेट ने १४५ के इस मुकदमे में आदेश दे दिया कि यतः अब झगड़े की कोई संभावना नहीं है इसलिए भूमि का धारण विपक्षी गण को दे दिया जाय और कुर्की उठा ली जाय।

विद्वान् सत्र न्यायाधीश ने इस आधार पर अभिदेश किया कि विद्वान् मजिस्ट्रेट का ऐसा आदेश गलत था। वे कुर्की उठाकर बिना धारण पर विचार किए विपक्षी को धारण दे नहीं सकते थे। उनका अभिस्ताव था कि इसमें ठीक आदेश यह होता कि कुर्की उठा ली जाती और आगे को कार्यवाही रोक दी जाती।

दोनों पक्षों को सुनने के पश्चात् यही निष्कर्ष निकलता है कि जब यह पता नहीं चलता कि धारण विपक्षीगण से लिया गया तो पहलेवाले मुकदमे की डिग्री के कारण इसे विपक्षीगण को दे देना ठीक नहीं था। धारण के प्रश्न पर जाँच करना और इस बात का निश्चय हो जाने पर कि आरंभिक आदेश के समय कौन पक्ष धारण में था तब धारण उसको दिया जा सकता था। यहाँ धारण के प्रश्न पर विचार नहीं किया गया। किंतु उस मुकदमे की डिग्री के कारण जब यह समझा गया कि शांति भंग की आशंका नहीं है तो ऐसी दशा में उपयुक्त आदेश यही होता कि कुर्की उठा ली जाती और आगे की कार्यवाही अभिखंडित कर दी जाती।

अभिदेश स्वीकार किया जाता है। विपक्षी को धारण दे देने का आदेश निराकृत किया जाता है किंतु कुर्की उठा लेने का वह आदेश ज्यों का त्यों रहने दिया जाता है। आगे की कार्यवाही अभिखंडित की जाती है। किसी पक्ष विशेष के हित में कुर्की उठाई नहीं जायगी।

— अभिदेश अंशतः स्वीकृत

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इलाहाबाद उच्च-न्यायालय १२८

कानपुर के अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश के निर्णय दिनांक २५-६-१९५५ के विरुद्ध आपराधिक अभिदेश सं० ३११।१९५५

(८ जनवरी १९५७)

भिक्खू लाल — प्रार्थी

वि०

बटियन तथा अन्य — विपक्षीगण

द० प्र० सं० धारा १४५—मजिस्ट्रेट का यह अधिक्षेत्र नहीं है कि वह विवादग्रस्त भूमि के स्वत्व के प्रश्न पर विचार करे और जो कि कार्यवाही में कोई पक्ष नहीं है उसके पीठ पीछे इसका निर्णय करे।

न्यायमूर्ति अस्थाना —

दं० प्र० संहिता की धारा १४५ के एक वाद में सत्र न्यायाधीश का यह अभिदेश है। इसमें मजिस्ट्रेट ने निर्णय दिया था कि वह स्थल (साइट) दोनों में से किसी पक्ष का नहीं है वरन् वह गाँव समाज का है और इसे गाँव समाज को दिला दिया जाय तथा विवाद-ग्रस्त नाद से जो दीवाल संबंधित है वह विपक्षी की है और उसे विपक्षी को दे दिया जाय—इसी आदेश को निराकृत करने की प्रार्थना है।

इसमें प्रार्थी ने दं० प्र० संहिता की धारा १४५ के अंतर्गत कार्यवाही आरंभ की। उसका कहना था कि विपक्षी ने हमारी नादों को गिरा दिया और जब आकर पूछा गया तो झगड़ा करने को तैयार हो गए इसलिए इसके बारे में झगड़ा हो जाने की आशंका है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्वान् मजिस्ट्रेट इस बात से संतुष्ट हो गए कि झगड़ा होने की संभावना है इसलिए उन्होंने इसके संबंध में धारा १४५ के अंतर्गत कार्यवाही आरंभ की। दोनों ओर के साक्ष्यों का परीक्षण करने के पश्चात् मजिस्ट्रेट इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि वह स्थल (साइट) न तो प्रार्थी का है और न विपक्षी का वरन् वह ग्राम समाज का है। नाद से लगी हुई एक दीवाल विपक्षी के धारण में थी, इसलिए वह स्थल तो ग्राम समाज को दिला देने का आदेश हुआ और दीवाल विपक्षी को।

विद्वान् सत्र न्यायाधीश का प्रतिवेदन है कि धारण के प्रश्न का निर्णय न करके मजिस्ट्रेट ने जो ग्राम समाज के स्वत्व का निर्णय किया है वह ऐसा काम है जो उसके अधिक्षेत्र के बाहर है।

मजिस्ट्रेट के सामने झगड़ा यही था कि कौन पक्ष नाद के धारण में है। इसके लिये उपाय यही था कि जो पक्ष मजिस्ट्रेट के सामने थे उनके द्वारा दिए गए साक्ष्यों से इसका निर्णय करते। इसमें संदेह नहीं कि वे अपने अधिकार से दूर चले गए और ग्राम समाज के स्वत्व का निर्णय करने लगे जब कि जाँच के लिये इसकी कोई आवश्यकता नहीं थी।

अभिदेश स्वीकार किया जाता है और विद्वान मजिस्ट्रेट का उपर्युक्त आदेश निराकृत किया जाता है और यह मुकदमा कानपुर के जिलाधीश के पास भेज दिया जाय कि वे इसे किसी अन्य समर्थ मजिस्ट्रेट के यहाँ विधि अनुसार निर्वर्तन करने के लिये भेज दें।

अभिदेश स्वीकृत

———

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ इलाहाबाद उच्च न्यायालय १२६

व्यवहार पुनरीक्षण सं० ७६१।१९५३—२४ सितंबर १९५७

मकबूल आलम तथा अन्य— प्रार्थीगण
वि०
जावद हुसेन तथा अन्य— विपक्षीगण

बनारस के व्यवहार न्यायाधीश की डिग्री और आदेश दिनांक १४-४-१९५३ (व्यवहार अपील सं० १५७।१९४९) के विरुद्ध व्यवहार पुनरीक्षण

व्यवहार प्रक्रिया संहिता, १९०८—मुकदमें की कार्यवाही जब स्थगित है तो प्रतिस्थापना के लिये प्रार्थनापत्र यदि स्थगन आदेश की उन्मुक्ति के बाद दिया गया तो उपशमन (अबेटमेंट) नहीं हुआ—अवधि अधिनियम १९०८ धारा ५—

न्यायमूर्ति भार्गव—

यह प्रतिवादी का पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र है जो नीचे के न्यायालय में चलती हुई एक अपील के संबंध में है।

अपीलकर्ता सं० ५ मर गई। उत्तरवादी संख्या ४ भी मर गया। अपीलकर्ता के उत्तराधिकारी पहले से ही अभिलेख पर थे इसलिए उनके बारे में तो कोई कठिनाई नहीं थी किंतु उत्तरवादी के उत्तराधिकारी अभिलेख पर नहीं थे। वह १९४७ में किसी समय मरा किंतु उसकी प्रतिस्थापना (सबस्टीट्यूशन) के लिये प्रार्थनापत्र १८ फरवरी १९५२ को दिया गया। उसके साथ देर को क्षमा करने के लिये अवधि अधिनियम की धारा ५ के अंतर्गत एक प्रार्थनापत्र भी दिया गया। प्रार्थनापत्र में कहा गया था कि उसके मरने का समाचार समय से ज्ञात नहीं हुआ था इसलिए प्रतिस्थापना प्रार्थनापत्र में विलंब हो गया अतः धारा ५ का लाभ दिया जाय। १९४६ से उस तिथि तक उस अपील की सुनवाई स्थगित थी।

विद्वान व्यवहार न्यायाधीश ने कहा कि जब सुनवाई स्थगित थी तो यह प्रमाणित करने की आवश्यकता ही नहीं है कि उसके मरने का समाचार नहीं मिला था। उनका विचार था कि इससे उपशमन नहीं हुआ। प्रार्थी के लिये यह अवसर था कि जब स्थगन का आदेश हटे तब प्रतिस्थापना का प्रार्थनापत्र दें। इसके समर्थन में ए० आई० आर० १९५२ पेप्सू ४० का सहारा लिया गया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र में कहा जाता है कि केवल कार्यवाही स्थगित थी प्रतिस्थापना की कार्यवाही स्थगित नहीं थी। यह कथन मानने में हम असमर्थ हैं। जब वाद स्थगित है तो तत्संबंधी समस्त कार्यवाही स्थगित रहती है। यों तो प्रार्थी प्रतिस्थापना का प्रार्थनापत्र स्थगन की अवधि में भी दे सकता था किंतु वह भी स्थगित ही रहता कारण कि उस बीच न्यायालय उस प्रार्थनापत्र पर कोई आदेश नहीं दे सकता था। कुछ भी हो जब कार्यवाही स्थगित थी तो यह अवधि अधिनियम की धारा ५ के अंतर्गत विलंब को क्षमा करने के लिये अच्छा आधार है। इस प्रकार इस पुनरीक्षण में कोई बल नहीं दीखता।

प्रार्थनापत्र उत्सर्जित किया जाता है।

स्थगन का आदेश उन्मुक्त किया जाता है। प्रार्थनापत्र ४ वर्ष तक पड़ा रहा इसलिए अभिलेख नीचे के न्यायालय में शीघ्र निवर्तन के लिये तुरत भेज दिया जाय।

—प्रार्थनापत्र उत्सर्जित

विधि पत्रिका (१८८०) १६५८ इलाहाबाद उच्च-न्यायालय १३०

द्वारिका प्रसाद — प्रार्थी

वि०

नगर पालिका, मेरठ — विपक्षी

मेरठ के सिटी मुंसिफ के आदेश दिनांक १७-१-१६५३ के विरुद्ध व्यवहार पुनरीक्षण सं० ३५५।१६५३ दिनांक २६-१-१६५८।

व्यवहार प्रक्रिया संहिता (१६०८), धा०. ६० (१) परंतुक (बी)—खेती के औजार—कृषक द्वारा खेती के लिये ट्रैक्टर का प्रयोग—

न्यायमूर्ति आर० एन० गुर्टू—

लघुवाद न्यायालय अधिनियम की धारा २५ के अंतर्गत यह निर्णीत ऋणी का पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र है। निर्णीत ऋणी के विरुद्ध १६४५ में रुपए की एक डिग्री पारित हुई थी। डिग्रीदार ने १६५१ के लगभग निर्णीत ऋणी के एक ट्रैक्टर को कुर्क करके और उसे बेच करके डिग्री को निष्पादित कराना चाहा। निर्णीत ऋणी नें प्रश्नगत् ट्रैक्टर की कुर्की के विरुद्ध व्य० प्र० सं० की धा० ६० (१) के परंतुक (बी) की शरण लेना चाहा। लघुवाद न्यायालय ने निर्णीत ऋणी की यह बात न मानी और निर्णय दिया कि ट्रैक्टर की कुर्की हो सकती है तथा इसके साथ ही उक्त न्यायालय ने यह भी निर्णय दिया कि निर्णीत ऋणी कृषक (अग्रिकल्चरिस्ट) नहीं है। इसके बाद निर्णीत ऋणी ने लघुवाद न्यायालय की धारा २५ के अंतर्गत यह व्यवहार पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र निवेशित किया है।

यह बात मान्य है कि निर्णीत ऋणी १२०० बीघे के खेतों में मशीन से खेती करता है और यों तो पहले उसकी आय के अनेक श्रोत थे किंतु अब खेती ही उसकी आय का प्रमुख साधन रह गया है। इसलिए कोई कारण नहीं है कि उसको कृषक न माना जाय।

उपवाक्य (बी०) में प्रयुक्त शब्दों की परिभाषा नहीं दी गई है किंतु शब्दकोश से लघुवाद न्यायालय के निष्कर्ष का समर्थन नहीं होता है। यह बात मानने योग्य नहीं है कि परंतुक का उपवाक्य (बी०) केवल छोटे कृषकों में लागू होता है और बड़े कृषकों के लिये यह विधान नहीं है। उपवाक्य का उद्देश्य यही प्रतीत होता है कि यह प्रत्येक कृषक की रक्षा करता है कि वह पहले की तरह जीविकोपार्जन कर सके। ऐसा नहीं है कि वह उपवाक्य छोटे कृषकों तक ही संकुचित हो गया है। यदि इसको यह मान भी लिया जाय कि यह छोटे कृषकों तक ही सीमित है तब भी इसके आगे एक बड़ी भारी कठिनाई यह पैदा होगा कि छोटा कृषक है कौन?

ए० आई० आर० १६३६ नागपुर ३ में मोटर ट्रैक्टर को कृषि का उपकरण इसलिए नहीं माना गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था कि उस समय वह खेतों के काम में नहीं आता था वरन् वह आटा चक्की खींचता था। इस प्रकार इस रुलिंग में उपर्युक्त सिद्धांत केवल प्रसंगोक्ति थी (आबिटर डिक्टा) थी। ए० आई० आर० १९३२ इलाहाबाद ३४४ में कहा गया था कि उपवाक्य (बी०) का अर्थ बहुत कड़ाई से नहीं करना चाहिए।

व्य० प्र० सं० धा० ६० (१) के परंतुक (बी०) का अर्थ होता है कि जब न्यायालय के समक्ष ऐसा प्रश्न आवे तो उसे केवल इतना ही देखना है कि कुर्की का औजार या उपकरण उसके जीविकोपार्जन के लिये आवश्यक है कि नहीं। जब उसे प्रतीत हो कि यह औजार जीविकोपार्जन के लिये आवश्यक है तो उसे उक्त उपबंध के अंतर्गत कुर्की से संरक्षण प्रदान करना चाहिए।

इस वाद विशेष में यह स्पष्ट है कि यदि ट्रैक्टर का प्रयोग नहीं होगा तो खेती नहीं होगी और यदि खेती नहीं होगी तो वह जीविकोपार्जन नहीं कर सकेगा क्योंकि कृषक के लिये खेती ही जीविकोपार्जन का एकमात्र साधन है।

इसके विरुद्ध यह कथन नहीं माना जा सकता कि खेती से उसको बहुत ही अधिक आय है और ट्रैक्टर कुर्क हो जाने पर भी वह दूसरे साधनों से खेती कर सकता है तथा इससे केवल थोड़ी सी उपज कम हो सकती है। जब विधि उसको यह अनुमति देता है कि वह अपने अपने अच्छे उपकरणों से खेती करें तो हम क्यों उसे बाध्य करें कि वह खराब औजार से खेती करें। यह भी नहीं बतलाया गया कि इसके अतिरिक्त उसके पास कोई दूसरा ट्रैक्टर है। इस संबंध में नीचे के लघुवाद न्यायालय का निर्णय गलत था।

तद्नुसार हम इस पुनरीक्षण को स्वीकार करते हैं और निर्णीत ऋणी के प्रश्नगत् ट्रैक्टर की कुर्की और विक्रय की आपत्ति को मान लेते हैं। ट्रैक्टर पर से कुर्की हटा ली जाय। पुनरीक्षण का व्यय पक्षों पर होगा।

पुनरीक्षण स्वीकृत

———

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ इलाहाबाद उच्च-न्यायालय १३१

अनवर हुसेन तथा अन्य — प्रार्थीगण

वि०

एस० एन० फ्रैंक्लिन तथा अन्य— विपक्षीगण

फरुखाबाद के व्यवहार न्यायाधीश के आदेश दिनांक २२-१२-५२ के विरुद्ध व्यवहार पुनरीक्षण सं० ५६७।१९५३, दिनांक ७-१-१९५८

व्य० प्र० सं० (१९०८), आ० ४१, नि० २३, २५, धा० १५१—प्रतिप्रेषण का अंतर्भूत अधिकार—जहाँ उचित अन्वीक्षा न हुई हो वहाँ प्रतिप्रेषण के आदेश का औचित्य—

न्यायमूर्ति डी० एन० राय—

फरुखाबाद के व्यवहार न्यायाधीश के प्रतिप्रेषण के आदेश दिनांक २२ दिसम्बर १९५२ के विरुद्ध यह पुनरीक्षण का एक प्रार्थनापत्र है।

यह मुकदमा इस न्यायालय के एकाकी न्यायाधीश के समक्ष सुनवाई के लिये आया था। किंतु उसमें विधि के कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के उठने के कारण यह मामला न्यायासन के समक्ष निर्णय के लिये अभिदिष्ट हुआ है।

थोड़े में इस मुकदमें के तथ्य इस प्रकार हैं। एक वाद निषेधाज्ञा के लिये और ५००) हानि-पूर्ति वापस पाने के लिये निवेशित किया गया था। अन्वीक्षा न्यायालय ने वादी के पक्ष में निषेधाज्ञा और केवल २००) की डिग्री दे दी। केवल एक प्रतिवादी ने अपील निवेशित किया। वादियों ने उस पर प्रति आपत्ति उस भाग के बारे में की जिसे अन्वीक्षा न्यायालय ने हानि-पूर्ति देते समय अस्वीकार कर दिया था।

नीचे के अपील के न्यायालय ने इस पर विचार किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि मुंसिफ ने मुकदमें की सुनवाई ठीक ढंग से नहीं की है, पक्षों के अभिवचन का स्पष्टीकरण नहीं किया है और न तो इस मुकदमे में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठीक ढंग से वादपद ही बने हैं। इसलिए नीचे के न्यायालय ने वाद को प्रतिप्रेषित कर दिया। प्रतीत होता है कि यह आदेश अपील के न्यायालय ने अपने अंतर्निहित अधिक्षेत्र के अंतर्गत दिया न कि व्यवहार प्रक्रिया संहिता के किसी विशिष्ट उपबंध के अंतर्गत।

हमारे समक्ष श्री सक्सेना के दो प्रमुख प्रतर्क हैं। पहला यह कि व्यवहार प्रक्रिया संहिता की धारा १०७ के अंतर्गत प्रतिप्रेषण आ० ४१ नि० २३ तक ही सीमित है। और दूसरा यह कि यदि अपील का न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि इसमें मुंसिफ के न्यायालय में ठीक अन्वीक्षा नहीं हुई है तो प्रतिप्रेषण का आदेश ठीक नहीं था।

पहले प्रतर्क के बारे में यह जान लेना आवश्यक है कि जब १९०८ की संहिता पारित हुई तो उस समय क्या स्थिति थी।

१८८२ के व्यवहार प्रक्रिया संहिता में वह धारा जो इस संहिता के आ० ४१ नि० २३ के समान थी वह धारा ५६२ थी। धा० ५६२ के बाद एक धारा ५६४ थी जिसमें दिया गया था कि अपील का न्यायालय किसी मुकदमें के द्वितीय निर्णय के लिये प्रतिप्रेषण धा० ५६२ के सिवा किसी अन्य उपबंध के अंतर्गत नहीं कर सकता। इस अधिकार के बारे में आधिकारिक निर्णय (आई० एल० आर० २३ इलाहाबाद १६७ और आई० एल० आर० ३३ कलकत्ता ६२७) हो चुके हैं कि उपर्युक्त उपबंधों के अलावा भी न्याय के लिये अपील का न्यायालय प्रतिप्रेषण कर सकता है और १८८२ की संहिता की उपर्युक्त धारा सर्वतःपूर्ण नहीं है।

ऐसी परिस्थिति में व्य० प्र० सं० १९०८ पारित हुई। इसकी धारा १०७ के अंतर्गत प्रतिप्रेषण का अधिकार सामान्यतः दिया गया किंतु इसे कुछ निर्धारित प्रतिबंधों के अधीन रखा गया। इन प्रतिबंधों का तात्पर्य तदअंतर्गत नियमों आ० ४१ नि० २३ और २५ से है जो पुरानी संहिता की धा० ५६२ और ५६४ का प्रतिरूप मात्र है। इसके अतिरिक्त एक नई धारा १५१ भी बनी।

अतः हमारे विचार से विधान मंडल का १९०८ की संहिता में यह विचार नहीं था कि प्रतिप्रेषण के अधिकार को आ० ४१ नि० २३ तक ही सीमित कर दिया जाय किंतु उसका विचार था कि उन सब अधिकारों को मान्यता दी जावे और अक्षुण्ण रखा जाय जो उसके पहले प्रयुक्त होते थे। धारा १०७ को धारा १५१ के साथ पढ़ना चाहिए जिसमें न्याय के लिये न्यायालय को अधिकार दिया गया है कि वह अपने अंतर्भूत अधिकार का प्रयोग करे। एक बात अवश्य है कि अंतर्भूत अधिकार का प्रयोग न्यायालय को बहुत कम और न्याय के लिये करना चाहिए और यह ध्यान में रखना चाहिए कि अधिकार संहिता के विशिष्ट उपबंधों के प्रतिकूल न पड़े।

अतः निष्कर्ष निकलता है कि न्यायालय का प्रतिप्रेषण का अधिकार आ० ४१ नि० २३, और २५ तक ही सीमित नहीं है वरन् न्याय के उद्देश्य से न्यायालय अपने अंतर्भूत अधिकार का प्रयोग कर सकता है। इस कथन के समर्थन में कलकत्ता की एक रूलिंग (ए० आई० आर० १९२८ कलकत्ता ८१२ है और उसी से मिलती जुलती रूलिंग ए० आई० आर० १९४८ इलाहाबाद १६ (पूर्ण न्यायासन) है।

नीचे के अपील के न्यायालय ने अपने निर्णय में स्पष्ट कर दिया है कि मुंसिफ के न्यायालय में सुनवाई ठीक से नहीं हुई, अभिवचन का स्पष्टीकरण नहीं हुआ और वादपद नहीं बने। इन आधारों पर अपील के न्यायालय ने जो प्रतिप्रेषण का आदेश दिया वह न्याय के लिये सर्वथा उचित था। मुकदमें की परिस्थिति के अनुसार प्रतिप्रेषण का आदेश ठीक था।

श्री सक्सेना ने एक प्रतर्क यह रखा है कि जब अपील का न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि इसमें वाद पद नहीं बने तो उसे चाहिए था कि स्वयं वादपद बनाकर उसपर निर्णय देती। उसके लिये यह ठीक नहीं था कि डिग्री निराकृत करके सारे वाद को ही प्रतिप्रेषित करे और इस प्रकार पक्षों को अतिरिक्त साक्ष्य देने का अवसर मिले।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ए० आई० आर० १९४१ अवध ५६१ में इस पर निर्णय हो चुका है कि प्रतिप्रेषण का अधिकार आ० ४१ नि० २३ और २५ तक ही सीमित नहीं है। न्याय के लिये अपील का न्यायालय आ० ४१ नि० २३, २५ के बाहर जाकर भी प्रतिप्रेषित कर सकता है और ऐसी परिस्थिति में न्यायालय पक्षों को अतिरिक्त साक्ष्य देने में कोई रुकावट नहीं डाल सकता।

पुनरीक्षण में बल नहीं है और यह परिव्यय के साथ उत्सर्जित किया जाता है।

—पुनरीक्षण उत्सर्जित

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इलाहाबाद उच्च न्यायालय १३३

न्यायमूर्ति बलराम उपाध्याय

बाबू तुलसीपत राम तथा अन्य — अपीलकर्तागण

वि०

नायब सिंह तथा अन्य — उत्तरवादीगण

हमीरपुर के द्वितीय अस्थायी सत्र न्यायाधीश के निर्णय दिनांक १३-२-१९५३ के विरुद्ध द्वितीय अपील सं० ६६३।१९५४ दिनांक १३-२-१९५८

अवधि अधिनियम (१९०८), अनुच्छेद १८२ (३)—'निर्णय पर पुनर्विचार'—एक पक्षीय डिग्री को निराकृत न करनेवाला आदेश—उपवाक्य (३) लागू नहीं होता।

निर्णय—

ये डिग्रीदारों की अपीलें हैं जो निष्पादन कार्यवाही से आई हैं। जिन दो डिग्रियों का निष्पादन किया जानेवाला है उसमें से पहली २९-२-१९४१ को और दूसरी २९६-१९४७ को प्राप्त की गई थीं। प्रतिवादियों ने इन डिग्रियों के निराकरण के लिये प्रार्थनापत्र दिया। वे प्रार्थनापत्र अनुपस्थिति में उत्सर्जित कर दिए गए। इसलिए नए प्रार्थनापत्र निवेशित किए गए और पुनःस्थापना के प्रार्थनापत्र २० जनवरी १९५७ तक विचाराधीन रहे जब कि उस दिन पुनस्र्थापना के प्रार्थनापत्र अंतिम रूप से अस्वीकार कर दिए गए।

डिग्रीदारों ने तब निष्पादन के लिये प्रार्थनापत्र दिया। एक प्रार्थनापत्र १-७-१९५१ को दिया गया और दूसरा २-७-१९५१ को इन दोनों मामलों में डिग्रीदारों ने कुर्की की प्रार्थना की थी। निर्णीत ऋणी ने इस पर आपत्ति की जिसमें प्रमुख बात थी कि निष्पादन का प्रार्थनापत्र कालबाधित है। नीचे के दोनों न्यायालयों ने निर्णय दिया कि प्रार्थनापत्र कालबाधित है और प्रार्थनापत्र उत्सर्जित कर दिया।

यहाँ अपीलकर्ता के विद्वान् वकील का कहना है कि एक पक्षीय डिग्री के निराकरण के लिये जो प्रार्थनापत्र दिया गया वह पुनर्विचार (रेव्यू) प्रार्थनापत्र है इसलिए अवधि अधिनियम के अनुच्छेद १८२ (३) के अनुसार उक्त पुनर्विचार प्रार्थनापत्र पर जिस दिन अंतिम आदेश पारित हुआ अवधि (३ वर्ष) की गणना उस तिथि से होगी और इस प्रकार गणना करने पर निष्पादन के प्रार्थनापत्र कालबाधित नहीं हैं।

उपवाक्य (३) में है कि :—

'जहाँ निर्णय पर पुनर्विचार हुआ है, तो पुनर्विचार के निर्णय की तिथि।'

विद्वान वकील ने एकपक्षीय डिग्री के निराकरण को जो पुनर्विचार प्रार्थनापत्र कहा है वह ए० आई० आर० १९३७ पटना ३३७ के निर्णय पर आधारित है। पटना उच्चन्यायालय ने उक्त निर्णय में कहा था कि कोई न्यायालय अपने निर्णय को सिवा विशिष्ट आधारों पर किसी अन्य प्रकार से बदल नहीं सकता और वे विशिष्ट आधार 'पुनर्स्थापना' प्रार्थनापत्र में दिए रहते हैं। उसमें विद्वान न्यायाधीशों का निष्कर्ष था कि पुनर्विचार और पुनर्स्थापना के प्रार्थनापत्रों में कोई मौलिक अंतर नहीं होता। और उन सभी परिस्थितियों में जिनमें न्यायालय अपने निर्णय पर फिर विचार करता है अनुच्छेद १८२ (३) के अभिप्राय के अंतर्गत पुनर्विचार प्रार्थनापत्र हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसा प्रतीत होता है विद्वान् मुख्य न्यायाधिपति का ध्यान इस तथ्य की ओर आकृष्ट नहीं किया गया कि जब कि 'पुनर्विचार' की स्थिति में न्यायालय स्वतः निर्णय का ही परीक्षण करता है और इस प्रकार वह निर्णय के तत्व पर आ जाता है कि निर्णय बदलने या निराकृत करने योग्य है कि नहीं—पुनर्स्थापना की दशा में न्यायालय को निर्णय के स्वतः तत्व पर विचार नहीं करना होता किंतु वह उन आधारों की पर्याप्तता को देखता है जो एकपक्षीय डिग्री के निराकरण के लिये दिखलाए गए हैं। पुनर्स्थापनावाली दशा में निर्णय पर फिर से विचार नहीं किया जाता।

न्यायालय केवल उन कारणों का परीक्षण करता है जो प्रार्थी द्वारा डिग्री के निराकरण के लिये उठाए गए हैं। भारतीय अवधि अधिनियम और व्यवहार प्रक्रिया संहिता दोनों प्रक्रिया विधि के भाग हैं और विधानमंडल ने इन दोनों का अधिनियम एक ही समय और एक ही सत्र में किया है। ऐसी परिस्थिति में इस तथ्य की अवहेलना नहीं की जा सकती कि इन दोनों अधिनियम में पुनर्विचार और पुनर्स्थापना प्रार्थनापत्र की चर्चा अलग अलग की गई है। 'निर्णय पर पुनर्विचार' यह अभिव्यक्ति अवधि अधिनियम की धा० ५ और १२ तथा अनेक अनुच्छेदों में है और कोई कारण नहीं है कि यह माना जाय कि शब्द 'निर्णय पर पुनर्विचार' जो इन उपबंधों में प्रयुक्त हैं उनका अर्थ व्य० प्र० सं० आ० ४७ से भिन्न होता है।

बाद के अनेक निर्णयों में पटना उच्चन्यायालय के इस निर्णय पर विचार विमर्श किया गया था। ए० आई० आर० १६४१ पटना २१३ में न्यायमूर्ति फजल अली ने पहलेवाले निर्णय के 'पुनर्विचार' के अर्थ को नहीं माना था। उनका निष्कर्ष यह भी था कि यदि पुनर्विचार प्रार्थनापत्र अस्वीकार कर दिया गया है तो उक्त अनुच्छेद लागू नहीं होगा क्योंकि उस दशा में यह निर्णय पर पुनर्विचार नहीं होगा जैसा कि अनुच्छेद के शब्दों का अर्थ होता है। यही बात ए० आई० आर० १६५१ पटना १ में भी कही गई कि पुनर्विचार का जो अर्थ १६३७ पटना के वाद में किया गया था वह ठीक नहीं था।

ए० आई० आर० १६३२ इलाहाबाद ६०१ में इस न्यायालय का भी यही विचार था कि अवधि अधिनियम के अनुच्छेद १८२ में 'निर्णय पर पुनर्विचार' शब्दों का अर्थ कड़ाई से निर्णय पर पुनर्विचार ही होना चाहिए। कोई ऐसा कारण नहीं दिखलाई पड़ता जिसके आधार पर अवधि अधिनियम के 'निर्णय पर पुनर्विचार' का अर्थ व्य० प्र० सं० के अर्थ से भिन्न माना जाय। यही निर्णय ए० आई० आर० १६५० इलाहाबाद ३२७ में भी हुआ था।

अतः अपीलकर्ता के विद्वान वकील का कथन नहीं माना जा सकता। नीचे के न्यायालय अपने इस निर्णय में सर्वथा ठीक थे कि निष्पादन के प्रार्थनापत्र कालबाधित हैं।

अपीलें असफल होती हैं और परिव्यय के साथ उत्सर्जित की जाती हैं।

—अपीलें उत्सर्जित

———

विधि पत्रिका (१८८०) १६५८ इलाहाबाद उच्च न्यायालय १३४

पारसराम तथा अन्य — अपीलकर्ता

वि०

अलीगढ़ नगरपालिका — उत्तरवादी

अलीगढ़ के अस्थायी व्यवहार और सत्र न्यायाधीश की डिग्री दिनांक २७-७-१६५० के विरुद्ध द्वितीय अपील सं० १७६५।१६५० दिनांक ५-१२-१६५७

व्यवहार प्रक्रिया संहिता (१६०८) आ० २६ नि० ६—निगम (कारपोरेशन) द्वारा निवेशित वाद में निगम के एक सदस्य ही कमिश्नर नियुक्त—

न्यायमूर्ति डी० एन० राय—

प्रतिवादियों की यह द्वितीय अपील है। वादी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नगरपालिका ने प्रतिवादियों के अतिक्रमण को हटाने के लिये एक वाद निवेशित किया था जिसमें उसका कहना था कि प्रतिवादियों ने नगरपालिका के एक रास्ता पर घेरा डालकर अतिक्रमण किया है।

प्रतिवादियों ने वाद का विरोध इस आधार पर किया कि कोई अतिक्रमण रास्ता की भूमि पर नहीं हुआ है। प्रतिवादियों का कहना है कि विवादग्रस्त भूमि हमारे बगीची का एक भाग है जिसे हमने राजा प्रेम प्रताप सिंह से पट्टा पर लिया था।

अन्वीक्षा न्यायालय ने इस विषय पर प्रतिवेदन के लिये एक कमीशन जारी किया। वह कमीशन बाँके लाल वकील को मिला जो वकालत करते थे। श्री बाँके लाल वकील संयोगवश नगरपालिका के कमिश्नर निकले। कमिश्नर ने उस स्थान का निरीक्षण किया और नाप करके नकशा बनाया। प्रतिवेदन में उन्होंने लिखा कि प्रतिवादियों ने जो पट्टा लिया है वह स्वतः पूर्ण है और रास्ता पर जो घेरा है वह पट्टा की भूमि से अधिक है इसलिए प्रतिवादियों ने रास्ता के भूभाग पर अतिक्रमण किया है।

कमिश्नर के इस प्रतिवेदन तथा नकशे पर आपत्ति की गई और इनमें से एक आधार यह भी था कि कमिश्नर महोदय नगरपालिका के कमिश्नर हैं और इस प्रकार इस मुकदमे से वे हितबद्ध हैं अतः इस काम के लिये उनकी नियुक्ति ठीक नहीं हुई है। अन्वीक्षा न्यायालय ने इन आपत्तियों को नहीं माना और अन्य साक्ष्यों के आधार पर निर्णय दिया कि रास्ता के भूभाग पर अतिक्रमण हुआ है। अपील करने पर नीचे के अपील के न्यायालय ने इसे उत्सर्जित कर दिया। इसके बाद यह अपील निवेशित की गई।

इस अपील में बहस की गई कि नगरपालिका का कमिश्नर इस मुकदमें में कमिश्नर नियुक्त हुआ और इसका परिणाम यह हुआ कि वह अपने ही मुकदमे में न्यायाधीश हो गया अतः यदि नियुक्ति के समय आपत्ति न उठाई गई हो तब भी उस पर निर्भर नहीं किया जा सकता। विद्वान् एकाकी न्यायाधीश ने इसे महत्वपूर्ण समझकर न्यायासन के समक्ष अभिदिष्ट कर दिया।

इसके उत्तर में यही कहना है कि कमिश्नर की नियुक्ति ठीक हुई है। कमिश्नर की नियुक्ति के समय कोई आपत्ति नहीं उठाई गई। कमिश्नर ने नकशा बनाया और प्रतिवेदन दिया और उसके बाद न्यायालय ने जब नकशे और प्रतिवेदन का परीक्षण करने के बाद उपर्युक्त आदेश दिया तो अब जब प्रतिवेदन प्रतिवादी गण के विरुद्ध हुआ तो वे ऐसी आपत्ति नहीं उठा सकते।

अन्य साक्ष्यों से भी प्रमाणित होता है कि प्रतिवादी गण ने जितनी भूमि का पट्टा लिया उतनी भूमि उनके धारण में है। यह विवादग्रस्त भूमि पट्टे की भूमि से अधिक पड़ती है और यह रास्ता के भूभाग पर अतिक्रमण है।

द्वितीय अपील में बल नहीं है। तद्नुसार अपील उत्सर्जित की जाती है।

अपील उत्सर्जित

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इला० उच्च न्याया० १३५

राम कलप — वादी अपीलकर्ता

वि०

बंशीधर तथा अन्य — प्रतिवादी उत्तरवादीगण

व्यवहार प्रक्रिया संहिता (१९०८), आ० २२, नि० ५ और धारा ११—विधिक प्रतिनिधि के प्रतिस्थापन के संबंध में आदेश की अंतिमता—

न्यायमूर्ति डी० एन० राय—

इस न्यायालय द्वारा दिए गए कुछ निर्णयों में विरोध होने के कारण वादी की यह द्वितीय अपील न्यायासन को अभिदिष्ट हुई है। यह वाद दो गाँवों की कुछ जमींदारी की संपत्ति के धारण के लिये निवेशित किया गया है। पहले यह संपत्ति रामसमुझ की थी। रामसमुझ ने प्रतिवादियों के पक्ष में एक उपहार विलेख लिखा था। बाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में रामसमुझ ने उस उपहार के विलेख को निराकृत करने के लिये एक वाद निवेशित किया कि वह उपहार का विलेख धोखा से लिखा गया है। अन्वीक्षा न्यायालय ने वाद में डिग्री दे दी। अपील करने पर अपील के न्यायालय ने डिग्री उलट दिया और वाद उत्सर्जित कर दिया। इस उत्सर्जन के आदेश के विरुद्ध लखनऊ में अवध चीफ कोर्ट में द्वितीय अपील निवेशित की गई। द्वितीय अपील जब विचाराधीन रही उसी बीच रामसमुझ की मृत्यु हो गई। प्रश्न उठा कि अपील को चालू रखने के लिये विधिक प्रतिनिधि के लिये किसकी प्रतिस्थापना की जाय। प्रस्तुत अपीलकर्ता रामकलप पांडे रामसमुझ के विधिक प्रतिनिधि के रूप में आया और इस संबंध में उसका कहना था कि रामसमुझ के इच्छापत्र द्वारा वह उसका विधिक प्रतिनिधि है। यह इच्छापत्र रामसमुझ की मृत्यु के केवल ६ दिन पहले का था। आ० २२ नि० ५ की कार्यवाही में रामकलप की प्रतिस्थापना अपील के स्मृतिपत्र पर उसके विधिक प्रतिनिधि के रूप में की गई। इस द्वितीय अपील के निर्णय द्वारा नीचे के अपील के न्यायालय का निर्णय उलट दिया गया और अन्वीक्षा न्यायालय का निर्णय पुनर्स्थापित हुआ।

राम कलप ने एक वाद पुनः निवेशित किया और उसमें उसका कहना था कि प्रतिवादियों ने मुझे धारणा से हटा दिया है इसलिए धारणा वापस मिलना चाहिए। अपने अधिकार को उसने उसी पहलेवाले इच्छापत्र के अंतर्गत बतलाया था। प्रतिवादियों ने इस वाद में जब इच्छापत्र की वैधता पर ही आपत्ति की तब उसके उत्तर में वादी ने कहा कि वह अब प्राङ्न्याय (रेस जुडिकेटा) हो गया है। नीचे के दोनों न्यायालयों ने निर्णय दिया कि वह प्राङ्न्याय (रेस जुडिकेटा) नहीं होता और इच्छापत्र की वैधता पर विचार करके उन्होंने वाद उत्सर्जित कर दिया और अपील भी।

वादी की ओर से ए० आई० आर० १९२६ इलाहाबाद ४३६ का अभिदेश किया गया। इस रुलिंग में यह निर्णय हुआ था कि जब मुकदमे की सुनवाई के बीच में ही कोई पक्ष मर जाता है तो न्यायालय उसके विधिक प्रतिनिधि का निश्चय करके उसकी प्रतिस्थापना कर सकता है तथा इसके लिये किसी अलग वाद की आवश्यकता नहीं है। और न्यायालय के इस निर्णय का बंधन दोनों पक्षों पर होगा तथा यह निर्णय प्राङ्न्याय (रेस जुडिकेटा) होता है। किंतु आई० एल० आर० २८ इलाहाबाद १०६ में इससे विरुद्ध निर्णय हुआ था कि विधिक प्रतिनिधि की प्रतिस्थापना के लिये जो आदेश पारित होता है वह उस प्रश्न का अंतिम निर्वर्तन नहीं करता वरन् वह जाँच संक्षेपतः (समरी) होती है और इसलिए उसका निर्णय प्राङ्न्याय नहीं होता। इन दो विरुद्ध निर्णयों के पश्चात् ए० आई० आर० १९३६ इलाहाबाद ४१२ का निर्णय हुआ जिसमें आई० एल० आर० २८ इलाहाबाद १०६ का निर्णय मान्य हुआ कि उपर्युक्त कार्यवाही के संबंध में पारित आदेश प्राङ्न्याय (रेस जुडिकेटा) नहीं होता। इसमें १९२६ इलाहाबाद ४३६ से विरुद्ध मत प्रकट किया गया।

मद्रास उच्च न्यायालय के न्यायासन का निर्णय है कि विधिक प्रतिनिधि का वाद के चालू रखनेवाला प्रश्न ऐसा प्रश्न नहीं है जिसको कहा जा सके कि स्वतः वाद के निर्णय के लिये वह प्रश्न उठा है। न्यायासन ने स्पष्ट रूप से विचार व्यक्त किया कि ऐसा निर्णय प्राङ्न्याय (रेस जुडिकेटा) नहीं होता (२० इंडियन केसेस ६५०)। नागपुर का एक निर्णय इसी अभिप्राय का था कि उपर्युक्त प्रकार का निर्णय डिग्री नहीं है और वह प्राङ्न्याय (रेस जुडिकेटा) नहीं होता (ए० आई० आर० १९२१ नागपुर २३)। लाहौर (ए० आई० आर० १९३४ लाहौर ४६५) के निर्णय में यह कहा गया था कि आ० २२ नि० ५ की कार्यवाही में यदि किसी को किसी पक्ष का विधिक प्रतिनिधि नहीं माना गया है तो इसका बंधन नहीं होता और मामला पुनः उठाया जा सकता है और पहला निर्णय प्राङ्न्याय (रेस जुडिकेटा) नहीं होगा।

अपने उच्च न्यायालय तथा अन्य उच्च न्यायालयों के सबसे अधिक निर्णय वादी के विरुद्ध हुए हैं कि वह प्राङ्न्याय नहीं होता। इस मुकदमे में इच्छापत्र के निष्पादन एवं अभिप्रमाणन (एक्जीक्यूशन एंड अटे-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्टेशन) का प्रश्न उठा था जिस पर वादी ने कोई साक्ष्य नहीं दिया । इसलिए नीचे के दोनों न्यायालयों ने जो वाद और अपील का उत्सर्जन किया है वह ठीक है। आ० २२ नि० ५ में विधिक प्रतिनिधि का विनिश्चयन संक्षेपतः (समरी) कार्यवाही है अतः इच्छापत्र की वैधता का जो यहाँ स्पष्ट प्रश्न उठा है उस पर यह प्राङ्न्याय नहीं होता । वादी मृतक का उत्तराधिकारी होकर संपत्ति का धारण नहीं पा सकता ।

एक प्रश्न यह भी उठा था कि इच्छापत्र में विवाद-ग्रस्त संपत्ति आती है कि नहीं जिसका विवरण वाद पत्र में है । नीचे के दोनों न्यायालयों ने निर्णय दिया था कि इच्छापत्र में यह संपत्ति नहीं आती । यहाँ उपर्युक्त निष्कर्ष के कारण इस प्रश्न पर विचार करने की कोई आवश्यकता है ही नहीं । परिणामतः अपील परिव्यय के साथ उत्सर्जित की जाती है ।

—अपील उत्सर्जित

———

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इलाहाबाद उच्च न्यायालय १३७

दुर्गा प्रसाद — अपीलकर्ता

वि०

स्वामी अविद्यानंद गुरु इत्यादि — उत्तरवादी

एफ० ए० एफ० ओ० सं० ३३६।१९५५, दिनांक १२-३-१९५८

न्यायालय शुल्क अधिनियम (१८७०), धा० ७ (आई०), १९ और अनुसूची १ अनुच्छेद १—लिखित प्रतिवाद, अभिवचन और प्रतिसादन (सेट आफ)—देय न्यायालय शुल्क—(व्य० प्र० सं० (१९०८) आ० ८ नि० ६)

निर्णय—न्यायालय शुल्क अधिनियम की धारा ६ ए० के अंतर्गत यह अपील है ।

वादी ने प्रतिवादी को पत्थर की गिट्टी भेजा था और उसी के मूल्य के लिये एक वाद निवेशित किया । प्रतिवादी ने अपने प्रतिवाद में कहा था कि वादी ने पत्थर की गिट्टी नहीं भेजा इसलिए उसे १३४५६ रु० ३ आना की हानि हुई । अतः उसने प्रतिसादन (सेट आफ) की अभ्यर्थना की । न्यायालय ने इस प्रतिसादन (सेट आफ) पर न्यायालय शुल्क माँगा । प्रतिवादी ने इस पर आपत्ति की । पक्षों की बात सुनने के पश्चात् व्यवहार न्यायाधीश ने प्रतिवादी को १३,४५६ रु० पर यथामूल्य शुल्क देने को कहा । इसी आदेश के विरुद्ध यह अपील निवेशित की गई है ।

कहा गया कि हानिपूर्ति की माँग करते समय प्रतिवादी प्रतिसादन (सेट आफ) नहीं माँग रहा था वरन् वह समायोजन (ऐडजस्टमेंट) माँग रहा था । मैं इसे समयोजन (ऐडजस्टमेंट) या भुगतान (पेमेंट) नहीं मानता वरन् इस मुकदमें में जो पत्थर की गिट्टी नहीं भेजी गई और इस प्रकार जो हानि हुई उसके आधार पर यह प्रतिसादन (सेट आफ) है। इस मुकदमें में वादी की माँग यदि स्वीकार कर ली गई होती और प्रतिवादी के यहाँ वादी का जो रुपया चाहीथा उसका समायोजन (ऐडज़स्टमेंट) इस लेखा में हो गया होता तब उस दशा में परिस्थिति दूसरी हो सकती थी । किंतु हानिपूर्ति का वादमूल (काज आफ ऐक्शन) सर्वथा भिन्न होने से यह प्रतिसादन का स्पष्ट आधार होता है जो इस न्यायालय के न्यायासन के एक निर्णय (ए० आई० आर० १९५०, २३७) के समान है ।

अपीलकर्ता के विद्वान् वकील ने ए० आई० आर० १९३७ लाहौर ६२ की निर्भरता ली किंतु मेरे विचार से उस मुकदमें के तथ्य इस मुकदमें से सर्वथा भिन्न थे । मेरे मतानुसार नीचे के न्यायालय का निर्णय ठीक था । इस अपील में बल नहीं है तदनुसार यह उत्सर्जित की जाती है । मुकदमें की परिस्थिति को देखते हुए परिव्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जा रहा है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शीघ्र निर्वर्तन के लिये अभिलेख नीचे के न्यायालय में वापस कर दिए जाँय।

अपील उत्सर्जित

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इला० उच्च न्या० १३८

न्यायमूर्ति डी० एन० राय और न्यायमूर्ति ए० एन० मुल्ला में मतभेद होने पर

न्यायमूर्ति आर० एन० गुर्तू

गोकुल — अपीलकर्ता

वि०

राज्य — उत्तरवादी

पीलीभीत के सत्र न्यायाधीश के निर्णय दिनांक १४-१-१९५५ के विरुद्ध आपराधिक अपील सं० ४४१। १९५५ दिनांक १३-१२-१९५७

(अ) दं० प्र० संहिता (१८९८) धारा ४१६ ४२०—बंदीगृह की अपील के संक्षेपतः उत्सर्जन के बाद सामान्य क्रम में अपील

(ब) दं० प्र० संहिता (१८९८), धा० ५६१ ए०—निर्णय की व्याख्या करने का अधिकार—

(स) साक्ष्य अधिनियम (१८७२) धा० ६—पहचान (आइडेंटिफिकेशन) का मूल्य (दं० प्र० सं० (१८९८) धा० ३६७)—पहचान का प्रदर्शन—व्यक्तियों का मिलाया जाना—

न्यायमूर्ति मुल्ला और न्यायमूर्ति राय में मतभेद होने पर यह अपील सुनवाई के लिये आई है।

गोकुल अपीलकर्ता की दोषसिद्धि दंड संहिता की धारा ३९५ के अंतर्गत १४ जनवरी १९५५ को हुई। उसे ५ वर्ष कठोर कारावास का दंड दिया गया। उसने जेल से दं० प्र० सं० की धारा ४२० के अंतर्गत अपील निवेशित किया। न्यायालय नियम भाग ३, अध्याय १८ नि० १३ (२) के अंतर्गत यह अपील माननीय न्यायमूर्ति बेग के समक्ष प्रस्तुत की गई।

१६ मार्च १९५५ को उसी दोषसिद्धि के विरुद्ध दं० प्र० सं० की धारा ४१६ के अंतर्गत वकील द्वारा एक अपील निवेशित की गई। इस अपील के बारे में कार्यालय ने लिखा कि गोकुल की ओर से जेल अपील हुई है और स्वीकृति के निमित्त वह माननीय न्यायमूर्ति बेग के समक्ष रखी गई है जो अभी तक वापस नहीं आई है। गोकुल की ओर से यह अपील दूसरी है और १६-३ ५५ तक अवधि के भीतर है।

इसके बाद रजिस्ट्रार ने लिखा कि आज प्रस्तुत की गई और आदेश के लिये २२-३-१९५५ को न्यायालय के समक्ष रखा जाय।

कार्यालय ने एक दूसरा प्रतिवेदन दिया कि माननीय न्यायमूर्ति बेग द्वारा जेल अपील उत्सर्जित कर दी गई है।

२६ मार्च १९५५ को यह अपील माननीय न्यायमूर्ति जेम्स के समक्ष आदेश के लिये रखी गई और उन्होंने आदेश दिया कि—"अपीलकर्ता के विद्वान वकील का कहना है कि जेल अपील पहले ही सरसरी ढंग पर उत्सर्जित हो चुकी है और यह अपील सामान्य क्रम में निवेशित की गई है। यह स्वीकृत होती है। उपयुक्त समय पर इसकी सुनवाई तत्व पर होगी।"

न्यायमूर्ति बेग के जेल अपील के निर्णय पर मुहर ३० मार्च १९५५ को हुई। वकील द्वारा निवेशित अपील माननीय न्यायमूर्ति मुल्ला के समक्ष सुनवाई के लिये आई। उन्होंने इसका अभिदेश विभागीय न्यायासन को कर दिया क्योंकि अनेक विचार से निर्णय के लिये निम्नलिखित प्रश्न उठे थे :—

१—क्या दं० प्र० सं० की धा० ४२१ का परंतुक जो दं० प्र० सं० की धारा० ४१६ और धा० ४२० में की गई अपीलों में विभेदकरण करता है औचित्यपूर्ण है या यह भारतीय संविधान के अनुच्छेद १४ का यह उल्लंघन करता है ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२—उच्च न्यायालय को क्या यह अधिकार है कि अभियुक्त की पहली जेल अपील के सरसरी ढंग पर अस्वीकार हो जाने के बाद वकील द्वारा निवेशित दूसरी अपील स्वीकार करे और सुनवाई करे ?

३—क्या यह ठीक कि है उच्च न्यायालय का निर्णय तब तक निर्णय नहीं माना जाता जब तक कि उच्च-न्यायालय की मुहर इस पर लग न जाय ?

४—क्या उच्च न्यायालय दं० प्र० सं० की धारा ५६१ ए० के अंतर्गत अपने ही निर्णय पर पुनर्विचार कर सकता है ?

विभागीय न्यायासन के समक्ष जब अपील पहुँची तो वहाँ माननीय न्यायाधीशों में मतभेद रहा। पहले प्रश्न का उत्तर माननीय मुल्ला ने दिया कि दं० प्र० सं० की धारा ४१६ का परंतुक भारतीय संविधान के शक्ति परस्तात् (अल्टावारस) है किंतु उनका विचार था कि प्रश्नगत् भाग को उसमें से अलग किया जा सकता है और अलग करने पर यह वैध हो सकता है। माननीय राय का विचार था कि धा० ४१६ के परंतुक का कोई भाग संविधान के शक्ति परस्तात् नहीं है।

प्रश्न २ और ३ पर दोनों न्यायाधीशों का एक मत रहा कि जेल की अपील अस्वीकृत होने के बाद उच्च न्यायालय को यह अधिकार नहीं है कि वकील द्वारा निवेशित दूसरी अपील की सुनवाई करे। इस प्रश्न पर भी दोनों न्यायाधीशों का एक मत था कि उच्च न्यायालय के निर्णय की वैधता के लिये यह आवश्यक नहीं है कि उच्च न्यायालय की मुहर हो। चौथे प्रश्न पर न्यायमूर्ति मुल्ला का विचार था कि कुछ परिस्थितियों में उच्च-न्यायालय धा० ५६१ ए० के अंतर्गत अपने ही निर्णय पर पुनर्विचार कर सकता है, न्यायमूर्ति राय का विचार इसके विरुद्ध था।

इस प्रकार विचार व्यक्त करने के बाद दोनों न्यायाधीश विरुद्ध निष्कर्ष पर पहुँचे। न्यायमूर्ति मुल्ला का निष्कर्ष था कि अभियुक्त को संदेह का लाभ देकर छोड़ देना चाहिए; न्यायमूर्ति राय का निष्कर्ष था कि अपील उत्सर्जित कर देने योग्य है।

इस प्रकार मतभेद होने पर यह माननीय मुख्य न्यायाधिपति के समक्ष एक तीसरे न्यायाधीश के विचार के लिये भेजे जाने के निमित्त रखी गई।

जब इस अपील की सुनवाई हमारे समक्ष हुई तो उस समय न्यायमूर्ति वेग के उस निर्णय–आदेश की व्याख्या का प्रश्न उठा जो उन्होंने जेल अपील को उत्सर्जित करते समय पारित किया था। उनका आदेश इस प्रकार था:—'उत्सर्जित। जब तक अवधि बीत न जाय मुहर का लगाना रोक रखा जाय।' (डिसमिस्ड। डिले सील पेंडिंग एक्सपायरी आफ लिमिटेशन।)

यह बात दोनों पक्षों के वकीलों को मान्य हुई कि अपील सर्वथा उत्सर्जित नहीं कर दी गई है वरन् उत्सर्जन के साथ कुछ प्रतिबंध है और वह प्रतिबंध है कि यों तो अपील उत्सर्जित की जाती है किंतु इस पर मुहर का लगाना अवधि के समय तक रोक रखा जाय। विद्वान् महाधिवक्ता ने इसका अर्थ यही लगाया है कि यह उत्सर्जन अभी पूर्ण नहीं है वरन् यदि अवधि के भीतर कोई दूसरी अपील वकील द्वारा निवेशित हो जाती है तो ऐसी दशा में उत्सर्जन का आदेश प्रभावशून्य हो जायगा और इस दूसरी अपील की सुनवाई उसके तत्व पर होगी। अतः इस मामले में मुहर का लगाया जाना दूसरी अपील की सुनवाई में बाधक नहीं होता क्योंकि अवधि के भीतर दूसरी अपील निवेशित हुई है। मेरे विचार से उत्सर्जन के बादवाले ये शब्द व्यर्थ ही नहीं जोड़े गए हैं वरन् इन शब्दों से न्यायमूर्ति वेग का अभिप्राय था कि यदि दूसरी अपील निवेशित हो तो उसकी सुनवाई की जाय। इसीलिए माननीय न्यायमूर्ति जेम्स ने दूसरी अपील स्वीकार किया था और आदेश दिया था कि तत्व पर इसकी सुनवाई हो। ३ ए० एल० जे० ६१८ में यह न्यायालय ऐसी परिस्थिति में दूसरी अपील सुनने के पक्ष में था और ए० आई० आर० १९३४ इलाहाबाद ६८८ में यह स्पष्ट रूप से कह दिया गया था कि उपर्युक्त परिस्थिति में "पहली अपील के उत्सर्जन के पश्चात् दूसरी अपील जो वकील द्वारा विवेशित की गई है उसकी सुनवाई में कोई बाधा नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस विषय पर न्यायमूर्ति मुल्ला और न्यायमूर्ति राय में मतभेद हुआ था वह प्रश्न है कि किसी परिस्थिति विशेष में उच्च न्यायालय अपने ही निर्णय पर पुनर्विचार कर सकता है कि नहीं। किंतु यहाँ हमें पुनर्विचार के इस अधिकार संबंधी उलझनवाले प्रश्न पर विचार नहीं करना है वरन् यहाँ हमें उस निर्णय का उपयुक्त अर्थ लगा कर उसके प्रभाव में लाना है। मेरे विचार से दं० प्र० सं० की धा० ५६१–ए० में न्यायालय को अपने ही निर्णय के अर्थ लगाने का पूरा अधिकार है।

मेरे विचार से जेल अपील निवेशित करने के बाद वकील द्वारा दूसरी अपील के निवेशित करने में कोई रुकावट नहीं है। दूसरी अपील यदि कालबाधित नहीं है तो दोनों अपीलों को मिलाकर एक साथ सुनवाई होगी। अपीलकर्ता यदि चाहे तो जेल की अपील हटा सकता है और दूसरी अपील की कार्यवाही चालू रख सकता है। उस दशा में बात अवश्य दूसरी हो सकती है जब जेल की पहली अपील अंतिम रूप से, बिना प्रतिबंध के सरसरी ढंग पर उत्सर्जित कर दी गई हो और अवधि के भीतर अपीलकर्ता वकील द्वारा दूसरी अपील निवेशित करके दूसरे निर्णय की माँग करता है।

अतः मेरे विचार से न्यायमूर्ति वेग के उक्त निर्णय का अर्थ यही था कि यदि अवधि के भीतर सामान्य क्रम में दूसरी अपील निवेशित होती है तो वह उत्सर्जन का आदेश प्रभावशून्य हो गया हुआ मान लिया जायगा और दूसरी अपील की सुनवाई उसके तत्व पर होगी।

अपील के तत्व पर विचार करने पर प्रतीत यही होता है कि जब डकैती रात में सोते समय पड़ी, डाकू संख्या में अधिक थे और अग्न्यस्त्र से सज्जित थे, राधिका देवी पहले ही घायल हो चुकी थी, कोई प्रमाण ऐसा नहीं है जिससे प्रतीत हो कि प्रकाश लगातार आता रहा अतः ऐसी भयानक परिस्थिति में एवं घायल होने पर केवल रुक रुक कर होनेवाले टार्च के प्रकाश में ठीक पहचान करना कठिन था। संदेह इस बात से और भी बढ़ जाता है कि पहचान की कार्यवाही घटना के बहुत दिन बाद हुई और कनटूटे होने के लिये पहचान के प्रदर्शन में कोई सावधानी नहीं बरती गई। उन्होंने संदेहवाले और न संदेहवाले दोनों को बराबर बराबर संख्या में पहचाना। पहचान के प्रदर्शन में गलत पहचान की संभावना बराबर बनी रहती है।

पूरी स्थिति समझने पर यही आता है कि गोकुल की गलत पहचान करने की संभावना सर्वदा रही है। इन कारणों से गोकुल को संदेह का लाभ दिया जाना चाहिए। तद्नुसार अपील स्वीकार की जाती है, उसकी दोष सिद्धि निराकृत की जाती है और उसको छोड़ देने का निर्देश किया जाता है।

मैं समझता हूँ कि यह मुकदमा विभागीय न्यायासन को वापस चला जाना चाहिए। ऐसा कर दिया जाय।

डी० एन० राय और ए० एन० मुल्ला न्यायमूर्ति गण —

मतभेद होने पर यह मामला संमति के लिये एक तीसरे विद्वान् न्यायाधीश के समक्ष गया था। उनकी संमति अब प्राप्त हो चुकी है। संमति के विचार से हम यह अपील स्वीकार करते हैं, दोष सिद्धि और दंडादेश निराकृत करते हैं और उस पर लगाए गए आरोपों से हम उसे छोड़ देते हैं। वह इस समय जमानत पर है। उसे आत्म समर्पण करने की आवश्यकता नहीं है।

—अपील स्वीकृत

विधि पत्रिका (१८८०) १६५८ इलाहाबाद उच्चन्यायालय १४०

बनारस के व्यवहार न्यायाधीश का व्यवहार अपील सं० १५७।१६४५ की डिग्री और आदेश दिनांक १४–४–५३ के विरुद्ध व्यवहार पुनरीक्षण सं० ७६१। १६५३ (२४ सितंबर १६५७ को निर्णीत)

मकबूल आलम तथा अन्य — प्रार्थीगण
जावद हुसेन तथा अन्य — विपक्षीगण

अवधि अधिनियम, १६०८, धारा ५ की व्याप्ति–कार्यवाही स्थगित रही और जिस दिन स्थगन का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदेश उन्मुक्त हुआ उस दिन प्रार्थनापत्र दिया गया देर क्षमा करने का यह उपयुक्त आधार है—

न्यायमूर्ति भार्गव –

नीचे के अपील के न्यायालय में एक अपील चल रही थी उसी से यह प्रतिवादी का पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र है। श्रीमती काशिमुन्निसा अपील कर्ता सं० ५ मर गई। अब्दुल हसन उत्तरवादी सं० ४ भी मर गया। जहाँ तक अपील कर्ता सं० ५ का संबंध है उसके बारे में कोई कठिनाई नहीं थी क्योंकि उसके उत्तराधिकारी पहले से ही अभिलेख पर थे। अब्दुल हसन के उत्तराधिकारी पर नहीं थे। वह १६४७ में—किसी समय मरा और प्रतिस्थापना का प्रार्थनापत्र १८–२–१६५२ को दिया गया। अवधि अधिनियम की धारा ५ के अंतर्गत एक प्रार्थना पत्र भी दिया गया कि अब्दुल हसन की मृत्यु का तथ्य ज्ञात नहीं हुआ था इसलिए अपीलकर्ता को धारा ५ का लाभ इस आधार पर दिया जाना चाहिए। विद्वान् व्यवहार न्यायाधीश ने निर्णय दिया कि जब अपील स्थगित थी तो अपीलकर्ता को यह प्रमाणित करना आवश्यक नहीं है कि उसकी मृत्यु का समाचार मालूम नहीं था। अपील प्रार्थनापत्र देने के दिन तक स्थगित थी।

इस परिस्थिति में विद्वान व्यवहार न्यायाधीश का विचार था कि अपील का उपशमन (अबेटमेंट) नहीं हुआ जब कि कार्यवाही स्थगित थी तो अपील कर्ता को यह अधिकार था कि स्थगन के आदेश की समाप्ति के बाद प्रार्थनापत्र दें। उन्होंने गुरुबक्श सिंह विरुद्ध आशा सिंह ए० आई० आर० १६५२ पेप्सू ४० पर निर्भर किया।

मेरे समक्ष इस पुनर्निरीक्षण में बहस की गई कि नीचे के अपील के न्यायालय का यह विचार गलत था। यदि कार्यवाही स्थगित थी तो विद्वान वकील का कहना है कि प्रतिस्थापना की कार्यवाही स्थगित नहीं थी। यह बात मानने योग्य नहीं है। क्योंकि एक बार जब कार्यवाही स्थगित हो चुकी है तो मुकदमे की सभी कार्यवाही स्थगित रहेगी। यों तो अपीलकर्ता प्रतिस्थापना का प्रार्थनापत्र दे सकता था किंतु वह भी विचाराधीन ही रहता कारण कि इस बीच न्यायालय उस पर कोई आदेश पारित नहीं कर सकता था। कुछ भी हो जब कार्यवाही स्थगित थी तो अवधि अधिनियम की धारा ५ के अंतर्गत विलंब को क्षमा करने के लिये यह आधार उपयुक्त है। ऐसी परिस्थिति में पुनरीक्षण में हस्तक्षेप करने का कोई कारण दिखलाई नहीं पड़ता।

तदनुसार यह प्रार्थनापत्र उत्सर्जित किया जाता है किंतु परिव्यय के लिये कोई आदेश नहीं दिया जाता।

स्थगन का आदेश उन्मुक्त होता है। ४ वर्ष से यह प्रार्थनापत्र विचाराधीन है। इसके अभिलेख नीचे के न्यायालय में शीघ्रातिशीघ्र निर्णय के लिये भेज दिए जायँ।

—प्रार्थनापत्र उत्सर्जित

———

विधि पत्रिका (१८८०) १६५८ इलाहाबाद उ० न्या० १४१

गुर्टू और राय न्यायमूर्तिगण

व्यवहार न्यायाधीश बरेली के आदेश दिनाक १३-१-१६५५ के विरुद्ध व्यवहार पुनरीक्षण सं० २१३।१६५५

(३० जनवरी १६५८ को निर्णीत)

राधेलाल — वादी अपीलकर्ता

वि०

रामकिशोर — प्रतिवादी उत्तरवादी

(अ) पुनरीक्षण—अभिवचन (प्लिडिंग्स) का संशोधन अस्वीकृत होने पर पुनरीक्षण नहीं होता—१६३६ ए० डब्ल्यू० आर० (उच्च न्यायालय) ७७६ पूर्ण न्यायासन अभिदिष्ट।

(ब) अभिवचन (प्लीडिंग्स) के नियम में यह नहीं है कि विपक्षी जो कहे उसको पहले से ही जान कर तब बात कही जाय—अभिवचन के सामान्य सिद्धांत—

न्यायमूर्ति राय—

वादी के वादपत्र का संशोधन अस्वीकार कर दिया गया था उसी के विरुद्ध यह पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस न्यायालय में पूर्ण न्यायासन के एक निर्णय श्रीमती सूरजपाली वि० आर्य प्रतिनिधि १६३६ ए० डब्ल्यू० आर (उच्च न्यायालय) ७७६ के अनुसार एक आरंभिक आपत्ति उठाई गई कि अभिवचन का संशोधन अस्वीकार करने पर इसके विरुद्ध पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र निवेशित नहीं किया जा सकता। इस आरंभिक आपत्ति में बल है। किंतु मुकदमे की परिस्थिति से आवश्यकता यही प्रतीत होती है कि प्रतिवादी के लिखित प्रतिवाद के उत्तर में वादी प्रत्योत्तर (रेप्लिकेशन) प्रार्थनापत्र निवेशित कर सकता है और प्रतिवादी भी प्रत्युक्ति (रीज्वाइडर) निवेशित कर सकता है।

इसके तथ्य इस प्रकार हैं कि भू स्वामी दीपचंद ने वादी के कथनानुसार अपनी संपत्ति इच्छापत्र द्वारा दे दी थी। वादी ने वाद निवेशित किया था कि हमलोग उसके प्रत्यावर्ती हैं। प्रतिवाद में एक विक्रय विलेख की चर्चा की गई जिसके द्वारा कहा गया कि प्रतिवादियों के पक्ष में संपत्ति का हस्तांतरण सर्वथा ठीक था। जब विक्रय विलेख की चर्चा की गई तो वादी को यह दिखलाने की आवश्यकता पड़ी कि यह बेनामी है और वास्तविक स्वामी दीपचंद था और यदि दीपचंद वास्तविक स्वामी न भी हो तो उत्तराधिकार के क्रम में वादी आता है। इसी बात को दिखलाने के लिये वाद पत्र के संशोधन की आवश्यकता पड़ी। इसी के लिये संशोधन प्रार्थनापत्र दिया गया था। वादी यह जानता नहीं था कि विक्रय विलेख प्रतिवादी के पास है इसलिए वादी पहले ही इसके बारे में कुछ लिख नहीं सकता था। यह नियम अभिवचन में है भी नहीं। कुछ भी हो प्रतिवादी के लिखित प्रतिवाद निवेशित करने के बाद जब विक्रय विलेख न्यायालय में आता तो वादी प्रत्योत्तर प्रार्थनापत्र में यह कह सकता है कि वह लेन देन बेनामी है और वास्तविक स्वामी दीपचंद है।

आ० ६ नि० ७ में है कि बिना संशोधन के अभिवचन में कथन के बारे में कोई नया आधार नहीं उठाया जा सकता या ऐसा तथ्य नहीं लाया जा सकता जो पहले के अभिवचन से असंगत पड़ता हो। अभिवचन के सामान्य सिद्धांत इस प्रकार है :—

वादी अपनी अभ्यर्थना के अभिकथन द्वारा उन सारभूत तथ्यों की चर्चा करता है जिन पर वह अपने मुकदमें के लिये निर्भर करता है।

२—प्रतिवादी उसके उत्तर में प्रतिवाद रखता है जिसमें वह सभी या निम्नलिखित उपायों में से कोई काम में ला सकता है:—

पहला, वह वादी के कथन के तथ्य या तो नकार सकता है या तो उसे स्वीकार करने से इनकार कर सकता है।

दूसरा, वह अपनी गलती स्वीकार कर सकता है या तथ्य को मान सकता है और उसके प्रभाव को दूर करने के लिये नए तथ्य की चर्चा कर सकता जो कि उसका उत्तर होता है।

तीसरा वह वादी के अभिकथन के तथ्यों को मान सकता है और उसके विधिक प्रभाव को निर्धारित करने के लिये विधि का प्रश्न उठा सकता है।

यदि प्रतिवादी इन उपायों में से पहला और तीसरा उपाय काम में लाता है तो तुरत पक्षों के बीच में तथ्य एवं विधि का प्रश्न उठ जाता है।

(३) यदि प्रतिवादी इन उपायों में से दूसरा उपाय काम में लाता है तो वादी उत्तर दे सकता है कि:—

पहला, प्रतिवादी द्वारा नए तथ्यों को नकार जाय या, दूसरा, उनको मानकर अन्य तथ्यों की चर्चा कर कर सकता है जो उसके प्रभाव को समाप्त कर दे, या, तीसरा, उसके प्रभाव के लिये विधि का प्रश्न उठावे।

(४) जब वादी दूसरे प्रकार के उत्तर की शरण लेता है और यह कि जब दोष स्वीकृति और टाल मटोल द्वारा उत्तर देता है तो उस दशा में प्रतिवादी को प्रत्युक्ति (रीज्वाइंडर) का उपाय उपलब्ध है।

इस मुकदमें प्रतिवादी ने अधिकार के प्रश्न की चर्चा की। इसलिए ऐसी परिस्थिति में वादी प्रत्योत्तर (रेप्लिकेशन) द्वारा वह बात कह सकता है जिससे कि वह सफल हो जैसे कि संपत्ति का वास्तविक स्वामी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

याकूब अली ने इस आदेश के विरुद्ध अपील निवेशित किया। अतिरिक्त आयुक्त ने निर्णय दिया कि अन्वीक्षा न्यायालय जो धारण का प्रमाण चाहता था वह गलत था। धारा २० में अधिवासी होने के लिये केवल अभिलिखित अध्यासी होना ही पर्याप्त है, धारण की आवश्यकता नहीं है। अतिरिक्त आयुक्त ने निर्णय दिया था कि यहाँ याकूब अली १३५६ फ० में अभिलिखित अध्यासी था और ३० जून १६४८ के पश्चात् उसका अधिनिष्कासन हुआ है इसलिए धाराएँ २०।२३२ के अंतर्गत धारण वापस पाने का प्रार्थनापत्र स्वीकार करना चाहिए। अतिरिक्त आयुक्त का यह भी कहना था कि धारा २० की व्याख्या ४ इसमें लागू नहीं हो सकती।

लीलाधर तब इस द्वितीय अपील में आए। इस अपील में उनका कहना है कि :—

१—विद्वान् अतिरिक्त आयुक्त ने याकूब अली के धारण की प्रकृति पर विचार नहीं किया। याकूब अली का नाम कागजों में न्यायालय के आदेश से आया और वह आदेश जब अपील से निराकृत हो गया तो धारा २० के अभिप्राय के अनुसार याकूब अली अभिलिखित अध्यासी नहीं कहा जा सकता और वह इस अधिकार के बल पर धारण वापस भी नहीं पा सकता। १६५६ ए० एल० जे० ३५१ में निर्णय हुआ था कि १३५६ की प्रवृष्टि सामान्य क्रम में पटवारी द्वारा होनी चाहिए किसी न्यायालय की उस डिग्री द्वारा नहीं जो बाद में चलकर उलट दी गई हो। १६५६ आर० डी० १५० में राजस्व मंडल ने यही निर्णय दिया था कि अधिवासी अधिकार प्रदान करने के लिये १३५६ फ० की प्रवृष्टि विधि की दृष्टि में प्रवृष्टि हो।

२—व्य० प्र० सं० की धारा १४४ के अंतर्गत प्रार्थनापत्र में याकूब अली एक पक्ष थे किंतु उन्होंने उसमें अपने अधिवासी अधिकार की चर्चा नहीं की।

३—द्वितीय अपील के बारे में कहना है कि जब अनुसूची का संशोधन हुआ उसके बाद विद्वान् आयुक्त ने इसमें निर्णय दिया इसलिए इसमें द्वितीय अपील हो सकती है।

पहली आपत्ति के विषय में याकूब अली की ओर से कोई प्रमाण नहीं दिया गया। अपील के दूसरे आधार के बारे में याकूब अली का कहना है कि १६५६ ए० एल० जे० ३२५ में निर्णय हुआ था कि अधिवासी के अधिकार पर धारण वापस पाने के लिये प्रार्थी को अधिनियम के अंतर्गत अभिदिष्ट न्यायालय के समक्ष प्रार्थनापत्र देना चाहिए और तत्संबंधी नियमों का पालन करना चाहिए। अतः उत्तरवादी का कहना है कि यदि १४४ की कार्यवाही के अंतर्गत अधिवासी अधिकार की चर्चा नहीं उठाई गई तो बाद में धारा २०।२३२ के अंतर्गत प्रार्थनापत्र देने में कोई रुकावट नहीं है और ठीक कार्यवाही यही है भी।

द्वितीय अपील के बारे में उत्तरवादी का कहना है कि अपील का अधिकार निहित अधिकार है। इसलिए यदि वाद निवेशित करने की तिथि को द्वितीय अपील निवेशित करने का कोई विधान नहीं था तो संशोधन के बाद ही निर्णय क्यों न हुआ हो द्वितीय अपील निवेशित नहीं की जा सकती।

इसके उत्तर में अपीलकर्ता ने बतलाया कि अपील के स्मृतिपत्र पर एक नोट भी है कि यदि किसी कारण से अपील न हो सकती हो तो इसे पुनरीक्षण ही माना जाय। उत्तरवादी की आपत्ति है कि इस अपील को पुनरीक्षण नहीं माना जाना चाहिए कारण कि यदि अपीलकर्ता पहले से ही जानता था कि अपील निवेशित नहीं हो सकती और यह जानते हुए भी उसने अपील निवेशित किया तो इसे पुनरीक्षण में परिवर्तित नहीं करना चाहिए। इसके लिये उसने १६५६ आर० डी० ३४५ का सहारा लिया जिसमें कहा गया था कि अपील को पुनरीक्षण में परिवर्तित करने का अधिकार न्यायालय के स्वविवेक पर निर्भर करता है। अतः ऐसी परिस्थिति में न्यायालय को स्वविवेक का प्रयोग न्यायिक ढंग पर करना चाहिए।

इस मामले में विद्वान आयुक्त का निर्णय अनुसूची के संशोधन के बाद हुआ और संशोधन द्वारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय अपील का विधान बनाया गया तो यह पुनरीक्षण में परिवर्तित करने योग्य है और इसमें न्यायालय का स्वविवेक प्रयुक्त हो सकता है।

उत्तरवादी के वकील ने फिर आपत्ति की कि यदि इसे पुनरीक्षण मान भी लिया जाय तो भी विद्वान् आयुक्त का निर्णय हस्तक्षेप्य नहीं है क्योंकि पुनरीक्षण में हस्तक्षेप केवल उसी समय किया जा सकता है जब कि न्यायालय ने विधि द्वारा प्रदत्त अभिक्षेत्र का प्रयोग नहीं किया या जिस अधिक्षेत्र का प्रयोग किया वह विधि द्वारा प्रदत्त नहीं था अथवा अधिक्षेत्र के प्रयोग में न्यायालय ने ऐसी अनियमितता बरती हो कि उससे वाद के तात्विक-निर्णय पर प्रभाव पड़ा हो। उत्तरवादी का कहना है कि इसमें हस्तक्षेप करने योग्य कोई परिस्थिति नहीं है।

यहाँ पर व्य० प्र० सं० की धारा १४४ में धारण छोड़ देने पर भी विधि के अभिप्राय के प्रतिकूल धारण वापस पाने का प्रयत्न, तत्संबंधी १३५६ फ० की प्रवृष्टि, याकूब अली का जमींदार का संबंधी होना, धारण के संबंध में कोई प्रमाण न देना ये सब ऐसे कारण हैं जिनके बल पर पुनरीक्षण में हस्तक्षेप किया जा सकता है।

अतः आगरा मंडल के अतिरिक्त आयुक्त का दिनांक १६ जून १९५६ का आदेश निराकृत किया जाता है और एस० डी० ओ० का आदेश पुनर्स्थापित होता है।

—आदेश निराकृत

——

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ इला० (राजस्व) ५०

(राजस्व मंडल)

वेलगड़हा, मलीहाबाद, लखनऊ

लखनऊ और फैजाबाद मंडल के आयुक्त के आदेश दिनांक २५ फरवरी १९५२ के विरुद्ध द्वितीय अपील (प्रार्थनापत्र सं० १९९/१९५१-५२)

मुहम्मद युसूफ खाँ

अपीलकर्ता

विरुद्ध

बागला

उत्तरवादी

विशिष्ट साहाय्य अधिनियम १८७७ धा० ४२ का परंतुक—भू धारण अधिनियम की धारा ४९ के अंतर्गत खाते के बटवारे के वाद में विशिष्ट साहाय्य अधिनियम की धारा ४२ बाधक नहीं है।

सह कृषक की यदि अवस्था हो तो उसमें प्रतिकूल धारण को प्रमाणित करने के लिये प्रमाण बहुत ही भारी होना चाहिए—एक सहकृषक जब खेती में रुचि नहीं रखता तो इसे निश्चित रूप से परित्याग नहीं कहा जा सकता और कई एक सहकृषकों में से एक परित्याग कर भी नहीं सकता – (उ० प्र० भू धारण अधिनियम, १७, १९३९—धारा ८७—) न्यायिक सदस्य ए० एन० सप्रू —

वादी ने उ० प्र० भू धारण अधिनियम की धारा ४९ के अंतर्गत खाते के बँटवारे के लिये एक वाद निवेशित किया था। प्रतिवादी बागला ही उसमें एकमात्र लड़नेवाला पक्ष था। दोनों न्यायालयों ने वादी के विरुद्ध निर्णय दिया था इस प्रकार वादी की यह द्वितीय अपील है।

इसमें प्रतिवादी की आपत्ति थी कि वादी २५ वर्ष से बाहर रहता है और खेती नहीं करता। लगान हमी देते हैं और जिस समय इन खेतों का पट्टा लिखा गया उस समय उसमें यह तय हुआ था कि पट्टा हमारे ही नाम से रहेगा। प्रतिवादी ने यह भी कहा कि वाद विशिष्ट साहाय्य अधिनियम की धारा ४२ से बाधित है।

अन्वीक्षा न्यायालय ने वाद उत्सर्जित कर दिया। उत्सर्जन का आधार दिया गया कि लगान की कोई रसीद नहीं दी गई, वादी ने परित्याग कर दिया है और वाद विशिष्ट साहाय्य अधिनियम की धारा ४२ से बाधित है। विद्वान् आयुक्त ने भी थोड़ा बहुत यही निष्कर्ष माना है।

विशिष्ट साहाय्य अधिनियम की धारा ४२ से बाधित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने की जो बात कही गई है वह मान्य नहीं हो सकती क्योंकि धारा ४६ के अंतर्गत वाद धारण के लिये होता है और इस प्रकार धारा ४६ में उक्त अधिनियम की धारा ४२ बाधक नहीं होती।

परित्याग (अबंडनमेंट) की जो बात कही गई है वह भी ठीक नहीं है। परित्याग के लिये विधान है कि जहाँ कई एक सह कृषक हों वहाँ यदि सभी परित्याग करें तभी परित्याग होता है; एक सह कृषक परित्याग नहीं कर सकता। दूसरे, खेती में केवल रुचि न रखना या खेती न करना परित्याग नहीं है। यहाँ परित्याग से वादी के अधिकार का उपशमन नहीं हुआ यदि उपशमन हो भी सकता है तो केवल एक प्रकार से कि अवधि व्यतीत हो जाने पर धारण वापस पाने का अधिकार बाधित हो गया हो। किंतु इस प्रकार का प्रतिकूल धारण यदि एक सहकृषक का दूसरे सहकृषक के विरुद्ध हो तो इसके लिये बहुत स्पष्ट प्रमाण चाहिए। प्रतिवादी को दिखलाना चाहिए कि धारण वास्तविक, अकेले, विरोधी भाव से लगातार था। और वादी इस धारण से अवगत रहा है। अतः इस प्रकार परीक्षण करने पर यही आता है कि प्रतिवादी—उत्तरवादी का धारण प्रतिकूल नहीं था।

प्रतिवादी का यह कहना असंगत प्रतीत होता है कि यों तो पट्टा दोनों के नाम से लिखा गया किंतु उसमें तय हुआ था कि प्रतिवादी ही उसका अकेले स्वामी रहे। यदि पट्टा दोनों के नाम से लिखा गया तो आरंभ से ही यह प्रतिबंध कैसे लगा दिया गया कि प्रतिवादी ही उसका स्वामी रहे। विद्वान् आयुक्त ने साक्ष्य की वास्तविकता को नहीं समझा था। अतः निम्नलिखित तथ्यों के आधार पर वाद की डिग्री दी जाने योग्य है।

१—वादी के सहकृषकत्व के प्रमाण में बहुत पहले तक की प्रवृष्टि,

२—प्रतिवादी के कथन में असंगति,

३—प्रतिकूल धारण के अभिकथन का न होना,

४—एक सहकृषक द्वारा ही लगान का दिया जाना और जमींदार का उसे स्वीकार करना यह प्रमाणित नहीं करेगा कि दूसरे सहकृषक का अधिकार समाप्त हो गया।

अपने विद्वान् सहयोगी की सहमति पर मैं यह अपील स्वीकार करूँगा और नीचे के न्यायालयों की डिग्री परिव्यय के साथ निराकृत की जायँगी।

न्यायिक सदस्य एस० एच० जहीर ने सहमति प्रकट की।

—अपील स्वीकृत

———

विधि पत्रिका (१८८०) १६५८ इला० (राजस्व) ५१

(उच्च न्यायालय)

न्यायमूर्ति जे० के० टंडन

व्यवहार प्रकीर्णक लेख सं० २३७०।१६५६

२० मार्च १६५८

सय्यद मुहम्मद जमीन — प्रार्थी

विरुद्ध

एस० डी० ओ० मंझनपुर — विपक्षी

उ० प्र० जमींदारी विनाश तथा भूमि सुधार नियम १६५२ नि० ११५—सी० से नि० ११५—एफ० तथा नि० २६ और २६—ए०—पट्टेदार पट्टे की भूमि पर के पेड़ों को काट कर ले जा सकता है और उसे हरजाना देने का आदेश गलत है—

न्यायमूर्ति टंडन—

इलाहाबाद जिले के मंझनपुर के एस० डी० ओ० ने प्रार्थी के विरुद्ध ग्राम समाज से ली हुई भूमि पर के पेड़ों को काट कर ले जाने के संबंध में २५० रु० हरजाना देने का आदेश दिया था। इसी आदेश को प्रभाव शून्य करने के लिने भारतीय संविधान के अनु० २२६ के अंत-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

-र्गत उत्प्रेषण लेख (रिट आफ सेर्टियोरेरी) जारी करने की प्रार्थना की गई है।

तथ्य इस प्रकार है कि यह भूमि पहले बंजर थी और ग्राम समाज की थी। प्रार्थी का कहना है कि १९५२ में ग्राम समाज ने इस भूमि का मुझे पट्टा कर दिया और धारण भी दे दिया। इस बीच गाँव के कुछ लोग जो मुझ से बुरा मानते थे एस० डी० ओ० के यहाँ एक बिना नाम का प्रार्थनापत्र भेजा और उसमें उन लोगों का कहना था कि ग्राम समाज ने गलत ढंग पर भूमि का पट्टा कर दिया है और मैं गलत ढंग पर उस पर के पेड़ काट कर ले गया हूँ।

ऐसा प्रार्थनापत्र पाने पर एस० डी० ओ० ने तहसीलदार और कानून गो को जाँच करने का आदेश दिया और जाँच का प्रतिवेदन प्राप्त होने पर एस० डी० ओ० ने जमींदारी विनाश तथा भूमि सुधार नियम १९५२ के नि० ११५—सी० में इसे मुकदमा लिखा और इस प्रार्थी को नोटिस दिया कि वह कारण दिखलावे कि ग्राम समाज की भूमि पर से उसका अतिक्रमण हटाने के लिये आदेश क्यों न पारित किया जाय। इसके पहले की सारी कार्यवाही प्रार्थी के पीठ पीछे हुई थी।

नोटिस पर प्रार्थी ने उपस्थित होकर के कारण दिखलाया कि वह भूमि ग्राम समाज से पट्टा पर ली गई है और सरकारी कागजों की शुद्धि के संबंध में एक मामला इसी संबंध में था और उसमें तहसीलदार ने उस पट्टे का स्थिरीकरण किया है।

एस० डी० ओ० ने पट्टा को सही माना और कहा कि प्रार्थी प्रश्नगत् भूमि का सीरदार है किंतु उन्होंने आदेश दिया कि प्रार्थी ने जो उस भूमि पर के पेड़ों को काट लिया है उसके लिये २५०) हरजाना दे।

११५ सी० से ११५ एफ० तक के नियम इस प्रसंग से संबंधित हैं और उसमें हरजाना देने का नियम है। किंतु हरजाना उसी समय दिलाया जा सकता है जब कि वह संपत्ति ग्राम समाज की हो। यहाँ ये पेड़ ग्राम समाज के नहीं थे। जब प्रार्थी उस भूमि का सीरदार है तो नि० २६—ए० के अनुसार जितने पेड़ उस भूमि पर थे वे सब प्रार्थी के हो गए।

एस० डी० ओ० ने अपने आदेश में यह कहीं नहीं दिखलाया है कि वे पेड़ ग्राम समाज के थे। ११५ सी० से ११५ एफ० तक में मजिस्ट्रेट को ऐसा आदेश पारित करने का अधिकार कहीं नहीं दिया गया है। मजिस्ट्रेट का यह आदेश गलत है एवं अधिक्षेत्र के बाहर है।

प्रार्थी केवल इसी आधार पर सफल हो जाता है इसलिए अन्य आधारों पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है।

तद्नुसार यह प्रार्थनापत्र स्वीकार किया जाता है। मजिस्ट्रेट का १२–३–१९५६ का हरजाना दिलानेवाला आदेश अभिखंडित किया जाता है। प्रार्थी को विपक्षी से परिव्यय पाने का अधिकार होगा।

—प्रार्थनापत्र स्वीकृत।

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इला० (राजस्व) ५२
(राजस्व मंडल)

एम० एन० सिद्दिकी न्यायिक सदस्य और आर० के० सिंह न्यायिक सदस्य (रा० मं०)

रुहेलखंड प्रभाग के अतिरिक्त आयुक्त के आदेश दिनांक २२ अगस्त १९५७ के विरुद्ध पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र सं० ७।१९५७-५८

५ मई १९५८

हरद्वारी　　　　प्रार्थी
गुलजारी　　　　विपक्षी

व्यवहार प्रक्रिया संहिता, १९०८ आ० २३, नि० १ (२) (बी०)—वाद को हटा लेने के लिये प्रार्थना पत्र यदि अपील के न्यायालय में दिया जाता है तो उसकी प्रक्रिया (प्रोसीजर)—यदि अपील के न्यायालय ने वाद हटा लेने की अनुमति दी किंतु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने इस आदेश में इसका कारण नहीं दिखलाया तो यह आदेश निराकृत कर देने योग्य है।

न्यायिक सदस्य एम० एम० सिद्दिकी—

रुहेलखंड प्रभाग के अतिरिक्त आयुक्त ने अपीलकर्ता को वाद हटा लेने की अनुमति दिया था उसी आदेश के विरुद्ध यह पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र है।

अपीलकर्ता ने जमींदारी विनाश तथा भूमि सुधार अधिनियम की धारा २२६ बी० के अंतर्गत एक वाद निवेशित किया था। अन्वीक्षा न्यायालय ने वाद उत्सर्जित कर दिया। इस पर अपील की गई और अपील के न्यायालय में वादी अपीलकर्ता ने नए मुकदमे के निवेशित करने के अधिकार के साथ वाद हटा लेने की अनुमति माँगा। कारण के लिये वादी अपीलकर्ता ने कहा कि कुछ कानूनी अड़चन के कारण वाद हटाने की आवश्यकता आ पड़ी है। उस प्रार्थनापत्र पर विद्वान् अतिरिक्त आयुक्त ने निम्नलिखित आदेश पारित किया

'विद्वान् वकील उपस्थित हैं और उनकी बात सुनी गई। वाद को हटा लेने की अनुमति नया वाद निवेशित करने के अधिकार के साथ दी जाती है किंतु प्रतिबंध है कि वादी अपीलकर्ता १०) हरजाना उत्तरवादी को दे। प्रतिवादी उत्तरवादी दोनों न्यायालयों का परिव्यय और इस न्यायालय में वकील के शुल्क का १०) पाएगा।'

प्रतिवादी ने इस आदेश के पुनरीक्षण के लिये प्रार्थनापत्र दिया है।

प्रतिवादी के विद्वान् वकील का कहना है कि:—

१—विद्वान् अतिरिक्त आयुक्त का आदेश विधि के दृष्टिकोण से कोई आदेश नहीं है क्योंकि उन्होंने वाद हटाने की अनुमति देने के कारण का उल्लेख नहीं किया है।

२—व्यवहार प्रक्रिया संहिता के उक्त आदेश के नि० १ के उपनियम २ के अंतर्गत ही वाद हटाने की अनुमति दी जा सकती है और वह भी किसी औपचारिक त्रुटि (फार्मल डिफेक्ट) के आधार पर या किसी अन्य पर्याप्त कारण के आधार पर। अन्य पर्याप्त कारण औपचारिक त्रुटि के समान होने चाहिए। आदेश में चर्चा नहीं है कि उसमें कहीं ऐसी त्रुटि है कि नहीं।

३—अन्वीक्षा न्यायालय ने तत्व पर वाद का निर्णय दिया था इसलिए अपील में वाद हटा लेने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए थी।

वादी के विद्वान् वकील का कहना है कि:—

१—प्रतिवादीगण पर कोई अन्याय नहीं हुआ है इसलिए पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र समर्थ नहीं है।

२—जो परिव्यय दिलाया गया उसे प्रतिवादी ने स्वीकार कर लिया है इसलिए अब वे उस पर आपत्ति नहीं कर सकते।

३—आ० २३ उपनियम २ (बी०) के अभिप्राय के अनुसार आदेश के लिए पर्याप्त आधार था।

इनका निर्वर्तन निम्नलिखित प्रकार से किया जाता है:—

१—परिव्यय इस प्रतिबंध के साथ लिया गया कि इसके लेने पर पुनरीक्षण अधिकार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। अतः परिव्यय के लिए जाने से पुनरीक्षण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

२—अन्वीक्षा न्यायालय ने वाद उत्सर्जित कर दिया था और अपील में जाकर वाद हटा लेने की अनुमति दी गई इसलिए प्रतिवादी के साथ अन्याय तो हुआ है। इस कारण यह नहीं कहा जा सकता कि पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र समर्थ नहीं है।

३—आदेश के तत्व पर विचार करने के संबंध में ठीक कार्यवाही यही थी कि विद्वान् आयुक्त पहले अन्वीक्षा न्यायालय की डिग्री निराकृत करते और तब वाद हटाने की अनुमति प्रदान करते। यहाँ यह भी नहीं किया गया। अपील के न्यायालय को इस प्रकार का आदेश बहुत ही कम पारित करना चाहिए। जब अन्वीक्षा न्यायालय में ऐसा प्रार्थनापत्र दिया गया हो और अपील का न्यायालय यह समझता है कि इसको स्वीकार करने के लिये आधार पर्याप्त हैं केवल तभी वाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हटानेवाला प्रार्थनापत्र स्वीकार करना चाहिए। यहाँ एक तो इसके तत्व पर निर्णय हो चुका था और दूसरे विद्वान् आयुक्त ने किसी पर्याप्त कारण का उल्लेख नहीं किया, इसलिए वह आदेश विधि के विचार से उचित नहीं है।

तदनुसार पुनरीक्षण परिव्यय के साथ स्वीकार किया जाता है। विद्वान् अतिरिक्त आयुक्त का आदेश अभिखंडित किया जाता है और यह अपील फिर से सुनवाई के लिये उनके यहाँ प्रतिप्रेषित की जाती है। उस परिस्थिति में जब कि वाद हटा लेने के प्रार्थनापत्र को स्वीकार करने का उनका निश्चय हो तो वे ऐसा करने के लिये पर्याप्त कारण का उल्लेख करें।

(न्यायिक सदस्य आर० के० सिंह ने इससे सहमति प्रकट की।)

—पुनरीक्षण स्वीकृत

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इला० (राजस्व)५४

उच्च न्यायालय (लखनऊ न्यायासन)

न्यायमूर्ति रणधीर सिंह और न्यायमूर्ति भार्गव
व्यवहार प्रकीर्णक प्रार्थनापत्र सं० ७८, १९५५
१० जनवरी १९५८

महाराजा सुखजीत सिंह — प्रार्थी
विरुद्ध
उ० प्र० राज्य तथा अन्य — विपक्षीगण

उ० प्र० कृषि आय कर अधिनियम, १९४८ धा०, ४४ और नि० १८ (२) – नियम के अंतर्गत विज्ञप्ति यदि किसी समर्थ प्राधिकरण द्वारा हुई हो तो वह वैध रहेगी जब तक कि उसका उत्तरवर्ती प्राधिकरण उसे हटा न ले—

न्यायमूर्ति रणधीर सिंह और न्यायमूर्ति भार्गव—

विपक्षी सं० २ ने प्रार्थी के पिता जो मर गए हैं उन पर कृषि आयकर का कर निर्धारण कई जिलों में स्थित संपत्ति पर किया है। इस प्रार्थनापत्र में प्रार्थी ने लेख (रिट) द्वारा उक्त आदेश को अभिखंडित करने की प्रार्थना की है।

प्रार्थी के पिता कपूरथला के परमजीत सिंह की संपत्ति बहराइच बाराबंकी तथा अन्य जिलों में थी। विपक्षी सं० २ ने कर निर्धारण किया था और कर किश्तों में दिया जाना था। इसमें प्रार्थना की गई है कि कर निर्धारण एवं उसका किश्तों में दिया जाना अभिखंडित किया जाय।

इसके उत्तर में विपक्षी सं० २ का कहना है कि इसमें कर निर्धारण था अधिक्षेत्र था कारण कि धारा ४४ (२) (के०) (ओ०) में सरकार को उस व्यक्ति के कृषि आयकर के कर निर्धारण के संबंध में जो उ० प्र० के बाहर रहता है एतदर्थ अधिकारी नियुक्त करने या जिस ढंग पर कर निर्धारण हो इस संबंध में नियम बनाने का अधिकार है। धारा ४४ के अंतर्गत नियम १८ (२) बना है इसलिए यह पूर्ण रूपेण वैध है। इस उपबंध के अंतर्गत राजस्व मंडल ने एक विज्ञप्ति दिनांक २६ मई १९४९ द्वारा यह अधिकार प्रदान किया था कि बहराइच में ही अन्य जिलों की संपत्ति के विषय में कर निर्धारण किया जाय। विपक्षी सं० २ का कहना है कि इसी विज्ञप्ति के आधार पर कर निर्धारण किया गया है जो ठीक है।

प्रार्थी की ओर से इसके उत्तर में कहा गया है कि नि० १८ (२) का संशोधन २० सितंबर १९५१ को हुआ और 'राजस्व मंडल' के स्थान पर 'भूमि सुधार आयुक्त' प्रतिस्थापित किया गया अतः १९४९ में जो विज्ञप्ति राजस्व मंडल द्वारा हुई वह १९५५ में लागू नहीं हो सकती क्योंकि उस समय नि० १८ (२) में शब्द 'राजस्व मंडल' था ही नहीं।

किंतु इस विषय में सिद्धांत यह है कि किसी नियम के अंतर्गत जब किसी समर्थ प्राधिकरण द्वारा कोई विज्ञप्ति हुई हो तो उसके उत्तरवादी प्राधिकरण द्वारा जब तक वह हटा न ली जाय पूर्णरूपेण वैध रहती है। यहाँ राजस्व मंडल की उक्त विज्ञप्ति को उसके उत्तरवर्ती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'भूमि सुधार आयुक्त' ने हटाया नहीं इसलिए वह अब भी वैध है।

उक्त विज्ञप्ति के आधार पर प्रार्थी के पिता की सारी संपत्ति पर कर निर्धारण केवल बहराइच जिले में हो सकता है और इसलिए यह कर निर्धारण सर्वथा ठीक था।

किसी अन्य विषय पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है। परिणामतः यह प्रार्थनापत्र असफल होता है और परिव्यय के साथ उत्सर्जित किया जाता है।

स्थगन का आदेश हटा लिया जाता है।

—प्रार्थनापत्र उत्सर्जित

———

विधि पत्रिका (१८८०) १६५८ इला० (राजस्व)५५

(उच्च न्यायालय)

आपराधिक प्रकीर्णक लेख सं० २३४४।१६५६

१७ मार्च १६५८

राम भरोस तथा अन्य प्रार्थीगण

विरुद्ध

राम प्रताप सिंह तथा अन्य विपक्षीगण

अ—उ० प्र० पंचायत राज अधिनियम, १६४७, धा० ७७—ए० और उ० प्र० पंचायत राज नियम — नि० १००—निर्णय खुले न्यायालय में यदि सुनाया नहीं गया तो यह निर्णय वैध नहीं है।

ब—उ० प्र० पंचायत राज अधिनियम १६४७ धारा ८५ और ८६। संशोधित अधिनियम १६५५ द्वारा प्रतिस्थापित—एस० डी० एम० को अधिकार है कि अन्वीक्षा के लिये मुकदमा नवीन न्यायासन को प्रतिप्रेषित कर दें और यह विचाराधीन मामलों में भी लागू होता है।

न्यायमूर्ति टंडन

यह लेख प्रार्थनापत्र इलाहाबाद के एक अतिरिक्त एस० डी० एम० के आदेश के विरुद्ध है।

इसके तथ्य इस प्रकार हैं। किसी श्रीमती सुखरानी ने प्रार्थियों के विरुद्ध दंड संहिता की धारा ३२३ और पशु अनधिप्रवेश अधिनियम की धारा २४ के अंतर्गत एक परिवाद निवेशित किया था। यह परिवाद न्याय पंचायत में निवेशित किया गया था। न्याय पंचायत में इसके निर्णय के लिये एक न्यायासन बना जिसके सभापति वासुदेव थे। प्रार्थी का कहना है कि साक्ष्यों का परीक्षण करने के बाद निर्णय देने के लिये एक तिथि निर्धारित की गई और उस निर्धारित तिथि को जब हम लोग पहुँचे तो पता चला कि मुकदमे के कागज पत्र सब न्याय पंचायत के सरपंच शीतला प्रसाद के पास हैं। प्रार्थियों का कहना है न्यायासन के ४ सदस्यों ने निर्णय तैयार कर लिया था और उस पर अपना हस्ताक्षर करने के बाद सरपंच को वह अभिलेख मुहर करने और सुनाने के लिये दे दिया था और केवल वासुदेव सभापति ने निर्णय में भाग नहीं लिया था। इसका परिणाम हुआ कि उस दिन निर्णय सुनाया न जा सका।

प्रार्थियों का कहना है कि हमें उस समय आश्चर्य हुआ जब शीतलाप्रसाद सरपंच ने पचास रुपया घूस माँगा और धमकाया कि न देने पर हम सब कागज फाड़ देंगे और मुकदमे की सुनवाई के लिये दूसरा न्यायासन बनाकर इसे वहीं भेज देंगे। रुपया देने से इनकार करने पर शीतला प्रसाद ने निर्णय फेंक दिया।

इसके बाद प्रार्थियों ने एस० डी० एम० के यहाँ एक प्रार्थनापत्र दिया कि १—मुकदमे के अभिलेख मँगा लें और २—घूस माँगने के अपराध में शीतलाप्रसाद के विरुद्ध कार्यवाही की जाय।

विद्वान् मजिस्ट्रेट ने इस प्रार्थनापत्र के निर्वर्तन में कहा कि अधिनियम के उपबंधों के अनुसार कोई निर्णय तैयार हुआ ही नहीं और आदेश दिया कि नवीन न्यायासन बनाकर इस मुकदमे की सुनवाई की जाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मजिस्ट्रेट के इस आदेश के विरुद्ध यह प्रार्थनापत्र निवेशित किया गया है।

इस प्रार्थनापत्र के प्रमुख आधार हैं कि :

१—मजिस्ट्रेट का यह निर्णय गलत था कि पंचायत राज अधिनियम की धारा ७७—ए० और नि० १०० के अंतर्गत ५ में से ४ सदस्यों द्वारा दिया हुआ निर्णय निर्णय नहीं है।

२—शीतला प्रसाद का घूस माँगना अवैध और अनुचित है।

३—एस० डी० एम० को मुकदमे के प्रतिप्रेषण (रिमांड) का अधिकार नहीं है।

इसके समर्थन में प्रार्थी के विद्वान् वकील ने पंचायत राज अधिनियम की धारा ८५ का सहारा लिया है जैसी कि वह धारा अधिनियम ११।१९५५ के संशोधन के पहले थी। संशोधन के पहले उस धारा के अंतर्गत मजिस्ट्रेट को पंचायती अदालत के अधिक्षेत्र को काट देने का अधिकार था या इस अदालत द्वारा पारित आदेश के अभिखंडित करने का अधिकार था—प्रतिप्रेषण (रिमांड) का अधिकार नहीं था।

इसके विरोध में विपक्षी का कहना है कि निर्णय हुआ ही नहीं। ४ सदस्य प्रार्थी से मिले हुए थे, उन्होंने एक झूठा निर्णय तैयार किया और झूठे ही कह रहे हैं कि उसे शीतला प्रसाद ने फेंक दिया।

हम निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुँचते हैं :—

१—इस प्रश्न पर विचार करने की आवश्यकता

नहीं है कि वास्तव में निर्णय तैयार हुआ और हस्ताक्षर किया गया कि नहीं कारण कि धारा ७७—ए० और नि० १०० के अनुसार निर्णय का खुली अदालत में सुनाना आवश्यक है और जब स्वयं प्रार्थी का कहना है कि निर्णय उस दिन सुनाया न जा सका तो उस दशा में वह निर्णय था ही नहीं।

२—धारा ७७ ए० के अनुसार उस न्यायासन के सभापति और कम से कम दो सदस्यों का निर्णय में रहना आवश्यक है। यहाँ वासुदेव सभापति उस प्रश्नगत निर्णय में संमिलित नहीं था अतः केवल इस कारण से भी यह निर्णय निर्णय नहीं था।

३—संशोधन जो अप्रैल सन् १९५६ में लागू हुआ उसके अनुसार मजिस्ट्रेट को प्रतिप्रेषण का अधिकार है और इस विषय में प्रार्थी की ओर से यह कहना कि संशोधन के पहले ही मजिस्ट्रेट के यहाँ प्रार्थनापत्र दिया गया था इसलिए संशोधन का उपबंध लागू नहीं होगा मान्य नहीं है क्योंकि एक तो अभिलेख पर इसका कोई प्रमाण नहीं है कि मजिस्ट्रेट के यहाँ किस तिथि को प्रार्थनापत्र दिया गया था दूसरे यदि यह बात हो भी तब भी विचाराधीन वाद में धारा ८५ और ८६ के उपबंध लागू होंगे जब तक कि इसके विरुद्ध प्रमाण नहीं दिया जाता।

अतः हमारे विचार से इस प्रार्थनापत्र में बल नहीं है और वह परिव्यय के साथ उत्सर्जित किया जाता है। स्थगन का आदेश हटा लिया जाता है।

—प्रार्थनापत्र उत्सर्जित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Force	बल, बल प्रयोग
having the force of	सम प्रभावी
Force apart	बलात् अलग कर डालना
Forced	बलात्, बलात्कृत
„ currency	बलात् चलार्थ
„ labour	बलात् श्रम
„ sale	बलाद् विक्रय, बलात्कृत विक्रय
„ sale on execution	निष्पादनार्थ विक्रय
Forceful	प्रभावयुक्त, बलपूर्वक
Force majeure	दैवी आपत्
Forces	बल (संवि०)
Forcible detainer	बलात् निरोध
Forcible dispossession	बलात् धारण च्युति
„ entry and detainer	बलात् प्रवेश और निरोध
Forcibly	बल पूर्वक, बलात्
For compliance	पालनार्थ
For consideration	विचारार्थ, के प्रतिफल
For convenient transaction	सुविधा पूर्वक किए जाने के लिये (संवि०)
For disposal	निर्वर्तनार्थ, निबटाने के लिये
Forecast	पूर्वानुमान
Foreclosed	विमोचन रोधित
Foreclosure	विमोचन रोध
„ decree	विमोचन रोध डिग्री
Foreconscious	पूर्वचेतन
Foregoing	पूर्वगामी, पूर्ववर्ती
„ power	पूर्वगामी शक्ति
„ provisions	पूर्वगामी उपबंध
Fore ground	अग्रभूमि, पुरोभूमि
Foreign	विदेशीय, विदेशी, वैदेशिक, बाह्य
Foreign affairs	विदेश कार्य, विदेशीय कार्य (संवि०)
„ assignment	विदेश-नियोजन
„ attachment	विदेशीय अभ्याग्रहण
„ booking	बाहर भेजना
„ charity	विदेशीय पूर्त (संवि०)
„ divorce	विदेशीय विवाह विच्छेद
„ domicile bill	विदेशदेय विपत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Foreigners Act	विदेशीय अधिनियम
Foreign exchange	विदेशीय विनिमय (संवि०)
„ „ liabilities	विदेशीय विनिमय देयता
„ importer	विदेशीय आयातक
„ imports	विदेशीय आयात
„ investment	वैदेशिक विनियोग
„ jurisdiction	विदेशीय क्षेत्राधिकार
„ „ Act	बाह्य अधिकार क्षेत्र
„ „ Act and	विदेशीय क्षेत्राधिकार अधिनियम
Extradition Act	विदेशीय क्षेत्राधिकार तथा प्रत्यर्पण अधिनियम
Foreign liquor rules	विदेशीय मदिरा नियम
„ minister	विदेश मंत्री
„ mission	विदेशीय शिष्टमंडल
„ national	विदेशीय राष्ट्रिक
„ notes	विदेशीय अर्थपत्र
„ passport	विदेशीय पारपत्र
„ personnel	विदेशीय सेविवर्ग
„ port	विदेशीय पत्तन
„ Relations Act	विदेश संबंध अधिनियम
„ remittance	विदेशीय विप्रेषण
„ sea and air borne trade	विदेशी समुद्र और वायु व्यापार
„ service	विदेश सेवा, बाह्य सेवा
„ settlement in India	भारत स्थित विदेशी बस्ती
„ trade	विदेश व्यापार, विदेशीय व्यापार
„ „ card index	विदेश व्यापार पत्रक देशना
Forejudge	पूर्व निर्णय करना
Foreman	कार्यदेशक, प्रमुख
Foremost	सर्वोपरि
Forenoon	पूर्वाह्न
Forensic	विधि, वैधिक
Foreseen	पूर्व दृष्ट
Foreshadow	पूर्वाभास, पूर्व संकेत
Foresight	दूरदर्शिता
Forest Act	वन अधिनियम
Forestalling	पूर्वक्रयण
Forest Code	वन संहिता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Forest conservator	वन संरक्षक
„ contract agreement	वन संविदा पत्र
„ contractor	वन संविदाकार, वन ठेकेदार
„ Contract Rules	वन संविदा नियम
„ divisional officer	वन मंडलाधिकारी
Forester	वानिक, वनपाल
Forest Financial rules	वन वित्त नियम
„ guards training school	वन रक्षि प्रशिक्षण विद्यालय
„ land	वन भूमि
„ law	वन विधि
„ license	वन अनुज्ञप्ति
„ Manual	वन नियमावलि
„ office	वन कार्यालय
„ officer	वनाधिकारी
„ police	वन आरक्षी
„ produce in transit	मार्गस्थ वनोत्पाद
„ product	वन पदार्थ
„ ranger	वन क्षेत्रप
„ regulation	वन विनियम
„ Research Institute	वन अन्वेषालय
„ revenue	वन आगम
„ Settlement Officer	वन व्यवस्था अधिकारी
„ survey	वन आपरीक्षण
„ tribe	वन जाति
„ Utilization Officer	वनोपयोजन अधिकारी
Forward	प्राक्कथन, भूमिका
For favour of N. A.	(आ० का०) आवश्यक कार्यवाही के लिये
Forfeit	(सं०) दंड
Forfeit	(क्रि०) खोए जाना, राज्यसात् होना, अधिकार खो बैठना, हरण करना
Forfeited shares	हृत अंश
Forfeature	हरण, राज्यसात् करना
Forge	कूट करण
Forged	कूट, कूट कृत
Forger	कूटकर्ता, कूटकारी
Forgering	कूटकरण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Forgery	कूट कर्म, कूट
For instance	तद्यथा, दृष्टांतार्थ, उदाहरण के लिये
For life	आजीवन
Form	रूप, आकृति, प्रपत्र, आकार
Formal	औपचारिक, यथारीति, यथानियम, यथारूप, यथाकार यथावेश, बाह्य रूपिक, उपरिक
" adjudication	यथानियम अधिनिर्णय
" enquiry	औपचारिक परिपृच्छा
" motion	औपचारिक प्रस्ताव
" notice	औपचारिक सूचना
" notificatian	औपचारिक अधिसूचना
" objection	औपचारिक आपत्ति
" order	औपचारिक आदेश
" parties	औपचारिक पक्ष
Form and content	रूप और विषयवस्तु (अंतर्वस्तु)
Formation	निर्माण, रचना, घटना
Former	पूर्व, पहला, पूर्वोक्त
Formerely	पहले
Formidable	भीषण
Forming part	अंगभूत
Formulation	संविन्यास
For official use only	केवल शासन के प्रयोग के लिये, केवल शासन प्रयोगार्थ
For orders	आदेशार्थ, आदेश के लिये
" " please	आदेशार्थ, कृपया आदेश दीजिए
" perusal and return	पढ़कर लौटाने के लिये
" practical purposes	व्यावहारिक प्रयोजनार्थ, व्यवहार में
" record	अभिलेखार्थ, अभिलेख के लिये
" report please	कृपया प्रतिवेदन भेजिए, प्रतिवेदनार्थ
" scrutiny	परिनिरीक्षणार्थ, परिनिरीक्षा के लिये
" signature	हस्ताक्षर के लिये
Forswear	शपथास्वीकार करना
Forthcoming	आगामी
For the account	लेखार्थ, लेखे पर, उधार पर
" the consideration of the government	शासन के विचारार्थ
" the ends of justice	न्याय के उद्देश्यों के लिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

For the month ending	…को अंत होनेवाले मास के लिये
,, the nonce	तत्समय
,, the sake of	के हेतु, के लिये
,, the time being in force	तत्समय प्रवृत्त
,, this reason	इस हेतु से, इस कारण से
Forthwith	अविलंब, तुरंत
Forthwith communicate	तुरंत सूचित करना
Fortify	दृढ़ करना
Fortnight	पक्ष
Fortnightly	पाक्षिक
For trial	अन्वीक्षार्थ, अन्वीक्षा के लिये
Fortuitous event	दैवी घटना
Forum	न्यायाधिकरण, स्थल
Forum actus	घटना स्थल
For valuable consideration	समूल्य
For want of	के अभाव में
Forward	अगला, आगे भेजना, अग्रेषण
,, contract	अग्रे संविदा, भावी ठेका
,, delivery	अग्रे प्रदान
Forwarded	अग्रेषित, आगे भेजा गया
,, to	की सेवा में अग्रेषित
Forwarder	अग्रेषक
Forwarding	अग्रेषण
,, note	अग्रेषण टिप्पण, प्रेषण पत्र
Foul	परिदूषित, दूषित
,, language	अपशब्द
Found	सिद्ध हुआ, उपपादित, पाया, प्राप्त
Foundation	नींव
Founder	संस्थापक, प्रवर्तक
Found guilty	सिद्धापराध, अपराधी सिद्ध हुआ
Foundry	संधानी, ढलाई घर
Fountain pen	मसीपथ
Four corners	पूरा, संपूर्ण
Fracture	अस्थि भंग
Frame a draft	प्रारूप बनाना
Framework	ढाँचा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Framing of issues	वाद पद रचना
Franchise	मताधिकार
Fraternal	भ्रातृय, भ्रातृ
Farternity	बंधुता, भ्रातृ भाव, बंधु भाव
Fratricide	भ्रातृ हत्या
Fraud	प्रतारणा, धोखा
" in law	वैधिक प्रतारणा
" on a power	शक्ति की प्रतारणा
" on court	न्यायालय के प्रति प्रतारणा
" on registration	पंजीपन के प्रति प्रतारणा
Fraudulent	कूट, प्रतारक, धोखा देनेवाला
Fraudulently	धोखे से, प्रतारणाः
Fraudulent suit	प्रतारक अभियोग, कूट अभियोग
Fraud upon the law	विधि के प्रति प्रतारणा
Fraught with danger	भयास्पद
Free	निःशुल्क, स्वतंत्र, अबाध, अनियंत्रित
Free air	अबाध वायु
Free and unqalified discretion	मुक्त और अबाध विवेक
" " voluntary consent	मुक्त और स्वैच्छिक संमति
" at quay	घाट पर निःशुल्क
Freebooter	लुंठक, जलदस्यु
Free consent	अबाध संमति
Freed	मुक्त
Freedom	स्वतंत्रता, स्वातंत्र्य
" of expression	अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य
" of speech	भाषण स्वातंत्र्य, वाक् स्वातंत्र्य
" " the press	मुद्रण स्वातंत्र्य
" " trade	वाणिज्य की स्वतंत्रता
" " " commerce and intercourse	व्यापार, वाणिज्य और परस्पर व्यवहार का स्वातंत्र्य
Freehold	शाश्वत संपत्ति, निरधीन, आत्मधृत
" rights	निरधीन अधिकार
Free list	निःशुल्क सूची
Freely	अबाधरूप में, मुक्त रूप से, बिना रोक टोक के
Free movement	अबाध गमनागमन
" of all encumbrances	सर्वभार मुक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Free of charge	निष्प्रभार, निःशुल्क
„ of duty	शुल्क मुक्त, निःशुल्क
„ „ revenue	राजस्व मुक्त
„ „ tax	कर मुक्त
„ on board	नौतल पर्यंत निःशुल्क
„ „ rails	संयान पर्यंत निःशुल्क
„ pardon	अप्रतिबंध क्षमा
„ passage	निःशुल्क यात्रा
„ scholar	निःशुल्क छात्र
„ service article	निःशुल्क शासकीय वस्तुएँ
„ ships	तटस्थ जलयान
„ soil	जहाँ दास नहीं रखे जाते, विदास भूमि
„ studentship	निःशुल्क छात्रत्व
„ user	अप्रतिबद्ध उपयोग
„ will	स्वतंत्र इच्छा, स्वेच्छा
Freight	वहनशुल्क, भार
Frequent	बारंबार, बार बार, बार बार आना
Frequently	बारंबार, प्रायः
Fresh	अभिनव, नया, नूतन
„ deposit	नव निक्षेप
„ evidence	नवसाक्ष्य
„ grounds	नए आधार
„ lease	नया पट्टा
„ suit	नया वाद
Friction	संघर्ष
Friend of the court	न्याय परामर्शक
Frivolous	तुच्छ
„ and vexatious	तुच्छ और प्रबाधी
From	से, प्रेषक
„ time to time	समय समय पर, यथा काल
„ without	बाहर से, बहिर्देशतः
Front	अग्र
Frontier	सीमांत
Frozen	जमा हुआ, निश्चलीकृत
Fundamental Rights	मौलिक अधिकार
Fruit Development Board	फलविकास मंडल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Fruit marketing society	फलविपणन समिति
„ preservers association	फलपरिरक्षक मंडल
Frustrated	भग्नाश
Fuel Inspector	इंधन निरीक्षक (रेलवे)
Fugitive	प्रपलायी
„ criminal	प्रपलायी अपराधी
„ offender	प्रपलायी अपराधी
Fulfil	पालन कर, पूरा करना
„ a condition	प्रतिबंध पालन
Fulfilment	पालन, पूर्ति
Fulfil reqiurement	आवश्यकताएँ पूरी करना
Full	पूर्ण, पूरा
„ age	वयस्, पूर्णवयस्
„ and unabridged rights of „ ownership in the property	संपत्ति में स्वामित्व के सर्वांगपूर्ण अधिकार
Full and unimpaired	पूर्ण और अविकल
„ belief	पूर्ण विश्वास
„ bench	पूर्ण न्यायासन
„ „ decision	पूर्ण न्यायासन विनिश्चय
Full blood	सोदर्य, सगा
Full brother	सगा भाई
Full compensation	पूर्ण प्रतिकर
„ court	पूर्ण न्यायालय
„ details	पूर्ण विस्तार, पूर्ण विवरण
„ discharge	पूर्ण उन्मुक्ति
„ power	पूर्ण शक्ति
„ satisfaction	पूर्ण निस्तारण
„ statement	पूर्ण विवरण
Fully assessed to land revenue	भू राजस्व पूर्णतः निर्धारित
Function	कार्य, प्रकार्य, कृत्य
Functionary	कर्मचारी
Fund	निधि
Fundamental	मूलभूत, आधारभूत
„ Right	मूल अधिकार
„ rules	मूलनियम
Funeral	अन्त्येष्टि, अंत्येष्टि संस्कार, शवयात्रा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि पत्रिका के नियम

(१) "विधि पत्रिका" का वार्षिक, षाण्मासिक और त्रैमासिक शुल्क क्रमशः १०), ५॥) और ३॥।) है। एक प्रति का मूल्य १) है। शुल्क मनीआर्डर या वी० पी० द्वारा देय है। वी० पी० से मँगाने में डाकव्यय अतिरिक्त लगेगा।

(२) शुल्क, 'मंत्री, नागरीप्रचारिणी सभा, "विधि पत्रिका" विभाग, वाराणसी-१' के पते से आना चाहिए।

(३) "विधि पत्रिका" प्रत्येक सौर मास के अंतिम सप्ताह में अर्थात् प्रत्येक अँगरेजी मास के दिनांक १५ तक प्रकाशित होगी।

(४) "विधि पत्रिका" में विधि संबंधी लेख तथा विधि विषयक पत्रों, पुस्तकों आदि की समालोचनाएँ भी प्रकाशित होंगी। समालोचनार्थ पुस्तकों की दो प्रतियाँ आनी चाहिए। लेख, समालोचनार्थ पुस्तकें आदि संपादक, "विधि पत्रिका", नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी—१' के पते से भेजनी चाहिए।

———

जहाँगीर का आत्मचरित

अनुवादक—व्रजरत्नदास

मुग़ल सम्राट् अकबर के पुत्र चतुर्थ मुगल सम्राट् बादशाह जहाँगीर ने अपना आत्मचरित लिखा है जिसका अनुवाद इस ग्रंथ में प्रस्तुत किया गया है। इसमें उसके राज्यकाल के अठारह वर्षों का विस्तृत ऐतिहासिक विवरण दिया गया है और साथ ही बहुत सी ऐसी घरेलू बातें भी आ गई हैं जिनका अन्य इतिहासों में उल्लेख नहीं मिलता। जहाँगीर ने अपने पिता की बहुत सी बातों का, आकृति, प्रकृति, रुचि आदि का वर्णन अपनी रचना में यत्र तत्र किया है जो अत्यंत प्रामाणिक है। इसने अपनी यात्राओं, मदिरोत्सवों, अहेरों आदि का ऐसा सुंदर वर्णन दिया है जो कहीं कहीं बहुत आकर्षक हो गया है। इसने हिंदुओं के मंदिरों, विचारों आदि की आलोचना की है। इसमें जब एक ओर कट्टर धर्मांधता है तब दूसरी ओर उदारता भी स्पष्ट है। इसने अपने अत्याचारों, कमजोरियों आदि सभी का स्पष्ट वर्णन कर डाला है, कहीं छिपाने का प्रयत्न नहीं किया है। अपने मदिरापान की अति को उसने कुछ नहीं छिपाया और उसकी बहक में इसने अपने बड़ों तथा ईश्वर के प्रति अपनी श्रद्धा खूब दरसाई है। फारस आदि की कुछ कहानियों तथा स्वरचित शेरों का भी इसमें समावेश किया है। पुस्तक हर दृष्टि से पढ़ने तथा मनन करने योग्य है। पृ० संख्या लगभग ६०० तथा अनेक चित्रों युक्त, पक्की दृढ़ जिल्द सहित पुस्तक का मूल्य केवल १५)।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परामर्शदातृ समिति

(१) श्री कमलाकांत वर्मा, भूतपूर्व मुख्य न्यायाधिपति, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद
(२) श्री बलराम उपाध्याय, न्यायाधीश, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद।
(३) श्री कन्हैयालाल मिश्र, महाधिवक्ता, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद।
(४) श्री गोपालचंद्र सिंह, विशेष अधिकारी, सचिवालय, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ।
(५) श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प्राध्यापक, हिंदी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय।

संपादक मंडल

(१) श्री गिरिजाभूषण जोशी, आचार्य, ला कालेज, काशी हिंदू विश्वविद्यालय।
(२) श्री ब्रजरत्नदास, वकील, वाराणसी।
(३) श्री प्रतापनारायण सिंह, राजकीय अधिवक्ता, वाराणसी।
(४) श्री गौरीनंदन उपाध्याय, ऐडवोकेट, वाराणसी।
(५) श्री देवीनारायण, ऐडवोकेट, वाराणसी।
(६) श्री कैलासपति त्रिपाठी, ऐडवोकेट, वाराणसी।
(७) श्री गोपीकृष्ण, बार-ऐट-ला, वाराणसी।
(८) श्री चतुर्भुजदास पारिख, ऐडवोकेट, वाराणसी।
(९) श्री राघवराम वर्मा, वकील, वाराणसी।
(१०) चौधरी शुकदेव सिंह, वकील, वाराणसी।
(११) श्री मोतीलाल बापुली, ऐडवोकेट, वाराणसी।

श्री चंद्रभूषण मिश्र, ऐडवोकेट }
श्री रामसुरत सिंह, ऐडवोकेट } प्रतिवेदक, इलाहाबाद

संपादक (संयोजक)—सिद्धनाथ सिंह बी० ए०, एल-एल० बी०, वकील
सहायक संपादक—पारसनाथ सिंह बी० ए०, एल-एल० बी०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि पत्रिका अगस्त-सितंबर १९५८

(शक १८८०)

वाद तालिका

१—कलावती वि० कवल सिंह	इला० उ० न्या०	१४८
२—त्रिवेणी देवी वि० शारदा देवी	" "	१४३
३—तुलसीराम वि० रामचंद्र	इला० (राजस्व)	६३
४—दीनदयाल वि० फदलू	" "	६४
५—देहरी राय वि० रंग सिंह	" "	६०
६—ननि बाई वि० गीता बाई	सर्वो० न्या०	७१
७—बेनी प्रसाद सिंह वि० राज्य	इला० (राजस्व)	६२
८—भरत वि० खजान सिंह	इला० उ० न्या०	१५४
९—महेंद्रपाल सिंह वि० उ० प्र० राज्य	" "	१४४
१०—मथुरा कोइरी वि० श्रीमती मनोरिया	इला० (राजस्व)	५७
११—मुहम्मद हनीफ कुरेशी वि० बिहार राज्य	सर्वो० न्या०	७१
१२—मुहम्मद नियामतुल्ला वि० उ० प्र० राज्य	इला० उ० न्या०	१५३
१३—राज्य वि० सिद्धनाथ राय	इला० उ० न्या०	१५७
१४—रामलाल वि० श्रीमती मँगरी	इला० (राजस्व)	५९
१५—विश्वंभर दयाल वि० राज्य	इला० उ० न्या०	१५२
१६—शिवविलास वि० राज्य	" "	१५०
१७—शोभा वि० रामफल	" "	१५६
१८—सरदार इकबाल सिंह वि० लखनऊ नगरपालिका	" "	१४५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि पत्रिका

[लेख खंड]

वर्ष २] भाद्रपद (सौर) सं० २०१५ : शक १८८० : अगस्त-सितंबर १९५८ [अंक १०

संपादकीय

न्याय में भक्ति और अन्याय के प्रति घृणा ही न्याय पद्धति को बल प्रदान करती है। जब तक समाज में न्याय के प्रति आकर्षण नहीं होता तब तक कानून के कंधों पर बैठा न्याय समाज के किसी काम का नहीं होता। कानून की पोथियों की भरमार होती जा रही है पर उस कानून से आँख बचाकर उसे तोड़ने की प्रवृत्ति भी बढ़ती जा रही है। उदाहरण स्वरूप वैदिक काल में जुए की प्रथा थी पर जुआड़ी को बहुत हेय दृष्टि से देखा जाता था। जुआड़ी की स्त्री उसे छोड़ देती थी, उसके मांगने पर उसे कोई कुछ नहीं देता था। जुआड़ी दूसरे के घर में रात काटता था। जुआड़ी को उपदेश दिया गया है 'अक्षैर्मादिव्यः'। (जुआड़ी ! जुआ कभी मत खेलना) जुआड़ी के चारो ओर का वातावरण ऐसा हो जाता था कि उसे जुआ छोड़ना ही पड़ता था। क्या उस उद्देश्य की पूर्ति कानून से हो सकती थी ? आज भी कानून है पर जुआड़ियों की संख्या में दिन प्रतिदिन वृद्धि होती जा रही है। युधिष्ठिर और राजा नल के उदाहरण हमारे सामने हैं। यदि लोगों का ध्यान इन घटनाओं की ओर आकृष्ट करके मनोवृत्ति में परिवर्तन कर सकें तो जुआ बंद करने में हमें अत्यधिक सफलता प्राप्त हो सकेगी।

कानून के साथ साथ उस कानून के पालन करने के लिये एक पृष्ठ भूमिका तैयार होनी चाहिए। एक बार ऐसा वातावरण उत्पन्न होने पर जुआड़ी यदि दंडित हो तो जुआ की ओर से उदासीनता होगी। उसी प्रकार दूसरे अपराधों की रोकथाम अनुकूल वातावरण का सृजन करके की जा सकती है। आज का नैतिक वातावरण परिवर्तित है और इसमें नैतिकता का ह्रास हो रहा है तथा इसी के फल स्वरूप नैतिकता और अनैतिकता में कोई भेद नहीं रह गया है।

जगत् में तीनों गुणों के प्राणी सदा से रहते आए हैं। चाहे सतयुग हो या त्रेता या द्वापर कभी भी तामस का सर्वथा लोप नहीं था। पहले सात्विक व्यक्ति अधिक थे त्यागी, तपस्वी, परोपकारी, निश्छल, निष्कपट मनुष्यों की अधिकता थी परंतु तामसिक व्यक्ति भी थे। न्याय में पक्षपात नहीं था। अन्याय नहीं था। तपोधन ऋषियों के समक्ष अन्याय का होना संभव न था।

आज परिस्थिति दूसरी है। आज के अपराधों के लिये वातावरण भी दोषी है। सिनेमा तथा कुछ पुस्तकों का भी इसमें हाथ है। नैतिकता का जो पाठ सिनेमा की कहानियाँ पढ़ाती हैं वे हमें उन आदर्शों की ओर अग्रसर होने में सहायक नहीं। मर्यादा का सेतु निर्बल हो गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। आदर्शों को परिस्थितियों ने झकझोर दिया है। वदिक काल में सूदखोरों का धन ले लिया जाता था। उन्हें दंड देकर सत्य के पथ पर लाने की चेष्टा की जाती थी। अनेक मंत्रों में सूद की चर्चा है। सूद लेना आज हम अन्याय नहीं समझते। सूद से धन एकत्रित करने वाले समाज में अनादर नहीं पाते।

निरपराधी दंडित न होने पावे साथ ही अपराधी दंड से बच न सके दोनों न्याय के मूल मंत्र थे पर आज निरपराधी को दंड न मिले, कानून और न्याय का यही उद्देश्य रह गया है। एक अपराधी कानून की आँख बचाकर दंड पाने से यदि बच गया तो सैकड़ों को अपराध का प्रोत्साहन मिलता है इस तथ्य की ओर हमारी आँख कम है।

भारत में न्याय का क्या आदर्श था, सामाजिक मान्यताएँ क्या थीं, प्राचीन ग्रंथों का उपदेश क्या है, उस समय की न्याय पद्धति में अपराध कम थे या अधिक इन विषयों पर हमें गंभीरतापूर्वक विचार करना होगा तथा उन कारणों पर भी दृष्टिपात करना होगा जिनके कारण अपराध करने का साहस नहीं होता था। इस पृष्ठ भूमिका में आज के न्याय विशारद न्याय पद्धति का सिंहावलोकन करके कोई नवीन पद्धति उपस्थित कर सकें तो न्याय के क्षेत्र में बहुत बड़ा कार्य होगा। भारतीय नैतिकता की एक पृथक् परिभाषा रही है जो दूसरे देशों से सदा मौलिक रही है। आज हमें विचार करना है कि नैतिकता के उन्हीं आदर्शों का हम अनुसरण करें या दूसरे देशों की नैतिकता के सिद्धांतों को हृदयंगम करें। एक बार इस सिद्धांत को स्थिर करने के पश्चात् ही हम यह स्थिर करने में समर्थ हो सकेंगे कि नैतिकता के विषय में हमारे न्याय की परिभाषा क्या होगी।

कानून और न्याय पद्धति तो हम दूसरे देशों से ऋण ले सकते हैं पर देखना होगा कि उनसे हमारे आदर्शों का हनन तो नहीं होता? हमारी सामाजिक परंपराएँ ध्वस्त तो नहीं हो जातीं? ऐसा नहीं है कि पहले सब देवता थे अब सब दैत्य हैं पर प्राचीन काल के मनुष्य जीवन का उद्देश्य भिन्न था। प्राचीन काल में कुछ बातें ऐसी थीं जिनकी उपादेयता को स्वीकार करना पड़ेगा उसी प्रकार आज भी अनेक नवीन अनुभव प्राप्त हुए हैं जिनसे वंचित रहना उचित नहीं होगा। दोनों के समन्वय से ही उन्नति संभव हो सकेगी। वैदिक काल में कन्यावस्था से लेकर वृद्धावस्था तक स्त्री जाति का बड़ा सम्मान था। जो कन्या पितृकुल में जीवन भर अविवाहित रहती थी उसे पितृकुल में ही अंश मिलता था। आजकल ऐसी उदारता नहीं देखी जाती है। एक पुरुष का एक ही विवाह करना आदर्श था। स्त्रियों को पति चुनने की स्वतंत्रता थी। स्त्रियों को अधिक कार्यों में स्वतंत्रता थी। आर्य अपनी स्त्री के साथ यज्ञ करते थे। घोषा आदि अनेक स्त्रियों ने अनेक सूक्तों का सृजन किया था। स्त्रियाँ हवन करती थीं, उपदेश देती थीं तथा वेद पढ़ती थीं। आश्चर्य है कि वैदिक परंपरा की ओर से हम उदासीन हो गए और हमारी परंपरा की लड़ी टूट गई। इसका परिणाम भयानक हो गया कि उन आदर्शों की पवित्रता नष्ट हो गई। संसार की अन्य प्राचीन जातियों में स्त्रियाँ उपेक्षित थीं। जो जितनी स्त्रियाँ रखना चाहता था रख सकता था। पैगंबर मुहम्मद साहब के पहले अरब में बालिकाएँ मार दी जाती थीं। स्पार्टा में भी स्त्रियों की दशा अत्यंत शोचनीय थी।

नारी के साथ न्याय होना चाहिए। न्याय किस प्रकार हो, संपत्ति की अधिकारिणी वह किस अंश तक हो, पितृकुल या पतिकुल में किन किन परिस्थितियों में उन्हें अंश मिलना चाहिए यह एक विचारणीय प्रश्न है और इसके साथ ही एक प्रश्न संबद्ध है कि हम पति-पत्नी के पुराने आदर्शों की रक्षा करना चाहते हैं कि नहीं। यदि रक्षा करनी है तो उन्हें संपत्ति में क्या भाग मिलना चाहिए इससे भी हम मुख नहीं मोड़ सकते क्योंकि हमें बचाना है कि आदर्शों का हनन न हो।

धनसंचय, सूदखोरी आदि अनेक समस्याएँ हैं जिनका समाधान प्राचीन ग्रंथों के सहारे हो सकता है। हमारे हृदय के पुराने संस्कारों के अंकुर को पल्लवित करना है और इसके लिये उपयुक्त साधन की खोज करनी है। न्याय के सुधार में प्राचीन पद्धतियों का सहारा लेना है पर इसका अर्थ यह नहीं है कि दूसरे देशों की न्याय पद्धति की अच्छी बातें हम न लें। —सिद्धनाथ सिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पूर्वानुबद्ध)

वह उन मामलों में जो कि उपवाक्य (ए०) के अंतर्गत आते हैं उस कर निर्धारण वर्ष के अंत के ८ वर्ष के बीच किसी भी समय, और उन मामलों में जो कि उपवाक्य (बी०) के अंतर्गत है, ४ वर्ष के बीच किसी भी समय वह करदाता पर एक नोटिस तामील करेगा और इस नोटिस में वे सब बातें रहेंगी जो धारा १४ की उपधारा २ के अंतर्गत नोटिसों में रहती हैं और शुद्ध संपत्ति पर करनिर्धारण या पुनः करनिर्धारण की कार्यवाही कर सकता है और जहाँ तक हो सकेगा इस अधिनियम के उपबंध लागू होंगे मानो उस उपधारा के अंतर्गत नोटिस जारी की गई हो।

१८—छिपाने में दंड व्यवस्था।

१—यदि संपत्तिकर अधिकारी अपील के सहायक आयुक्त या अपील का न्यायाधिकरण इस अधिनियम के अंतर्गत किसी कार्यवाही में इस बात से संतुष्ट हो जाता है कि कोई व्यक्ति—

(अ) बिना किसी उचित कारण के उस शुद्ध संपत्ति के संबंध में विवरण नहीं दिया है जिसको धारा १४ (२) या धारा १७ के अंतर्गत दिए जाने की माँग की गई थी या बिना उचित कारण के स्वीकृत समय के भीतर नहीं दे सका है या जिस भाँति दिए जाने को कहा गया था उस भाँति नहीं दे सका है, अथवा

(ब) बिना किसी उचित कारण के धारा १६ की उपधारा २ या उपधारा (४) के अंतर्गत दी गई नोटिस का पालन नहीं किया है; अथवा

(स) अपनी परिसंपत् के विवरण को छिपाया है या उसने जानबूझकर परिसंपत् या ऋण के विषय में गलत विवरण दिया है तो

वह अधिकारी या वह न्यायाधिकरण लिखित आदेश द्वारा आदेश दे सकता है कि वह व्यक्ति दंड स्वरूप निम्नलिखित धनराशि देगा—

(१) उपवाक्य (ए०) में अभिदिष्ट मामलों में उसके द्वारा देय संपत्तिकर की धनराशि के अतिरिक्त वह धनराशि जो ऐसे कर के डेढ़ गुना से अधिक न हो, और

(२) उपवाक्य (बी०) और उपवाक्य (सी०) में अभिदिष्ट उसके द्वारा देय संपत्ति कर की धनराशि के अतिरिक्त ऐसी धनराशि जो उस कर, यदि कोई हो उसकी धनराशि के डेढ़ गुने से अधिक न हो जो कि यदि उस व्यक्ति द्वारा दिया हुआ शुद्ध संपत्ति का विवरण ठीक माना गया होता तो छोड़ दिया जाता।

२—उपधारा १ के अंतर्गत कोई आदेश तब तक नहीं दिया जायगा जब तक कि संबंधित व्यक्ति को अपनी बात कहने का उचित अवसर न दे दिया गया हो।

(३) इस अधिनियम के अंतर्गत अपराध के लिये उन्हीं तथ्यों पर कोई मुकदमा नहीं चलेगा जिनके संबंध में इस धारा के अंतर्गत दंड दिया जा चुका है।

(४) संपत्ति कर अधिकारी संपत्ति कर के निरीक्षक सहायक आयुक्त के पूर्ववर्ती अनुमोदन के बिना इस धारा के अंतर्गत कोई दंड नहीं देगा।

अध्याय ५

परिस्थिति विशेष में कर निर्धारण का दायित्व

१९—मृतक व्यक्ति का कर उसके विधिक प्रतिनिधि द्वारा देय होगा।

(१) जब कोई मर जाता है तो उसका निष्पादक, प्रशासक या अन्य विधिक प्रतिनिधि उस मृतक व्यक्ति की संपदा से ऐसे व्यक्ति द्वारा देय निर्धारित संपत्ति कर या अन्य कोई धनराशि का जो कि यदि वह मरा न होता तो देनदार होता—उस सीमा तक देनदार होगा जिस सीमा तक उस मृतक व्यक्ति की संपदा भार सहन करने में समर्थ हो।

(२) जब कोई व्यक्ति धारा १४ के उपबंधों के अंतर्गत विवरण दिए बिना ही मर जाता है या विवरण देने के बाद मरता है जो संपत्ति कर अधिकारी के विचार से गलत या अपूर्ण है तो संपत्ति कर अधिकारी उसकी शुद्ध संपत्ति का निर्धारण करेगा और ऐसे निर्धारण के आधार पर उसके द्वारा देय संपत्ति कर को निश्चित करेगा और इस प्रयोजन के लिये उपयुक्त नोटिस जारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करेगा जो कि मृत व्यक्ति पर यदि वह जीवित रहा होता तो तामील हो गई होती तथा ऐसी नोटिस द्वारा उसकी यह माँग होगी कि यदि मृत व्यक्ति का निष्पादक प्रशासक या अन्य विधिक प्रतिनिधि कोई लेखा, विलेख या अन्य साक्ष्य दे जो कि धारा १६ के अंतर्गत मृत व्यक्ति को देना पड़ता ।

(३) धा० १४, १५, और १७ के उपबंध निष्पादक प्रशासक या अन्य विधिक प्रतिनिधियों पर उसी प्रकार लागू होंगे जो कि उन धाराओं में अभिदिष्ट व्यक्तियों के लिये लागू होते हैं ।

२०—हिंदू अविभाजित परिवार के बँटवारे के बाद कर निर्धारण ।

(१) जब कर निर्धारण करते समय संपत्तिकर अधिकारी को यह ज्ञात हो जाय कि किसी हिंदू परिवार के सदस्यों में बँटवारा हो चुका है और संपत्ति कर अधिकारी जाँच करने के बाद इस बात से संतुष्ट हो जाता है संयुक्त परिवार की सारी संपत्ति उसके कतिपय सदस्यों या सदस्यों के वर्ग में निश्चित भाग में बँट चुकी है तो वह इस संबंध में एक आदेश लिखेगा और यदि बँटवारा पहले वर्ष की अंतिम तिथि को हुआ है तो वह कर निर्धारण वर्ष के लिये जिसमें वह वर्ष भी संमिलित होगा जो कि पहले वर्ष से संबद्ध है और जिसमें बँटवारा हुआ या अविभाजित परिवार की शुद्ध संपत्ति पर कर निर्धारण करेगा और उसके लिये प्रत्येक सदस्य या सदस्यों का वर्ग अविभाजित परिवार की संपत्ति पर निर्धारित संपतिकर का संमिलित रूप से और अलग अलग देनदार होगा ।

(२) जब संपत्ति कर अधिकारी इस बात से संतुष्ट न हो तो वह आदेश द्वारा घोषणा कर सकता है कि ऐसा परिवार इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिये हिंदू अविभाजित परिवार चलता रहेगा और इस प्रकार वह कर का दायी होगा ।

२१—जब परिसंपत् प्रपन्नाधिकरण (कोर्ट्स आफ वार्ड्स) या महाप्रशासकगण इत्यादि लोगों के अधीन हो ।

(१) उस परिसंपत् के विषय में जिस पर इस अधिनियम के अंतर्गत संपत्ति कर लिया जाने वाला हो और जो प्रपन्नाधिकरण या महाप्रशासक या किसी अधिकारीय न्यासधारी या किसी प्रापक (रिसिवर) या प्रबंधक या किसी अन्य व्यक्ति उसे चाहे जिस नाम से पुकारा जाता हो और जो संपत्ति का प्रबंध दूसरों की ओर से करने के लिये न्यायालय के आदेश द्वारा नियुक्त हुआ हो उसके धारण में हो अथवा कोई न्यासधारी जिसकी नियुक्ति न्यास के अंतर्गत हुई हो और वह न्यास उचित रूप में तथा लिखित हो या चाहे वह वसीयतनामा के रूपमें हो या अन्य प्रकार से हो (इसमें वैध विलेखवाले वक्फ के अंतर्गत वाला न्यासधारी भी संमिलित है) संपत्ति कर जैसी स्थिति हो प्रपन्नाधिकरण महाप्रशासक, अधिकारीय न्यासधारी प्रापक, प्रबंधक या न्यासधारी पर लगाया जायगा और वसूल किया जायगा और यह उसी भाँति होगा जिस भाँति जिस व्यक्ति की ओर से ये लोग उसकी संपत्ति का प्रबंध करते हैं उसपर लगाया जाता और वसूल किया जाता और तद्नुसार अधिनियम के उपबंध लागू होंगे ।

(२) उपधारा १ में दी गई किसी भी बात से जिस व्यक्ति की ओर से उपर्युक्त प्रकार से परिसंपत का धारण किया हुआ है उस पर या तो सीधे कर निर्धारण में कोई रुकावट नहीं होगी या उस व्यक्ति से ऐसे परिसंपत के संबंध में लगाए गए कर की वसूली में भी कोई अड़चन नहीं पड़ेगी ।

(३) जब किसी उस व्यक्ति का संरक्षक या न्यासधारी जो कि अवयस्क पागल या मूढ़ है (इस उपधारा में ऐसे समस्त व्यक्ति एतत्पश्चात् "हित ग्राही" (बेनीफिशियरी) शब्द में आ जाएँगे) ऐसे हितग्राही की ओर से परिसंपत् का धारण करता है तो इस अधिनियम के अंतर्गत कर ऐसे संरक्षक या न्यासधारी पर जैसी स्थिति हो उसी प्रकार और उसी सीमा तक लगाया जायगा और वसूल किया जायगा जिस प्रकार यदि हितग्राही वयस्क होता या उसका मस्तिष्क ठीक रहता तथा परिसंपत का स्वामी प्रत्यक्षतः रहता तो उस पर लगाया जाता और वसूल किया जाता ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४) इस धारा के अंतर्गत किसी भी बात के रहते हुए भी जिस व्यक्ति की ओर से ऐसे परिसंपत धारण किए जाते हैं उसका हिस्सा अनिश्चित या अज्ञात हो तो प्रपन्नाधिकरण, महाप्रशासक, अधिकारीय न्यासधारी, प्रापक, व्यवस्थापक या उपर्युक्त अन्य व्यक्ति पर संपत्ति कर लगाया जा सकता है या वसूल किया जा सकता है मानो वे व्यक्ति जिनकी ओर से परिसंपत् धारण किया जाता है इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिये व्यक्ति (इंडिविजुवल) हों।

२२—उन व्यक्तियों पर कर निर्धारण जो भारत के बाहर रहते हों—

(१) कोई व्यक्ति जो इस अधिनियम के अंतर्गत संपत्तिकर का दायी हो भारत के बाहर रहता है तो उसके अभिकर्ता पर कर लगाया और वसूल किया जा सकता है और अभिकर्ता इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिये इस कर के संबंध में करदाता समझा जायगा।

(२) कोई व्यक्ति जब उपधारा (१) में अभिदिष्ट व्यक्ति द्वारा या उसकी ओर से नियुक्त हो या जिस व्यक्ति द्वारा वह उसकी किसी आय, लाभ या उपलब्धि को प्राप्त करता हो अथवा वह ऐसे व्यक्ति की किसी परिसंपत् के धारण या अभिरक्षा में हो और जिस पर संपत्तिकर अधिकारी ने इस विचार से नोटिस तामील कर दिया हो कि वह उस व्यक्ति का अभिकर्ता समझा जाता है तो वह उपधारा (१) के प्रयोजनों के लिये उसका अभिकर्ता समझा जायगा किंतु प्रतिबंध यह है कि—

(१) इस धारा के अंतर्गत कोई व्यक्ति किसी दूसरे का अभिकर्ता तब तक नहीं समझा जायगा जब तक कि इस प्रकार अभिकर्ता समझे जाने के संबंध में संपत्ति कर अधिकारी द्वारा उसकी बात सुनने का अवसर नहीं दिया जा चुका है; और

(२) कोई अभिकर्ता उपधारा १ के अंतर्गत संपत्ति कर के रूप में दी जानेवाली धनराशि के संबंध में जो व्यक्ति भारत के बाहर रहता है उसकी सारी धन राशि और जो धनराशि उस समय अभिकर्ता के हाथ में थी जब कि उस पर माँग की नोटिस तामील की गई थी उससे अधिक का देनदार नहीं होगा।

अध्याय ६

अपील, पुनरीक्षण और अभिदेश

२३—अपील के सहायक आयुक्त के यहाँ संपत्ति कर अधिकारी के आदेश की अपील।

(१) कोई व्यक्ति—

(अ) जो इस अधिनियम के अंतर्गत निश्चित की हुई शुद्ध संपत्ति की धन राशि पर आपत्ति करता हो, अथवा

(ब) जो इस अधिनियम के अंतर्गत निश्चित की हुई उस धनराशि पर आपत्ति करता हो जो कि संपत्ति कर के रूप में उसे देना है; अथवा

(स) जो इस अधिनियम के अंतर्गत कर के दायित्व से इनकार करता हो; अथवा

(द) जो संपत्ति कर अधिकारी द्वारा धा० १८ के अंतर्गत लगाए गए दंड पर आपत्ति करता हो, अथवा

य—जो संपत्तिकर अधिकारी द्वारा धा० २० (२) के अंतर्गत दिए गए किसी आदेश पर आपत्ति करता हो; अथवा

र—जो संपत्ति कर अधिकारी द्वारा आयकर अधिनियम की धारा ४६ (१) के उपबंधों के अंतर्गत दिए गए किसी दंड पर आपत्ति करता है जो उपबंध कि धारा ३२ के अंतर्गत संपत्ति कर के प्रयोजनों के लिये लागू होता है,

वह अपील के सहायक आयुक्त के यहाँ कर निर्धारण या आदेश के विरुद्ध जैसी स्थिति हो, अपील कर सकता है और यह निर्धारित प्रपत्र पर निर्धारित प्रकार से सत्यापित रहेगा।

(२) यदि आपत्ति करनी है तो उक्त कर निर्धारण या दंड से संबंध रखनेवाली माँग की नोटिस की प्राप्ति से ३० दिन के भीतर ही अपील निवेशित की जायगी या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस दिन से ३० दिन के भीतर अपील की जायगी जिस दिन वह इस आदेश से अवगत कराया गया किंतु अपील के सहायक आयुक्त यदि इस बात से संतुष्ट हो जाँय कि पर्याप्त कारण था जिसके कारण अपीलकर्ता अवधि के भीतर अपील निवेशित करने में असफल रहा है तो अवधि बीतने के बाद भी वह अपील कर सकता है।

(३) अपील के सहायक आयुक्त अपील की सुनवाई के लिये एक दिन और स्थान निश्चित करेंगे और सुनवाई को वे समय समय पर स्थगित कर सकते हैं।

(४) अपील के सहायक आयुक्त—

अ—अपील की सुनवाई के समय अपीलकर्ता को अपील के उन आधारों पर भी कहने का अवसर दे सकते हैं जो आधार कि उसने अपील के आधारों में पहले से नहीं लिया है;

ब—अपील का निर्वर्तन करने के पहले यदि वे उचित समझें तो आगे की जाँच स्वयं कर सकते हैं या संपत्तिकर अधिकारी को जाँच करने का आदेश दे सकते हैं।

(५) अपील का निर्वर्तन करने में अपील के सहायक आयुक्त जैसा उचित समझें आदेश पारित कर सकते हैं जिसमें कर निर्धारण या दंड को बढ़ानेवाला आदेश भी संमिलित है।

किंतु प्रतिबंध है कि कर निर्धारण या दंड को बढ़ाने वाला आदेश तबतक नहीं दिया जायगा जबतक कि उस व्यक्ति को यह दिखलाने का उचित अवसर नहीं दिया गया है कि इसको क्यों न बढ़ा दिया जाय

(६) अपील के सहायक आयुक्त द्वारा इस धारा के अंतर्गत पारित प्रत्येक आदेश की एक प्रति अपीलकर्ता और आयुक्त को दी जायगी।

२४—अपील के न्यायाधिकरण में अपील के सहायक आयुक्त के आदेश की अपील—

१—अपील के सहायक आयुक्त द्वारा धारा २३ के अंतर्गत पारित आदेश पर यदि करदाता आपत्ति करता है तो ऐसे आदेश की नोटिस की जिस दिन उस पर तामीली होती है उसके ६० दिन के भीतर वह अपील के न्यायाधिकरण में अपील कर सकता है।

(२) आयुक्त यदि अपील के सहायक आयुक्त के धारा २३ के अंतर्गत दिए गए किसी आदेश को ठीक नहीं समझते हैं तो वे संपत्ति कर अधिकारी को निर्देश कर सकते हैं कि वह इस आदेश के विरुद्ध अपील के न्यायाधिकरण में अपील निवेशित करे और ऐसी अपील जिस दिन इस आदेश से आयुक्त अवगत होते हैं उस दिन से ६० दिन के भीतर निवेशित की जायगी।

(३) न्यायाधिकरण यदि इस बात से संतुष्ट हो जाय कि उपधारा १ और २ में अभिदिष्ट अवधि के भीतर अपील निवेशित न करने के लिये कारण पर्याप्त थें तो न्यायाधिकरण उक्त अवधि के बाद भी अपील स्वीकार कर सकता है।

(४) अपील के न्यायाधिकरण में अपील निर्धारित प्रपत्र पर होगी और निर्धारित विधि से सत्यापित होगी तथा उपधारा (२) अभिदिष्ट अपील को छोड़कर यह सौ रुपए शुल्क के साथ निवेशित की जायगी।

(५) अपील का न्यायाधिकरण अपील के दोनों पक्षों को अपना बात कहने का उचित अवसर प्रदान करने के बाद उस पर जैसा उचित समझे आदेश पारित कर सकता है और ऐसे किसी आदेश में करनिर्धारण वृद्धि या दंड हो सकता है।

किंतु प्रतिबंध यह है कि कर निर्धारण या दंड बढ़ाने वाला कोई आदेश तब तक नहीं दिया जा सकता जब तक कि उस आदेश द्वारा प्रभावित होनेवाले व्यक्ति को ऐसी वृद्धि के विरुद्ध कारण दिखलाने के लिये उचित अवसर दे न दिया गया हो।

(६) जब अपीलकर्ता किसी संपत्ति के मूल्यांकन पर आपत्ति करता है तो अपील का न्यायाधिकरण यदि चाहे तो तथा यदि अपीलकर्ता की माँग हो तो विवा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दास्पद मूल्य के प्रश्न को दो मूल्य निर्धारक पंचों को अभिदेश करेगा जिनमें से एक का नाम अपीलकर्ता देगा और दूसरे का उत्तरवादी और तब न्यायाधिकरण जहाँ तक इस प्रश्न का संबंध है उपधारा (४) के अंतर्गत मूल्य निर्धारकों के निर्णय के अनुसार अपना आदेश पारित करेगा।

किंतु प्रतिबंध है कि जब दोनों मूल्यनिर्धारकों में मतभेद हो तो यह मामला तीसरे मूल्य निर्धारक को भेज दिया जायगा जो कि संविद् द्वारा मनोनीत होगा और यदि संविद् न हो सके तो अपील के न्यायाधिकरण द्वारा मनोनीत होगा और मूल्यांकन के प्रश्न पर उक्त मूल्य निर्धारक का निर्णय अंतिम होगा।

(७) उपधारा (६) में पंच निर्णय की कार्यवाही में जिस पक्ष के कहने पर मामला मूल्य निर्धारक को गया था उसी पर इसका व्यय होगा इस प्रकार जैसी स्थिति हो केंद्रीय सरकार या कर दाता पर इसका व्यय होगा। किंतु प्रतिबंध है कि कर दाता के कहने पर जो अभिदेश हुआ है उसमें यदि वह पूर्णतः या अंशतः सफल रहा है तो किस सीमा तक करदाता पर उसका व्यय रहेगा यह अपील के न्यायाधिकरण के स्वविवेक पर निर्भर करेगा।

(८) मूल्य निर्धारक जिनको उपधारा (६) के अंतर्गत पंच निर्णय के लिये मामला अभिदिष्ट हुआ है वे निर्वर्तन करते समय जैसा उचित समझें जाँच कर सकते हैं या जाँच कराकर अपीलकर्ता या उत्तरवादी को अपनी अपनी बात कहने का उचित अवसर देने के बाद उस पर जैसा उचित समझें आदेश पारित कर सकते हैं और इसकी प्रतिलिपि अपील के न्यायाधिकरण को भेज देंगे।

(९) इस धारा के अंतर्गत अपील के न्याधिकरण द्वारा पारित प्रत्येक आदेश की प्रतिलिपि करदाता और आयुक्त को भेज दी जायगी।

(१०) धारा २७ में जो दिया गया है उसे छोड़कर अपील में अपील के न्यायाधिकरण द्वारा पारित आदेश अंतिम होगा।

(११) आयकर अधिनियम की धा० ५ (९०) की उपधाराओं ५) (७) और (८) के उपबंध इस अधिनियम के अंतर्गत कार्य करने के संबंध में अपील के न्यायाधिकरण में उसी प्रकार लागू होंगे जिस प्रकार कि वे आयकर अधिनियम के अंतर्गत लागू होते थे।

२५-अधरिक प्राधिकरण के आदेशों के पुनरीक्षण के संबंध में आयुक्त के अधिकार।

(१) आयुक्त स्वतः या करदाता द्वारा इस संबंध में प्रार्थनापत्र देने पर अधिनियम के अंतर्गत कार्यवाही में जिसमें किसी अधरिक प्राधिकरण द्वारा आदेश पारित किया गया है उसके अभिलेख को मँगा सकते हैं और जैसे उचित समझे जाँच कर सकते हैं या जाँच करा सकते हैं तथा इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन उस पर ऐसा आदेश दे सकते हैं जो कि कर दाता को हानि पहुँचानेवाला न हो और जिसे आयुक्त उचित समझें-

किंतु प्रतिबंध है कि आयुक्त इस उपधारा के अंतर्गत किसी ऐसे आदेश का पुनरीक्षण नहीं करेंगे जहाँ:—

(अ) आदेश के विरुद्ध अपील अपील के सहायक आयुक्त के यहाँ या अपील के न्यायाधिकरण में की जा सकती है और अपील के लिये निर्धारित अवधि व्यतीत न हो गई हो अथवा अपील के न्यायाधिकरण में अपील की अवस्था में अपीलकर्ता ने अपने अपील के अधिकार को छोड़ा न हो;

(ब) आदेश अपील के सहायक आयुक्त के समक्ष या अपील के न्यायाधिकरण के समक्ष अपील करने के अधीन हो;

(स) करदाता द्वारा इस प्रकार पुनरीक्षण के लिये प्रार्थनापत्र दिया गया हो तो जबतक—

(१) प्रार्थनापत्र २५ रु० के शुल्क के साथ न हो; और

(२) प्रार्थनापत्र जिस आदेश का पुनरीक्षण करना है उसके पारित होने के १ वर्ष के भीतर न हो या उसके बाद उस अवधि के भीतर न हो जिसे आयुक्त ने इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बात से संतुष्ट होकर बढ़ाना उचित समझा हो कि पर्याप्त कारण थे जिन्होंने करदाता को समय के भीतर प्रार्थना पत्र निवेशित करने में रुकावट डाली है; और

(द) जिस आदेश का पुनरीक्षण आयुक्त को स्वतः करना है वह आदेश यदि १ वर्ष पहले से अधिक का पारित किया हुआ है।

व्याख्या—इस उपधारा के प्रयोजनों के लिये—

(अ) समझा जायगा कि अपील के सहायक आयुक्त आयुक्त के नीचे के प्राधिकारी हैं; और

(ब) जिस आदेश में आयुक्त हस्तक्षेप करने से अस्वीकार कर दें समझा जायगा कि वह आदेश करदाता के लिये हानिकर नहीं है।

(२) उपधारा (१) में दिए गए उपबंधों को हानि न पहुँचाते हुए आयुक्त इस अधिनियम के अंतर्गत किसी भी कार्यवाही के अभिलेख मँगा सकते हैं और परीक्षण कर सकते हैं और यदि उनका विचार यह होता है उसमें संपत्ति कर अधिकारी द्वारा दिया हुआ कोई आदेश इस अर्थ में गलत है कि वह राजस्व के हित को हानिकारक है तो वे कर दाता को अपनी बात कहने का उपयुक्त अवसर देने के बाद और जैसा वे आवश्यक समझें जाँच करने या जाँच कराने के बाद उस पर ऐसा आदेश पारित कर सकते हैं जो परिस्थिति के अनुसार उचित हो और इसमें कर निर्धारण वृद्धि, संशोधन या उसको निराकृत करके नया कर निर्धारण का आदेश देना सभी संमिलित हैं।

२६—आयुक्तों द्वारा वृद्धि के आदेश की अपील अपील के न्यायाधिकरण में—

(१) कोई करदाता जो आयुक्त द्वारा धारा २५ के अंतर्गत वृद्धि के आदेश पर आपत्ति करता है वह अपील के न्यायाधिकरण में उस दिन से ६० दिन के भीतर अपील निवेशित कर सकता है जिस दिन कि वह आदेश से अवगत हुआ था।

(२) उपधारा (१) के अंतर्गत अपील के न्यायाधिकरण में अपील निर्धारित प्रपत्र पर होगी और निर्धारित विधि से सत्यापित रहेगी तथा १०० रु० के शुल्क के साथ रहेगी।

(३) उपधारा ३ और ५ से १० तक के उपबंध जिसमें धारा २४ भी संमिलित होगी इस धारा के अंतर्गत अपील के संबंध में उसी प्रकार लागू होंगे जिस प्रकार उस धारा के अंतर्गत अपील में वे लागू होते हैं।

२७-उच्च न्यायालय को अभिदेश

(१) धारा २४ या धारा २६ के अंतर्गत आदेश की तामीली जिस दिन होती है उस तिथि से ६० दिन के भीतर करदाता या आयुक्त निर्धारित दिन के भीतर निर्धारित प्रपत्र पर अपील के न्यायाधिकरण में प्रार्थनापत्र दे सकते हैं कि वह ऐसे आदेश से उत्पन्न किसी विधि के प्रश्न का अभिदेश उच्चन्यायालय को कर दे किंतु यदि प्रार्थनापत्र करदाता द्वारा है तो वह १००) शुल्क के साथ होगा और जब अपील का न्यायाधिकरण विचार करता है कि इस प्रकार के आदेश से विधि का प्रश्न उत्पन्न होता है तो वह ऐसे मामले को उच्च न्यायालय के विचारार्थ भेज देगा।

(२) उपधारा (१) के अंतर्गत प्रार्थनापत्र उपर्युक्त ६० दिन की अवधि के बाद भी स्वीकार किया जा सकता है जब कि न्यायाधिकरण इस बात से संतुष्ट हो जाय कि उक्त अवधि के भीतर इसे प्रस्तुत न करने में पर्याप्त कारण थे।

(३) यदि उपधारा (१) के अंतर्गत प्रार्थनापत्र देने पर अपील का न्यायाधिकरण—

(अ) मामले को इस आधार पर भेजने से इनकार कर देता है कि विधि का कोई प्रश्न उत्पन्न नहीं होता अथवा

(ब) इस आधार पर अस्वीकार कर देता है कि यह कालबाधित है;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्ति की सेवा समाप्ति स्वतः दंडस्वरूप होती है कारण कि उस सेवा से संबद्ध लाभ से वह वंचित हो जाता है किंतु जब सेवक का उस पद पर कोई अधिकार नहीं रहता और वह स्थायी या अस्थायी सेवा पर परीक्षण या स्थानापन्न रूप में नियुक्त होता है और जैसा कि अस्थायी सेवा नियमावलि के अंतर्गत है उसकी अस्थायी सेवा आभास स्थायी सेवा में परिपक्व न हो गई हो तो उसकी सेवा समाप्ति उसे किसी अधिकार से वंचित नहीं करती इसलिए यह स्वतः दंड नहीं है। सेवा की समाप्ति दंड है कि नहीं इस बात को जानने के लिये केवल यह जानना आवश्यक है कि यदि सेवा की समाप्ति न की गई होती तो उसे उस पद पर रहने का अधिकार होता कि नहीं। ऊपर बतलाई गई तीन प्रकार की सेवाओं में उस व्यक्ति का उस पद पर अधिकार होता है इसलिए सेवा समाप्ति दंडस्वरूप है और वह व्यक्ति अनुच्छेद ३११ के संरक्षण का अधिकारी है। दूसरे शब्दों में अनुच्छेद ३११ (२) उन परिस्थितियों में लागू होगा जब कि सरकारी सेवक यदि वैयक्तिक (प्राइवेट) ढंग पर नियुक्त किया गया होता तो गलत पदच्युति, पद से हटाए जाने या श्रेणी से न्यूनीकरण करने के संबंध में मुकदमा चलाने का अधिकारी होता। एक प्रकार से इसे और स्पष्ट किया जा सकता है कि यदि सरकार किसी संविदा के आधार पर या सेवा नियमावली के अंतर्गत किसी भी समय सेवा समाप्त कर देने का अधिकार रखती है तो उस नियम के अंतर्गत सेवा समाप्ति स्वतः दंड नहीं होती और इस परिस्थिति में अनुच्छेद ३११ लागू नहीं होता।

इन सबका तात्पर्य यह नहीं होता कि उपर्युक्त केवल तीन प्रकार की सेवाओं को छोड़कर अन्य प्रकार की सेवाओं में जैसे "परीक्षण" या "स्थानापन्न' सेवा में, जिसमें उस व्यक्ति का अधिकार उस पद पर नहीं होता उसकी सेवा समाप्ति में अनुच्छेद ३११ लागू ही नहीं होता। यदि पद पर रहने का अधिकार न हो तब भी अनुच्छेद ३११ (२) लागू होता है और वह भी केवल एक परिस्थिति में जब कि सरकार साधारण रूप से सेवा समाप्ति के स्थान पर कुछ दंड देना चाहती है और दंड स्वरूप वह उसे पदच्युत करती है, हटाती है या श्रेणी में नीचे कर देती है। तात्पर्य यह है कि जब संविदा प्रदत्त अधिकार के अंतर्गत सेवा की समाप्ति की जाती है तो यह दंड नहीं है और इसलिए इसमें अनुच्छेद ३११ का संरक्षण नहीं दिया जा सकता किंतु जब सेवा समाप्ति दंड के साथ होती है तो इसमें अनुच्छेद ३११ लागू होता है।

इसमें एक कठिनाई और है कि यह हो सकता है कि सरकार का विचार तो किसी सेवक को दंड देने का हो किंतु वह सेवा समाप्ति संविदाप्रदत्त अधिकार के अंतर्गत करे। इस प्रश्न पर बंबई उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति माननीय न्यायमूर्ति छागला ने अपना विचार व्यक्त किया है कि संविदा के अंतर्गत सेवा समाप्ति का अधिकार यदि हो तो इसका प्रभाव कुछ नहीं पड़ेगा कि इसमें सरकार का विचार दूसरा था।

श्रेणी का न्यूनीकरण प्रत्येक दशा में दंडस्वरूप नहीं होता। इसके लिये देखना पड़ता है कि इस न्यूनीकरण का परिणाम दंड होता है कि नहीं। जैसे, यदि आदेश का परिणाम यह हो कि वह वेतन से वंचित हो जाय, आगे की प्रगति का मार्ग अवरुद्ध हो जाय इत्यादि तो इन बुरे परिणाम के कारण आदेश को दंड देनेवाला आदेश कहा जा सकता है। यदि सरकार का कहना हो कि हम संविदा के अधिकार के बल पर ऐसा आदेश दे रहे हैं फिर भी आदेश का परिणाम यदि बुरा हो तो उसे दांडिक ही कहा जायगा। आदेश में प्रयुक्त शब्द अहानिकर भले ही हों किंतु उसका परिणाम यदि बुरा है तो वह दंडस्वरूप होगा। इसकी परीक्षा दो प्रकार से की जा सकती है—(१) सेवक को उस पद पर या उस श्रेणी में रहने का अधिकार है कि नहीं—अथवा—(२) उसका परिणाम बुरा हुआ है कि नहीं। इन दोनों में से यदि एक भी शर्त का पालन हुआ है तो समझना चाहिए कि उसे दंड दिया गया है और वह अनुच्छेद ३११ के संरक्षण का अधिकारी है।

इस मुकदमें में अपीलकर्ता की सेवा भारतीय रेलवे संहिता से शासित है। उसके अनुसार उच्चतर पद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर रहने का उसका अधिकार नहीं था तथा सामान्य विधि के अनुसार उसे केवल एक नोटिस देकर अलग किया जा सकता था। उक्त नियम के अनुसार उसके मौलिक पद पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अपने मौलिक पद पर उसकी प्रगति और उसकी ज्येष्ठता पूर्ववत् है। यह दंड नहीं है और दंड न होने से अपील कर्ता अनुच्छेद ३११ (२) के संरक्षण का अधिकारी नहीं है। अतः यह अपील परिव्यय के साथ उत्सर्जित की जानी चाहिए।

न्यायमूर्ति बोस—

अत्यंत संमान के साथ मैं इस बात से सहमत नहीं हो सकता कि इस मामले में अनुच्छेद ३११ लागू नहीं होता।

मैं इस बात से सहमत हूँ कि अनुच्छेद ३११ सभी सेवाओं के लिये लागू होता है। मैं इस बात से भी सहमत हूँ कि ये शब्द 'पदच्युति" "पद से हटाया जाना" और "श्रेणी में न्यूनीकरण" अभिप्राय-विशेष के लिये प्रयुक्त हैं। इनमें बहुत ही सूक्ष्म अंतर होता है और अंतर के सूक्ष्म होने से आवश्यकता इस बात की पड़ती है कि आसपास के वातावरण द्वारा यह तय कर लिया जाय कि संविधान के लागू होने की तिथि को यह विशिष्ट अर्थ में एवं विशिष्ट प्रयोजन के लिये समझा जाने लगा था कि नहीं। इस काम के लिये 'क्राउन' के अंतर्गत सेवा की शर्तों के इतिहास पर विचार करना और तत्कालीन पूर्ववर्ती परिनियमों का जानना आवश्यक था। इस बात के अतिरिक्त "नियमों" को देखना उचित नहीं है क्योंकि मैं इस बात को नहीं मानता कि संविधान का अर्थ विधान मंडल के अधिनियमों और उससे भी नीचे के प्राधिकरण द्वारा बनाए गए नियमों के आधार पर लगाया जा सकता है और मुख्यतः वे नियम और अधिनियम जिनका बनाया जाना या जिनका पारित होना संविधान के बाद हुआ।

मैं इस बात से सहमत हूँ कि जब दांडिक परिणाम होता है तब अनुच्छेद ३११ लागू होता है किंतु इस सिद्धांत का विस्तार मैं और अधिक करता हूँ और मेरा विचार है कि जब कभी "अधिकार" (राइट) पर आघात पहुँचता है तब अनुच्छेद ३११ का लाभ मिलना चाहिए। सिद्धांत का विस्तार इसलिए हो जाता है कि कुछ परिस्थितियाँ ऐसी आ सकती हैं जिनमें "अधिकार" का हनन हो जाता है परंतु उसका परिणाम दंडस्वरूप नहीं होता।

मैंने "अधिकार" का जो प्रयोग किया है वह विशेष अभिप्राय से किया है। मैंने जिस अर्थ में "अधिकार" शब्द का प्रयोग किया है हो सकता है कि यह न्यायिक न हो या हो सकता है कि यह किसी संविदा के समान न हो। मोटे तौर से यह वह अधिकार है जो न्यायालय द्वारा लागू न किए जाने योग्य होने पर भी इंगलैंड में "अधिकार प्रार्थना पत्र" (पेटिशन आफ राइट) का एक अच्छा आधार हो सकता है।

संविधान में भी "अधिकार" अपने सूक्ष्म अर्थ में न होकर स्थूल अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। क्योंकि जिन सेवकों का पद राष्ट्रपति की कृपा पर्यंत है उन्हें अधिकार कैसा ? और जब सेवा राष्ट्रपति की कृपा पर्यंत ही है तो फिर "संविदा" (कंट्रैक्ट) शब्द का क्या महत्व है ? 'संविदा' (कंट्रैक्ट) शब्द अनुच्छेद ३१० (२) में प्रयुक्त है। इन शब्दों का तात्पर्य मोटे रूप में लिया जाता है और इस प्रकार ये शब्द अभिव्यक्ति के सुविधाकारक साधन मात्र हैं और इन्हीं अर्थ में प्रिवी कौंसिल की कतिपय रूलिंग्स में इनका प्रयोग भी हुआ है।

सेवा की शर्तें या संविदा विशेष इस बात के रहते हुए भी कि वे एकपक्षीय ढंग पर कृपा पर्यंत हैं अधिकार प्रदान करते हैं और जब इस अधिकार पर आघात पहुँचता है तो अनुच्छेद ३११ लागू होता है। यदि सेवा का समाप्ति नियम के अंतर्गत हो तो उसकी अपेक्षा अधिक बुरा परिणाम जब सेवा समाप्ति में आता है तब बादवाली सेवा समाप्ति में अनुच्छेद ३११ लागू होता है। जैसे दुर्व्यवहार पर मान लिया जाय कि उसकी सेवा समाप्ति की जानेवाली है तो यह दो ढंग पर हो सकती है—(१) दुर्व्यवहार के कारण पदच्युति आदि और (२) सेवा नियमावली या संविदा के अंतर्गत अधिकार के प्रयोग,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा यद्यपि कि दुर्व्यव्यहार का तत्व इसमें भी वर्तमान है। जब सरकार सं० २ के आधार पर पदच्युति आदि करती है तो इसको सावधानी इस बात की रखनी पड़ती है कि यदि वह व्यक्ति दुर्व्यव्यहार के आधार पर पदच्युत न होता और संविदाप्रदत्त अधिकार पर ही सामान्य क्रम में पदच्युत होता तो उससे बुरा परिणाम सं० २ के ढंग पर की हुई पदच्युति आदि में न आने पावे।

मेरे विचार से परीक्षण केवल इस बात का है कि संविदा प्रदत्त अधिकार द्वारा सेवा समाप्ति से अधिक बुरा परिणाम दूसरे प्रकार की सेवा समाप्ति में आता है कि नहीं। यदि अधिक बुरा परिणाम आता है तो अनुच्छेद ३११ लागू होगा।

सरकार का कहना है कि इस मुकदमें में अपीलकर्ता जिस स्थानापन्न सेवा पर था वह अस्थायी थी और जब वह पहले वाले पर कर दिया गया तो उसे कोई हानि नहीं हुई। उसके विरुद्ध समस्त गुप्त प्रतिवेदनों पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है किंतु मुख्य प्रबंधक ने जो एक बात लिख दी है कि उसका उच्च अधिकारी जब यह प्रतिवेदन दे दे कि उसने अपनी गलती सुधार ली है तभी उसकी प्रगति होगी—सेवा कर्तव्य पर यह कलंक है। मेरे विचार से यदि संविदा के आधार पर सामान्य क्रम में सेवा समाप्ति होती उससे अधिक बुरा परिणाम इस प्रकार की सेवा समाप्ति में आता है। उसकी प्रगति पर यह अवरोध है। चाहे यह दंड (पनिश्मेंट) हो या (पेनाल्टी) हो इससे हमारा संबंध नहीं है। हमारा निर्णय यह है कि यदि उसकी श्रेणी का न्यूनीकरण बिना किसी गलती से यों ही कर दिया गया होता तो वह परिस्थिति जैसी होती उससे बुरा परिणाम इस प्रकार के न्यूनीकरण में हुआ है। इस प्रकार की परिस्थिति में केवल यही देखना है कि अतिरिक्त बुरा परिणाम आदेश से भासित होता है कि नहीं।

यहीं मैं अत्यंत सम्मान के साथ अनु० ३११ का अर्थ लगाने में विरुद्ध मत प्रकट करता हूँ कि इन सब का सारांश यह नहीं है कि कार्यवाही का रूप क्या है या किस प्रक्रिया का पालन किया जाता है और न तो मेरे विचार से इसी का निश्चय आवश्यक है कि अधिकारी विशेष के मस्तिष्क में कौन सी बात घर कर चुकी थी। चोट वास्तव में उन चीजों से नहीं आती वरन् आती है तो केवल उन चीजों के परिणाम से और मेरा निर्णय तो यह है कि अनुच्छेद ३११ का संरक्षण कठोर शब्दों से बचाव करने के लिये नहीं दिया गया वरन् वह कठोर धक्के से बचने के लिये है। आदेश का प्रभाव ही एकमात्र महत्वपूर्ण वस्तु है और जब कभी संविदागत् आदेश के अतिरिक्त इसका प्रभाव कोई बुराई विशेष लाता है तो अनुच्छेद ३११ लागू होता है। यह कहकर अनुच्छेद के प्रभाव से नहीं बचा जा सकता कि अमुक आदेश नियम के अंतर्गत दंड नहीं है या वह इस विचार से नहीं दिया गया था कि वह (पेनाल्टी) हो। मेरा निर्णय यह है कि इसका प्रभाव कुछ नहीं पड़ता कि बुरा परिणाम नियम द्वारा निर्धारित दंड में आता है कि नहीं। वास्तविक परीक्षण केवल यही है कि क्या सचमुच वे उस आदेश के परिणामस्वरूप हैं?

मैं अपील को परिव्यय के साथ स्वीकार करूँगा।

न्यायालय द्वारा: —

बहुमत से अपील परिव्यय के साथ उत्सर्जित की जाती है।

अपील उत्सर्जित

———

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ सर्वोच्च न्यायालय ७१

(बंबई से)

१४ अप्रैल १९५८

बी० पी० सिनहा, जफर इमाम एवं के० सुबा राव

न्यायमूर्तिगण

ननि बाई — अपीलकर्ता

वि०

गीता बाई — उत्तरवादी

अ—अवधि अधिनियम (१९०८) अनु० १२ — गलत व्यक्ति को प्रतिनिधि मानकर उसके विरुद्ध निष्पादन की कार्यवाही किया जाना—विक्रय एवं उसका निराकरण।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब—अवधि अधिनियम (१९०८) अनुच्छेद १३४ के लिये प्रमाण

स—व्यवहार प्रक्रिया संहिता (१९०८) धा० २२ नि० ४—समस्त विधिक प्रतिनिधि अभिलेख पर लाए गए किंतु उनमें से कुछ पर तामीली न हो सकी तो उसका प्रभाव

द—रजिस्ट्रेशन अधिनियम (१९०८) धा० १७, ४९—संयुक्त स्थिति का पृथक्करण—हिंदू विधि (बँटवारा)

न्यायमूर्ति बी० पी० सिनहा—

यह अपील जिस वाद से आई है वह वाद (विशिष्ट वाद सं० १३२२।१९३८) था। संग्ली राज्य कृषक संरक्षण अधिनियम के अंतर्गत उस राज्य के ऋणी कृषकों के लाभार्थ कुछ उपबंध बनाए गए थे। यह राज्य उस समय 'ब्रिटिश इंडिया' के बाहर था। यह वाद पहले दो बंधकों के हिसाब के लिये तथा बंधक में दी हुई संपत्ति के धारण के लिये उक्त अधिनियम के अंतर्गत निवेशित किया गया था। संपत्ति का विवरण वाद पत्र में दिया हुआ है।

प्रतिवादी सं० १ ने प्रतिवाद में कहा कि बंधकवाली संपत्ति पर वादी का स्वत्व नहीं है क्योंकि मेरे पिता ने नीलाम में उस संपत्ति को खरीद लिया है और इस प्रकार वे उसके पूर्ण स्वामी हो गए तथा उसके बाद उन्होंने उस संपत्ति में से कुछ को कई एक व्यक्तियों के पक्ष में हस्तांतरित भी कर दिया है और अब हस्तांतरिती उसके पूर्ण स्वामी हो गए हैं। अन्य प्रतिवादियों ने भी प्रतिवाद निवेशित किया कि जब प्रतिवादी सं० १ का स्वत्व पूर्ण हो गया तब हमने उनसे संपत्ति को लिया और यतः इस वाद के निवेशित करने के पूर्व हस्तांतरण हुए १२ वर्ष से अधिक हो चुका इसलिए यह वाद अब अवधि बाधित है।

अन्वीक्षा न्यायालय ने वाद उत्सर्जित कर दिया। अपील करने पर अपील के न्यायालय ने वाद प्रतिप्रेषित (रिमांड) कर दिया। प्रतिप्रेषण पर जब वाद विचाराधीन ही था उसी समय प्रतिवादी सं० २ के स्थान पर प्रतिस्थापना के लिये एक प्रार्थना पत्र दिया गया, क्योंकि वह प्रतिवादी मर चुका था। न्यायालय ने वह प्रार्थना पत्र इस आधार पर अस्वीकार कर दिया कि प्रतिवादी सं० २ के संबंध में वाद का उपशमन हो चुका है। अपील से जब प्रतिप्रेषण का आदेश हुआ था उस समय वादी को संशोधन द्वारा अधिनिष्क्रयण (रिडेंप्शन) का अभिवचन लेने की अनुमति दे दी गई थी। इस आधार पर अन्वीक्षा न्यायालय ने वादपद पुनः बनाकर वाद की सुनवाई फिर से की तथा अंत में निर्णय दिया कि जो प्रतिवादीगण विक्रय विलेख के आधार पर संपत्ति के धारण में आए हैं उनका धारण १२ वर्ष पहले से ऊपर हो गया और इसलिए इसमें अवधि अधिनियम अनुच्छेद १३४ लागू होने से उन लोगों के विरुद्ध वाद काल बाधित हो जाता है। प्रतिवादी १ के उत्तराधिकारियों के विरुद्ध डिग्री दे दी गई। इस आदेश के विरुद्ध प्रतिवादी ने अपील किया और वादी ने प्रतिअपील (क्रास अपील) निवेशित किया। इन अपीलों में बंबई उच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि इसमें अनुच्छेद १३४ लागू नहीं होता वरन् इसमें अनुच्छेद १४८ लागू होता है और इस कारण वाद काल बाधित नहीं है और इस कारण वाद काल बाधित नहीं है। परिणाम यह हुआ कि वादी के वाद में डिग्री पूर्ण रूपेण दे दी गई। अतः इस अपील को केवल प्रतिवादियों ने ही निवेशित किया।

इसमें विधि एवं तथ्य के प्रश्न पर अनेक आपत्तियाँ उठाई गई हैं जिनमें से एक आरंभिक आपत्ति यह है कि सिंग्ली राज्य कृषक संरक्षण अधिनियम में दिया हुआ है कि विशिष्ट न्यायालय १९१५ के पहले के बंद हो गए हुए लेनदेन को पुनः चालू नहीं कर सकता और यहाँ इस वाद में लेनदेन १९१५ से बहुत पहले हुआ है इसलिए विशिष्ट न्यायालय को इसकी सुनवाई का अधिक्षेत्र था ही नहीं। इस कथन में बल नहीं दीखता। यों तो १९१५ एक निश्चित तिथि निर्धारित की गई है किंतु इसका अर्थ इतना तक नहीं होता कि न्यायालय कोई अन्य सहायता प्रदान कर ही नहीं सकता। यदि ऐसी बात होती तो परिनियम में इसे स्पष्ट कर दिया गया होता किंतु ऐसा कुछ है नहीं। अतः विशिष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यायालय को अधिकार है कि अधिनिष्क्रयण के वाद को ले ले। किंतु यह १६१५ के पहले के बंद हो गए हुए लेनदेन के प्रश्न को पुनः चालू नहीं कर सकता। यहाँ अभिवचन में यह प्रश्न उठाया ही नहीं गया था। यहाँ केवल पहली बार यह प्रश्न उठाया जा रहा है अतः अन्वीक्षा न्यायालय के अधिक्षेत्र के संबंध में आपत्ति अमान्य की जाती है।

दूसरी आपत्ति है कि अवधि अधिनियम के अनुच्छेद १२ के अंतर्गत १ वर्ष की अवधि से यह वाद बाधित है। इसके बारे में तथ्य इस प्रकार हैं कि गुंडी ने १८६८, १६०० और १६०१ में बंधक रखा था। किसी अन्य व्यक्ति ने गुंडी के विरुद्ध रुपए की एक डिग्री प्राप्त किया था और यह मुकदमा केवल गुंडी के ही विरुद्ध था। जब गुंडी मरा तब उसका भाई सदाशिव उनके स्थान पर आया और डिग्री के निष्पादन की कार्यवाही में सदाशिव के विरुद्ध इस बंधकवाली संपत्ति को बंधकी के पिता ने नीलाम में खरीद दिया। अब यहाँ क्रेता का कहना है कि सदाशिव गुंडी का प्रतिनिधि था और जब तक उसके विरुद्ध विक्रय विलेख का निराकरण नहीं हो जाता तब तक उसका बंधन गुंडी और उसके प्रतिनिधि पर है। उच्च न्यायालय ने निर्णय दिया था कि गुंडी का विधिक प्रतिनिधि सदाशिव था ही नहीं और इस प्रकार निष्पादन कार्यवादी में गुंडी पक्ष नहीं रहा, अतः विक्रय विलेख के निराकरण का प्रश्न नहीं उठता। उच्चन्यायालय के निर्णय के अनुसार इसमें अनुच्छेद १२ लागू नहीं होता।

२७ इंडियन अपील्स २१६ में प्रिवी कौंसिल का निर्णय था कि गलत व्यक्ति की प्रतिस्थापना पर जब संपत्ति बेच दी गई है तो यह विक्रय ठीक है और इसका बंधन निर्णीत ऋणी की संपत्ति पर उसी प्रकार होगा मानों वह गलत व्यक्ति उचित रूप से उसका विधिक प्रतिनिधि रहा हो। इसके आधार पर कहा गया कि सदाशिव भलेही गुंडी का विधिक प्रतिनिधि न रहा हो—विक्रय का बंधन गुंडी की संपत्ति पर रहेगा ही।

प्रिवी कौंसिल की उपर्युक्त रूलिंग इससे भिन्न-परिस्थिति में दी गई थी इसलिए वह इसमें लागू नहीं होती। उस रूलिंग में परिस्थिति यह थी कि निष्पादन न्यायालय के समक्ष यह प्रश्न विशेष रूप से विचाराधीन था कि निर्णीत ऋणी का विधिक प्रतिनिधि कौन है। यह प्रश्न विवादास्पद था और पक्षों की बात सुनने के बाद न्यायालय ने जिस व्यक्ति को विधिक प्रतिनिधि माना वास्तव में वह गलत था। इसीलिए प्रिवी कौंसिल ने निर्णय दिया था कि न्यायालय का निर्णय गलत भले ही हो किंतु एक बार जब निर्णय हो चुका तो विक्रय विलेख का बंधन निर्णीत ऋणी की संपत्ति पर रहेगा। यहाँ ऐसी बात नहीं थी। गुंडी के मरने पर सदाशिव के विधिक प्रतिनिधि के प्रश्न पर कोई विवाद उठा ही नहीं न तो न्यायालय ने इस पर कोई निर्णय दिया। सदाशिव का नाम यों ही सामान्य क्रम में रख दिया गया। इसलिए वादी जो गुंडी की लड़की है उसके लिये यह आवश्यक नहीं था कि वह विक्रय विलेख के निराकरण के लिये वाद निवेशित करती। उसने ठीक ही किया कि वह निष्पादन कार्यवाही की अवहेलना करती हुई और अपने उत्तराधिकार के अधिकार को जताती हुई सीधे आई। अतः अवधि अधिनियम अनुच्छेद १२ के अंतर्गत वाद काल बाधित नहीं है।

प्रतिवादियों की ओर से दूसरा तर्क है कि इसमें अनुच्छेद १३४ लागू होता है। अनुच्छेद १३४ उस समय लागू होता है जब कि बंधकी ने अपने अधिकार से परे संपत्ति का हस्तांतरण कर दिया है और इस गलत हस्तांतरण से बंधक दाता जिस दिन अवगत होता है उसके निराकरण के लिये १२ वर्ष की अवधि का आरंभ उसी तिथि से आरंभ हो जाता है। इस आधार पर प्रतिवादी का कहना है कि वाद १२ वर्ष की अवधि के कारण काल बाधित हो गया है। वादी का कहना है कि इसमें अनुच्छेद १४८ लागू होता है और अवधि ६० वर्ष की है। यहाँ अभिलेख पर विक्रय विलेख नहीं है जिससे कि उसके अनुबंधों को जाना जा सके। यह बात मान्य है कि उस विक्रय विलेख की रजिस्ट्री हुई थी इसलिए स्वतः वह विलेख ही प्रस्तुत किया जाना चाहिए था। यदि किसी कारण से वह विलेख प्राप्त नहीं था तो उसकी प्रमाणित प्रतिलिपि दी जा सकती थी। इनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतिरिक्त कोई अन्य साक्ष्य एक निर्बल साक्ष्य होता किंतु यहाँ अभिवचन में इसकी कहीं चर्चा भी नहीं है। प्रतिवादियों ने फिर अपना तर्क दूसरी ओर मोड़ा कि यतः यह बात वादी के अवगत होने के संबंध में है अतः इसका विशिष्ट ज्ञान वादी को है और इसीलिए इसके प्रमाणित करने का भार भी वादी पर है कि वह बतलावे कि किस दिन उसे इस हस्तांतरण का ज्ञान हुआ। वादी का कहना है कि जब इसका लाभ प्रतिवादी लेना चाहता है तो उसे प्रमाणित करना पड़ेगा कि किस दिन मैं उस हस्तांतरण से अवगत हुआ। अतः इसमें अनुच्छेद १३४ लागू नहीं होता इसलिए इन विवादास्पद बातों पर निर्णय देने की आवश्यकता भी नहीं है। वादी के धारण वापस पाने में न तो अनुच्छेद १२ लागू होता है और न तो अनुच्छेद १३४। इसमें अनुच्छेद १४८ लागू होता है और इसलिए यह वाद काल बाधित नहीं है।

वाद की संधार्यता के विषय में प्रतिवादियों की ओर से एक बात कही गई कि प्रतिवादी सं० २ मुकदमें की सुनवाई के बीच में ही मर गया और वादी ने प्रतिस्थापना के संबंध में कोई कार्यवाही नहीं किया। अपील से मुकदमा प्रतिप्रेषित होकर जब पुनः अन्वीक्षा न्यायालय में आया तब वादी ने प्रतिस्थापना की कार्यवाही करना चाहा किंतु अन्वीक्षा न्यायालय ने निर्णय दे दिया कि जहाँ तक प्रतिवादी सं० २ का संबंध है वाद का उपशमन हो चुका है। इस तथ्य के आधार पर प्रतिवादी का कहना है कि व्य० प्र० सं० आ० ३४ नि० १ में है कि बंधक प्रतिभूति में या अधिनिष्क्रयण (रिडेंप्शन) के अधिकार में जितने लोगों का हित हो वे सब पक्ष बनाए जायं। उसका कहना है कि यहाँ पर प्रतिवादी सं० २ के न रहने से वाद अपूर्ण है और परिणामतः सारा वाद उपशमित (अबेटेड) हो जाना चाहिए। किंतु अभिवचन से यह बात स्पष्ट नहीं होती कि प्रतिवादी सं० २ प्रतिवादी सं० १ के साथ संयुक्त बंधकी था कि कैसा था। प्रतिवादी सं० १ ने अपने को आरंभिक बंधकी के हित का उत्तराधिकारी कहा है। वादपत्र में इतना ही है कि प्रतिवादी सं० २ एस० आर० सं० १७३५ का स्वामी है किंतु इस बात से भी प्रतिवादी सं० ३ इनकार कर गया और उसका कहना था कि एस० आर० सं० १७३५ का स्वामी मैं हूँ और धारण में हूँ। प्रतिवादी सं० २ ने प्रतिवादी सं० ३ के इस बात का विरोध नहीं किया और यहाँ तक कि सारी कार्यवाही में वह एक पक्षीय (एक्सपार्टी) रहा। उसने कोई लिखित प्रतिवाद नहीं निवेशित किया। अतः अधिनिष्क्रयण करनेवाली संपत्ति में प्रतिवादी सं० २ का कोई अधिकार नहीं रहा। उसके उत्तराधिकारी वाद में पक्ष नहीं हैं और इस वाद के निर्णय का बंधन उन पर नहीं होगा। किंतु यह तो प्रतीत होता ही है कि द्वितीय प्रतिवादी का कोई वर्तमान हित नहीं है।

यह भी कहा गया कि जब प्रतिवादी सं० ८ मरा तो उसके स्थान पर उसके विधिक प्रतिनिधि प्रतिस्थापित किए गए। उनमें से कुछ पर तो तामीली हुई किंतु कुछ पर तामीली न हो सकी। जिन पर तामीली न हो सकी वे भी आवश्यक पक्ष थे और उनके न रहने से वाद उचित रूप में नहीं है। उच्च न्यायालय ने जो ए० आई० आर० १९३५ बंबई २८७ के आधार पर इसका उत्तर दिया था कि कुछेक विधिक प्रतिनिधियों का प्रतिस्थापित किया जाना भी पर्याप्त है किंतु वास्तव में आ० २२ नि० ४ इसमें लागू नहीं होता क्योंकि यहाँ तो सभी विधिक प्रतिनिधि प्रतिस्थापित हो चुके हैं और आ० २२ का पूरा पालन हो चुका है। यदि कुछ व्यक्तियों पर तामीली नहीं हुई तो इससे वाद का उपशमन (अबेटमेंट) नहीं हो सकता परिणाम के लिये इतना ही देखना होगा कि उनके न रहने से वाद समर्थ है कि नहीं। यहाँ पर अभिलेख पर के प्रमाण से यह सिद्ध है कि विधिक प्रतिनिधियों का अधिनिष्क्रयण में कोई अधिकार और हित नहीं है। प्रश्न है कि जिन लोगों पर तामीली नहीं हुई है उनपर भी डिक्री का बंधन होगा कि नहीं। यहाँ जो कुछ हम जानते हैं वह यही है कि अधिनिष्क्रयणवाली संपत्ति में इनका कोई अधिकार नहीं है। उपशमन (अबेटमेंट) नहीं हुआ इसलिए आरंभिक आपत्ति अस्वीकार की जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार आरंभिक आपत्तियों का निर्वतन करने के बाद अब तथ्य पर आ जाना है। वादी के पिता गुंडी ने तीन विभिन्न वर्षों में तीन बंधक लिखा। तीनों बंधक एक ही बंधकी के पक्ष में थे और तीनों में उसके दो भाई रामा और सदाशिव प्रतिभू (श्योरिटी) थे। वादी का कहना है कि हमारे पिता गुंडी के और पिता अप्पा राव थे। अप्पा राव ने अपने जीवन काल में ही संपत्ति का बँटवारा हमारे पिता गुंडी और दो चाचा रामा और सदाशिव के बीच कर दिया था तथा अपनी स्त्री के जीवन यापन के लिए संपत्ति में से कुछ भाग निकाल लिया था।

वादी का कहना था कि सभी भाई अलग २ थे और इसलिए बंधक की सारी संपत्ति हमारे पिता गुंडी की ही थी।

पहले रामा मरा और उसके बाद वादी की माता मरी। इन दोनों के मरने पर गुंडी और सदाशिव संपत्ति के आधे आधे भाग के स्वामी हो गए। प्रतिवादी का कहना है कि बँटवारा हुआ ही नहीं और बँटवारे के संबंध में वह विलेख प्रति ग्राह्य (ऐडमिसिबुल) नहीं है कारण कि उस बँटवारे की रजिस्ट्री होनी चाहिए थी। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि मिताक्षरा के अर्थ में बँटवारा दो प्रकार का होता है। एक वह है जब कि संयुक्त हिंदू परिवार का कोई संदायाद अलग होने की अपनी इच्छा प्रकट करता है तो ऐसी स्थिति में उसकी संयुक्त स्थिति का पृथक्करण हो जाता है और इसका परिणाम केवल यही होता है कि पहले का संयुक्त स्वत्व अब अलग स्वत्व हो जाता है किंतु उसका भाग सीमाओं एवं परिसीमाओं में नहीं बैठता। पहले का संयुक्त भू धारणाधिकार सह धारणाधिकार में परिवर्तित हो जाता है। इसके लिये सभी संदायादों की सहमति आवश्यक नहीं होती। बँटवारे की दूसरी स्थिति वह है जब कि सभी संदायाद अलग होने का अभिप्राय प्रकट कर देते हैं और इसमें भाग का बँटवारा सीमाओं एवं परिसीमाओं में हो जाता है। पहले प्रकार के बँटवारे को अचल संपत्ति से संबंध न रखने के कारण रजिस्टर्ड होना आवश्यक नहीं है। ऐसा बँटवारा मौखिक भी हो सकता है और लिखित भी। यदि लिखित है तो वह किसी हित (इंटरेस्ट) का हस्तांतरण नहीं करता। सबका हित पूर्ववत् सभी संपत्ति पर होता है। पहले प्रकार का बँटवारा यदि लिखित है तो यह बटवारा का केवल साक्ष्य मात्र होगा, इसकी रजिस्ट्री अनिवार्य नहीं है। केवल इस सीमित प्रयोजन के लिये पहले प्रकार के बँटवारे के संबंध में विलेख जो रजिस्टर्ड नहीं है, प्रतिग्राह्य हो सकता है। दूसरे प्रकार का बँटवारा जो सीमाओं एवं परिसीमाओं में बँट गया रहता है उससे एक निश्चित भाग किसी संदायाद के हिस्से में पड़ता है इसलिए इसकी रजिस्ट्री अनिवार्य होती है। बिना रजिस्ट्री के वह विलेख प्रतिग्राह्य नहीं हो सकता। अतः यहाँ पहले प्रकार का बँटवारा विलेख जो सीमित प्रयोजन के लिये साक्ष्य में प्रतिग्राह्य किया गया वह ठीक था।

वादी का यहाँ कहना है कि सारी पैतृक संपत्ति का बंधक किया गया था अतः बँटवारा मान लेने पर रामा और उनकी माता की मृत्यु के बाद वादी के पिता और सदाशिव आधे आधे भाग के स्वामी हुए और सदाशिव का वह आधा बंधकवाला भाग जब उपर्युक्त फूलचंद ने खरीद लिया तो वादी अब अपने पितावाला केवल आधा भाग ही पा सकती है। अतः यह अपील सदाशिव के आधे भाग तक ही स्वीकार की जायगी और अधिनिष्क्रमण के बाद धारण की डिग्री वादी के पिता के आधे भाग तक ही सीमित रहेगी।

परिणामतः उपर्युक्त सीमा तक अपील स्वीकार की जाती है। यतः दोनों पक्ष यहाँ सफल हुए हैं इसलिए साद्यंत परिव्यय को उभय पक्ष सहन करेंगे।

अपील अंशतः स्वीकृत

———

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ सर्वो० न्या० ७५

२३ अप्रैल, १९५८

एस० आर० दास मुख्य न्यायाधिपति; टी० एल० वेंकटरामा अय्यर, एस० के० दास, पी० बी० गजेंद्रगादकर और विवियन बोस न्यायमूर्तिगण।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१—मुहम्मद हनीफ कुरेशी तथा अन्य (प्रार्थना पत्र सं० ५८।५६ में)

२—मुहम्मद इलियास तथा अन्य (प्रार्थना पत्र सं० ८३।५६ में)

३—गनी महाजन तथा अन्य (प्रार्थना पत्र सं० ८४।५६ में)

४—नासिरुद्दीन तथा अन्य (प्रार्थना पत्र सं० १०३।५६ में)

५—शेख हुसेन कुरेशी तथा अन्य (प्रार्थनापत्र सं० ११७।५६ में)

६—शेख सुमान तथा अन्य (प्रार्थनापत्र सं १२६।५६ में)

७—अब्दुल अजीज तथा अन्य (प्रार्थना पत्र सं० १२७।५६ में)

८—मुहम्मद इस्माइल तथा अन्य (प्रार्थनापत्र सं० १२८।५६ में)

९—अब्दुल रहीम तथा अन्य (प्रार्थना पत्र २४८।५६ में)

१०—अब्दुल कदीर तथा अन्य (प्रार्थना पत्र सं० १४४।५६ में)

११—महबूब सरकार वजीर तथा अन्य (प्रार्थना पत्र सं० १४५।५६ में)

१२—मुहम्मद जान तथा अन्य (प्रार्थना पत्र सं० १२६।५७ में)

प्रार्थीगण

वि०

१—बिहार राज्य (प्रार्थना पत्र सं० ५८।८३ और ८४।५६ में)

२—उत्तर प्रदेश राज्य (प्रार्थना पत्र सं० १०३।५६ और १२६।५७ में)

३—बंबई राज्य (प्रार्थना पत्र सं० ११७, १२६ १२७ १२८ और २४८।५६ में)

४—मध्य प्रदेश राज्य तथा अन्य (प्रार्थना पत्र सं० १४४।५६ में)

५—मध्य प्रदेश राज्य (प्रार्थनापत्र सं० १४५।५६ में)

उत्तरवादी गण

अ—भारतीय संविधान अनुच्छेद ४८—इसकी व्याप्ति

ब—सर्वोच्च न्यायालय नियम (१९५०) आ० १४ नि० २—सुनवाई के बीच में तृतीय पक्ष का संमिलित होना—

स—भारतीय संविधान अनुच्छेद १३ (२) और भाग ४—निदेशक सिद्धांत (डाइरेक्टिव प्रिंसिपुल—और मौलिक अधिकार (फंडामेंटल राइट) की सामंजस्यपूर्ण व्याख्या होनी चाहिए—

द—भारतीय संविधान अनुच्छेद १४—युक्तिसंगत वर्गीकरण का परीक्षण—अभिधारणा संवैधानिकता के पक्ष में ही होनी चाहिए

य—भारतीय संविधान अनुच्छेद १९ (१) और बी०—युक्ति संगत प्रतिबंध में युक्ति संगत होने का निश्चय कौन करेगा—

र—भारतीय संविधान अनुच्छेद १९ (१) (जी०)—बिहार अधिनियम, २।१९५६ की वैधता

ल—भारतीय संविधान अनुच्छेद १९ (१) (जी०)—मध्यप्रांत और बरार अधिनियम, ५२, १९४९ की वैधता—

व—भारतीय संविधान अनुच्छेद १९ (१) (जी०)—मध्यप्रांत और बरार अधिनियम, ५२, १९४९ की वैधता –

मुख्य न्यायाधिपति एस० आर० दास—

ये १२ पार्थनापत्र हमारे संविधान के अनुच्छेद ३२ के अंतर्गत निवेशित किए गए हैं। इनमें बिहार उत्तरप्रदेश और मध्य प्रदेश राज्यों द्वारा गोवध निरोध संबंधी अधिनियमों की वैधता पर आपत्ति की गई है। गोबध का प्रश्न यहाँ पर बहुत समय तक सांप्रदायिक द्वेष का कारण रहा है किंतु इसमें पक्षों द्वारा बहुत शांतिपूर्ण ढंग से बहस की गई है। इन बारह विभिन्न पार्थनापत्रों में विधि का प्रश्न एक ही है इसलिए इसमें सुविधा होगी कि इन सबका निर्णय एक साथ एक ही निर्णय पत्र में कर दिया जाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीपचंद था। वैकल्पिक (आल्टरनेटिव) बात जो संसोधन के प्रार्थनापत्र में कही गई थी वह प्रतिवाद के बाद ज्ञात हुई अतः वादी इसे पहले नहीं जान सकता था। संशोधनार्थ प्रार्थनापत्र में जो बात कही गई थी वह वादपत्र के पहले अभिवचन से असंगत नहीं थी।

ऐसी परिस्थिति में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यों तो पुनरीक्षण नहीं हो सकता और पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र परिव्यय के साथ उत्सर्जित किया जा रहा है किंतु हमारा विचार यह है कि अब भी वादी प्रतिवादी के उत्तर में प्रत्योत्तर प्रार्थनापत्र निवेशित कर सकता है और प्रतिवादी को भी प्रत्युक्ति (रीज्वांइडर) निवेशित करने का अधिकार होगा।

पुनरीक्षण उत्सर्जित

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इलाहाबाद उच्चन्यायालय १४३

न्यायमूर्ति डी० एन० राय

व्यवहार पुनरीक्षण सं० ४३।१९५८—३ अप्रैल १९५८

श्रीमती त्रिवेणी देवी	—	प्रार्थी
	वि०	
श्रीमती शारदा देवी	—	विपक्षी

प्रकीर्णक वाद सं० ३८।१९५६ में मथुरा के ज़िला न्यायाधीश की डिग्री दिनांक १४-१०-१९५७ के विरुद्ध पुनरीक्षण।

हिंदू उत्तराधिकार, अधिनियम, १९५६ धा० ८ और १४—धारा ८ के अंतर्गत पुत्रियों द्वारा अधिकार की प्राप्ति धारा १४ से प्रभावित नहीं है।

न्यायमूर्ति राय

यह श्रीमती त्रिवेणी देवी का पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र है। श्रीमती त्रिवेणी देवी रघुनाथ प्रसाद की विधवा हैं। रघुनाथ प्रसाद को ३ अवयस्क और १ वयस्क पुत्री थी।

वर्तमान प्रार्थी ने रघुनाथ प्रसाद की मृत्यु के बाद बचत बैंक के ७२०० रु० के लिये अपने नाम में उत्तराधिकार प्रार्थनापत्र प्राप्त करने की कार्यवाही की। यतः इसमें तीन अवयस्क लड़कियों का भी अधिकार था इसलिए न्यायालय ने सप्रतिबंध प्रमाणपत्र स्वीकार किया कि इस रुपया को न्यायालय की अनुमति के बिना वह खर्च नहीं कर सकती।

इसके बाद प्रार्थी ने पुनः विचार की प्रार्थना इस आधार पर की कि हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम के संबद्ध उपबंध नहीं दिखलाए गए। उसका कहना था कि धारा १४ के अभिप्राय के अनुसार सारी संपत्ति केवल हमारी हो गई है और इसमें अब किसी का कोई अधिकार नहीं है। विद्वान न्यायाधीश ने यह बात न मानी और निर्णय दिया कि धारा १४ का प्रभाव धारा ८ पर नहीं पड़ता है।

हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा ८ में है कि लड़कियों के साथ विधवा संपत्ति की उत्तराधिकारिणी होगी। अतः इस धारा ८ में जो संपत्ति का प्रक्रामण (डिवोल्यूशन) दिया हुआ है उस पर धारा १४ का कुछ प्रभाव नहीं पड़ता। धारा १४ का अभिप्राय केवल इतना ही होता है कि वह विधवा जो उक्त अधिनियम के लागू होने के पहले सीमित संपदा की स्वामिनी होती थी उसका अधिकार अब बढ़ गया और वह पूर्ण स्वामिनी हो गई। मेरे विचार से धारा ८ के अंतर्गत पुत्रियों को जो अधिकार प्राप्त होता है वह धारा १४ के प्रभाव से सर्वथा अछूता है। ए० आई० आर० १९५० आंध्र प्रदेश २८० की रूलिंग का सहारा लिया गया किंतु उसमें धारा ८ की चर्चा नहीं की गई है।

ऐसी परिस्थिति में सप्रतिबंध प्रमाण पत्र का स्वीकार किया जाना सर्वथा ठीक था। पुनरीक्षण में बल नहीं है इसलिए यह उत्सर्जित किया जाता है।

पुनरीक्षण उत्सर्जित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इला० उच्च न्या० १४४
न्यायमूर्ति ए० पी० श्रीवास्तव

पुनर्विचार प्रार्थनापत्र सं० ७०४।१९५८–२७ मार्च १९५८

महेंद्रपाल सिंह तथा अन्य (प्रार्थीगण) (जेल में)
वि०
उत्तरप्रदेश राज्य — विपक्षी

इस माननीय न्यायालय के माननीय न्यायमूर्ति श्री ए० पी० श्रीवास्तव ने आपराधिक पुनरीक्षण महेंद्रपाल सिंह और नरेंद्रपाल सिंह वि० राज्य को सरसरी ढंग पर अस्वीकार कर दिया था। उसी का यह पुनर्विचार प्रार्थनापत्र है।

दंड प्रक्रिया संहिता १८९८, धा० ३६९—उच्च-न्यायालय द्वारा अपील और आपराधिक पुनरीक्षण में पारित आदेश पर वही उच्च न्यायालय पुनर्विचार नहीं कर सकता न तो निर्णय बदल सकता है—इसके लिये उपाय सर्वोच्च न्यायालय में है।

न्यायमूर्ति श्रीवास्तव—

इस न्यायालय के आदेश दिनांक २७ फरवरी १९५८ पर पुनर्विचार करने के लिये यह प्रार्थनापत्र दिया गया है। विधि के किस उपबंध के अंतर्गत यह प्रार्थनापत्र दिया गया है इसे प्रार्थनापत्र के ऊपर लिख दिया गया है कि दं० प्र० सं० की धारा ५६१ ए० के अंतर्गत यह प्रार्थनापत्र है।

प्रतीत होता है कि प्रार्थियों की दोष सिद्धि मजिस्ट्रेट ने दंड संहिता की धारा ३२५ के अंतर्गत की और दंडादेश पारित किया। दोषसिद्धि के विरुद्ध प्रार्थियों ने सत्र न्यायाधीश के यहाँ अपील की किंतु वह अपील भी उत्सर्जित कर दी गई। इसके बाद प्रार्थियों ने इस न्यायालय में पुनरीक्षण किया और पुनरीक्षण भी इस आधार पर उत्सर्जित कर दिया गया कि मजिस्ट्रेट का तथ्य का निष्कर्ष ठीक था और दोषसिद्धि में हस्तक्षेप करने योग्य कोई आधार नहीं है। पुनरीक्षण में इन प्रार्थियों के वकील ने बहस की थी। इसी आदेश पर पुनर्विचार करने के लिये यह प्रार्थनापत्र इस आधार पर दिया गया है कि पुनरीक्षण में बहस करते समय असावधानी के कारण न्यायालय का ध्यान बहुत आवश्यक बातों की ओर नहीं दिलाया गया। और ये बातें न्यायालय के विचार करने योग्य हैं।

इस संबंध में सबसे पहला प्रश्न यही उठता है कि क्या ऐसा पुनर्विचार प्रार्थनापत्र अनुमित है ?

इस प्रसंग में साधारणतया नियम यही है कि दं० प्र० सं० की धारा ३६९ के अंतर्गत कोई न्यायालय सिवा किसी लिखावट की गलती को शुद्ध करने के लिये किसी निर्णय पर हस्ताक्षर करने के बाद उसमें कोई परिवर्तन नहीं करेगा। न तो उस पर पुनर्विचार करेगा। यह नियम उच्च न्यायालय के लिये भी लागू होता है किंतु उच्च न्यायालय की स्थिति में पुनर्विचार उस दशा में अनुमित होगा जब कि वह…(लेटर्स पेटेंट)‧या इलाहाबाद उच्च न्यायालय के अन्य निर्माणकारी अंग द्वारा तदर्थ अधिकृत हो। यहाँ अधिकार प्रदान करने वाला ऐसा कोई प्रमाण नहीं है। एक बात यह अवश्य कही जा सकती है कि दं० प्र० सं० की धा० ३६९ का पालन न करने से इसे निर्णय (जजमेंट)) नहीं कहा जा सकता। इसका उत्तर १९४६ ए० आई० आर० बंबई २७६ के मुकदमें में पाया जा सकता है। इसमें कहा गया था कि उच्च न्यायालय का निर्णय अंतिम होता है इसलिए यह ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता कि इसके निर्णय में वह कौन कौन सी बातें होनी चाहिए और यह पुनरीक्षण के निर्णय में और भी है कारण कि पुनरीक्षण में पक्ष को यह अधिकार तक नहीं होता कि वह अपनी बात न्यायालय के समक्ष कह सके। अतः इसके लिये ये सब बातें नहीं कहीं जा सकती कि तत्व पर विचार नहीं किया गया आदि। उस मुकदमें में विद्वान् न्यायाधीश ने स्पष्ट कहा था कि हमारे विचार से इस बात की अभिधारणा है कि आदेश अंतिम है, तत्व पर है और इसलिए यह निर्णय के समान हैं।

दं० प्र० संहिता की धारा ३६९ के अतिरिक्त भी इस बात के लिये पर्याप्त प्रमाण हैं कि उच्च न्यायालय का निर्णय अंतिम होता है और न तो वह बदला जा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता है और न उस पर पुनर्विचार किया जा सकता है। बंबई के मुकदमे में एक अभिदेश का निवर्तन ५ शब्दों द्वारा किया गया था और इसी को निर्णय माना गया। इसके लिये उपाय केवल सर्वोच्च न्यायालय में है।

अभियुक्त की अपील या उसका पुनरीक्षण उसकी बात या उसके वकील की बहस सुनने या न सुनने पर किंतु उत्तरवादी को नोटिस दिए बिना जब सरसरी ढंग पर उत्सर्जित कर दी जाती है तो जहाँ तक अभियुक्त का प्रश्न है यह 'निर्णय' हो जाता है—यह विचार न्यायमूर्ति दास का था जो उन्होंने १९५५ ए० आई० आर० सर्वो० न्या० ६३३ में व्यक्त किया था।

न्यायमूर्ति भगवती इस बात से सहमत थे किंतु उन्होंने कह दिया कि अपील या आपराधिक पुनरीक्षण को सरसरी ढंग पर उत्सर्जित करनेवाला आदेश यों तो अंतिम आदेश है और स्वतः सर्वोच्च न्यायालय भी उस पर पुनर्विचार नहीं कर सकता और न तो पुनरीक्षण ही कर सकता है किंतु वह नीचे के न्यायालय के निर्णय के स्थान पर निर्णय के समान नहीं है।

यह सत्य है कि विद्वान् न्यायमूर्ति का उक्त विचार प्रसंगोक्ति (आबिटर डिक्टा) है कारण कि उस समय विचाराधीन प्रश्न एक दूसरा ही था किंतु सर्वोच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों की प्रसंगोक्ति भी उच्चतम संमान की भागी होती है और इसका बंधन देश के सभी न्यायालयों पर होता है १९२३ ए० आई० आर० इलाहाबाद ४७३, १९३५ ए० आई० आर० इलाहाबाद ४६६ इत्यादि अनेक रूलिंग्स हैं जिनमें भिन्न भिन्न परिस्थितियों में निर्णय हुआ था कि उच्च न्यायालय अपने निर्णय पर पुनर्विचार नहीं कर सकता।

प्रार्थी की ओर से १९४८ ए० आई० आर० इलाहाबाद १०६, और १९५० ए० आई० आर० इलाहाबाद ६२५ पर निर्भर किया गया। इसमें निर्णय हुआ था कि संहिता की धारा ५६१ ए० के अंतर्गत अपने अंतर्भूत अधिकारों से न्यायालय अपने आदेश पर फिर से विचार कर सकता है और कोई अशुद्धि या गलती ठीक कर सकता है। इस बात पर बिना विचार किए हुए कि ये निर्णय किस सीमा तक सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय १९५५ ए० आई० आर० ६३३ से प्रभावित हैं और इस बात को मानकर भी कि इस विषय पर निर्णयों के अनुसार ठीक हैं प्रार्थी को कोई सहायता नहीं मिल सकती क्योंकि इसमें प्रार्थी के विद्वान् वकील ने कोई स्पष्ट अशुद्धि या गलती नहीं दिखलायी हैं। अतः आदेश में कोई स्पष्ट अशुद्धि या गलती न होने पर उसके पुनर्विचार का प्रश्न यहाँ उठता ही नहीं।

पुनर्विचार प्रार्थनापत्र संधार्य नहीं है इसलिए यह असफल होता है। इस संबंध में उन सभी विषयों पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है जिन्हें प्रार्थी के विद्वान् वकील ने उठाया है।

अतः प्रार्थनापत्र अस्वीकार किया जाता है।

प्रार्थनापत्र अस्वीकृत

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ इला० उ० न्या० १४५

(लखनऊ न्यायासन)

मुकर्जी एवं टंडन न्यायमूर्तिगण

व्यवहार प्रकीर्णक प्रार्थनापत्र सं० १८०।१९५७

३ जनवरी १९५८

सरदार इकबाल सिंह — प्रार्थी

वि०

लखनऊ नगर पालिका तथा अन्य — विपक्षीगण

अ—उ० प्र० पंचायत राज अधिनियम १९४७ धारा ३७ (डी०) (२) नि० २२० और २२३—यदि ग्राम सभा की सीमा के भीतर रिक्शा चलते हैं तो ग्राम सभा को अनुज्ञप्ति (लाइसेंस) जारी करने का अधिकार है।

ब—उ० प्र० नगरपालिका अधिनियम, १९१६ धा० २९८ (२)—सूची १—(एच०) (सी०) और (डी०)—लखनऊ नगरपालिका (बाइ लाज) सं० २ और ४ का क्षेत्र—यदि किराया तय करना और रिक्शा के लिये सवारियों का बुलाना सब कुछ लखनऊ नगरपालिका के बाहर होता हो तो (बाइ लाज) लागू नहीं होता—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुकर्जी और टंडन न्यायमूर्तिगण—

भारतीय संविधान के अनुच्छेद २२६ के अंतर्गत यह प्रार्थनापत्र दिया गया है। प्रार्थी का कहना है कि ग्राम सभा रूपपुर खदरा (जो लखनऊ के समीप है) ने उ०प्र० पंचायत राज अधिनियम की धा० ३७ (ड०) (२) और इस अधिनियम के अंतर्गत निर्मित नियम २२२ और २२३ के अनुसार रिक्शा चलाने के लिये अनुज्ञप्ति (लाइसेंस) दिया है किंतु जब हमारे रिक्शे लखनऊ नगर पालिका के बाहर पड़नेवाले गाँव रूपपुर खदरा से सवारी लेकर लखनऊ नगरपालिका के भीतर आने निर्दिष्ट स्थान पर गए तो नगरपालिका ने इन रिक्शों को जब्त कर लिया जो गलत है।

लखनऊ नगरपालिका ने धा० २९८ (२) सूची १ एच० (सी०) और (डी०) के आधार पर अनेक उपविधि बनाया है। उपविधि २ में है कि कोई भी व्यक्ति किराया पर या व्यक्तिगत प्रयोजनों के लिये साइकिल या हाथरिक्शा म्युनिसिपल नगरपालिका के भीतर बिना नगरपालिका की अनुज्ञप्ति के नहीं चलाएगा इत्यादि।

इस संबंध में प्रार्थी का निम्नलिखित कथन है कि:—

(१) रूपपुर खदरा से सवारी लेकर हमारे रिक्शे लखनऊ नगरपालिका के भीतर अपने निर्दिष्ट स्थान पर नगरपालिका की अनुज्ञप्ति के बिना भी आ जा सकते हैं और जब्त नहीं किए जा सकते।

(२) संविधान के अनुच्छेद १९ (१) डी० और जी० में इस अधिकार का संरक्षण मान्य है।

(३) लखनऊ नगरपालिका ने उन रिक्शों को अपनी सीमा के भीतर आने जाने की अनुमति प्रदान किया है जिनकी अनुज्ञप्ति कंटूनमेंट बोर्ड ने दी है किंतु यह नगरपालिका ग्राम सभा द्वारा दी गई अनुज्ञप्तियों वाले रिक्शों को अपनी सीमा में आने जाने में रोकती है अतः यह विभेदकरण है और भारतीय संविधान के अनुच्छेद १४ के प्रतिकूल है।

अतः यहाँ प्रार्थी की प्रार्थना है कि परमादेश लेख जारी करके नगरपालिका को मना किया जाय कि रूपपुर खदरा की अनुज्ञप्ति वाले रिक्शों को जब्त न करे और इसके पहले जो रिक्शे जब्त हो चुके हैं नगरपालिका को आदेश दिया जाय कि वह उन सबको छोड़ दे।

नगरपालिका ने इस बात को इनकार नहीं किया कि रिक्शे जब्त नहीं हुए थे किंतु उसका कहना था कि १—नगरपालिका ने एक बार यह निश्चय किया कि ३२५० रिक्शों से अधिक रिक्शों को अनुज्ञप्ति न दी जाय। इसका परिणाम यह हुआ कि जो रिक्शा अनुज्ञप्ति लेना चाहते भी थे उनको अनुज्ञप्ति मिल ही नहीं सकती थी। रिक्शावालों ने इससे बचने के लिये ग्राम सभाओं से अनुज्ञप्ति लेना आरंभ किया जो गलत है।

२—ग्राम सभा रूपपुर खदरा की जनसंख्या केवल ५०० है किंतु वहाँ से ४५० रिक्शों को अनुज्ञप्ति दी गई है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है ग्राम सभा की अनुज्ञप्तियाँ केवल बचाव के लिये हैं और ग्राम सभा को अनुज्ञप्ति प्रदान करने का कोई विधिक अधिकार नहीं है

तीन व्यक्तियों ने विचाराधीनावस्था में पक्ष बनने की प्रार्थना की। उनका कहना था कि हम लोगों ने नगरपालिका से अनुज्ञप्ति लिया है इसलिए यदि प्रार्थीगण सफल हो जायँगे तो हम लोगों के व्यवसाय पर धक्का पहुँचेगा। इन लोगों को पक्ष बनाने की अनुमति प्रदान की गई। इन लोगों का वही कहना है जो कि नगरपालिका का था और इसी बात के लिये शपथपत्र भी निवेशित किए गए। प्रार्थी ने अपने शपथपत्र में कहा था कि हमारे रिक्शे रूपपुर खदरा से सवारी लेकर नगरपालिका की सीमा के भीतर पहुँचाने आए थे जब कि नगरपालिका ने रोककर उन रिक्शों को जब्त कर लिया। नगरपालिका का शपथपत्र में कहना था कि रिक्शे लखनऊ नगरपालिका के भीतर जब किराए पर चल रहे थे उस समय पकड़े गए और रिक्शे नगरपालिका की अनुज्ञप्ति के बिना नहीं चलाए जा सकते।

दोनों पक्षों की बातों से केवल दो ही प्रश्नों पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार करने की आवश्यकता प्रतीत होती है। १—क्या वे रिक्शे रूपपुर खदरा से सवारी लेकर लखनऊ नगरपालिका की सीमा के भीतर उन्हें पहुँचाने जा रहे थे? २—नगर पालिका की अनुज्ञप्ति उनके पास न होने से क्या उन्हें नगरपालिका की सीमा में प्रवेश करने का अधिकार था? दूसरे प्रश्न पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि नगरपालिका ने अपने २१ नवंबर १९५७ के प्रार्थनापत्र में यह बात मान ली थी कि रूपपुर खदरा से सवारी लेकर उन्हें पहुँचाने के लिये रिक्शे लखनऊ नगरपालिका की सीमा के भीतर प्रवेश कर सकते हैं। विचारणीय प्रश्न केवल यही है कि वे रिक्शे नगरपालिका की सीमा के भीतर किराए पर चल रहे थे इसलिए जब्त किए गए या वे रूपपुर खदरा से सवारी लेकर नगरपालिका के भीतर केवल उन्हें पहुँचाने जा रहे थे।

यहाँ हमें विवादास्पद तथ्यों पर विचार नहीं करना चाहिए कारण कि उनका निर्णय शपथपत्र के आधार पर हो जाता है किंतु यहाँ निर्णय के लिये इस तथ्य के प्रश्न पर विचार करने की आवश्यकता है। दोनों ओर से साक्ष्य शपथपत्र द्वारा दिए गए। नगरपालिका ने कुछ सवारियों का बयान प्रमाण में दिया है जिनमें उनका कहना है कि हमलोग नगरपालिका की सीमा के भीतर किराया पर सवारी किए थे। इस साक्ष्य को या तो शपथ पत्र में होना चाहिए था या इन्हें साक्षी के रूप में खड़ा करके इनके साक्ष्य का परीक्षण करना चाहिए था। यहाँ दो में से एक भी नहीं हुआ इसलिए इनका बयान साक्ष्य के लिये प्रतिग्राह्य नहीं हो सकता। शपथपत्रों को देखने से यही आता है कि नगरपालिका इस बात को प्रमाणित नहीं कर सकी है कि इन रिक्शों ने सवारियों को नगर पालिका की सीमा के भीतर बैठाया था या रिक्शे सीमा के भीतर किराए पर चलते थे। अतः यह मान लिया जाता है कि इन रिक्शों ने सवारियाँ रूपपुर खदरा से ही लिया था तिस पर भी इसका महत्व अब इसलिए नहीं रह जाता है कि वे रिक्शे अब छोड़ दिए गए हैं।

इसके प्रमुख प्रश्न पर विचार करने के पहले यह आवश्यक है कि नगरपालिका की इस आपत्ति पर विचार कर लिया जाय कि ग्राम सभा को अनुज्ञप्ति प्रदान करने का अधिकार नहीं है। अपनी सीमा के भीतर चलनेवाले रिक्शों पर यह केवल कर लगा सकती है। यों तो इस मामले के निर्णय के लिये इस प्रश्न पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है फिर भी हम सोचते हैं कि पंचायत राज अधिनियम की धा० ३७ (डी०) (२) और नियम २२० और २२३ के अनुसार रिक्शा चलाने के लिये ग्राम सभा अनुज्ञप्ति प्रदान कर सकती है।

प्रार्थी का कहना है कि अनुज्ञप्ति हो चाहे न हो हमें भारतीय संविधान के अनुच्छेद १९ (१) डी० और जी० के अनुसार लखनऊ नगरपालिका की सीमा में प्रवेश करने की स्वतंत्रता है। प्रार्थी के इस भ्रमण स्वातंत्र्य पर जो प्रतिबंध लगाया गया है वह नगरपालिका की उपविधि के अंतर्गत है इसलिए एतदर्थ उपविधि (बाईला) पर विचार करना पड़ेगा।

नगरपालिका की उपविधि में जो रिक्शे किराए पर चलते हैं उन्हीं के नियंत्रण आदि के लिये नियम बनाए गए हैं। यहाँ किराए पर चलना (प्लाईंग फार हायर) का ठीक अर्थ क्या है इस पर मतभेद है। नगरपालिका का कहना है कि सवारी ले जाते समय रिक्शे की यात्रा में यदि नगरपालिका का कुछ भी भाग पड़ता हो तो चाहे किराया नगरपालिका की सीमा के बाहर तय हुआ हो चाहे भीतर यह नगरपालिका की सीमा के भीतर रिक्शे का किराए पर चलना होगा।

नगरपालिका का यह कथन मान्य नहीं हो सकता। किराए पर चलने के लिये यह आवश्यक है कि रुक कर सवारियों की प्रतीक्षा की जाय और ज्योंही कोई सवारी रिक्शा को किराया पर ले लेती है कि यह "किराया पर चलना" हो जाता है। १९२२ के० बी० ५५३ में कहा गया था कि जब तक निम्नलिखित दो शर्तों का पालन नहीं हो जाता किसी गाड़ी का किराया पर चलना नहीं कहा जा सकता। शर्तें निम्नलिखित हैं—

(१) गाड़ी के चालक का या उस व्यक्ति का जिसके नियंत्रण में कि गाड़ी है प्रतीक्षा करना या सवारियों को बुलाना और उन सवारियों तथा उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्ति के बीच पहले की किसी संविदा का न होना और।

(२) स्वामी का या उस व्यक्ति का जिसके नियंत्रण में गाड़ी है और जो प्रतीक्षा करने या सवारियों के बुलाने के लिये अधिकृत है उसके लिये यह आवश्यक है कि प्रतीक्षा करते समय या सवारियों के बुलाने के समय उस गाड़ी के धारण में हो।

इन दो शर्तों के पालन करने पर ही कहा जायगा कि गाड़ी किराया पर चलती है। यही बात ए० आई० आर० १९२८ मद्रास १६६ में भी मानी गई थी। इसलिए यहाँ जब किराया रूपपुर खदरा में तय हुआ और वहाँ से सवारियाँ लेकर रिक्शे चले तो उनकी इस यात्रा में नगरपालिका का यदि थोड़ा सा भाग पड़ता भी हो तब भी यह नहीं कहा जा सकता कि नगरपालिका की उपविधि के अनुसार रिक्शे नगरपालिका की सीमा के भीतर किराए पर चलते हैं। अतः उपविधि से प्रभावित न होते हुए प्रार्थी के रिक्शों को लखनऊ नगरपालिका की सीमा के भीतर प्रवेश करने का अधिकार है और नगरपालिका उपविधि के बल पर उन रिक्शों को न तो रोक सकती है और न जब्त ही कर सकती है।

कटूनमेंट बोर्ड के रिक्शों और ग्रामसभा के रिक्शों के बीच में जो विभेदकरण की बात भारतीय संविधान के अनुच्छेद १४ के प्रतिकूल कही गई थी उसमें कोई बल नहीं है क्योंकि नगरपालिका की उपविधि में ऐसी कोई विभेदकारी बात नहीं है।

प्रार्थी को साहाय्य प्रदान करने के लिये सामान्य क्रम में रिक्शों का नगरपालिका की सीमा के बाहर से सवारी लेकर नगरपालिका के भीतर निर्दिष्ट स्थान पर जाने के अधिकार को मान्यता दे देना ही पर्याप्त होता किंतु नगरपालिका जब प्रार्थी के इस अधिकार का विरोध अंत तक करती रही तो हम लोगों ने आवश्यक यह समझा कि लखनऊ नगरपालिका को निदेश किया जाय कि वह रूपपुर खदेरा से सवारी लेकर नगरपालिका की सीमा के भीतर निर्दिष्ट स्थान पर आने वाले या जब कि वे उन सवारियों को लौटती बार ले जा रहे हों तब रिक्शों को जब्त न करे। किसी किराया पर चलनेवाली गाड़ी को उपविधि के अनुसार रोक रखने के नगरपालिका के अधिकार पर इस आदेश का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। आदेश तदनुसार।

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इलाहाबाद उच्च न्यायालय १४८

न्यायमूर्ति ए० पी० श्रीवास्तव

मुजफ्फरनगर के अतिरिक्त व्यवहार न्यायाधीश की डिग्री दिनांक २९ अक्टूबर १९५७ के विरुद्ध द्वितीय अपील सं० १९५।१९५८

२० मार्च १९५८

श्रीमती कलावती तथा अन्य — अपीलकर्तागण

वि०

कवल सिंह तथा अन्य — उत्तरवादीगण

उ० प्र० जमींदारी विनाश तथा भूमि सुधार अधिनियम १।१९५१ धा० १६९, १७१, १७२, १७४, १५२, १५४—स्वामी यदि स्त्री हो तो उसे अपने खाते को दानपत्र में दे देने का अधिकार है।

न्यायमूर्ति श्रीवास्तव—

यह वादी की अपील है। गंगाराम दखीलकार कृषक था और उसके पास एक मकान भी था। गंगाराम के मरने पर वह मकान उसकी विधवा स्त्री के धारण में आया और खेतों की वह दखीलकार कृषक हुई। जमींदारी विनाश अधिनियम के लागू होने पर वह दसगुना लगान जमा करके उस खाते का भूमिधर हो गई।

१९५३ में उक्त विधवा ने उस मकान को और संपूर्ण खेतों को अपनी लड़की के एक लड़के कवल सिंह को भेंट कर दिया। वादीगण ने जो उसकी अन्य लड़कियों के लड़के हैं, यह वाद घोषणा के लिये निवेशित किया है कि हम लोग आरंभिक स्वामी गंगाराम के प्रत्यावर्ती (रिवर्सनर) हैं और हिंदू विधि के अनुसार चूँकि उनकी स्त्री को केवल जीवन पर्यंत का अधिकार था इसलिए उन्होंने जो संपत्ति का दानपत्र कवल सिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के पत्र में लिखा है उनकी मृत्यु के बाद प्रभावशून्य होगा और मकान और खेतों के दान का बंधन हम प्रत्यावर्तीगण पर नहीं होगा।

अन्वीक्षा न्यायालय ने मकान के बारे में तो डिग्री दे दी किंतु खेतों के बारे में इसे उत्सर्जित कर दिया। अपील करने पर निर्णय हुआ कि वह विधवा उन खेतों की भूमिधर थी इसलिए जमींदारी विनाश अधिनियम के लागू होने पर वह दान दे सकती है और उसके पति के प्रत्यावर्तीगण (रिवर्सनर्स) इसको चुनौती नहीं दे सकते। इस प्रकार अपील के न्यायालय ने अन्वीक्षा न्यायालय के निर्णय को मान लिया।

मकान के बारे में अपील नहीं की गई है इसलिए तत्संबंधी निर्णय अब अंतिम निर्णय हो चुका है और उसकी सत्यता या असत्यता के बारे में विचार नहीं करना है।

इस अपील में वादी का कहना है कि नीचे के अपील के न्यायालय का निर्णय गलत इसलिए है कि विधवा भूमिधर का अधिकार केवल जीवन पर्यंत का होता है अतः उसकी उसके द्वारा दान दिए जाने का बंधन उसकी मृत्यु के बाद प्रत्यावर्तीगण पर नहीं होना चाहिए।

भूमिधरी का ऐसा अधिकार परिनियम द्वारा बनाया गया और ऐसा परिनियम जमींदारी विनाश तथा भूमिसुधार अधिनियम के रूप में सर्वप्रथम बना इसलिए भूमिधरी के अधिकार की व्याप्ति आदि के लिये हमें उक्त अधिनियम के उपबंधों को ही केवल देखना है। अधिनियम के अंतर्गत कहीं ऐसा नहीं है कि किसी भूमिधर को जीवन पर्यंत का ही अधिकार होगा। यह नितांत स्पष्ट कर दिया गया है कि भूमिधरी के अधिकार का हस्तांतरण किया जा सकता है; इस हस्तांतरण के अधिकार के संबंध में केवल एक ही प्रतिबंध है और वह यह कि जिसके पास ३० एकड़ से अधिक भूमि है उसको दान या अन्य प्रकार से हस्तांतरण नहीं किया जा सकता। केवल इस एक प्रतिबंध को छोड़कर कोई अन्य प्रतिबंध अधिनियम के अंतर्गत नहीं है। दान संबंधी हस्तांतरण के संबंध में धारा १५४ एक विशिष्ट उपबंध है भी।

उत्तराधिकार क्रम के विषय में भी स्पष्ट कह दिया गया है कि वह इसी अधिनियम के उपबंधों के अंतर्गत होगा। फिर यह कैसे कहा जा सकता है कि श्यामकुँवर का अधिकार जीवन पर्यंत का ही था और वह पूर्णरूपेण दान नहीं कर सकती थी।

धा० १६६ और धा० १७२ (२) पर इस बात के लिये निर्भर किया गया कि श्यामकुँवर वह दान नहीं कर सकती थी जिससे उसके पति के प्रत्यावर्तीगण को हानि पहुँचे।

धा० १६६ में भूमिधर को इच्छापत्र द्वारा संपत्ति देने में भी पूर्णरूपेण रुकावट नहीं है। इस धारा में कहीं ऐसी बात नहीं है कि श्यामकुँवर जैसी विधवा का अधिकार केवल जीवन पर्यंत का है और इसलिए वह दानपत्र या इच्छापत्र द्वारा संपत्ति नहीं दे सकती। चाहे जो हो धारा १६६ में इच्छापत्र द्वारा हस्तांतरण करने में यदि थोड़ा बहुत प्रतिबंध लगाया गया है तो इसको यहाँ तक नहीं बढ़ाया जा सकता कि इसके अंतर्गत दान करने का अधिकार भी आ जाय।

धारा १७१ में भूमिधर के मरने पर उसके खाते के बारे में उत्तराधिकार का क्रम दिया हुआ है। किसी भी प्रकार विचार करें, इसमें व्यक्तिगत विधि (परसनल ला) के लिये कोई स्थान नहीं है।

धा० १७२ धा० १७१ की अपवादस्वरूप है। धा० १७२ में दिया हुआ है कि कुछ अवस्थाविशेष में यदि वह स्त्री अपने व्यक्तिगत विधि के अनुसार जीवन पर्यंत की अधिकारिणी है तो उसके पति के उत्तराधिकारी धारा १७१ के क्रमानुसार आएँगे और यदि व्यक्तिगत विधि के अनुसार वह स्त्री पूर्ण स्वामित्व रखती है तो उसके उत्तराधिकारियों का क्रम धा० १७४ के अंतर्गत होगा। फिर भी ये उपबंध उसी समय लागू हो सकते हैं जब कि वह स्त्री मरती है, विवाह कर लेती है, परित्याग (अबंडन) या अध्यर्पण (सरेंडर) कर देती है। दूसरे शब्दों में इसका परिणाम यही होता है कि यदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमुक बात हो जावे तो उसका उत्तराधिकारी कौन होगा ? इसका तात्पर्य यह नहीं हो सकता कि विधवा का अधिकार सीमित होता है और वह विधवा हिंदू विधि की तरह अपने सीमित अधिकार से परे हस्तांतरण नहीं कर सकती। इस मामले में धारा १७२ लागू नहीं होती और चूँकि श्यामकुँवर न तो अभी मरी है और न तो उसने अपनी संपत्ति का परित्याग किया है इसलिए वादीगण यह भी लाभ नहीं उठा सकते। परित्याग के संबंध में ए० आई० आर० १९५८ इलाहाबाद १०७ में निर्णय हो चुका है कि दान के विलेख का निष्पादन परित्याग (अबंडनमेंट) नहीं होता।

अतः विद्वान व्यवहार न्यायाधीश अपने निर्णय में ठीक थे कि श्यामकुँवर को दानपत्र लिखने में कोई रुकावट नहीं थी और वादीगण इस पर आपत्ति नहीं कर सकते। वादीगण के पक्ष में यह घोषणा नहीं की जा सकती कि श्यामकुँवर के मरने के बाद दानपत्र का बंधन हम लोगों पर नहीं होगा। भूमिधरी खाते के संबंध में वाद का उत्सर्जन ठीक हुआ है।

इस अपील में बल नहीं है इसलिए व्य० प्र० सं० की धा० ४१ नि० ११ के अंतर्गत यह उत्सर्जित की जाती है।

अपील करने की अनुमति के लिये प्रार्थना की गई किंतु स्वीकृत न हुई। अपील उत्सर्जित।

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इला० उच्च न्या० १५०

न्यायमूर्ति ए० पी० श्रीवास्तव

कानपुर के मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी के संज्ञान (काग्निजेंस) दिनांक १५–२–१९५६ के विरुद्ध आपराधिक पुनरीक्षण सं० २७।१९५७।

(१८ जून १९५८ को निर्णीत)

शिव विलास तथा अन्य — प्रार्थीगण

वि०

राज्य विपक्षी

दं० प्र० सं०, १८९८, धा० १९५ (१) (बी०) क्षेत्र - धारा में जो रुकावट का उपबंध है वह पूर्ण रूपेण नहीं है—अन्वेषण के समय यदि अपराध हुआ है तो न्यायालय द्वारा परिवाद निवेशित करने की आवश्यकता नहीं है—दं० संहिता १८६० धा० १९३, १९६।

न्यायमूर्ति श्रीवास्तव—

कानपुर के सत्र न्यायाधीश का यह अभिदेश है। शिवविलास की एक साइकिल थी। उसने इसे चंद्रमौलि को बेचा और फिर इसी साइकिल को बाबूराम को बेच दिया। उसी साइकिल की एक रसीद उसने पहले चंद्रमौलि को लिखा और फिर बाबूराम को। जब बाबूराम यह रसीद पा गए तो उन्होंने पुलिस को सूचना दी कि हमारी साइकिल चोरी चली गई है वह साइकिल चंद्रमौलि के पास से प्राप्त की गई।

जब पुलिस मामले की छानबीन कर रही थी उसी समय चंद्रमौलि ने बतलाया कि हमने यह साइकिल शिवविलास से खरीदी है और इसलिए चोरी का प्रश्न नहीं उठता। छानबीन के समय जिन जिन बातों का पता चला था उसके आधार पर पुलिस ने अंतिम प्रतिवेदन दे दिया कि मुकदमा चलने योग्य नहीं है।

पुलिस ने शिवविलास और बाबूराम के विरुद्ध दंड संहिता की धा० ४२६ और ४६८ तथा १०९ के अंतर्गत आरोपपत्र भेजा। मजिस्ट्रेट इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि उपर्युक्त धाराओं के अंतर्गत अपराध नहीं हुआ है वरन् यह अपराध दंड संहिता की धारा १९३ और १९६ का है। अतः मजिस्ट्रेट ने रामविलास के विरुद्ध धारा १९३ का आरोप लगाया और बाबूराम के विरुद्ध धारा १९६ का।

इन लोगों ने न्यायाधीश के यहाँ पुनरीक्षण किया। इसमें उनका कहना था कि दं० प्र० सं० की धारा १९५ (१) बी० के अनुसार धारा १९३ और १९६ के अंतर्गत अपराध का संज्ञान तभी लिया जा सकता है जब कि परिवाद किसी न्यायालय द्वारा निवेशित हो। चूँकि यहाँ ऐसा नहीं हुआ है इसलिए मजिस्ट्रेट को आरोप लगाने का अधिकार नहीं था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्वान सत्र न्यायाधीश ने यह बात मान ली और उन्होंने कुछ रूलिंग्स के आधार पर अभिस्ताव किया है कि धारा १६३ और १६६ के आरोप को अभिखंडित कर देना चाहिए।

इस अभिदेश में दोनों पक्षों के वकीलों की बात सुनने के पश्चात् मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि अभिदेश स्वीकार नहीं किया जा सकता।

उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि धारा १६३ और १६६ का अपराध शिवविलास और बाबूराम ने उस समय किया जब कि पुलिस इसकी छानबीन कर रही थी। अर्थात् दं० प्र० सं० धारा १६६ के अंतर्गत अंतिम प्रतिवेदन देने के पहले ही अपराध हुआ। उस समय किसी न्यायालय में कोई कार्यवाही नहीं हो रही थी। कार्यवाही तब आरंभ होती जब पुलिस धारा १६६ के अनुसार अंतिम प्रतिवेदन न देकर धारा १७३ में मुकदमा चलाने का प्रतिवेदनदेती। जैसा कि यह मुकदमा है किसी न्यायालय में कार्यवाही (प्रोसीडिंग) का शुरू होना तब कहा जाता है जब कि दं० प्र० सं० धा० १६० में बताए गए किसी भी ढंग पर मुकदमा चलाने के संबंध में संज्ञान (काग्निजेंस) लिया जाता है। यों तो दं० प्र० सं० धा० १६६ में अंतिम प्रतिवेदन मजिस्ट्रेट के अनुमोदन के लिये दिया जाता है किंतु अंतर यह है कि मजिस्ट्रेट उस समय न्यायालय का काम नहीं करता रहता, उस समय वह मजिस्ट्रेट का काम करता है।

अतः यहाँ विचारणीय प्रश्न केवल एक यही है कि जब दं० सं० की धा० १६३ और १६६ का अपराध उस समय नहीं होता जब कि किसी न्यायालय में कार्यवाही चल रही हो बल्कि छानबीन के समय ही जब अपराध हो गया रहता है तो संज्ञान (काग्निजेंस) लेने के पहले क्या यह आवश्यक है परिवाद न्यायालय द्वारा ही निवेशित हो?

दं० प्र० सं० धा० १६५ (१) (बी०) कुछ धाराओं के अपराधों का संज्ञान लेने से रोकती है। इनमें से धारा १६३ और १६६ भी है। किंतु उसमें दिया हुआ है कि जब यह अपराध "न्यायालय में की कार्यवाही (प्रोसीडिंग) या कार्यवाही के संबंध में हो..." तब यह आवश्यक है कि परिवाद न्यायालय द्वारा हो। इसका अर्थ यह होता है कि यदि अपराध न्यायालय की कार्यवाही या कार्यवाही के संबंध में नहीं हुआ है तो न्यायालय द्वारा परिवाद निवेशित किए जाने की आवश्यकता नहीं है। इस बात की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता कि इन धाराओं के अंतर्गत अपराध उस परिस्थिति में भी हो सकते हैं जो कि न तो न्यायालय की कार्यवाही या कार्यवाही के संबंध में हों। यहाँ परिस्थिति ऐसी ही है। इसीलिए न्यायालय के परिवाद की आवश्यकता नहीं है। ए० आई० आर० १६१७ लाहौर २६७ और आई० एल० आर० २६ कलकत्ता ७८६ इसके समर्थन में हैं।

विद्वान सत्र न्यायाधीश ने अभिदेश में तीन रूलिंग्स पर निर्भर किया है जिनमें से दो के तथ्य इस मुकदमे से भिन्न थे। १६५६ इलाहाबाद ११५ में जब प्रतिलिपि के लिये प्रार्थनापत्र दिया गया उस समय कूट योजन (फोर्जरी) हुआ था। ऐसा ही झगड़ा जब उस मामले में उठा तो निर्णय हुआ था कि धारा में प्रयुक्त शब्द न्यायालय में की कार्यवाही है न कि शब्द "न्यायालय में की न्यायिक कार्यवाही" है अतः यह अपराध न्यायालय में की कार्यवाही के संबंध में हुआ है इसलिए न्यायालय द्वारा परिवाद निवेशित किया जाना आवश्यक है। इस मुकदमे में यह बात नहीं है। दूसरा मामला बंबई का था। उसमें मजिस्ट्रेट के यहाँ एक परिवाद निवेशित किया गया और मजिस्ट्रेट ने पुलिस को जब उसकी छानबीन करने का आदेश दिया तब पता चला कि मामला झूठा है। दं० सं० धा० २११ की कार्यवाही आरंभ करने के संबंध में निर्णय हुआ था कि मजिस्ट्रेट द्वारा परिवाद का निवेशित किया जाना आवश्यक है। इस मुकदमे से भी यह भिन्न है क्योंकि इसमें न्यायालय में कार्यवाही (प्रोसीडिंग) आरंभ हो चुकी थी।

३७ सी० एल० जे० ४२६ लाहौर अवश्य ही प्रार्थीगण की बात का समर्थन करता प्रतीत होता है। उसमें पुलिस को सूचना दी गई कि हमारी मोटर कार से एक घड़ी चुरा ली गई है। पुलिस ने जब इसकी छान-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीन की तो पता चला कि घड़ी चोरी नहीं गई है बल्कि उसने उसे स्वयं रख लिया है तथा चोरी की सूचना गलत है। उसके ऊपर दं० सं० की धारा १९३ और २११ के अंतर्गत मुकदमा चलने को हुआ और इस संबंध में पुलिस ने जब आरोपपत्र दिया और मजिस्ट्रेट ने संज्ञान लिया तब उच्च न्यायालय ने इस आधार पर अभिखंडित कर दिया कि चूँकि यह अपराध न्यायालय की कार्यवाही में हुआ है इसलिए न्यायालय द्वारा परिवाद आवश्यक है। इसके निर्णय में विद्वान न्यायाधीश ने केवल सिंध के एक निर्णय पर निर्भर किया (ए० आई० आर० १९२९ सिंध १३२) और ऐसे निष्कर्ष पर पहुँचनेवाला उन्होंने अपना कोई स्वतंत्र तर्क नहीं दिया और सिंध के निर्णय पर विचार करने से आता है कि मुकदमा इससे भिन्न था। सिंध के उपर्युक्त मुकदमे में प्रायः एक ही अंतर्विषय के दो प्रार्थना पत्र पुलिस को और एस० डी० एम० को दिए गए थे। पुलिस ने जब छानबीन किया तो पता चला कि मामला गलत है। धा० २११ के अंतर्गत जब आरोप लगाया गया तब अभियुक्त की आपत्ति थी कि न्यायालय द्वारा परिवाद के न रहने पर मजिस्ट्रेट को संज्ञान (काग्निजेंस) लेने का अधिकार ही नहीं था और अंत में अभियुक्त का यह कथन माना गया था। एक साथ ही प्रार्थना पत्र जब एस० डी० एम० और पुलिस दोनों को भेजा गया तो यह निष्कर्ष ठीक था कि न्यायालय में कार्यवाही आरंभ हो चुकी है। यह मामला ऐसा नहीं था जिसमें केवल पुलिस द्वारा छानबीन करते समय अपराध किया गया था। अतः अत्यंत संमान के साथ मैं लाहौर के इस निर्णय को मानने में असमर्थता प्रकट करता हूँ कि पुलिस की छानबीन के समय का अपराध न्यायालय की कार्यवाही के संबंध में होता है।

इस मामले में अपराध न्यायालय में कार्यवाही आरंभ होने के पहले पुलिस के छानबीन करनेवाली अवस्था में किया गया है इसलिए न्यायालय द्वारा परिवाद निवेशित करने की आवश्यकता नहीं है तथा मजिस्ट्रेट के संज्ञान (काग्निजेंस) पर आपत्ति नहीं की जा सकती। अभियुक्तों के विरुद्ध आरोपों पर आपत्ति नहीं की जा सकती। अभिदेश स्वीकार नहीं किया जा सकता। तद्नुसार यह अस्वीकृत होता है।

अभिदेश अस्वीकृत

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ इलाहाबाद उच्च न्यायालय १५२

न्यायमूर्ति आर० के० चौधरी

बिजनौर के सत्र न्यायाधीश के आपराधिक पुनरीक्षण सं० ९।१९५७ में दिए गए आदेश दिनांक ६-८-५७ के विरुद्ध आपराधिक पुनरीक्षण सं० १२६२।१९५७।

(११ मार्च १९५८ को निर्णीत)

विश्वंभर दयाल तथा अन्य— प्रार्थीगण

वि०—

राज्य, द्वारा शबीर अहमद— विपक्षी

दं० प्र० संहिता १८९८, धा० ३६१—अनुपस्थिति में पुनरीक्षण को उत्सर्जित करनेवाला आदेश निर्णय नहीं होता इसलिए इसकी सुनवाई फिर से हो सकती है।

न्यायमूर्ति चौधरी—

विपक्षी शबीर अहमद प्रार्थीगण पर दं० संहिता की धा० ४०६ के अंतर्गत मुकदमा चला रहा था। उसके परिवाद को मजिस्ट्रेट ने दं० प्र० सं० की धारा २०३ के अंतर्गत उत्सर्जित कर दिया। परिवाद (कंप्लेंट) के उत्सर्जन का आदेश दिनांक १४-१-५७ को पारित किया गया। इस आदेश के विरुद्ध शबीर अहमद ने पुनरीक्षण निवेशित किया। विद्वान् सत्र न्यायाधीश ने पुनरीक्षण को अनुपस्थिति में दिनांक ६-८-५७ को अस्वीकृत कर दिया। अस्वीकृति का एक छोटा सा आदेश दिया गया—"प्रार्थी की ओर से कोई नहीं है। अस्वीकृत।"

इस पर शबीर अहमद ने पुनर्विचार प्रार्थनापत्र दिया कि उस दिन न्यायालय में पुकार बहुत पहले ही हो जाने से हमारे वकील उपस्थित न हो सके इसलिए अस्वीकृति का आदेश निराकृत कर दिया जाय। विद्वान्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्र न्यायाधीश ने अनुपस्थिति के इस कारण को पर्याप्त माना और आदेश दिया कि यह पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र फिर से सुनवाई के लिये पुनर्स्थापित किया जाय। यह आदेश १३-४-१९५७ को दिया गया था।

इसके विरुद्ध जो यह पुनरीक्षण है उसमें प्रार्थी की ओर से उच्चन्यायालय और सत्र न्यायाधीश के तत्संबंधी अधिकार के बारे में अनेक रूलिंगस दी गई हैं जिसमें दं० प्र० सं० की धारा ३६९ के अंतर्गत निर्णय को बदलनेवाले प्रतिबंध की चर्चा हुई थी। एक प्रमाण १९४९ ए० आई० आर० १५४ का है जिसमें केवल यही कहा गया था कि दं० प्र० सं० के अंतर्गत व्य० प्र० सं० के आ० ९ नि० ९ और आ० ४१ नि० १९ जैसा कोई उपबंध नहीं है और जब पहले के न्यायालय ने परिवाद (कंप्लेंट) को दं० प्र० सं० की धारा २०३ के अंतर्गत उत्सर्जित कर दिया है तो यदि परिवादी की बात सत्य है तो उन्हीं तथ्यों पर उसे दूसरा परिवाद निवेशित करने में कोई रुकावट नहीं है। इसके विरुद्ध विपक्षी की ओर से ए० आई० आर० १९२३ मद्रास ४२६ का अभिदेश दिया गया है। यह प्रमाण प्रार्थी के प्रमाण के पहले का है किंतु प्रार्थीवाली रूलिंग मद्रास १९४९ में इसकी चर्चा नहीं है।

विद्वान् सत्र न्यायाधीश का १३–४–५७ का आदेश दो कारणों से ठीक नहीं है। १—जब कि पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र द्वारा हो तो उस प्रसंग में दं० प्र० सं० में कहीं ऐसा नहीं दिया गया है कि वह प्रार्थी की अनुपस्थिति के आधार पर उत्सर्जित किया जा सके। २—वह आदेश निर्णय (जजमेंट) नहीं था जिस पर दं० प्र० संहिता या प्रतिबंध लगता कारण कि उसका निर्णय तत्व पर नहीं हुआ था।

इसलिए जब यह निर्णय नहीं था तो सत्र न्यायाधीश इसकी सुनवाई फिर से कर सकते थे। इसके समर्थन में ए० आई० आर० १९२३ मद्रास ४२६ है। एक बात अवश्य है कि न्यायाधीश का विचार इसको पुनर्स्थापित (रिस्टोर) करने का था और इसके लिये पुनर्स्थापना का कोई नियम है नहीं किंतु पुनर्स्थापना से यहाँ इतना ही अर्थ है कि उन्होंने इसकी फिर से सुनवाई की इसलिए यह ठीक ही है।

दूसरी आपत्ति है कि परिवादी ने अनुपस्थिति का जो कारण दिखलाया है वह पर्याप्त नहीं है किंतु इस संबंध में विद्वान् न्यायाधीश ने जब न्यायिक स्वविवेक का प्रयोग किया है तो उसमें हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता। दूसरे जब यह तय हो चुका है कि अनुपस्थिति में उत्सर्जन का आदेश ठीक नहीं है तो फिर अनुपस्थिति के कारण की पर्याप्तता का प्रश्न ही कहाँ उठता है ?

प्रार्थनापत्र उत्सर्जित

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ इलाहाबाद उच्चन्यायालय १५३

आर० दयाल एवं बी० दयाल न्यायमूर्तिगण

रामपुर के जिला न्यायाधीश के वाद सं० १९।१९५१ प्रकीर्णक सं० २३।१९५६ में दिए गए निर्णय दिनांक १०-११-१९५६ के विरुद्ध व्यवहार पुनरीक्षण सं० २९९।१९५७।

(२२ अप्रैल १९५८).

मुहम्मद नियामतुल्ला खाँ — प्रार्थी

वि०

उ० प्र० राज्य, द्वारा नजीममल-रामपुर— विपक्षी

सामान्य नियम (व्यवहार) (इलाहाबाद उच्च न्यायालय नि० ५८३ परिच्छेद २-उदाहरण १—जो पक्ष सफल हुआ उसे पूरा व्यय डिग्री बनाते समय दे दिया गया—बाद में हारे हुए पक्ष ने पुनर्विचार प्रार्थनापत्र के दिया जो उत्सर्जित हुआ—वही वकील इस पुनर्विचार प्रार्थनापत्र विरोध में थे—वकील का यह शुल्क (फीस) भी सफल पक्ष को अलग से दिलाया जायगा।

न्यायमूर्ति आर० दयाल—

निम्नलिखित प्रश्न इस न्यायासन के समक्ष निर्णय के लिये भेजा गया है:—

"मुकदमें का निर्णय करते समय डिग्री में यदि पूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधिक शुल्क आ गया है और इसके बाद यदि विपक्षी निर्णय पर पुनर्विचार करने के लिये प्रार्थनापत्र देता है जो कि अंततोगत्वा उत्सर्जित हो जाता है और यदि जो पक्ष सफल हुआ था उसने अपने उसी वकील को इस पुनर्विचार प्रार्थनापत्र के विरोध में बहस करने के लिये रखा था तो क्या पुनर्विचार प्रार्थनापत्र के संबंध में उस वकील का शुल्क डिग्री में अलग से रखा जा सकता है ?"

प्रार्थी के विद्वान् वकील का कहना है कि अधिकतम विधिक शुल्क आरंभिक डिग्री में आ चुका है इसलिए सामान्य नियम (व्यवहार) के नि० ५८३ के अनुसार पुनर्विचार के संबंध में वकील का शुल्क अलग से डिग्री में नहीं लाया जा सकता। यह कथन ठीक नहीं प्रतीत होता। नि० ५८३ और उसके उदाहरण १ के देखने से प्रतीत होता है कि उसमें केवल वही कार्यवाही आती है जो कि वाद के अंतिम निर्वर्तन के पहले की प्रक्रियाओं से संबंधित रहती है और उन अन्य कार्यवाही से संबंध नहीं रखती जो कि वाद से तो संबंधित हैं किंतु डिग्री के पारित होने के बाद की कार्यवाही हैं। पुनर्विचार प्रार्थनापत्र अपील निवेशित करने का एक वैकल्पिक (आल्टरनेटिव) उपाय है। इस तथ्य का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा कि पुनर्विचार प्रार्थनापत्र उसी न्यायालय में दिया गया है।

अतः हमारे विचार से यदि आरंभिक डिग्री में पूरा विधिक शुल्क आ चुका है तब भी इस पुनर्विचार प्रार्थनापत्र से संबंधित शुल्क अलग से आना चाहिए।

प्रश्न का उत्तर सकारात्मक है संबंधित न्यायासन को यह संमति भेज दी जाय।

——

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इला० उ० न्या० १५४

मेरठ के व्यवहार न्यायाधीश के व्यवहार अपील सं० ७।१९४८ के निर्णय दिनांक १८-५-१९४८ के विरुद्ध एस० ए० सं० ११९२।१९४८

(२९ जुलाई १९५८ को निर्णीत)

भरत तथा अन्य — अपीलकर्तागण

वि०

खजान सिंह तथा अन्य — उत्तरवादीगण

उ० प्र० जमींदारी विनाश तथा भूमिसुधार अधिनियम १९५१, धारा ९ अनधिप्रवेशी (ट्रेसपासर) के धारण को मान्यता दी गई।

न्यायमूर्ति देसाई—

प्रतिवादीगण के विरुद्ध धारण (पोजेशन) की एक डिग्री हुई थी उसी के विरुद्ध प्रतिवादियों द्वारा यह अपील निवेशित की गई है।

वादीगण का वादपत्र में कहना था कि हम लोग इस विवाद ग्रस्त भूमि के स्वामी हैं जो अकबरपुर सागर के खेवट खाता सं० १ में है तथा प्रतिवादीगण ने हमारी अनुपस्थिति में और बिना हमारी सहमति के एक मकान बना लिया है और मकान के बाद बची हुई भूमि को अपने प्रयोग में ला रहे हैं अतः उसका अधिनिष्कासन करके धारण दिला दिया जाय।

जमींदारी विनाश अधिनियम की धा० ४ में है कि एक निश्चित तिथि को जो विज्ञप्ति द्वारा सूचित की जायगी सारी संपदा (स्टेट) उ० प्र० राज्य में निहित हो जायगी। अधिनियम में "संपदा" की जो परिभाषा दी गई है उसमें वाद विषय की भूमि आती है। प्रतिवादीगण का कहना है कि ज० वि० की धारा ४, ६ और ९ के अनुसार वादियों का स्वत्व समाप्त हो चुका है और हम लोग अधिनिष्कासित नहीं किए जा सकते इसलिए नीचे के न्यायालय की डिग्री अभिखंडित कर दी जाय।

वादीगण ने यह वाद अपने स्वामित्व अधिकार के बल पर विवेशित किया है। यह स्वामित्व अधिकार १-७-५२ (निहित होने की तिथि) को समाप्त हो गया इसलिए वाद का प्रमुख आधार ही अब नहीं रहा। वादीगण ने धारण के बल पर इस वाद में डिग्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं माँगी है क्योंकि यह मान्य है कि धारण अपील-कर्ता का है। उसने स्वत्व (टाइटिल) पर निर्भर किया है और उसका धारण स्वत्व निरपेक्ष नहीं हो सकता। अस्तु जब उसका स्वत्व (टाइटिल) चला गया तो उसके साथ उसका धारण का अधिकार भी समाप्त हो गया। इस प्रकार निहित होने की तिथि को न तो उसके (वादी के) पास स्वत्व था, न धारण और न तो धारण का अधिकार ही था। यदि कोई अपने धारण के आधार पर धारण वापस पाना चाहता है तो उसे ६ महीने के भीतर वाद निवेशित करना चाहिए नहीं तो उसे अपने स्वत्व के आधार पर वाद निवेशित करना पड़ेगा और अपना स्वत्व प्रतिवादी से बड़ा प्रमाणित करना पड़ेगा। यहाँ निहित होने की तिथि को उसका कोई बड़ा स्वत्व नहीं था।

जमींदारी विनाश अधिनियम की धारा ६ के अंतर्गत इस मकान को उससे संबद्ध क्षेत्रफल के साथ मानो सरकार ने प्रतिवादीगण के साथ बंदोबस्त कर दिया है क्योंकि यह मान्य है कि उसका स्वामी प्रतिवादी है और यह संपदा राज्य सरकार में निहित हो चुकी है।

हमारे इस निष्कर्ष के समर्थन में निम्नलिखित निर्णय हैं:—

(१) मनोहरलाल वि० सुलह कुमार एस० ए० सं० १६८१।१६५० १७–१०–१६५२ को निर्णीत।

(२) तिलक राम वि० राम सिंह एस० ए० सं० ६५।१६४८ –१४–७–१६५२ को निर्णीत।

(३) सय्यद मुहम्मद रजा वि० रामलाल १६५५ ए० डब्ल्यू० आर० (उच्चन्यायालय) ११८।

इसके विरुद्ध २ निर्णय दिखलाए गए। वे हैं १६५३ ए० डब्ल्यू० आर० (उच्च न्यायालय) ११८ और १६५४ ए० एल० जे० ६६३। इसमें निर्णय हुआ था कि धा० ६ का लाभ विधिक स्वामी को ही दिया जा सकता है, अनधिप्रवेशी को नहीं। अत्यंत संमान के साथ मैं इस विचार से सहमत नहीं हूँ। इसमें "विधिक" शब्द जोड़ने का अधिकार न्यायालय को नहीं है क्योंकि यह सर्वथा स्पष्ट है। दूसरे, विधान मंडल ने यदि अनधि-प्रवेशी के अधिकार को मान्यता दी है तो इसमें कोई अस्वाभाविकता भी नहीं है क्योंकि निहित होने के परिणाम स्वरूप जब विधिक स्वामी के स्वत्व अधिकार सब समाप्त हो चुके तो अनधिप्रवेशी ही बच रहता है और इसलिए इसी के ही अधिकार को मान्यता दी गई। मान लिया जाय कि यदि उस पर अनधिप्रवेशी का धारण नहीं रहता तब भी यह संपदा उसके आरंभिक स्वामी की न होती वरन् यह राज्य सरकार में निहित हो जाती। निहित होने की तिथि १–७–१६५२ को वादी उसका स्वामी नहीं रह गया और धा० ६ के अनुसार प्रतिवादीगण उसके स्वामी हुए इसलिए यह मामला अब राज्य सरकार और अनधिप्रवेशी (प्रति-वादीगण) के बीच का रह गया है और राज्य सरकार यदि अनधिप्रवेशी के अधिकार को मान्यता देती है तो इसमें कोई गलती या विचित्रता नहीं है।

विधान मंडल ने धारा ६ में जिन शब्दों का प्रयोग किया है उनका अर्थ विस्तृत होता है। मकान के बारे में ये शब्द विधि संमति रूप से बनाए गए और विधि विरुद्ध बनाए गए दोनों प्रकार की अवस्थाओं में लागू होते हैं। विधान मंडल ने यदि विस्तृत अर्थवाली भाषा का प्रयोग किया है तो फिर इसकी आवश्यकता नहीं रह जाती कि वह विशिष्ट रूप से यह कहे कि धारा ६ अनधिप्रवेशियों के लिये भी लागू होगी। मध्यवर्ती के साथ ऐसा मकान का बंदोबस्त होना तब माना जाता जब कि मकान उसका होता अन्यथा नहीं। इन कारणों से हम १६५३ ए० डब्ल्यू० आर० (उच्च न्यायालय) ११८ और १६५४ ए० एल० जे० ६६३ के निर्णय को मानने में असमर्थ हैं। हमारे मत का समर्थन जो उपर्युक्त तीन निर्णय करते हैं उनका अनुसरण किया जाता है।

अपील स्वीकृत होती है और नीचे के न्यायालय द्वारा पारित डिग्री निराकृत की जाती है। वादी–उत्तर-वादी का वाद उत्सर्जित होता है। परिस्थिति के अनुसार आदेश दिया जाता है कि इस अपील का परिव्यय दोनों पक्षों पर रहेगा किंतु वादी–उत्तरवादी नीचे के न्यायालय का व्यय प्रतिवादी अपीलकर्ता से प्राप्त करेगा।

अपील स्वीकृत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इलाहाबाद उ० न्या० १५६

न्यायमूर्ति जे० के० टंडन

फैजाबाद के मुंसिफ श्री० आर० एस० सिंह के वाद सं० २४२।५० में दिए गए निर्णय दिनांक १५-६-१९५० के विरुद्ध आपराधिक पुनरीक्षण सं० १३२२।१९५०

(१५ फरवरी १९५७)

शोभा — वादी अपीलकर्ता

वि०

रामफल — प्रतिवादी विपक्षी

विशिष्ट साहाय्य अधिनियम, १८७८ धा० ६, ७—धारा ६ के अंतर्गत वाद—वादी के धारण को वैधिक (जुरिडिकल) होना चाहिए।

न्यायमूर्ति टंडन—

वादी ने एक वाद विशिष्ट साहाय्य अधिनियम की धारा ६ के अंतर्गत निवेशित किया था। उसमें उसने एक भूमि का धारण वापस माँगा था। मुंसिफ ने वाद उत्सर्जित कर दिया उसी के विरुद्ध यह पुनरीक्षण है।

प्रतिवादी का कहना था कि मैं वादी को यह खेत सौंप कर विदेश चला गया और उससे कह दिया था कि वह खेत जोतकर उसकी उपज उसके अवयस्क छोटे भाई को दिया करे। प्रतिवादी के कहने के अनुसार ८, १० वर्ष पहले उसने इस प्रकार प्रबंध किया था और जब वह १९४७ में वापस आया तो खेत को लेकर स्वतः जोतने लगा इस प्रकार वह अब भी धारण में है।

वादी ने प्रतिवादी के इस कथन से भिन्न तथ्य दिया था। वादी के कहने के अनुसार प्रतिवादी ने बिना किसी अधिकार के उसे ३-७-१९५० धारणाच्युत कर दिया था। उसने २५-७-१९५० को धारण (पोजेशन) के लिये वाद निवेशित किया था इसलिए यह ६ महीने के भीतर था।

पटवारी ने कुछ प्रवृष्टि (ऐंट्री) प्रतिवादी के विरुद्ध की थी उसके बारे में प्रतिवादी का कहना है कि उसका बंधन हम पर नहीं है।

पक्ष और विपक्ष के साक्ष्यों के परीक्षण के बाद मुंसिफ ने निर्णय दिया कि—

"मैं प्रतिवादी के कथन को सत्य मानता हूँ और यह कि वास्तव में प्रतिवादी कानून की दृष्टि में स्वतः इन खेतों के धारण में है। इसलिए इस वादपद का निर्णय वादी के विरुद्ध जाता है।"

उसमें यह स्पष्ट नहीं है कि किन किन तिथियों को वह धारण में रहा किंतु जब मुंसिफ ने कह दिया कि "प्रतिवादी के कथन को सत्य मानता हूँ" तो इस प्रतिवादी ने कहा है कि मैं १९५० के ८, १० वर्ष पहले विदेश गया था और खेत वादी को दे दिया था कि वह उसकी उपज छोटे भाई को देता रहे। उसने कहा है कि मैं १९४७ में लौटा और तभी से वह खेत लगातार हमारे धारण में चला आ रहा है। मुंसिफ के कथनानुसार प्रतिवादी की ये सब बातें ठीक हैं—और यदि ठीक हैं तो धारणा प्रतिवादी का है न कि वादी का।

मुंसिफ ने जो यह लिखा है "कानून की दृष्टि में प्रतिवादी धारणा में है" उसके आधार पर कहा गया कि विद्वान् मुंसिफ ने स्वत्व (टाइटिल) के प्रश्न पर विचार किया है जिसका कि उन्हें अधिकार नहीं था। यों तो विद्वान् मुंसिफ ने शब्द "कानून की दृष्टि" में का प्रयोग किया है किंतु उन्होंने स्वत्व के बारे में कोई जाँच नहीं की है इसलिए यह निश्चित है विद्वान् मुंसिफ स्वत्व के प्रश्न पर नहीं गए हैं।

विशिष्ट साहाय्य अधिनियम की धारा ७ और ६ के प्रयोजन के लिये यह आवश्यक है कि जो पक्ष धारण वापस चाहता हो उसका धारण वैधिक (जुरिडिकल) होना चाहिए। नौकर या नियुक्ती या उप का धारण जो उन्हें स्वामी अपने लाभ के लिये देता है वह वास्तव में स्वामी का ही धारण होता है। ऐसे व्यक्ति जो वास्तविक अभ्यासी (आकूपैंट) होते हैं वे अपने स्वामी के लिये धारण रखते हैं।

आई० एल० आर० २२ कलकत्ता ५६२ में कहा गया था कि वादी का धारणा वैधिक धारणा नहीं है इसलिए विशिष्ट साहाय्य अधिनियम की धारा ६ में उसका मुकदमा चल नहीं सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यही सिद्धांत इस मामले में भी लागू होता है। अतः यदि प्रतिवादी की ओर से वादी धारण में रहा है तो विशिष्ट साहाय्य अधिनियम की धारा ९ के अनुसार उसका धारण धारण नहीं है और इस प्रकार वह किसी भी साहाय्य (रिलीफ) का अधिकारी नहीं है।

परिणामतः प्रार्थनापत्र असफल होता है और परिव्यय के साथ उत्सर्जित किया जाता है।

प्रार्थनापत्र उत्सर्जित

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इलाहाबाद उच्चन्यायालय १५७

डी० एन० राय और एस० एन० सहाय न्यायमूर्तिगण

सरकारी आपराधिक अपील सं० १७३६।१९५५ आपराधिक अपील सं० ११६० और १३६३।१९५५ से संबंधित।

२८ अप्रैल १९५८

राज्य — अपील कर्ता

वि०

सिद्धनाथ राय उपनाम सिद्धी राय तथा अन्य-उत्तरवादीगण

गाज़ीपुर के सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश दिनांक २९-७-१९५५ के विरुद्ध आपराधिक सरकारी अपील।

(अ) दंड संहिता १८६० धा० ९५ से १००—जब किसी अनधिप्रवेशी का कोई कार्य चोरी के समान हो तो उसके स्वामी को यह अधिकार है कि वह उन्हें बलपूर्वक बाहर निकाल दे और संपत्ति को ले जाने से रोक दे और इसमें यदि परिस्थिति के अनुसार चोट पहुँचाता है तो भी वह आत्म प्रतिरक्षा (सेल्फ डिफेंस) का अधिकारी है—किंतु जब आपराधिक कार्य पूरा हो गया रहता है तब परिस्थिति दूसरी हो जाती है।

(ब) आपराधिक अन्वीक्षा - अभियुक्त ने यदि अपराध को दं० सं० के सामान्य अपवादों के अंतर्गत कहा है किंतु यदि तत्संबंधी प्रमाण तत्कालीन स्थिति को प्रमाणित न कर सके और जब न्यायालय संपूर्ण साक्ष्यों के परीक्षण के बाद संदेह में पड़ जाय तो इस आधार पर अभियुक्त को छोड़ दिए जाने का अधिकार है।

न्यायमूर्ति राय—

सिद्धनाथ राय के साथ रघुपति राय, रामजतन राय तथा बेलाल पर दं० संहिता की धा० ३०२ और ३२३ (धा० ३४ के साथ पठित) का आरोप लगा था। आरोप था कि उन लोगों ने हरी जी का वध किया है और विश्वनाथ राय को साधारण चोटें पहुँचाई हैं और यह सब करने में उनका अभिप्राय एक समान था। धारा ३०२ के आरोप से चारों अभियुक्त छोड़ दिए गए। दं० सं० की धारा ३०४ भाग १ के अंतर्गत केवल सिद्धनाथ राय की दोषसिद्धि हुई है। चारों की दोषसिद्धि धा० ३४ के साथ पठित धारा ३२३ में हुई है। सिद्धनाथ ने अपनी अपील अलग से निवेशित की है। इनके अतिरिक्त दूसरे तीन अभियुक्तों ने अपनी दोषसिद्धि के विरुद्ध एक दूसरी अपील निवेशित की है तथा सरकार ने इन चारों की धा० ३०२।३४ के आरोप से दोषमुक्ति के विरुद्ध तीसरी अपील निवेशित की है। इन तीनों की सुनवाई एक साथ हुई है और इनका निर्वर्तन एक ही निर्णय में किया जाता है।

यह मान्य है कि २१ अक्टूबर १९५४ को झगड़ा हुआ और इन चारों अभियुक्तों के हरी जी और विश्वनाथ राय पर आक्रमण करने के फलस्वरूप हरी जी की मृत्यु हुई और विश्वनाथ राय को साधारण चोट आई अतः यहाँ केवल निम्नलिखित प्रश्नों पर विचार करना है १—क्या चारों अभियुक्त आत्म प्रतिरक्षा के अधिकार का लाभ उठा सकते हैं और क्या इन लोगों ने इस अधिकार का अतिक्रमण नहीं किया है ? २—यदि ऐसी बात नहीं है तो क्या चारों ने दं० संहिता की धा० ३०२।३४ के अंतर्गत अपराध किया है या क्या सिद्धनाथ राय ने अकेले दं० संहिता की धा० ३०४ भाग १ के अंतर्गत अपराध किया है ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभियोजन की ओर से और अभियुक्तों की ओर से साक्षी आए हैं और उनका परीक्षण हुआ है। इनके साक्ष्यों से यह प्रमाणित है कि अभियोजन साक्षी विश्वनाथ और उसके पुत्र हरी जी मृतक और अभियुक्त सिद्धनाथ से बहुत दिनों से शत्रुता चली आती थी। दोनों दल अलग अलग रह कर खेती करते थे। यह शत्रुता एक खेत के झगड़े से आरंभ हुई थी।

विश्वनाथ राय ने अभियुक्त सिद्धनाथ के दो बैल बलपूर्वक छीन लिया था और वे बैल विश्वनाथ की छावनी पर रहते थे। एक दिन सिद्धनाथ आदि वहाँ से अपने बैल ले आए और इसमें विश्वनाथ ने कोई रुकावट इसलिए नहीं डाली कि वह अकेला था।

घटना के दिन विश्वनाथ और हरी जी हथियार से सज्जित होकर बैल पुनः छीन ले जाने के लिये दृढ़ संकल्प होकर आए और उस समय वे बैल सिद्धनाथ के खेत में चल रहे थे। विश्वनाथ और हरी जी ने वहाँ पहुँच कर सिद्धनाथ और बेलाल को ललकारा कि बैल ले जा रहे हैं यदि हिम्मत हो तो रोकें। इस पर जहाँ तहाँ से अभियुक्त गण कुछ लाठी लेकर कुछ भाला लेकर दौड़े और दोनों दल खेत से थोड़ी दूर पर भिड़ गए।

अभियोजन का कहना है कि पहला आक्रमण अभियुक्तों की ओर से हुआ और अभियुक्तों का कहना है कि पहला आक्रमण विश्वनाथ और हरी जी ने किया। सत्र न्यायाधीश का कहना है कि अभिलेख पर कोई बात ऐसी नहीं है जिससे पता चल सके कि पहला आक्रमण किधर से हुआ। किंतु विद्वान् सत्र न्यायाधीश इस तथ्य को छोड़ गए कि रघुपति अभियुक्त ने उपार्पण मजिस्ट्रेट के समक्ष यह बयान दिया था कि विश्वनाथ और हरी ने पहला आक्रमण किया और इसका समर्थन बनवारी (डी० डब्ल्यू० ५) के साक्ष्य से होता है और परिस्थिति के अनुसार यही संभव भी प्रतीत होता है।

अभियोजन कहानी है कि अभियुक्तों ने तुरत पहुँच कर आक्रमण कर दिया और विश्वनाथ तथा हरी जी के आक्रमण अपने बचाव के लिये थे किंतु इसकी चर्चा प्रथम सूचना प्रतिवेदन में नहीं है जिसे चौकीदार ने किया था। यह बात जब चौकीदार से पूछी गई तो उसने कहा कि मैंने प्र० सू० प्र० में इसे लिखाया है किंतु जब उसे दिखाया गया कि प्र० सू० प्र० में यह बात नहीं है तो वह इसका कुछ कारण न बता सका। अतः विश्वनाथ और हरी जी आक्रामक थे और उन्होंने ही सब से पहले लाठी से आक्रमण किया था।

अभियोजन ने यह दिखलाने का प्रयत्न किया है कि अभियुक्तों को चोट नहीं आई। किंतु साक्षियों और डाक्टर के प्रतिवेदन से यह प्रमाणित है कि अभियुक्तों को भी चोटें आईं।

अभियोजन की ओर से सच्ची बात छिपाने का प्रयत्न किया गया है। हमारा निष्कर्ष है कि बैल सिद्धनाथ अभियुक्त के थे और विश्वनाथ तथा हरी जब तैयार होकर बैल छीनने के लिये आए तो वे बैल सिद्धनाथ के खेत में नधे थे। विश्वनाथ और हरी ने अभियुक्त की भूमिपर अनधिप्रवेश किया और वे आक्रामक थे।

पहले पहल विश्वनाथ और हरी ने लाठी से रघुपति अभियुक्त के सिर पर मारा जो कि भारी चोट पहुँचा सकता था और तब इसी के बाद दोनों ओर से भाले और लाठियाँ चलने लगीं और दोनों ओर को चोटें पहुचीं। हरी जी की मृत्यु इसी बीच सिद्धनाथ अभियुक्त के भाले से हो गई। अभियुक्तों ने अपने और अपनी संपत्ति की रक्षा के लिये आक्रमण किया था। जब परिवादी बैल लेने गए तो अभियुक्तों की ओर से कोई भय नहीं था। परिवादी का इस संपत्ति पर कोई स्वत्व रहा भी हो तो उसके लिये उपाय अदालत में थी न कि बल प्रयोग। परिवादी पहले इस संपत्ति को शांति पूर्वक धारण किए था और अभियुक्तों ने जब इसे छीना तब कोई झगड़ा नहीं हुआ तो इस प्रकार धारण छोड़ने में उन्होंने अपनी सहमति कुछ समय तक दी और तब फिर जो वे बल पूर्वक पुनः छीन लाने को तैयार हुए वह गलत था। इसके लिये उन्हें अदालत में ही जाना चाहिए था।

अभियुक्तगण झगड़ा करने के लिये तैयार होकर नहीं गए थे। जो संपत्ति उनके धारण में थी उसकी धारणाच्युति की संभावना जब सहसा उत्पन्न हो गई तो वे अपनी बचत में आक्रमण कर सकते थे। इतना शीघ्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इला० (राजस्व) ५७

भजनलाल चतुर्वेदी न्यायिक सदस्य

(राजस्व मंडल)

जगदीशपुर, कोपाची पूरव, बलिया

बनारस प्रभाग के अतिरिक्त आयुक्त के आदेश दिनांक २७ फरवरी १९५६ के आदेश के विरुद्ध द्वितीय अपील (प्रार्थना पत्र सं० १२--बी० १९५५।५६)

१५ मार्च १९५८

मथुरा कोइरी — अपीलकर्ता

विरुद्ध

मनोरिया श्रीमती, तथा अन्य — उत्तरवादीगण

उ० प्र० पंचायत राज अधिनियम १९४७, धारा ८५-उ० प्र० भूराजस्व अधिनियम, १९०१--दाखिल खारिज के मुकदमे में उक्त अधिनियम की धा० ८५ का क्षेत्र--

भजनलाल चतुर्वेदी न्यायिक सदस्य —

देवराज ४ अक्टूबर १९४९ को मरा। श्रीमती मनोरिया ने अपने को देवराज मृतक की विधवा कहकर अपने नाम से दाखिल खारिज के लिये तहसीलदार के यहाँ प्रार्थनापत्र दिया। तहसीलदार ने भूराजस्व अधिनियम की धारा ३५।४१—ए० के अंतर्गत इसे अदालती पंचायत में भेज दिया। अदालती पंचों ने दो निर्णय दिया। एक निर्णय जो श्रीमती मनोरिया के पक्ष में था उस पर तीन पंचों के हस्ताक्षर थे; दूसरा निर्णय जो उसके विपक्ष में था उस पर ४ पंचों के हस्ताक्षर थे। इस दूसरे निर्णय में श्रीमती मनोरिया को देवराज की विधवा नहीं माना गया था वरन् उसे किसी रामू की विधवा कहा गया था। इनमें से दो पंच दोनों निर्णयों में संमिलित थे। एस०डी०ओ०बलिया के यहाँ जब प्रार्थनापत्र दिया गया तब उन्होंने पंचायत अदालत का यह निर्णय इस आधार पर अभिखंडित कर दिया कि उस पर पंचों के हस्ताक्षर नहीं हैं और दूसरे निर्णय में विरोध नितांत स्पष्ट है और इसलिए वह स्वीकार करने योग्य नहीं है। यह अधिकार उन्हें पंचायत राज अधिनियम की धा० ८५—(१) बी० के अंतर्गत दिया गया था। अभिखंडन के बाद उसके परिणाम क्या क्या हो सकते हैं यह उक्त धारा के उपवाक्य ४.में दिया हुआ है और इसी पर इसका विवाद आधारित है।

इस उपवाक्य में दिया हुआ है कि एस० डी० ओ० यदि उपर्युक्त ढंग से अभिखंडित कर दें तो पक्ष को किसी राजस्व न्यायालय में जिसे कि इसकी सुनवाई का अधिकार हो कार्यवाही करने का अधिकार होगा और इस नवीन कार्यवाही की अवधि के संबंध में कहा गया कि एस० डी० ओ० के और अदालत पंचायत में जितने समय तक मुकदमा रहा है वह समय जोड़ा नहीं जायगा।

इस अधिकार के बल पर श्रीमती मनोरिया ने अदालत पंचायत में दाखिल खारिज के लिये एक प्रार्थना पत्र फिर दिया। यह १०-८-१९५२ को दिया गया था जब कि जमीदारी विनाश अधिनियम लागू हो चुका था और संशोधन के अनुसार अदालत पंचायत को दाखिल खारिज के मुकदमें सुनने का अधिकार दिया गया था। पंचायती अदालत ने इसे बलिया के तहसीलदार के पास भेजा और नायब तहसीलदार ने जो तहसीलदार का काम करते थे इस अभिस्तावना के साथ एस० डी० ओ० के पास भेजा कि श्रीमती मनोरिया का नाम मृतक देवराज के विधिक उत्तराधिकारी के स्थान पर लिखने का आदेश दिया जाय। एस० डी० ओ० ने निर्णय दिया कि मनोरिया देवराज मृतक की विधवा है अतः देवराज के स्थान पर उसका नाम लिख दिया जाय। मथुरा कोइरी ने इस आदेश के विरुद्ध जिलाधीश के यहाँ अपील की और जिलाधीश ने अपील इस आधार पर स्वीकार कर लिया कि जब धारा ८५ के अंतर्गत अदालत पंचायत का अधिक्षेत्र अभिखंडित कर दिया गया था तो कोई नियम नहीं है कि मनोरिया फिर अदालत पंचायत में प्रार्थनापत्र दे। मनोरिया ने इस आदेश के विरुद्ध अतिरिक्त आयुक्त के यहाँ अपील किया। इस अपील में निर्णय हुआ कि नियमानुसार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एस० डी० ओ० के आदेश की अपील आयुक्त के यहाँ होनी चाहिए जिलाधीश के यहाँ नहीं इसलिए जिलाधीश का अपील स्वीकृतिवाला आदेश उनके अधिक्षेत्र के बाहर था। इसके परिणाम स्वरूप एस० डी० ओ० का आदेश पुनर्स्थापित हुआ। मथुरा कोइरी अब यहाँ तृतीय अपील में आया है।

मथुरा कोइरी की ओर से निम्नलिखित प्रतर्क रखे गए हैं:—

१ भूअभिलेख नियमावली परिच्छेद ८१ (३) के अंतर्गत पंचायत अदालत में पुनः प्रार्थनापत्र देने का अधिकार नहीं था क्योंकि पंचायत अदालत का अधिक्षेत्र एक बार अभिखंडित हो चुका था। इसके बारे में एक ममाण १९५४ इलाहाबाद ७२१ को अभिदेश किया गया। यह एक आपराधिक मामला था किंतु अपीलकर्ता के विद्वान् वकील के अनुसार उसमें के सिद्धांत इसमें लागू होते हैं। इस रूलिंग में यह निर्णय हुआ था कि अधिक्षेत्र अभिखंडित होने पर जो मजिस्ट्रेट समर्थ हो उसके न्यायालय में सुनवाई होनी चाहिए। विद्वान् वकील के कथनानुसार अधिक्षेत्र अभिखंडन से कार्यवाही की समाप्ति नहीं होती जिसके फलस्वरूप नए सिरे से कार्यवाही आरंभ हो बल्कि इसका तात्पर्य केवल इतना ही होता है कि जिस न्यायालय ने कार्यवाही अभिखंडित किया है वह या तो इसकी सुनवाई स्वतः करे या समर्थ न्यायालय में सुनवाई के लिये स्थानांतरित कर दे। अपीलकर्ता का कहना है कि पंचायत अदालत में पुनः प्रार्थनापत्र निवेशित करना गलत है।

२—चूँकि जिलाधीश के आदेश की अपील आयुक्त के यहाँ नहीं हो सकती थी इसलिए विद्वान आयुक्त को जिलाधीश के आदेश के निराकरण का अधिकार नहीं था।

(३) श्रीमती मनोरिया देवराज मृतक की विधवा है या रामू की यह तथ्य का प्रश्न है, नीचे के न्यायालय ने इस पर विचार नहीं किया है और अपील भी जो निवेशित की गई है वह एक मात्र विधि के प्रश्न पर है इसलिए तथ्य के प्रश्न पर विचार नहीं होना चाहिए।

श्रीमती मनोरिया के विद्वान् वकील का कहना है कि:—

१—इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने निर्णय दिया है कि निर्णय को मान्यता देने के लिये यह आवश्यक है कि सभी पंच हस्ताक्षर बनावें। यहाँ ऐसा नहीं हुआ था इसलिए प्रक्रिया ठीक न होने से यह अभिखंडित की गई।

२—जब जमींदारी विनाश अधिनियम लागू हुआ तो उसमें दाखिल खारिज के मुकदमे का अधिक्षेत्र एकमात्र न्याय पंचायत को दिया गया। इसीलिए १० अगस्त १९५२ को दूसरा प्रार्थनापत्र अदालत पंचायत में दिया गया और उस समय तक जमींदारी विनाश अधिनियम लागू हो चुका था।

(३) विद्वान् एस० डी० ओ० ने प्रक्रिया के अनुसार अनेक साक्ष्यों का परीक्षण किया और तब इस तथ्य पर निर्णय दिया कि श्रीमती मनोरिया देवराज मृतक की विधवा है।

(४) निहित होने की तिथि के बाद दिनांक १० अगस्त १९५२ को यह प्रार्थनापत्र दिया गया है इसलिए यों तो बोर्ड का अधिकार असीम है किंतु इस परिस्थिति में तीसरी अपील निवेशित नहीं की जा सकती।

हमारे विचार से पंचायत राज अधिनियम की धारा ८५ (४) के अंतर्गत कार्यवाही राजस्व न्यायालय में चल सकती है और इसके लिये तीन परिस्थितियाँ हो सकती हैं:—

१—मजिस्ट्रेट स्वतः अभिलेख मँगाकर सुनवाई करें।

२—स्थानांतरण कर दें, या

३—नए सिरे से कार्यवाही आरंभ की जाय। यदि इनमें से एक कार्यवाही की गई है तो दूसरी साथ साथ नहीं चलेगी। यदि मजिस्ट्रेट ने प्रथम दो का आश्रय लिया है और जमीदारी विनाश अधिनियम लागू हो गया तो समझा जायगा कि वाद निहित होने की तिथि के पहले से विचाराधीन है नहीं तो तीसरी अवस्था में समझा जायगा कि कार्यवाही समाप्त हो गई थी। एस०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डी० ओ० का वह आदेश, जिससे कार्यवाही अभिखंडित की गई उसके विरुद्ध कोई अपील नहीं की गई है अतः उक्त आदेश द्वारा कार्यवाही समाप्त हो गई थी।

१० अगस्त १९५२ का प्रार्थनापत्र ठीक था। विद्वान् अतिरिक्त आयुक्त ने जो जिलाधीश का आदेश निराकृत कर दिया था वह ठीक था।

यहाँ यदि नीचे के न्यायालय ने तत्व पर विचार नहीं किया तो भी कोई अन्याय नहीं हुआ कारण कि यदि मथुरा को यह प्रमाणित करना है कि मनोरिया देवराज की विधवा नहीं है तो वह व्यवहार न्यायालय में घोषणात्मक वाद विवेशित कर सकता है—इस दाखिल खारिज के मुकदमें को रोक रखने में कोई औचित्य नहीं है। दूसरे, मथुरा कोइरी देवराज के अधिकार को ही इनकार कर जाता और एक बार ऐसा हुआ भी कि जब पंचायत में यह मुकदमा चला रहा था तभी राधा कोइरी ने एक परिवाद मनोरिया के विरुद्ध दिया जिसमें उसे रामो की विधवा कहा था। इसलिए नीचे का निर्णय ठीक था कि मनोरिया देवराज की विधवा है।

इस अपील में बल नहीं है इसलिए उत्सर्जित की जाती है।

अपील उत्सर्जित

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इला० (राजस्व) ५९

न्यायमूर्ति आर० एन० गुर्तू

उच्च न्यायालय

जौनपुर के प्रथम अतिरिक्त न्यायाधीश के व्यवहार अपील सं० १६३।१९४७ में दिए हुए निर्णय और डिग्री दिनांक १७ नवंबर १९५० के विरुद्ध द्वितीय अपील सं० ३९५।१९५१

११ दिसंबर १९५७

रामलाल तथा अन्य — अपीलकर्ता गण

वि०

मँगरी श्रीमती, तथा अन्य — उत्तरवादी गण

उ० प्र० भूधारण अधिनियम, १९३९, धा० ३४—हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम धा० १४—शरह मुअयन (फिक्स्ट रेट टेनेंसी) के खेतों के उत्तराधिकार क्रम में विधवा के उत्तराधिकारी आते हैं।

न्यायमूर्ति गुर्तू—

शरह मुअय्यन (फिक्स्ट रेट टेनेंसी) के कुछ खेतों का अंतिम पुरुष स्वामी रघुनाथ था। वह श्रीमती मँगरी को अपनी विधवा स्त्री छोड़कर मरा। श्रीमती मँगरी ने वाद विषय की संपत्ति के विषय में एक दानपत्र रामसुरजन को लिख दिया।

यह वाद रामलाल द्वारा निवेशित किया है जो प्रत्यावर्ती (रिवर्सनर) है और उसने इसे अन्य प्रत्यावर्तियों की ओर से भी निवेशित किया है कि घोषणा की जाय उक्त दानपत्र श्रीमती मँगरी की मृत्यु के बाद इन प्रत्यावर्तियों के अधिकार पर कोई प्रभाव नहीं डालेगा।

यह मुकदमा लड़ा गया। अंत में अन्वीक्षा न्यायालय ने इसे उत्सर्जित कर दिया। नीचे के न्यायालय में जब अपील निवेशित की गई तो उसने भी यह वाद इस आधार पर उत्सर्जित कर दिया कि रामलाल (वादी) के पिता गज्जू से और श्रीमती मँगरी से पहले ही एक समझौता हो चुका था जिसमें आधा भाग मँगरी को मिला और आधा गज्जू, वादी के पिता को। गज्जू इस आधी संपत्ति का उपभोग करते हुए जब मर गया तो रामलाल (वादी इसके धारण में आया इसलिए यदि श्रीमती मँगरी ने अपने आधे भाग को दान में दे दिया तो रामलाल उस पर आपत्ति नहीं कर सकता।

जब यह द्वितीय अपील निवेशित की गई तो उस समय हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम लागू हो चुका था। इस अधिनियम की धारा १४ के अंतर्गत विधवा के जीवनपर्यंत तक का अधिकार समाप्त करके उसे पूर्ण अधिकार दिया गया। उ० प्र० भूधारण अधिनियम की धारा ३४ के अंतर्गत शरहमुअय्यन (फिक्स्टड रेट टेनेंसी) इस मुकदमें की परिस्थिति में हिंदू विधि से शासित थी। हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम लागू होने से यह इसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिनियम से शासित होने लगी। इस अधिनियम की धारा १४ के अनुसार विधवा संपदा विस्तृत होकर पूर्ण संपदा हो गई; प्रत्यावर्तीगण इस अधिनियम के लागू होने के बाद रह नहीं गए क्योंकि हिंदू विधि का यह अधिकार अब मान्य नहीं रहा।

अतः श्रीमती मँगरी के उत्तराधिकारी इसके स्वामी होंगे। उसके पति के उत्तराधिकारी अब प्रत्यावर्ती नहीं रहे।

उपर्युक्त कारणों से यह अपील असफल होती है।

विशेष अपील निवेशित करने की अनुमति माँगी गई और स्वीकार की जाती है।

अपील उत्सर्जित

विधि पत्रिका (१८८०) १६५८ इला० (राजस्व) ६०

भजनलाल चतुर्वेदी और बी० पी० शाही न्यायिक सदस्य (राजस्व मंडल)

शिवपुर दीयर, बलिया

वाराणसी प्रभाग के अतिरिक्त आयुक्त के आदेश दिनांक १० जून १६५५ के विरुद्ध द्वितीय अपील (प्रार्थना पत्र सं० १।१६५५–५६)

२६ अक्टूबर १६५७

देहरी राय इत्यादि   अपीलकर्तागण

विरुद्ध

रंग सिंह   उत्तरवादीगण

अ—भारतीय संविधान अनुच्छेद ३ (डी०)—राज्य (स्टेट) का सीमा परिवर्तन संबंधी विवाद न्यायिक मामला नहीं है इसलिए तत्संबंधी विवाद का निबटारा संसद अनुच्छेद ३ (डी०) के अंतर्गत करता है—ऐसी आपत्ति का राजस्व न्यायालय की प्रक्रिया पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

(ब) कागजों की शुद्धि—प्रार्थी के नाम की प्रवृष्टि यदि १३५५ फ० तक हो और १३५६ फ० में बिना किसी न्यायालय के आदेश से परिवर्तन कर दिया गया हो तो यह खतौनी की शुद्धि का मामला है और घोषणात्मक वाद निवेशित करने के लिये बाध्य नहीं किया जा सकता।

न्यायिक सदस्य, भजनलाल चतुर्वेदी—

यह मुकदमा पुराने भूराजस्व अधिनियम के अंतर्गत था इसलिए तृतीय अपील संधार्य है और इस तथ्य पर उभय पक्ष सहमत हैं।

तथ्य इस प्रकार है कि देहरी राय ने अन्य प्रार्थियों के साथ कागजों की शुद्धि के लिये प्रार्थनापत्र दिया। प्रार्थियों का कहना है कि अनुसूची ए० पर देहरी राय का धारण अकेले है और अनुसूची बी० पर उसका धारण और प्रार्थियों के साथ है। प्रार्थियों का कहना है कि हम लोग विपक्षियों की अनुमति से लगान देकर धारण में हैं किंतु पटवारी ने विपक्षी से मिलकर हमारा नाम १३५६ फ० में हटा दिया इसलिए कागज शुद्ध किए जायँ।

विपक्षियों ने इस पर आपत्ति की कि वाद विषय की संपत्ति बिहार में पड़ती है इसलिए इस न्यायालय को इसकी सुनवाई का अधिकार नहीं है। उन्होंने यह भी कहा कि प्रार्थीगण कभी धारण में नहीं रहे और न तो उनके साथ भूमि का बंदोबस्त किया गया।

अन्वीक्षा न्यायालय ने निर्णय दिया कि भूमि बिहार में पड़ती है इसलिए उत्तर प्रदेश के न्यायालय को इसकी सुनवाई का अधिकार नहीं है। अपील पर बलिया के जिलाधीश ने इस निर्णय को उलट दिया और आदेश दिया कि सुनवाई तत्व पर की जाय। इस पर एस० डी० ओ० ने सुनवाई के बाद निर्णय दिया कि यह विवाद मूलभूत अधिकार से संबद्ध है इसलिए इसका निर्णय नियमानुसार निवेशित वाद में होना चाहिए। इसके विरुद्ध दो अपीलें की गई। एक अपील सं० ६४ देहरी राय तथा अन्य प्रार्थियों ने की और दूसरी अपील सं०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

९८ राम प्रवेश हज्जाम ने की। जिलाधीश ने अपील सं० ९४ स्वीकार किया और अपील सं० ९८ उत्सर्जित। इसके विरुद्ध दो अपीलें हुईं और उनमें विद्वान् अतिरिक्त आयुक्त ने निर्णय दिया कि इसमें कागजों की शुद्धि के लिये प्रार्थनापत्र नहीं दिया जा सकता। उन्होंने शुद्धि के लिये दिए हुए प्रार्थनापत्रों को उत्सर्जित कर दिया। इसी आदेश के विरुद्ध देहरी राय तथा अन्य यहाँ तृतीय अपील में आए हैं।

प्रार्थी अपीलकर्ता के विद्वान् वकील का कहना है कि:—

१—मामला कितना हूँ उलझन का क्यों न हो जब कागजों की शुद्धि के लिये प्रार्थना धारण (पोजेशन) के आधार पर की जाती है तो यह शुद्धि का ही मामला होता है न कि घोषणा (डिक्लेशरेशन) का।

२—प्रार्थीगण ६ वर्ष की लंबी अवधि से शिकमी चले आ रहे हैं विपक्षी रंग सिंह ने स्वयं उन्हें लगान की रसीद दिया है तथा विपक्षीगण ने यह प्रमाण कहीं नहीं दिया कि इस बंदोबस्त में कोई धोखा हुआ है इसलिए विपक्षी इस बंदोबस्त को इनकार नहीं कर सकते।

३—श्री रंग सिंह का नाम १३५६ फ० की खतौनी में नहीं है और उनका धारण भी नहीं है।

४—केवल रंग सिंह को छोड़कर अन्य विपक्षियों ने समझौता कर लिया है और प्रार्थियों के प्रार्थनापत्र का समर्थन किया है इसलिए इसे कार्यरूप में परिणित करना चाहिए।

विपक्षियों के विद्वान् वकील का कहना है कि:—

१—यह मामला साधारण नहीं है वरन् इसमें स्वत्व (टाइटिल) का प्रश्न भी है जो कि घोषणात्मक वाद में विचारणीय होता।

२—समझौता के लिये कहा गया है कि यदि केवल तीन साझेदारों ने इसे स्वीकार किया है तो इससे कोई वैध स्वत्व नहीं मिल सकता।

३—समझौता के आधार पर जो धारणा होता है वह पूर्ण धारण नहीं होता।

४—शिकमी लगान की दर केवल ३ रु० बीघा है जो इतनी कम है कि इसे झूठा ही समझना चाहिए।

५—वाद विषय की संपति जहाँ स्थित है उसके विषय में उत्तर प्रदेश और बिहार सरकार में लिखापढ़ी चल रही है और जब तक इसका निबटारा नहीं हो जाता उत्तर प्रदेश के किसी राजस्व न्यायालय को इसकी सुनवाई का अधिक्षेत्र नहीं है।

यह मान्य है कि प्रार्थी गण १३५५ फ० में शिकमी लिखे हुए हैं। यह भी मान्य है कि यह भूमि पहले बंधक थी जिसका निष्क्रयण प्रतिवादीगण वर्ग १ ने प्रतिवादी गण वर्ग २ से किया और इसी के बाद पटवारी ने स्वामियों का नाम विवरण स्तंभ में लिख दिया।

सीमा के विवाद के संबंध में बलिया के जिलाधीश श्री हबीब अहमद सिदिकी आई० ए० एस० ने लिखा था कि सीमा संबंधी झगड़ा अभी भी चल रहा है और यह मानकर कि यह गाँव बिहार में पड़ता है यदि बलिया के न्यायालय को शुद्धि का अधिकार न दिया गया तो इस बीच पटवारी कागजों को लिखने में मनमानी करेंगे और कोई इसको रोकनेवाला न रहेगा।

जिलाधीश के इस विचार पर आपत्ति की गई है कि शासन की अच्छाई बनाए रखने के लिये तो यह विचार ठीक है किंतु यह न्यायिक विचार नहीं है। विद्वान् वकील का कहना है कि अधिक्षेत्र के प्रश्न पर निर्णय पहले होना चाहिए और जब तक यह तय न हो जाय कि बलिया के न्यायालय को इसकी सुनवाई का अधिकार है तब तक यहाँ के न्यायालय के निर्णय देने का कोई अर्थ नहीं है।

हमारे विचार से सीमा परिवर्तन संबंधी विवाद न्यायिक मामला नहीं है इसका निर्णय संसद भारतीय संविधान के अनुच्छेद ३ (डी०) के अंतर्गत इसके परंतुक के अधीन करता है। यदि सीमा आयोग ने उत्तर प्रदेश के पक्ष में निर्णय नहीं दिया तो संविधानीय और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैधानिक कार्यवाही संविधान के अनुच्छेद ३ के अनुसार की जायगी। इस झगड़े से राजस्व न्यायालय का कुछ संबंध नहीं है अतः इस मामले के प्रयोजन के लिये ऐसे अभिकथन का कोई प्रभाव नहीं है।

प्रार्थीगण पटवारी के कागजों में १३५५ फ० तक हैं। बिना किसी न्यायालय के आदेश के १३५६ फ० परिवर्तन कर दिया गया। यह स्पष्टतः खतौनी की शुद्धि का प्रश्न है और प्रार्थियों को बाध्य करने का कोई प्रश्न नहीं उठता कि वे घोषणात्मक वाद निवेशित करें।

राम परवेश हज्जाम भी विधिक शिकमी है अतः जिलाधीश का इसके विरुद्ध दिया हुआ आदेश ठीक नहीं था।

परिणामतः अपने विद्वान् सहयोगी की सहमति के अधीन मैं आदेश देता हूँ कि देहरीराय का नाम और प्रार्थियों के साथ जिसमें राम परवेश हज्जाम भी संमिलित रहेगा १३५६ फ०की खतौनी में शिकमी में लिखा जाय। परिव्यय सामान्य।

यह अपील सं० १ और २ १९५५-५६ में लागू होगा।

बी० पी० शाही—आपत्ति पढ़ा। प्रस्तावित आदेश में सहमति प्रकट करता हूँ।

प्रार्थनापत्र स्वीकृत

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ इला० (राजस्व) ६२

कृषि आयकर पुनरीक्षण सं० २२१ से २२५।१९५७

जिला बहराइच

(३१ जनवरी १९५८)

बेनी प्रसाद सिंह प्रार्थी

विरुद्ध

राज्य विपक्षी

उत्तर प्रदेश कृषि आयकर अधिनियम १९४८—व्य० प्र० संहिता ५।१९०८ धारा ११—कर निर्धारण प्राधिकरण ने पहले वर्ष परिवार को संयुक्त मानकर कर निर्धारण किया—दूसरे वर्ष इसमें परिवर्तन करने के लिये परिस्थितियाँ—

न्यायालय द्वारा—

फैजाबाद प्रभाग के आयुक्त के आदेश के विरुद्ध ५ पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र आए हैं। इसमें प्रमुख विचारणीय प्रश्न केवल यह है कि क्या उत्तरवर्ती करनिर्धारण प्राधिकरण पर पूर्ववर्ती प्राधिकरण के निर्णय का बंधन है ?

दो प्रमाण दिए गए हैं जिनमें कहा गया था कि कृषि आयकर के मामलों में व्य० प्र० सं० लागू नहीं होती और प्राङ् न्याय (रेस जुडिकेटा) का सिद्धांत लागू नहीं होता कारण कि कर वर्ष प्रति वर्ष बदलता रहता है फिर भी अनेक निर्णयों में यह तय हो चुका है कि यदि पहले वर्ष में बँटवारा माना गया है तो उसको उत्तरवर्ती प्राधिकरण सिवा वैध कारणों के आधार पर बदल नहीं सकता।

किस आधार पर उत्तरवादी प्राधिकरण अपने पूर्ववर्ती प्राधिकरण का निर्णय बदल सकता है यह १९५३ ए० आई० आर० नागपुर २१ में दिया गया है। इस निर्णय में निम्नलिखित परिस्थितियाँ बतलाई गई हैं:—

१—पहलेवाला निर्णय पूरी जाँच करने के बाद नहीं दिया गया था,

२—पहलेवाला निर्णय मनमाना था और

३ - ऐसे नए तथ्य प्रकाश में आवें जो कि यदि पहले ही जानकारी में रहे होते तो वैसा निर्णय न हुआ होता।

नागपुर उच्च न्यायालय ने यह भी कहा था कि यदि उपर्युक्त परिस्थितियाँ नहीं हैं तो पहले के निर्णय से सहमत न होने पर भी उसे बदला नहीं जा सकता। पहले के निर्णय के विरुद्ध निर्णय दिए जाने योग्य परिस्थितियाँ हैं—इसका भार राज्य पर है। इस मामले में ऐसी कोई बात नहीं है। यह प्रमाणित नहीं किया गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि पहलेवाला निर्णय मनमाने ढंग पर दिया गया था या उसकी पूरी जाँच नहीं हुई।

परिणामतः पुनरीक्षण स्वीकार किया जाता है और विद्वान् आयुक्त का आदेश निराकृत किया जाता है। इसका प्रतिप्रेषण किया जाता है कि पक्ष अपने अपने साक्ष्य दें। यदि पहलेवाले निष्कर्ष को बदलना हो तो उपर्युक्त तीन नियमों के अनुसार ही परिवर्तन हो।

यह आदेश पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र सं० २२१ से २२५ १९५७ जिला बहराइच में लागू होगा।

—पुनरीक्षण स्वीकृत.

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इलाहाबाद (राजस्व)६३

बी० एल० चतुर्वेदी, न्यायिक सदस्य, (राजस्व मंडल)

लदलाबस, सिकंदराबाद, बुलंदशहर

मेरठ के अतिरिक्त आयुक्त के आदेश दिनांक २९ अक्टूबर १९५३ के विरुद्ध द्वितीय अपील (प्रार्थनापत्र सं० २२५।१९५३-५४)

३० अक्टूबर, १९५७

तुलसीराम अपीलकर्ता

विरुद्ध

रामचंद्र उत्तरवादी

उ० प्र० चकबंदी अधिनियम ५।१९५४--धारा १२ (५)--वाद या कार्यवाही का रोक रखा जाना इस शर्त के अधीन नहीं है कि पहले स्वत्व के प्रश्न का अभिदेश पंच को कर दिया जाय--नई धारा १२ (५) विचाराधीन मामलों में भी लागू होती है।

न्यायिक सदस्य बी० एल० चतुर्वेदी—

इस अपील में केवल इसी प्रश्न पर बहस है कि चकबंदी अधिनियम की धारा १२ (५) के अंतर्गत कार्यवाही रोक रखी जा सकती है कि नहीं। अपीलकर्ता के विद्वान् वकील का कहना है कि पहले की धारा १२ (५) और नई धारा १२ (५) एक समान नहीं हैं। उनका कहना है कि पहले के अधिनियम के अनुसार अभिदेश करने के बाद कार्यवाही रोकी जा सकती है और चूँकि यहाँ अभिदेश नहीं हुआ है इसलिए कार्यवाही रोकी नहीं जा सकती। उनका यह भी कहना है कि धारा का प्रभाव अतीत प्रभावी नहीं है।

इस धारा का संबंध प्रक्रिया से है इसलिए निश्चय ही यह अतीतप्रभावी है। १९५३ के अधिनियम में कार्यवाही की रोक रखा जाना और स्वत्व के प्रश्न पर पंच को अभिदेश सहवर्ती कार्यवाही थी। १९५४ के अधिनियम की धारा १२ (४) के अंतर्गत इन कार्यवाहियों के लिये ऐसा कोई सहवर्ती विधान नहीं है। वह इसलिए है कि चकबंदी अधिकारी धारा ११ के अंतर्गत विवरण आदि से जब समझता है कि इसमें स्वत्व का प्रश्न है तो पहले वह व्यवहार न्यायाधीश को अभिदेश करेगा और व्यवहार न्यायाधीश पंच को। यदि कार्यवाही रोकी नहीं गई है तो इन अभिदेशों का कुछ अर्थ नहीं होगा। अतः नए अधिनियम में पहले कार्यवाही रोक दी जानी चाहिए और तब अभिदेश करना चाहिए। प्रक्रिया में यह परिवर्तन हुआ है इसलिए विचाराधीन वादों में भी यह लागू होगा। अतः इस कथन में बल नहीं है कि चूँकि पंच को अभिदेश अभी तक नहीं किया गया है इसलिए कार्यवाही को रोकना नहीं चाहिए।

परिणामतः अपीलें चकबंदी अधिनियम १९५४—धारा १२ (५) में रुकी रहेंगी।

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इलाहाबाद (राजस्व)६४

(राजस्व मंडल)

एस० एन० मित्रा न्यायिक सदस्य (राजस्व मंडल)

सरखुर्द, बिधुना, इटावा

इलाहाबाद के अतिरिक्त आयुक्त के आदेश दिनांक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२३ मई १९५८ के विरुद्ध द्वितीय अपील (प्रार्थनापत्र सं० ६४।१९५६-५७)

३० अगस्त १९५८

दीनदयाल · अपीलकर्ता

विरुद्ध

फदलू तथा अन्य उत्तरवादीगण

(अ) उत्तर प्रदेश जमींदारी विनाश तथा भूमि सुधार अधिनियम, १।१९५१, धा० २२९ बी०, २३४ ए०, २४० एच० (२)—प्रतिकर अधिकारी के समक्ष आपत्ति उठाने पर अपील का न्यायाधिकरण (फोरम) इन मामलों में द्वितीय अपील हो सकती है ।

(ब) व्यवहार प्रक्रिया संहिता १९०८ आ० २२ नि० ३—पक्ष—मृत्यु के बाद वकील ने बिना वकालत नामा के पक्ष बनाने का प्रार्थनापत्र दिया—पक्ष बनने के लिये ऐसा प्रार्थनापत्र उत्सर्जित होगा—

न्यायिक सदस्य एस० एन० मित्रा --

इलाहाबाद के अतिरिक्त आयुक्त के आदेश के विरुद्ध यह द्वितीय अपील है ।

उ० प्र० ज० वि० तथा भूमि सुधार अधिनियम की धा० २४०—जी० के अंतर्गत दीनदयाल ने अपने नाम से प्रतिकर निर्धारण के विरुद्ध प्रार्थनापत्र दिया कि विपक्षी गलत ढंग से अधिवासी लिखा हुआ है और वह गलती से सीरदार हुआ है। उसका कहना है कि मैं प्रमुख कृषक हूँ तथा धारण में हूँ इसलिए विवादग्रस्त भूमि में धारा २४० ए० लागू नहीं होती ।

विपक्षी ने इसका विरोध किया कि हम ८।९ वर्ष से इसके धारण में है और हमारा अधिवासी और तत्पश्चात सीरदार होना ठीक है ।

अन्वीक्षा न्यायालय ने निर्णय दिया कि विपक्षी १३५९ फ० में धारण में था तथा ३० अक्टूबर १९५४ को धारण में था और प्रार्थनापत्र उत्सर्जित कर दिया। अपील करने पर विद्वान् अतिरिक्त आयुक्त ने अन्वीक्षा न्यायालय के इसी निर्णय को मान लिया और अपील उत्सर्जित कर दिया ।

उत्तरवादी के विद्वान् वकील का कहना है कि:—

१—धारा २४०—एच० (२) (ए०) में है कि निर्वर्तन के लिये इस प्रकार का प्रार्थनापत्र उस अदालत में भेज दिया जायगा जिसे धारा २२९ बी० धारा २३४ ए० के साथ पठित के मामलों के सुनने का अधिकार हो और इस प्रकार उस उपवाक्य के अनुसार इस न्यायालय में द्वितीय अपील नहीं हो सकती ।

२—अपील का अधिकार प्रक्रिया (प्रोसीजर) का अधिकार है और जमींदारी विनाश अधिनियम की अनुसूची २ में धारा २४० नहीं दी गई है इसलिए द्वितीय अपील निवेशित नहीं की जा सकती ।

३—धारा २४० प्रतिकर दिए जाने से संबंध रखती है इसीलिए द्वितीय अपील का कोई उपबंध नहीं है ।

४—दीनदयाल अपीलकर्ता की मृत्यु हो चुकी है। उसके विधिक प्रतिनिधि को पक्ष बनाने के लिये जो प्रार्थना पत्र दिया गया वह बी० एल० जायसवाल द्वारा है किंतु उनके नाम से वकालतनामा नहीं है अतः उन्हें प्रार्थनापत्र देने का कोई अधिकार नहीं था और केवल इसी आधार पर प्रार्थनापत्र असफल हो जाना चाहिए।

अपीलकर्ता के विद्वान् वकील का कहना है कि जहाँ प्रतिकर दिए जाने के संबंध में ऐसी परिस्थिति में आपत्ति की जाय तो इसे उस न्यायालय को अभिदेश कर देने का उपबंध है जो धारा २२९ बी०, धारा २३४ ए० के साथ पठित वाले मामलों को सुन सकता हो तथा इसकी सुनवाई उसी प्रकार होगी मानो यह वाद (सूट) हो । धारा २२९ बी० जमींदारी विनाश अधिनियम की अनुसूची २ में है इसलिए यहाँ द्वितीय अपील ठीक है।

अपीलकर्ता के विद्वान् वकील का कथन ठीक प्रतीत होता है क्योंकि अभिदेश कर देने पर यह वाद (सूट) के समान चलता रहेगा और जब अनुसूची २ में धारा २२९ बी० है तो यहाँ यह द्वितीय अपील संधार्य है ।

दीनदयाल अपीलकर्ता मर गया है। अभिलेख पर कोई भी ऐसा प्रमाण नहीं है जिससे यह प्रमाणित हो कि श्री जायसवाल जी के पक्ष में कोई वकालतनामा लिखा गया । अतः श्री जायसवाल को पक्ष बनाने के लिये प्रार्थनापत्र देने का अधिकार नहीं था । यह द्वितीय अपील उसी आधार पर असफल होती है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Furnish	प्रदान, देना, प्रस्तुत करना, उपस्करण, सुसज्जित करना
„ satisfactory evidence	संतोषजनक साक्ष्य प्रस्तुत करना
„ security	प्रतिभूति देना
Further	और भी, आगे, इसके अतिरिक्त, अतः परं, ततः परं, और
„ enquiry	और जाँच
„ evidence	और साक्ष्य
„ increment	भावी वृद्धि
„ information	और सूचना
„ list	अगली सूची
„ period	और अवधि

G

Gain	लाभ, पाना, प्राप्त करना, लाभ उठाना, अर्जित करना
„ and loss	लाभ और हानि, लाभालाभ
„ by knowledge	ज्ञानार्जित
Gains of learning	विद्या लाभ
Gallery	दीर्घा, वीथिका
Gamble	द्यूत, जुआ, जुआ खेलना
Gambling contract	द्यूत संविदा
Game	क्रीड़ा, आखेट, शिकार
„ Act	आखेट अधिनियम
„ shooting rule	आखेट नियम
Gaming contract	द्यूत संविदा
Gap	अंतर अंतराल, अवकाश
Gate	द्वार, कपाट
„ keeper	द्वारिक, द्वारपाल
„ sentry	द्वारप्रहरी
„ way	प्रवेश द्वार, द्वारमार्ग
Gather	एकत्रित करना, इकट्ठा करना, संग्रह करना
Gathering	जन समूह
G. A. T. T. (General Agreement on Tariffs and Trade)	प्र० व्या० सा० स० (प्रशुल्क और व्यापार पर सामान्य समझौता)
Gazette	राजपत्र
Gazetted	राजपत्रित
„ holiday	राजपत्रित छुट्टी, राजपत्रित पर्वावकाश

६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Gazetted post	राजपत्रित पद
Gazetted rank	राजपत्रित पदस्थिति
Gazetteer	विवरणिका
Gazette of India	भारत राजपत्र, केंद्रीय राजपत्र
" order	राजपत्र आदेश
General	(१) सामान्य, अविशेष, सर्वीय (२) महा (३) सेनानी
" account	सामान्य लेखा
" administration	सामान्य प्रशासन
" adviser	महा मंत्रणाकार
" agent	सामान्य अभिकर्ता
" application	सामान्य प्रयोग
" assumpsit	सामान्य आश्राव
" Average Act	सामान्य माध्य अधिनियम
" balance	सामान्य शेष
" " book	सामान्य शेष पुस्त
" body	सामान्य निकाय
" Book Circular	सामान्य पुस्तक परिपत्र
" branch	सामान्य शाखा
" character	सामान्य ख्याति
" Clauses Act	साधारण परिभाषा अधिनियम
" count	सामान्थ पाद (जो सामान्यतः वादी के दावे को बतलावे)
" damages	सामान्य हानिपूर्ति
" demurrer	सामान्य विध्यापत्ति
" diary	सामान्य दैनंदिनी
" election	महानिर्वाचन, साधारण निर्वाचन, बड़ा चुनाव
" issue	सामान्य वाद पद
Generality	सामान्यता, व्यापकता
General jail delivery	सामान्य कारामोचन, सामान्य कारामुक्ति
" jurisprudence	सामान्य विधिशास्त्र
" law	सामान्य नियम
" legacy	सामान्य रिक्थ
" letter of credit	सामान्य प्रत्यय पत्र
" lien	सामान्य धारणाधिकार, सामान्य ग्रहणाधिकार
" manager	महा प्रबंधक
" power of disposition	सामान्य व्यवस्थापन शक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

General provident fund	सामान्य भविष्य निधि
,, rules of proccedure	सामान्य प्रक्रिया नियम, कार्य विधि
,, statute	सामान्य परिनियम
,, traverse	सामान्य उत्खंडन
,, verdict	सामान्य संनिश्चय
,, warranty	सामान्य अध्याभूति
Generation	संतति, पीढ़ी
Genius	प्रतिभा, प्रज्ञा
Genuine	(१) यथार्थ (२) सत्य, प्रामाणिक, मौलिक
,, and authentic	सच्चा और प्रामाणिक
Gestation	गर्भावधि, गर्भावस्था
,, period	गर्भावधि
Gesture	चेष्टा, अंग विक्षेप, संकेत
Ghastly	भयावह, कराल, भयानक, पैशाचिक
Gift	उपहार, परिदान, देन, भेंट, दान
,, gratuity on reward offered in good faith (G. B. C.)	सद्भावना से दिया गया उपहार, उपदान या पारतोषिक
Gift in futuro	भावी परिदान
,, made in contemplation of death	मरणोन्मुख परिदान
,, before the nuptial fire	यौतुक
,, to a class	वर्गदान
Give	(१) देना, (२) उत्पन्न करना
,, a blow	प्रहरण, प्रहार करना
,, an account	लेखा देना
,, authority to	प्राधिकार देना
,, effect	कार्यान्वित करना
,, in marriage	कन्यादान देना
Given under my hand and the seal of the court	मेरे हस्ताक्षर और न्यायालय मुद्रा के साथ दिया गया
Give out by contract	ठेके पर देना
,, precedence	पूर्वता देना, पहले रखना
,, up	परित्याग करना, छोड़ देना
Giving a satisfactory account of oneself	अपने बारे में संतोषजनक उत्तर देना
Giving false evidence	मिथ्या साक्ष्य देना
Glance	दृष्टिपात, दृक्पात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Gloss	टिप्पणिका
Godown	कोष्ठागार, कोठार
„ keeper	कोष्ठागारिक
Going armed	सायुध जाना
Go into liquidation	का अवसायन होना
Good	अच्छा, समुचित, साधु, सु, सद्, हित, कल्याण
„ administration	सु प्रशासन
„ and sufficient cause	समुचित और पर्याप्त कारण
„ behaviour	सद्व्यवहार
„ character	सच्चरित्र
„ conduct adolescent prisoner	सदाचारी किशोर बंदी
„ consideration	समुचित प्रतिफल
„ faith	सद्भाव, सद्भावना, अप्रमाद
„ name	सुख्याति
„ offices	मध्यस्थता, सौजन्य
„ order	सुव्यवस्था
„ reasons for transfer	स्थानांतरण के लिये पर्याप्त कारण
Goods and chattels	वस्तुएँ और स्वापत्तेय
„ booking	वस्तुएँ भेजना
„ in transit	मार्गस्थ वस्तुएँ
„ on consignment	परेषण वस्तुएँ
„ pledged	प्राधिदत्त वस्तुएँ
Good will	ख्याति
Go to law	वाद आरंभ करना
Govern	शासन करना, विनियमित करना
Governed by	(१) से शासित (२) के अधीन, से नियंत्रित
Governing body	शासी निकाय
Government	शासन
„ advocate	शासकीय अधिवक्ता
„ analyst	शासकीय विश्लेषयिता
„ bill	शासकीय विधेयक, शासन विधेयक
„ Book Circular	शासन पुस्तक परिपत्र
„ draft	शासकीय विकर्ष
„ House	राजभवन
„ litigation	शासकीय वादकरण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Government Management of Private Estates Act	वैयक्तिक संपदाओं का शासकीय प्रबंध अधिनियम
Government of India Act	भारत शासन अधिनियम
" " " Devolation Act	भारत शासन प्रक्रामण अधिनियम
" " " proposal	भारत शासन की प्रस्थापना (सुझाव)
" " " order	भारत शासन आदेश
" pleader	शासन अभिवक्ता
" Premises Eviction Act	शासन स्थान (अधिनिष्कासन) अधिनियम
" Savings Banks Act	शासन संचयाधिकोश अधिनियम
" servant	शासन सेवक
" servants conduct rules	शासन सेवक आचरण नियम
" service	शासन सेवा
" instructions	शासन के अनुदेश
" solicitor	शासकीय वादेक्षक
Governor	राज्यपाल, शासक
" designate	नामोद्दिष्ट राज्यपाल
" General of India	भारत महाशासक
" in council	सपरिषद् राज्यपाल
Governor's assent	राज्यपाल की अनुमति
" box	शासन प्रकोष्ठ
Grace	अनुग्रह, दया
" period	अनुग्रहावधि
Gradation	क्रम बंध
" list	पदक्रम सूची
Grade	क्रम, श्रेणी (क्रि०) क्रम बंधन, श्रेणी स्थापन
" of a court	न्यायालय का वर्ग
Gradings or cadres of posts	पदों के प्रक्रम अथवा संवर्ग
Gradual	उत्तरोत्तर, क्रमिक, क्रमशः
" tax	उत्तरोत्तर कर
Graduate	स्नातक
" in law	विधि स्नातक
Grand jury	महाशासजनी
" larceny	बड़ी चोरी
" old village officers	वयोवृद्ध ग्राम अधिकारी
Grand paernt	महाजनक
" son	पौत्र, पोता, नाती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

110722

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Grand total	महायोग
Grant	अनुदान
„ earned leave	अर्जित अवकाश देना
Granted	अनुदत्त
Grantee	अनुदान ग्रहीता
Granter	अनुदाता
Grant of land	भूमि का अनुदान
„ „ powers	शक्ति प्रदान
„ „ proprietory rights	स्वामित्वाधिकार देना
Grantor	अनुदाता
Grant relief	सहायता देना
„ sanction	संमोदन देना
Grants-in-aid	सहायक अनुदान
„ -perpetuity	शाश्वत अनुदान
Gratification	परितुष्टि
Gratuitous	निःशुल्क
„ bailee	निःशुल्क उपनिहर्ता
„ bailment	निःशुल्क उपनिधान
„ deeds	निःशुल्क विलेख
Gratuity	उपदान
„ benefit	उपदान लाभ
Grave	गुरु, गंभीर, भारी, घोर
„ crime	घोर अपराध
„ emergency	गंभीर आपात, भारी आपात
„ misconduct	घोर दुर्व्यवहार
„ mistake	घोर-भूल
Grazing land	गोचर, चर भूमि
„ revenue	चरण आगम
„ rights	चारण अधिकार, चराई के अधिकार
Grim	निष्ठुर, कठोर भयंकर
Gross	स्थूल २ सकल ३ घोर ४ अश्लील
in gross	अधिकारों का स्वतंत्र अस्तित्व में होना, अनुपाबद्ध
„ abuse	घोर, दुरुपयोग
„ amount	सकल धनराशि
„ „ of interest	वृद्धि की सकल धन राशि
„ annual income	सकल वार्षिक आय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

110722

,, circulation of notes	अर्थपत्रों का सकल परिचलन
,, insubordination	घोर अवज्ञा
,, moral turpitude	घोर नैतिक पतन
,, neglect	घोर उपेक्षा
,, negligence	घोर प्रमाद
,, profit	सकल लाभ
Ground	१, भूमि, स्थल २, आधार, कारण
,, lease	भूमि पट्टा
Groundless	निराधार
,, complaint	निराधार परिवेदना
Ground Liaison Officer	संपर्क अधिकारी
Grounds for belief	विश्वास के आधार
,, of decision	विनिश्चय के आधार
,, ,, enquiry	परिपृच्छा या जाँच के आधार
Ground tax	भू कर
Group	समूह, वर्ग, विषय वर्ग
Grove	वनिका, उपवन, निकुंज
Grow	बढ़ना, उगना, कृषिकरण उत्पादन
Growth	वृद्धि
Gurantee	१ (व्यक्ति) प्रत्याभू २ (संविद) प्रत्याभूति
Guarantee	प्रत्याभवन, प्रत्याभूति देना
,, bond	प्रत्याभूति बंध
Guaranteed	प्रत्याभूत
Guarantor	प्रत्याभू
Guaranty	१ (संविद्) प्रत्याभूति २ (व्यक्ति) प्रत्याभू
Guard	रक्षा करना, रक्षण
,, against	प्रतिरक्षण, प्रतिरक्षा करना
Guardian	प्रतिपालक, संरक्षक
,, ad litum	वाद कालीन प्रतिपालक
,, appointed or declared	नियुक्त अथवा घोषित प्रतिपालक
Guardians and wards act	प्रतिपालक तथा प्रतिपाल्य अधिनियम
Guardianship	प्रतिपालकत्व
,, certificate	प्रतिपालकत्व प्रमाणपत्र
Guard of honour	संमानार्थ सेना प्रदर्शन
Guess	अनुमान करना, ताड़ना
Guidance	मार्ग प्रदर्शन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Guide	१ मार्ग प्रदर्शक, नेता २ प्रदर्शिका
Guider	मार्ग दर्शक
Guilt	अपराध
Guilty mind	अपराधी मन, पापी मन
„ of contravention	उल्लंघनापराधी
Gun-fire	गोलन
„ license	नलिका अनुज्ञप्ति

H

Habeas corpus	बंदि प्रत्यक्षीकरण
Habit	स्वभाव, अभ्यास, व्यसन
Habitancy	१—वास २—जनसंख्या
Habitation	वास, वासस्थान
Habitual	आभ्यासिक
„ carnal intercourse	आभ्यासिक संभोग
„ defaulter	आभ्यासिक अशोधी
„ drunkurd	आभ्यासिक मद्यप, पियक्कड़
„ drunkerness	आभ्यासिक मदोन्मत्तता
„ indebtedness	आभ्यासिक ऋणग्रस्तता
„ insanity	सतत उन्मत्तता, सतत पागलपना
„ intoxication	आभ्यासिक मत्तता
Habitually	अभ्यासतः, स्वभावतया, सतत, साधारणतया
Habitual neglect of duty	आभ्यासिक कर्तव्योपेक्षा
„ offender	आभ्यासिक अपराधी
Habituate	स्वभाव पड़ना, अभ्यास पड़ना या डालना
Habituation	अभ्यस्त होना, स्वभाव होना
Half	(१) अर्द्ध, आधा (२) अर्द्ध भाग
„ and half	आधा आधा
„ average pay	अर्द्ध माध्यम वेतन
„ a year	आधा वर्ष
Half-blood	सौतेला
„ blooded	१—सौतेला २—संकर
„ bred	संकर जाति
„ brother	सौतेला भाई
„ caste	संकर जाति
„ pay leave	अर्द्ध वेतन अवकाश
„ rate scholar	अर्द्ध शुल्क छात्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि पत्रिका के नियम

(१) "विधि पत्रिका" का वार्षिक, षाण्मासिक और त्रैमासिक शुल्क क्रमशः १०), ५॥) और ३॥) है; एक प्रति का मूल्य १) है। शुल्क मनीआर्डर या वी० पी० द्वारा देय है। वी० पी० से मँगाने में डाकव्यय अतिरिक्त लगेगा।

(२) शुल्क, 'मंत्री, नागरीप्रचारिणी सभा, "विधि पत्रिका" विभाग, वाराणसी–१' के पते से आना चाहिए।

(३) "विधि पत्रिका" प्रत्येक सौर मास के अंतिम सप्ताह में अर्थात् प्रत्येक अँगरेजी मास के दिनांक १५ तक प्रकाशित होगी।

(४) "विधि पत्रिका" में विधि संबंधी लेख तथा विधि विषयक पत्रों, पुस्तकों आदि की समालोचनाएँ भी प्रकाशित होंगी। समालोचनार्थ पुस्तकों की दो प्रतियाँ आनी चाहिए। लेख, समालोचनार्थ पुस्तकें आदि संपादक, "विधि पत्रिका", नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी—१' के पते से भेजनी चाहिए।

जहाँगीर का आत्मचरित

अनुवादक—व्रजरत्नदास

मुग़ल सम्राट् अकबर के पुत्र चतुर्थ मुगल सम्राट् बादशाह जहाँगीर ने अपना आत्मचरित लिखा है जिसका अनुवाद इस ग्रंथ में प्रस्तुत किया गया है। इसमें उसके राज्यकाल के अठारह वर्षों का विस्तृत ऐतिहासिक विवरण दिया गया है और साथ ही बहुत सी ऐसी घरेलू बातें भी आ गई हैं जिनका अन्य इतिहासों में उल्लेख नहीं मिलता। जहाँगीर ने अपने पिता की बहुत सी बातों का, आकृति, प्रकृति, रुचि आदि का वर्णन अपनी रचना में यत्र तत्र किया है जो अत्यंत प्रामाणिक है। इसने अपनी यात्राओं, मदिरोत्सवों, अहेरों आदि का ऐसा सुंदर वर्णन दिया है जो कहीं कहीं बहुत आकर्षक हो गया है। इसने हिंदुओं के मंदिरों, विचारों आदि की आलोचना की है। इसमें जब एक ओर कट्टर धर्मांधता है तब दूसरी ओर उदारता भी स्पष्ट है। इसने अपने अत्याचारों, कमजोरियों आदि सभी का स्पष्ट वर्णन कर डाला है, कहीं छिपाने का प्रयत्न नहीं किया है। अपने मदिरापान की अति को उसने कुछ नहीं छिपाया और उसकी बहक में इसने अपने बड़ों तथा ईश्वर के प्रति अपनी श्रद्धा खूब दरसाई है। फारस आदि की कुछ कहानियों तथा स्वरचित शैरों का भी इसमें समावेश किया है। पुस्तक हर दृष्टि से पढ़ने तथा मनन करने योग्य है। पृ० संख्या लगभग ६०० तथा अनेक चित्रों युक्त, पक्की दृढ़ जिल्द सहित पुस्तक का मूल्य केवल १५)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशक और मुद्रक—नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी की ओर से तथा उसके लिये श्री सिद्धनाथ सि
नागरी मुद्रण, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar